आधुनिक हिन्दी काव्य में परम्परा तथा प्रयोग

(आगरा विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० (हिन्दी) उपाधि के लिये स्वीकृत)

डॉ गोपाल दत्त सारस्वत

सरस्वती प्रकाशन मन्दिर
इलाहाबाद-३

परम्परा तथा प्रयोग का दर्शन

डॉ० सत्येन्द्र एम. ए. डी. लिट.

"प्रयोग" जब बहुग्राह्य हो उठता है और काल-क्रम में दीर्घ इतिहास खड़ा कर लेता है तो वही परंपराबद्ध हो जाता है। "प्रयोग" और "परम्परा" में वही अन्तर है जो "बिन्दु" और 'रेखा' में है। बिन्दु एक प्रकार से प्रयोग है, परम्परा रेखा है। यद्यपि यह सत्य है कि एक बिन्दु की परम्परा ही रेखा है। यद्यपि यह स्पष्ट है कि 'रेखा' प्रवृति और प्रकृति में बिन्दु से पूर्णतः भिन्न होती है, केवल तत्वतः वे समान हैं।

साहित्य में यह प्रयोग या बिन्दु क्या है ?+हम सभी जानते हैं कि प्रयोग और परम्परा की अवस्थिति मानव की प्रत्येक अभिव्यक्ति के क्षेत्र में मिलती है, वह चाहे कला का क्षेत्र हो, चाहे विज्ञान का, या कोई अन्य। अतः साहित्यिक प्रयोग को भी अन्य क्षेत्रों के प्रयोग के समान ही मानना होगा। तब "प्रयोग" की सीधी परिभाषा यही होगी कि यह "अभिव्यक्ति" का प्रथम सार्थक उद्रेक है। इस प्रकार "प्रयोग" और 'आविष्कार' की एक भूमि विदित होती है। आविष्कार किन्तु प्रथम उद्घाटन का प्रयोग है, जबकि पूर्वउद्घारित का नवीन उपयोग भी हो सकता है और ऐसा नवीन उपयोग भी "प्रयोग" ही कहलाता है। मूलतः प्रयोग और परम्परा में कोई विरोध नहीं। 'प्रयोग' ही दीर्घकाल की आवृति से परम्परा में परिणित हो जाता है। पर परम्परा कुछ काल बाद उबाने लगती है और तब उस परम्परा के विरुद्ध स्वर उभरता है। यह स्वर एक परिभाषा में स्वच्छन्दता का माना जाता है, क्योंकि यह परम्परा की सीमाओं को स्वीकार नहीं करता और बँधी-सधी सीमाओं से बाहर अपना अस्तित्व सिद्ध करता है। इस स्थल पर यह स्वच्छन्दता 'प्रयोग' तो है, पर तत्कालीन परम्परा के विरोध में है। ऐसा स्वच्छन्दतावादी प्रयोग "परम्परा से सम्बन्धित सामाजिक मनोवृत्ति का साहसिक उद्धार होता है। डा० गोपाल दत्त ने अपने ग्रन्थ 'आधुनिक हिन्दी काव्य में परम्परा तथा प्रयोग' में पृष्ठ १८ पर डा० एच० बी० रूथ का एक उद्धरण यों दिया है :—

"कला को सदैव नवीन स्वरूप देते रहना चाहिये। उसका रचनात्मक प्रभाव आश्चर्यतत्व पर निर्भर रहता है। एक बार जब कलात्मक अभिव्यक्ति की पद्धति की नवीनता समाप्त हो जाती है तो पाठक या सहृदय उससे विमुख होकर अपने दैनिक कार्यों में लग जाता है। कला या साहित्य में वह एक नई दृष्टि खोजता है, पर ऐसी बासी अभिव्यक्तियों में उसे केवल स्थूल रूप का ही दर्शन होता है। इसीलिए किसी महान पुस्तक में नवीनता द्वारा चकित कर देने की शक्ति होनी चाहिये, जिससे पाठक

प्रारम्भ में ही आगे पढ़ने के लिये उत्सुक हो जाय और उसे विश्वास हो जाय कि अनुभूतियाँ व्यापक और गम्भीर छवियों के निर्माण तथा कारयित्री प्रतिभा की क्रीड़ा की सामग्री मात्र है।"[1]

रूय महोदय ने नवीनता और आश्चर्य का यह जोड़ा एक साथ करके उसे कला में लाते रहने की संस्तुति की है। आश्चर्य तत्व का सम्बन्ध उन्होंने नवीन से जोड़ा है। यह नवीनता लाना प्रयोग के अन्तर्गत माना जा सकता है। स्पष्ट है कि मात्र नवीनता प्रयोग नहीं मानी जा सकती। प्रयोग से नवीन की सीमा संकुचित है। नवीन केवल नयेपन के लिये है, प्रयोग ऐसा हो सकता है जो प्रयोग होकर भी नवीन न हो। किन्तु किसी भी नवीन वस्तु को प्रयोग कहा ही जा सकता है। नवीन के साथ भी विद्रोह या विरोध की भावना हो, ऐसी बात नहीं। नवीन एक भिन्न मनो-वृत्ति का परिणाम है, परम्परा विरोधी प्रयोग की मनोवृत्ति भिन्न भूमि रखती है।

नवीन में 'नवीनता' होती है, यह नवीनता आश्चर्यप्रद भले ही न हो, पर नवस्फूर्तिप्रद अवश्य होती है। एक नवीनता ऐसी हो सकती है जो प्रयोग में नित्य आये पर प्रतिदिन नवीन रहे। उषा का उदय प्रतिदिन होता है, उसमें प्रतिदिन नवीनता रहती है, अतः नवीनता एक गुण है, वह प्रयोग मात्र नहीं। किन्तु कुछ समय तक एक नवीनतायुक्त प्रयोग भी प्रयोग कहा जा सकता है। अतः नवीन उस मनोवृत्ति का परिणाम है जो नयी-नयी सृष्टि की उद्भावक होती है, यह निर्यामक वृत्ति है, इसके मूल में निषेध, खंडन या विरोध विद्रोह या ऊब नहीं होती। शुद्धतः यह मनोवृत्ति के **positive** पक्ष से सम्बन्धित है **negative** से नहीं। नवीन में नवीन को ग्राह्यता के साथ किसी और की अग्राह्यता का भाव नहीं। अतः प्रयोग की भावना के लिए यह अत्यन्त ही श्लाघ्य और शुद्ध प्रवृत्ति है।

"प्रयोग" के संबंध में डॉ० सारस्वत का अभिमत है :—

"प्रयोग में नया आविष्कार करने का प्रश्न नहीं उठता। परिचित वस्तुओं में सन्निहित सम्भावनाओं का उद्घाटन करना ही प्रयोग का उद्देश्य है। काव्य में यही सत्य दृष्टिगोचर होता है। काव्य-वस्तु का आधार चिर-परिचित होता है, जिससे मानव-समाज प्रेरणा ग्रहण करता है। तथा जिसका मानव हृदय से शाश्वत संबंध होता है। रूस, मास्को, लालसेना एवं लाल निशान के गीत भारतीय हृदय को स्पन्दित नहीं कर सकते, क्योंकि इनके साथ उसका रागात्मक सम्बन्ध नहीं है। प्रयोग

---

[1] डा० एन० वी० रूय: इंग्लिश लिटरेचर एण्ड आइडियाज़ इन द ट्वेंटिएथ सेंचुरी, पृ० २।

की विशेषता यह है कि कवि प्राचीन वस्तु में कल्पना का ऐसा रंग देता है कि वह सर्वथा मौलिक एवं नवीन दिखाई पड़ती है, जिससे उसकी ओर सबका हृदय आकर्षित होता है। प्रयोग का अर्थ यही है कि कवि शाश्वत सत्य को नवीन परिस्थितियों के संदर्भ में रखकर नये रूप में उपस्थित करे। इसके अतिरिक्त प्रयोग का और क्या अर्थ है।[१]

:प्रयोग और परंपरा:

काव्य-वस्तु का आधार चिर-परिचित होता है यह सत्य परम्परा के अस्तित्व की ओर एक विशेष से संकेत करता है। इससे कुछ यह आभास मिलता है कि वस्तु प्राचीन अर्थात् परम्परा से प्राप्त होती है, उसी पर नये प्रयोग किये जाते हैं। इस प्रकार प्रयोग से ही परम्परा नहीं बनती परम्परा पर भी प्रयोग किये जाते हैं। यही नहीं परम्परा और प्रयोग साथ-साथ चलते हैं। कभी वस्तु परम्परा से मिलती है तो रूप और शैली प्रयोग से, कभी-कभी वस्तु "प्रयोग" से उद्भावित होती है तो रूप और शैली परम्परा से।

दार्शनिक दृष्टिकोण से यदि देखें तो विदित होगा कि "प्रयोग 'व्यक्ति-वादी' मनोवृत्ति और मूल प्रयत्न से निबद्ध है, और "परम्परा" 'व्यक्ति-समूह' निष्ठ है।

प्रयोग से प्रेरणा कई कारणों से होती है। आत्म-विस्तृत में नयी-नयी भूमियों का उक्रमण नयी-नयी वस्तुओं से परिचित कराता है। मनः विस्तृत में वे वस्तुएँ नयी-नयी भूमियों, रूपों और रंगों से समन्वित हो उठती हैं। यह स्वाभाविक प्रतिभा है। पर संकल्प और हठ से भी प्रयोग को प्रेरणा मिलती है। कुछ प्रतिमाएँ संकल्प-पूर्वक नये-नये शब्दों का, कल्पना-रूपों (images) का, वाक्य-विन्यासों का, तथा अर्थ-भ्रान्तियों का निर्माण कर "प्रयोग" को महत्त्व देते हैं। ये प्रयोग साहित्य में नव-सर्जन के प्रेरक होते हैं। कुछ प्रयोग मात्र प्रयोग के लिए, प्रयोग के शौक के लिए भी किये जाते हैं।

प्रयोग किसी भी कारण से किया गया हो, वह प्रगतिशील स्थिति से स्थापकता प्राप्त करने में किसी सीमा तक सहायक होता है। यह इस प्रकार आत्मा और मन की काल के माध्यम से विस्तृति के परिमाणों से अनुकूलता पैदा करता है। समय की प्रगति के साथ मानव का विकास होता चलता है। उसकी अन्तर्दृष्टि के समक्ष एक अज्ञात लोक उद्घरित होता चलता है, उसके समक्ष यह समस्या उपस्थित होती है कि वह इन अनुभूतियों को किस प्रकार अभिव्यक्त करे। उसका अब तक का शब्दकोष उसके लिए अपर्याप्त सिद्ध होता है। वह एक प्रयत्न तो यह करता है कि ज्ञात शब्दों में ही उनके नये प्रयोग से नया अर्थ भर जाये ऐसा तभी होगा जब

परंपरा से प्राप्त शब्द के अर्थ में ही कोई विकार कर देने से काम चल सकता हो। किन्तु जब अनुभूति कभी-कभी सर्वथैव 'शब्दातीत' होती है, उसके लिए वह कभी यों ही कोई शब्द प्रस्तुत कर देता है। अर्थ-विकास में इसी प्रकार कभी किसी अन्य क्षेत्र का शब्द किसी अन्य क्षेत्र में एक विशेष अर्थ पैदा कर देता है। 'मीठा दर्द' में मीठा शब्द इस प्रयोग का ही एक उदाहरण है।

संक्षेप में यह स्पष्ट है कि "प्रयोग" मानव की प्रगति का द्योतक है, उसके लिए अनिवार्य है। साहित्य में प्रयोग इसी प्रकार मानव-विकास के साहित्य के विकास का द्योतक है।

किन्तु जब हम प्रयोग और पराम्परा को अलग-अलग देखना चाहते हैं तो हमें देखना होगा कि 'प्रयोगों में' ऐसे कौन से हैं जो अपनी एक दृढ़ परम्परा नहीं बन सके, जो इतने सीमित रह गये कि 'प्रयोग' की संज्ञा के ही अधिकारी रह गये। साथ ही "परम्परा" के स्वरूप को देखते हुए उससे आलिंगित प्रयोगों को भी अलग दिखाने की आवश्यकता होगी।

परम्परा किस प्रकार समय की प्रगति का साथ न देकर उससे अलग सी होकर एक मंदधारा बनकर चल रही है, यह देखते हुए भी देखना होगा कि समय-समय पर इसी अभाव की पूर्ति के लिए उसमें क्या-क्या प्रयोग किये गये हैं। परम्परा प्रगति से विच्छिन्न होकर भी क्यों जीवित है, इसका अध्ययन भी अपेक्षित होगा। उसमें ऐसे कौन से शाश्वत-तत्व हैं जो उसे अमर बना रहे हैं। भले ही हम पहली स्थित में शाश्वत तत्वों के विश्लेषण में प्रवृत्त नहीं, पर हमें अपने साहित्य और उसके अंग-प्रत्यंग के प्रत्येक तत्व में प्रयोग और परम्परा को समझ लेने की आवश्यकता है। इससे मानव की उन दोनों ही वृत्तियों के स्वरूप के साहित्यिक परिणाम का ज्ञान हो सकता है, जो प्रयोग और परम्परा के लिए दायी हैं। दीर्घ परम्परा ही हमारी मूल मनोभावों को प्रकट करती है, प्रयोग किसी भी जाति की व्यक्तिगत प्रतिभा की गरिमा सिद्ध होती है।

फलत: किसी भी साहित्य के प्रयोग और परम्परा का अध्ययन उसके इन्हीं दनों पहलुओं के मर्म का अध्ययन है।

हिन्दी साहित्य का इतिहास एक दीर्घकाल में फैला हुआ, यह कम से कम १० शताब्दियों का काल है। इनमें न जाने कितने राजनीतिक और ऐतिहासिक परिवर्तन हुए, भारत भूमि का न जाने कितने अन्य विस्तृत दूरस्थ भूभागों से संपर्क हुआ। पाश्चात्य इसी युग में भारत में घुसा और अपनी सभ्यता, संस्कृति और साहित्य को यहाँ डंप (dump) कर गया। औद्योगिक क्रांति, रेनेसां महान, विश्व-

युद्ध इसी युग में तो हुए। लालक्रांति और साम्यवाद का प्रसार इसी युग में हुआ। हिन्दी साहित्य का यह समस्त काल भारत में अनेकों भाषा सम्मेलनों का युग रहा है। तथा अन्य भी बहुत से कारणों से हिन्दी साहित्य का इतिहास प्रयोग और परम्परा के लिए बहुत महत्वपूर्ण है।

हिन्दी में ऐसा प्रयत्न हमें डॉ० गोपालदत्त सारस्वत के शोध-प्रबन्ध 'आधुनिक हिन्दी काव्य में परम्परा तथा प्रयोग' में मिलता है। इस विज्ञान तथा शोधपूर्ण ग्रंथ को इस भूमिका के साथ हिन्दी जगत को प्रेषित करते हुए मुझे प्रसन्नता हो रही है। आशा है इसका स्वागत होगा। हमें यह भी आशा है कि लेखक आगे भी हिन्दी साहित्य को अपने अध्ययन और अनुसंधान के नवीनतम सुगन्धित पुष्प समर्पित करेगा।

———

वक्तव्य

परम्परा और प्रयोग साहित्य की गति को परिचालित करते हैं। परम्परा की दृष्टि अतीत की ओर रहती है तथा प्रयोग की दृष्टि भविष्यत् की ओर। परम्परा अनुकरण की प्रवृत्ति का आश्रय लेकर रचनात्मक निर्माण की ओर प्रेरित करती है, जब कि प्रयोग चेतना के नवीन स्तरों का अनुसन्धान करके अभिव्यक्ति के लिए नये नये मार्गों का उद्घाटन करता है। प्रयोग का परम्परा के साथ इतना ही सामंजस्य है कि वह अतीत के अनुभवों का संबल लेकर निरन्तर आगे बढ़ने की शक्ति ग्रहण करता चलता है, क्योंकि अतीत का अनुभव भविष्य के लिए दृष्टि का द्वार खोलता है। पराम्परानुगत सत्य के शील से अनुप्राणित होकर नये नये अन्वेषण करने में ही प्रयोग की सार्थकता है। स्वस्थ परम्पराएँ नये प्रयोगों को जन्म देती हैं। प्रयोग का लक्ष्य भी परम्परा बनने में ही है। इस प्रकार प्रयोग तथा परम्परा क्रिया एवं प्रतिक्रिया के रूप में चक्रवत घूमते हैं तथा साहित्य की धारा को निरन्तर गतिशील एवं प्रवहमान रखते हैं।

परम्परा तथा प्रयोगों के अध्ययन के बिना साहित्य का मर्म नहीं समझा जा सकता। हिन्दी-साहित्य के आदि काल से लेकर वर्तमान काल तक न जाने कितनी परम्पराएँ किन-किन स्रोतों से फूट पड़ीं, कब तक चलीं, कहाँ विलीन हुईं, कितने प्रयोग हुए, कितने सफल हुए, कितने असफल – इसका इतिहास हमारी काव्य-संस्कृति के ज्ञान में कितना सहायक हो सकता है, इसका अनुमान लगाना कठिन है। यदि परम्पराओं के द्वारा काव्य की पूर्वकालीन संचित निधि की झांकी ली जा सकती है, तो प्रयोगों से काव्य के भविष्यत के विकास की संभावनाओं का अनुमान लगाया जा सकता है। इस प्रकार काव्य-संस्कृति के उत्थान-पतन एवं ह्रास-विकास को समझने के लिए परम्परा तथा प्रयोगों का अध्ययन आवश्यक हो जाता है।

आधुनिक युग हिन्दी-कविता का संक्रान्ति युग है। इसमें जीवन के प्रतिमान बदल गए हैं। कवि एवं रचनाकारों ने नये जीवन-बोध एवं सौन्दर्य-बोध को पूर्ण गहराई के साथ अनुभव किया है। आधुनिक काव्य में भारतेन्दु के युग से ही परिवर्तन की प्रक्रिया दृष्टिगोचर होने लगती है, द्विवेदी-युग में उसका विकास

होता है और छायावाद युग के आरंभ से उसका रूप पूर्णतया स्थिर हो जाता है अतएव प्रस्तुत प्रबन्ध में सन् १९२०-१९५० ई० तक के काव्य का पर्यालोचन किया गया है, क्योंकि यह काल काव्य के नवीन प्रयोगों की दृष्टि से सबसे अधिक समृद्ध है। प्राचीन परम्पराओं का अस्तित्व भी किसी न किसी रूप में बना ही हुआ है। प्रयोगों का आग्रह विशेष है। अतः इन दोनों का अनुशीलन काव्य के अध्येता के लिए अत्यन्त रोचक विषय है।

वर्तमान युग में हिन्दी में विशाल काव्य-राशि का सृजन हुआ है। काव्य के अन्तर्गत वस्तु एवं शिल्प की दिशा में इतना अधिक विस्तार हुआ है कि उसके अध्ययन एवं मूल्यांकन की आवश्यकता हो गई है। नवीन काव्योत्थान परम्परा के विकास का परिचायक तो है ही, इससे भविष्यत् की संभावनाओं का भी संकेत मिलता है। इन्हीं विचारों से प्रेरित होकर इस निबन्ध की रचना का कार्य प्रारंभ हुआ।

अस्तु, आलोच्य काल (१९२०-१९५० ई०) की काव्य सामग्री को आधुनिक काल की प्रकाशित काव्य-राशि से ही संग्रह किया गया है। इसके लिए प्रबन्ध को दो भागों में विभाजित किया गया है। प्रथम भाग में परम्पराओं का तथा द्वितीय भाग में प्रयोगों का अध्ययन किया गया है। पहले दो अध्यायों में परम्परा तथा प्रयोग का सामान्य विवेचन है, जिसमें स्वरूप, विषय, सीमा एवं प्रयोगों की परम्परा पर विचार किया गया है। दूसरे अध्याय में काव्य-प्रयोगों के उद्भव और विकास की परम्परा का सिंहावलोकन किया गया है। इन दोनों अध्यायों की साधनभूत सामग्री के लिए अधिकतर अंगरेजी एवं संस्कृत के ग्रन्थों से सहायता ली गई है। तीसरे अध्याय में काव्य की वस्तुगत परम्पराओं की शोध की गई है। इसके लिए आधुनिक युग के प्रतिनिधि काव्य-ग्रन्थों (प्रबन्ध, मुक्तक एवं प्रगीत काव्य) को आधार बनाया गया है। इस अध्याय में विषय-वस्तु का वर्गीकरण लेखक ने अपनी दृष्टि से किया है। तथ्यों की शोध एवं विवेचन भी मौलिक है। चौथे अध्याय में भाव-व्यंजना एवं रस-निरूपण है। पांचवें अध्याय में काव्य रूपों का अध्ययन है, जिसके अन्तर्गत प्रबन्ध, मुक्तक एवं प्रगीत काव्यों का निरूपण विशेष स्थान रखता है। छठे अध्याय में काव्य-शैली के विचार से आलोच्य-कालीन काव्यों की परीक्षा की गई है। अलंकार, प्रतीक, छन्दों का अध्ययन शास्त्रीय परम्परा के आधार पर किया गया है। इस प्रकार अन्तिम चार अध्यायों की विषय-वस्तु की परीक्षा शास्त्रीय सिद्धान्तों के आलोक में की गयी है तथा वर्गीकरण एवं विवेचन की पद्धति में सर्वथा मौलिक दृष्टिकोण रखा गया है।

प्रबन्ध के द्वितीय भाग में काव्यगत प्रयोगों का अध्ययन है। आधुनिक काल में नयी प्रवृत्ति एवं परिस्थिति के फलस्वरूप काव्य-क्षेत्र को सर्वथा नये प्रयोगों ने आच्छादित कर लिया है। सातवें अध्याय में काव्य को नई दिशा के प्रेरक स्रोत एवं विषय-वस्तु के क्षेत्र में नये प्रयोगों का अध्ययन है। वर्गीकरण, विवेचन तथा परिणाम नूतन काव्य-सामग्री की परीक्षा करके निकाले गए हैं। आठवें अध्याय में भाव-व्यंजना के विचार से आलोच्यकालीन काव्यों की परीक्षा की गई है। आधुनिक काल में भिन्न भिन्न रसों के आलम्बन उद्दीपन तथा संचारियों में नितान्त परिवर्तन हो गया है। रति के क्षेत्र में भी बहुत कुछ विस्तार हुआ है। आलम्बनों के साथ साथ भाव क्षेत्र का भी विस्तार हुआ है। आधुनिक युग के मनोविश्लेषण शास्त्र के अनुसार फ्री ऐसोसिएशन, यान वासना तथा ऐन्द्रियिक संवेदनों को भी आलोच्यकालीन काव्य में स्थान मिला है। इस अध्याय में इन सब बातों का मौलिक ढंग से अध्ययन किया गया है। उपलब्ध काव्य सामग्री के अतिरिक्त इसमें और कहीं से सहायता नहीं ली गई है।

आधुनिक युग में सबसे अधिक प्रयोग काव्य-रूप एवं शैली की दिशा में हुए हैं। प्रबन्ध और प्रकीर्णक मुक्तकों के क्षेत्र में तो नए प्रयोग हुए ही हैं, सबसे अधिक प्रयोग प्रगीत काव्य के क्षेत्र में हुए हैं। नई काव्य-रचनाओं के आधार पर नवें अध्याय में प्रचलित काव्य रूपों के नये प्रयोगों का अध्ययन है। दसवें अध्याय में शैली संबंधी प्रयोगों का अध्ययन है। इसके अन्तर्गत अलंकार, प्रतीक, भाषा एवं छन्दों का विचार है। नये अप्रस्तुत-विधान का अध्ययन सर्वथा मौलिक है। प्रतीकों का अध्ययन मुख्यतः मनोवैज्ञानिक दृष्टि से किया गया है। इसके पश्चात उपसंहार है इसमें सम्पूर्ण प्रबन्ध की मुख्य मुख्य प्रवृतियों का सार प्रस्तुत किया गया है परिशिष्ट में नई कविता के प्रतीकों का कोश भी उपस्थित किया गया है। यह सब लेखक का अपना प्रयास है। छन्दों के प्रयोगों के लिए अंगरेजी तथा हिन्दी के ग्रन्थ और प्रकीर्ण निबन्धों से सहायता ली गई है। इस क्षेत्र में डा० पुत्तूलाल शुक्ल का 'आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द-योजना' सबसे अधिक सहायक सिद्ध हुआ है। इसके लिए लेखक आभारी है। मुक्त छन्द (फ्री वर्स) के विषय में लेखक ने सभी प्रकार की उपलब्ध सामग्री का उपयोग करने का प्रयत्न किया है। 'भाषा' का अध्ययन प्रचलित काव्य-ग्रन्थों के आधार पर किया गया है। आधुनिक काव्य भाषा लाक्षणिक प्रयोगों की दृष्टि से अधिक समृद्ध है। अतः इसका विवेचन अधिक विस्तार से किया गया है। अन्तिम अध्याय में सम्पूर्ण प्रबन्ध का उपसंहार है।

इस प्रकार प्रथम दो अध्यायों को छोड़कर शेष सभी अध्यायों में वर्गी-

करण, विवेचन, अध्ययन सब प्राप्त काव्य-सामग्री के आधार पर प्रस्तुत किया गया है।

इस विषय को आधार बनाकर बहुत कम ग्रन्थ लिखे गए हैं, शोध के रूप में कोई भी नहीं। सूर्यबली सिंह की 'हिन्दी कविता' में नवीन और प्राचीन काव्य-प्रवृत्तियों की तुलनात्मक आलोचना प्रस्तुत की गई है, किन्तु उसका विषय संक्षिप्त और संकुचित है। प्रस्तुत निबन्ध में नई और पुरानी काव्य-प्रवृत्तियों का व्यापक रूप में अध्ययन किया गया है। यथासंभव लेखक ने अपने को सभी प्रकार के पूर्वग्रहों से बचाया है तथा प्रस्तुत विषय का विश्लेषणात्मक अध्ययन करके उसके सहज निष्कर्षों तक पाठकों को पहुँचाने का प्रयत्न किया है। नये कवियों का विवेचन उपलब्ध काव्य सामग्री के आधार पर किया गया है किन्तु अन्तिम निर्णय कहीं पर भी नहीं प्रकट किया है, क्योंकि नये कवियों से नये काव्य-निर्माण के क्षेत्र में अभी बहुत कुछ आशाएं एवं संभावनाएं हैं।

इस प्रबन्ध को लिखने में अनेक महानुभावों, लेखकों एवं विद्वानों से सहायता प्राप्त हुई। लेखक उन सबके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता है। डा० हरिवंश कोछर, अध्यक्ष तथा प्रोफेसर हिन्दी-विभाग, गवर्नमेंट कालेज, नैनीताल का मैं विशेष आभारी हूँ, जिनके पथ-प्रदर्शन और प्रोत्साहन से ही यह कार्य पूर्ण हुआ है। साथ ही डा० नगेन्द्र, डा० सत्येन्द्र, डा० हरिवंशलाल शर्मा, डा० भगीरथ मिश्र एवं श्री पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र के अमूल्य सुझाव एवं परामर्शों के लिए भी लेखक अत्यन्त कृतज्ञ है। वस्तुतः इन सभी की अनुकम्पा से यह प्रबन्ध कुछ मूल्यवान बन सका है।
धर्म समाज कालेज,

साथी व्यास नारायण भट्ट, 'सरस्वती प्रकाशन मन्दिर इलाहाबाद,' जिनकी रुचि एवं प्रयास से यह पुस्तक प्रकाशित हुई है, मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

अलीगढ़
जुलाई, १९५८।

डा० गोपाल दत्त
सारस्वत

विषयानुक्रम

प्रथम खण्ड

आधुनिक हिन्दी काव्य में परम्परा

द्वितीय खण्ड

आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रयोग

प्रथम खण्ड

आधुनिक हिन्दी काव्य में परम्परा

प्रथम अध्याय

परम्परा तथा प्रयोग

परम्परा तथा प्रयोग

स्वरूप, विषय तथा सीमा

परम्परा अत्यन्त व्यापक शब्द है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से इसका सम्बन्ध है। धर्मशास्त्र, समाज-विज्ञान, कला एवं साहित्य के क्षेत्र में परम्पराओं के विविध रूप दिखाई पड़ते हैं। परम्परा में स्वीकृत विधियों, प्रथाओं तथा प्रणालियों का अनुसरण एवं पूर्वकाल से चली आती हुई विचारधाराओं की अभिव्यक्ति होती है। यदि किसी युग के मनुष्यों की कतिपय विचित्र एवं अद्भुत बातों को तथा किसी दूसरे समाज से आई हुई अनुकरण मूलक प्रथाओं को छोड़ दें तो सामाजिक जीवन की समग्र बातें परम्परा के क्षेत्र में आ जाती हैं, जिसको समाज पीढ़ियों से ग्रहण करता चला आया है। परम्परागत आचार, व्यवहार, संस्था, भाषा, वस्त्र, विधि, गीत एवं लोकवार्ताएँ सब पराम्परा के ही अंग हैं[१]।

वर्तमान काल में अनेक दृष्टियों से परम्पराओं का अध्ययन प्रारंभ हुआ है। गिसवर्ग ने सामाजिक परम्पराओं का मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया है। उन्होंने सामाजिक प्रथा, रीति, व्यवहार एवं आचार के सम्बन्ध में विस्तार से विवेचन किया है[२]। वुंट ने सामाजिक प्रथाओं को उन ऐच्छिक कार्यों का रूप बतलाया है, जो राष्ट्रीय या जातीय जीवन में विकसित हुई हैं। उनके मत से सब प्रकार की सामाजिक परम्पराओं का मूल पूजा के कार्यों में ढूंढ़ा जा सकता है। राष्ट्र, सम्प्रदाय, समाज, धर्म, संस्था अथवा किसी जाति के संघटन में परम्पराओं का बहुत बड़ा हाथ होता है। राष्ट्र की परिभाषा निर्धारित करते हुए सिडनी हर्बट का कथन है कि—'एक ऐसे सामाजिक समूह का नाम राष्ट्र है, जो ऐसी चेतना से बंधा हुआ हो, जो उसके ऐतिहासिक अतीत के द्वारा जाग्रत रूढ़ियों से निकलती हो और जो एक निश्चित देश से प्रत्यक्ष रूप में सम्बद्ध हो[३]। ईसाई, इस्लाम, जैन, बौद्ध आदि सभी धर्मों में स्थूल एवं सुनिश्चित रूढ़ियों का मूल तत्व सन्निहित है, जो उनमें परम्परा से चला आता है। इन धर्मों के साम्प्रदायिक ग्रन्थों में उन बातों का उल्लेख हुआ है[४]।

१—इंसाइक्लोपीडिया आव द सोशल साइंसेज, जिल्द १५, पृ० ६३।

२—मारिस गिसबर्गः द साइकालाजी आव सोसाइटी, पृ० १०१।

३—सिडनी हर्बर्टः नेशनैलिटी, पृ० ३७।

४—इन्साइक्लोपीडिया आव द सोशल साइंसेज, जिल्द १५, पृ० ६२।

इस प्रकार समाज, धर्म, राष्ट्र, जाति एवं सम्प्रदाय—जीवन के नाना क्षेत्रों में रूढ़ि तथा परम्पराओं का तत्व विद्यमान है, जो उन्हें अतीत युग से अनुप्राणित करता चला आया है। टी० एस० ईलियट के अनुसार 'जिनसे एक ही देश के लोगों को जातीयता का भाव प्रकट होता है, जिनसे पारस्परिक समानता और आत्मीयता स्थापित होती है, वे स्वभाव, स्वाभाविक कार्य, सामाजिक प्रथाएँ, धार्मिक विधियाँ, अभिवादन करने की प्रणालियाँ—सब परम्परा के अन्तर्गत हैं। इनमें सामाजिक विधि एवं निषेध का भी अन्तर्भाव हो जाता है। इस प्रकार परम्परा मान्यता, विश्वास, रीति, प्रथा, रूढ़ि, आचार सब एक ही वस्तु के रूपान्तर हैं। साहित्य के परम्परावाद (क्लेसीसिज्म), स्वच्छन्दतावाद (रोमेंटीसिज्म) और यथार्थवाद (रियलिज्म) भी इसी में आ जाते हैं।

विभिन्न क्षेत्रों को परम्पराओं का विवेचन हमारा अभीष्ट विषय नहीं है। अतएव इस सन्दर्भ में केवल काव्य-क्षेत्र की परम्पराओं के स्वरूप, उत्पत्ति, विकास, भेद, प्रयोजन एवं उनके महत्व पर ही विचार किया जाता है।

परम्पराओं का स्वरूप

काव्य के क्षेत्र में परम्पराओं से तात्पर्य उन आदर्शों, रीतियों, प्रवृत्तियों एवं स्थापनाओं से है, जो पूर्ववर्ती कवियों से उत्तरवर्ती कवियों को प्राप्त होती चली आई हैं तथा जो कवि-समाज में स्वीकृत होने से स्वयमेव काव्य में प्रचलित हो गई हैं। वस्तु, भाव, तुक, लय, छन्द, रूप, भाषा एवं अप्रस्तुत विधान में इनका अस्तित्व मिलता है। काव्य में ऐसी अनेक बातें पाई जाती हैं, जिनका कहीं अस्तित्व नहीं है। किन्तु कवि—समाज में प्रचलित हैं। ये कवि-समय के नाम से प्रसिद्ध हैं।[1] महाकवियों ने भी इनको स्वीकार किया है, तथा अपने काव्यों में इनको स्थान दिया है। काव्यों में इन बातों का वर्णन गतानुगतिक न्याय से चला आता है। इनका कोई प्रमाण नहीं है, रूढ़िमात्र है।

परम्परा अथवा रूढ़ि में मान्यता, विश्वास एवं नैरन्तर्य का आधार होता है। 'कविजन कहत कहत चलि आए, सुधिकरि का हू न कहीं'—सूर की इस पंक्ति में परम्परा का लक्षण समुचित रीति से स्फुट है। कवियों ने जिसे बार बार कहा हो तथा जिसके पीछे कोई तर्क न हो—इसमें परम्परा के दो लक्षण आ जाते हैं—गतानुगतिकता तथा मान्यता या विश्वास। अंग्रेजी कवि वर्ड्सवर्थ ने इसे दूसरे प्रकार से कहा है—

१— विश्वनाथ : साहित्य दर्पण, ७।२३

"जीवन की प्रारंभिक अवस्था (बाल्यावस्था) में मुझे प्रकृति से अनुराग था, इस युवावस्था में भी मुझको वैसा ही अनुराग है तथा अपनी वृद्धावस्था में भी मैं इसे रखना चाहता हूं। मुझे प्रकृति की उपासना में ईश्वर की उपासना के समान आनन्द प्राप्त होता रहे और इस प्रकार मेरे जीवन के दिन प्रकृति-प्रेम के आनन्द से थिरक उठें।"[१]

इस उक्ति में भी परम्परा का भाव चरितार्थ होता है।

जान लिविंग्स्टन के मत से परम्परा में मूलतः दो तत्व प्रधान हैं—मान्यता और भ्रान्ति। काव्य-क्षेत्र की सम्पूर्ण परम्पराओं का विकास इन्हीं दो तत्वों के आधार पर हुआ है। मनुष्य अपने भावों एवं विचारों को शब्दों द्वारा दूसरों पर प्रकट करता है। ये शब्द ध्वनि-संकेत हैं। इन शब्द-ध्वनियों से व्यक्ति का आशय प्रकट होता है। यह निश्चित है कि ध्वनि से जिस वस्तु का बोध होता है, उसके साथ शब्द का किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है। शब्द जिस अर्थ को व्यक्त करता है, वह कल्पित है। उसका आधार है, मात्र स्वीकृति। विभिन्न शब्दों से जो अर्थ प्रकट होते हैं, उनका एक मात्र कारण है, दीर्घकालीन सार्वजनिक मान्यता। इसी के द्वारा मनुष्य अभीष्ट अर्थ को ग्रहण करते हैं। यह सभी जानते हैं कि शब्द और संकेतित अर्थ में कोई वास्तविक सम्बन्ध नहीं है। कोई तर्क-सम्मत एकात्मता नहीं है। केवल मान्यता है, स्वीकृति है और है एक भावुकता पूर्ण विश्वास।

कल्पना में दूसरा तत्व है, भ्रान्ति। काव्य का सम्पूर्ण अप्रस्तुत-विधान इसीके आश्रित है। काव्य की रचना में उपमान एवं प्रतीकों द्वारा जिस भाव को व्यंजित कराया जाता है, उसके मूल में भ्रान्ति या कल्पना का तत्व है। इसके द्वारा पाठक को देश-काल सम्बन्धी वस्तुओं का ज्ञान आसानी से हो जाता है।

१—"So was it when my life began;
So is it now I am a man;
So be it when I shall grow old,
who could and w sh their days
To be bound each to each by natural piety.
The Rain-bow—Words worth

मैथ्यू आर्नाल्ड ने भाव, भाषा और वस्तु—कवि के तीन साधनों को स्वीकार किया है।[1] काव्य सम्बन्धी परम्पराओं का विकास इन सभी में पाया जाता है। धीरे-धीरे काव्य के वर्ण्य, भाषा, शैली, रीति तथा काव्यादर्शों में भी परम्परायें स्थापित हो जाती हैं। अतएव गिलबर्ट मरे ने कहा है कि, 'प्राचीन सभ्यता से जो पूर्ण प्रवाह निकलकर आया है तथा जिसने हमें काव्य का रूप तथा एकान्विति प्रदान की है, वही आदर्श परम्परा है,'[2]।

परम्परा तथा काव्य-शास्त्र

काव्य-क्षेत्र की परम्पराओं तथा काव्यशास्त्रीय विषयों के अन्तर को यहाँ स्पष्ट कर लेना आवश्यक है। काव्यशास्त्र में काव्य के स्वरूप, शब्दवृत्ति, रस, ध्वनि, गुण, दोष, रीति एव अलंकारों का विवेचन रहता है। काव्य प्रकाश, साहित्यदर्पण आदि ग्रन्थों में इन्हीं बातों का विचार किया गया है, किन्तु ये विषय काव्य-परम्परा से भिन्न हैं। काव्यशास्त्र के ये विषय काव्यांग कहलाते हैं, तथा परम्परा के क्षेत्र में नहीं आते। जिस क्षेत्र में कुछ विशिष्ट बंधी-बंधायी रीतियाँ, रूढ़ियाँ, एवं प्रणालियां स्थापित हो जाती हैं, उन्हीं को परम्परा में लिया जा सकता है। काव्यांगों का विवेचन सभी अलंकार-शास्त्रीय ग्रन्थों में पाया जाता है, किन्तु काव्य-परम्पराओं का उनमें कहीं उल्लेख नहीं है। यह बहुत कुछ मौखिक रूप में ही चलती रहती है। भ्रमरगीत का विषय हिन्दी-साहित्य में काव्य-परम्परा के रूप में चला आता है। काव्य-रूपों में सतसई की भी एक दीर्घकालीन परम्परा है। इसके अतिरिक्त अलंकारशास्त्र एक व्यापक विषय है, परम्पराओं का विषय अपेक्षाकृत सीमित है। अलंकारों की संख्या असीमित है, किन्तु उनमें परम्पराएं या रूढ़ियाँ बहुत कम है।

कवि-प्रसिद्धियां

काव्य की परम्पराओं में कवि-प्रसिद्धियों का भी स्थान है। साहित्य में ऐसी अनेक मनगढ़न्त बातें पाई जाती हैं, जो कवि-समाज में स्वीकृत हो जाने से रूढ़ियाँ बन गई हैं। असत्य होने पर भी उनमें किसी ने अविश्वास प्रकट नहीं किया है। कवि-सम्प्रदाय में वे परम्परा से चली आ रही हैं। हंस का क्षीर-नीर विवेक, चकोर का अंगार-भक्षण, रात्रि में चकवा-चकवी का वियोग, यश और हास्य का श्वेत रंग, पाप का कृष्ण वर्ण, क्रोध और प्रेम की रक्तता,

---

१—जान लिविंग्स्टन : कन्वेंशन एण्ड रिवोल्ट इन पोइट्री, पृ० १०।

२—द क्लैसिकल ट्रैडिशन इन पोइट्री (गिलबर्ट मरे), पृ० ५।

चन्द्रमा का शश-लांछन और कामदेव का मकरकेतन नाम, शिव के भाल पर द्वितीया के चन्द्रमा की स्थिति, विष्णु का क्षीर शयन, कोल, कमठ और शेष का पृथ्वी-धारण आदि अनेक बातें कवि-समय के नाम से प्रसिद्ध है तथा उन पर सर्व-सम्मति की मुहर लगी हुई है। इसीलिए ये काव्य-परम्परा के रूप में प्रचलित हैं तथा महा कवियों तक ने इनको काव्य में स्थान दिया है।

किन्तु विचार करने से कवि-प्रसिद्धियों में स्वीकृत अधिकांश बातें भ्रामक एवं सत्य से बहिर्भूत होती हैं। फिर काव्य में इनकी प्रतिष्ठा क्यों है? कोई भी कवि इनको साहित्य से बहिष्कृत करने का साहस क्यों नहीं दिखाता है? कारण स्पष्ट है। इनके पीछे परम्परा की शक्ति है। परम्परा में भ्रामक कल्पना का तत्व विद्यमान रहता है। काव्य में दो सत्य हैं—एक वस्तुगत और दूसरा कल्पित अथवा प्रतीयमान। कवि वस्तुगत सत्य का दर्शन नहीं करा सकता है, क्योंकि उसका साधन सीमित है, शब्द और अर्थमात्र[१]। शब्दों से भौतिक, वस्तुगत सत्य का साक्षात्कार नहीं हो सकता। अतएव कल्पना का आश्रय लिया जाता है। इसके द्वारा परोक्ष एवं अलक्षित वस्तुओं को लक्ष्य कराया जा सकता है। राजशेखर ने काव्य-मीमांसा में कवि-समयों पर अच्छा प्रकाश डाला है। वे कहते हैं, "शास्त्र और लोक से बहिर्भूत, केवल कवि-परम्परा में प्रचलित जिस अर्थ का कविजन उल्लेख करते हैं—वह कवि समय है। इससे कवियों का उपकार होता है, तथा यह काव्य-मार्ग का प्रदर्शक है। अतएव सदोष होते हुए भी सभी कवियों ने इसका उपयोग किया है। वर्ण्य विषय को रोचक और हृदयग्राही बनाने के लिए कवि-समयों का उपयोग किया जाता है।"

कवि-सम्प्रदाय में परम्परया प्रचलित बातों का ही कवि-समयों में उल्लेख हुआ है। अतएव ये वास्तविक अर्थ में काव्य-परम्परा के अन्तर्गत हैं। राजशेखर की परिभाषा पर विचार कर लेना अवश्यक है। उन्होंने इसके तीन आधार बतलाए हैं—(१) शास्त्र से बहिर्भूत होना, (२) अलौकिकता और (३) परम्परा। शास्त्र से बहिर्भूत कथन करने का अभिप्राय इतना ही है कि काव्यशास्त्र में इसका विचार नहीं हुआ है। काव्यांगों का विवेचन तो अलंकारशास्त्रों में विस्तार से पाया जाता है, काव्य-परम्पराओं का नहीं। फिर भी कवि-सम्प्रदाय में इनका प्रचार है। इससे मान्यता एवं विश्वास का आधार स्वतः सिद्ध है।

राजशेखर ने आचार्यों के कथन को पूर्व पक्ष में रखकर कहा है—शास्त्र और लोक दोनों से रहित स्वेच्छया वस्तु वर्णन तो दोष है। ऐसी दोषयुक्त वस्तु

१—"शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्।" भामह।

का वर्णन उचित नहीं। इसके उत्तर में वे कहते हैं—इसके द्वारा कवि का उपकार होता है तथा यह काव्य-मार्ग का दर्शक है। अतएव यह दोष कैसे हो सकता है? फिर कहते हैं—प्राचीन विद्वानों ने सहस्रों शाखा वाले वेदों का अंगों सहित अध्ययन करके, शास्त्रों का तत्व-ज्ञान प्राप्त करके, देशान्तर और द्वीपान्तरों का भ्रमण करके, जिन वस्तुओं को देख, सुन और समझकर वर्णन किया है, उन वस्तुओं और पदार्थों का देश-काल और कारण भेद होने पर या विपरीत हो जाने पर भी उसी प्राक्तन अविकृत रूप में वर्णन करना कवि-समय है। कवि-समय (काव्य-रूढ़ि) शब्द का प्रयोग उसके मूल तत्व को न जानने वाले कुछ लोगों ने, केवल प्रयोग को देखकर ही प्रचलित कर दिया और वह रूढ़ हो गया है। इनमें से कुछ बातें ऐसी हैं जो प्रारंभ से वस्तुतः कवि-समय नाम से प्रसिद्ध हैं और कुछ बातें धूर्तों ने परस्पर प्रतिस्पर्द्धा या स्वार्थ-साधन के लिए प्रसिद्ध कर दी हैं।

इस प्रकार लोक, शास्त्र एवं प्रकृति के नियमों के प्रतिकूल चलाने के लिए कवियों को अक्षम्य नहीं ठहराया जा सकता है। जो काव्य में ऐसा स्वेच्छाचार बर्तते हैं, वे राजशेखर की दृष्टि में धूर्त हैं। किन्तु शास्त्रीय ज्ञान और अनुभव के आधार पर विद्वानों ने जिन परम्पराओं का प्रवर्तन किया है, वे काव्यशास्त्र में वर्णित न होने पर भी मान्य है। इससे सिद्ध है कि राजशेखर की दृष्टि में भी काव्य-परम्परा का पहला आवश्यक तत्व है, मान्यता या विश्वास।

दूसरा तत्व है, अलौकिकता। इससे आशय उन बातों का है, जो लोक-व्यवहार से बहिर्भूत, विलक्षण और अद्‌भुत् हैं। अद्‌भुत् वस्तुओं के वर्णन से एक मनोवैज्ञानिक कुतूहल का भाव उत्पन्न हो जाता है, क्योंकि अद्‌भुत् के पीछे आश्चर्य की वृत्ति छिपी रहती है। यह कल्पना के आश्रित है। कल्पना-शक्ति जितनी अधिक उत्कृष्ट होगी, कवि उतना ही अद्‌भुत् एवं अलौकिक वस्तुओं का वर्णन कर सकेगा। इससे सिद्ध है कि परम्परा में दूसरा तत्व है, कल्पना, भ्रान्ति।

तीसरा तत्व है, परम्परा। इसका आशय है, पूर्वकाल के कवियों से चली आती हुई काव्य-प्रवृत्तियों का अनुसरण। किसी लिखित प्रमाण के अभाव में मौखिक रूप से ही परम्पराओं का अनुसरण किया जाता है। इस प्रकार परम्परा में गतानुगति एवं अनुकरण का तत्व विद्यमान है।

निष्कर्ष यह है कि राजशेखर के मत से काव्य-परम्पराओं के तीन आधार-तत्व हैं—(१) मान्यता, (२) कल्पना और (३) अनुकरण की प्रवृत्ति। यदि और अधिक विचार करके देखा जाय तो कल्पना तथा अनुकरण की प्रवृत्ति

का आधार मान्यता ही है। कल्पना में नवोन्मेष के साथ रूढ़ि का अंश भी रहता है। कल्पना जिस अंश में रूढ़ हो जाती है, उससे वही अंश ग्रहण किया जाता है। वस्तुतः कल्पना एक रूढ़ि है, जिसके अनुसार चलना हर एक व्यक्ति के लिए आवश्यक हो जाता है। चन्द्र-मुख, कमल-नयन, बिम्बोष्ठ में मुख, नेत्र तथा ओष्ठ के लिए क्रमशः चन्द्र, कमल और बिम्बाफल के उपमान लाए जाते हैं। सभी जानते हैं कि प्रस्तुत के लिए जितने अप्रस्तुतों की योजना कवि-परम्परा के अनुसार चली आती है, वे सब कल्पित, भ्रामक और अविश्वसनीय हैं, किन्तु कवि-सम्प्रदाय में प्रचलित हो जाने से ये सर्वमान्य हो गए हैं। कारण यह है कि समस्त कल्पना-विधान रूढ़ि के आश्रित है। ये रूढ़ियाँ जैसी काव्य में प्रचलित हैं, वैसी ही अन्य कलाओं में भी। इनका आधार मूलतः सर्वमान्यता है। अनुकरण की प्रवृत्ति भी भावुकतापूर्ण मान्यता के आश्रित है। इससे स्पष्ट है कि कवि-समय, कवि-परम्परा या काव्य-रूढ़ि का एक मात्र आधार है, सर्वमान्यता।

आचार्य सीताराम चतुर्वेदी[१] रूढ़ि के मूल में सामाजिक रुचि को कारण मानते हुए कहते हैं, सामाजिक रूढ़ि वह व्यापक लोक-प्रवृत्ति है, जो पहले के मान्य व्यक्तियों द्वारा किन्हीं वस्तुओं को सुन्दर, भव्य, मानी जाने की परम्परा से सध गई है और जो इस प्रकार सधते-सधते रूढ़ि बन गई है। अतः इस सामाजिक रुचि को रूढ़ रुचि कहना भी असंगत न होगा। इस कथन में भी सामाजिक रुचि को परम्परागत मान्यता पर आधारित बताया गया है।

आचार्य वामन ने विशिष्ट पद-रचना को रीति बतलाया है[२]। उन्होंने लोक व्यवहार के आधार पर इसके वैदर्भी, गौड़ीया और पांचाली तीन भेद किए हैं। ये देश-विशेष के नाम हैं, जिनके आधार पर रीति का विभाजन किया गया है। देश-विशेष से काव्य-गुणों की उत्पत्ति नहीं होती है, किन्तु उन देशों के लोगों ने विशेष-विशेष प्रकार की रचना-शैली का आविष्कार किया है। वामन के अनुसार ओज, प्रसादादि समस्त गुणों से युक्त रीति का नाम वैदर्भी है। ओज और कान्ति गुणों से युक्त गौड़ीया रीति है जिसमें समासों का बाहुल्य और उग्र पदावली का सन्निवेश रहता है। माधुर्य तथा सौकुमार्य गुणों से युक्त पांचाली नामक रीति होती है। ये माधुर्य, ओज, प्रसाद गुण विशिष्ट रीतियाँ काव्य परम्पराओं से भिन्न वस्तु नहीं है। वस्तुतः ये वे काव्य मार्ग हैं, जिनको कवि-समाज ने स्वीकार कर लिया था तथा जिनकी काव्य-रूढ़ियाँ स्थापित हो गई

१—आचार्य सीताराम चतुर्वेदी : समीक्षाशास्त्र, पृ० १२५।

२—वामन : काव्यालंकार सूत्र, १।२।७

थीं। काव्य प्रकाश, साहित्यदर्पण आदि ग्रन्थों में गुण एवं रीतियों की विशिष्ट एवं स्वीकृत विधियों पर पूर्ण विचार-विमर्श पाया जाता है। कवि-सम्प्रदाय की मान्यता ही इसका आधार है।

उपर्युक्त विवेचन से सिद्ध है कि काव्य-परम्पराएँ किसी शास्त्रीय ग्रन्थ में प्रतिपादित नहीं होती हैं। इनकी मान्यता गतानुगतिक न्याय से चली आती है। पूर्ववर्ती रचनाकारों ने साहित्य के क्षेत्र में जो पथ, परिपाटियां, प्रवृत्तियां एवं रीतियां स्थापित कर दी है, उन्हें उत्तरवर्ती कवि आप से आप ग्रहण कर लेते हैं। अतएव इनकी मान्यता व्यवहार के आश्रित है, किसी सिद्धान्त के नहीं। कवि-सम्प्रदाय में स्वीकृत हो जाना इसकी प्रथम आवश्यकता है। इसके लिए सर्व-मान्यता, सर्व सम्मति एवं सर्व स्वीकृति अपेक्षित है।

संस्कृत-साहित्य में कवि-शिक्षा पर अनेक पुस्तकें मिलती हैं, जिनमें काव्य-परम्पराओं एवं रूढियों का विस्तार से वर्णन किया गया है। अरिसिंह की काव्य कल्पलतावृत्ति, देवेश्वर की कविकल्पलता तथा क्षेमेन्द्र के कवि कंठाभरण में कवि-शिक्षाओं का विशद वर्णन है। इनमें काव्य-रचना के व्यावहारिक अभ्यास बताए गए हैं। इनके अध्ययन से विदित होता है कि काव्य-निर्माण के लिए बहुत सी रचना सम्बन्धी परम्पराएं स्थापित हो चुकी थीं, जिनका ज्ञान प्राप्त कर लेना आवश्यक समझा जाता था। वस्तुतः इनमें काव्य-रूढ़ियों का विशाल भंडार भरा पड़ा है, जो कवि-समाज में प्रचलित हो जाने से सबके द्वारा स्वीकृत हो चुकी थी। इसमें मान्यता एवं अनुकृति ही कारण हैं। हिन्दी के लक्षण ग्रन्थों में भी इनका उल्लेख हुआ है। केशव की कविप्रिया तथा रसिक-प्रिया में काव्य-रूढ़ियों का ही निरूपण है। इनके अध्ययन से सिद्ध होता है कि काव्य-परम्पराओं के मूल में स्वीकृति, अनुकृति एवं मान्यता का भाव विद्यमान है।

परम्पराओं में रूपान्तर

साहित्य के इतिहास में प्रायः देखा जाता है कि कला अपने विकास के लिए दो प्रकार के परस्पर विरुद्ध मार्गों पर होकर चलती है। एक मार्ग है परम्पराओं की स्वीकृति का और दूसरा मुक्ति का। पहले मार्ग पर चलनेवाले कवि परम्परावादी होते हैं और दूसरे मार्ग का अवलम्बन करने वाले क्रान्ति-कारी। पहली श्रेणी के कवि रचनात्मक विधियों में विश्वास करते हैं और दूसरे नयी नयी खोजों और प्रयोगों में। इसी क्रिया-प्रतिक्रिया अथवा कार्य कारण की शृंखला में साहित्य का विकास होता रहता है। यह मानव स्वभाव है कि कभी उसे प्राचीन प्रवृत्तियों के अनुकूल चलना प्रिय होता है और कभी उनसे विद्रोह

करना अच्छा लगता है तथा कभी दोनों में आनन्द आता है। इसका कारण है, मानव-स्वभाव की परिवर्तनशीलता।[१]

एक दूसरा कारण और है। परिस्थितियों के परिवर्तन से भी काव्य-मार्ग बदल जाता है। किसी राष्ट्र में राजनीतिक, आर्थिक अथवा सामाजिक उत्क्रान्ति के अवसर पर भी प्राचीन परम्परा विशृंखल हो जाती है। जब नई चेतना नई क्रान्ति को जन्म देती है, तब पुरानी परम्पराएं असामयिक, अनुपयोगी एवं अशक्त सिद्ध होने से दम तोड़ बैठती हैं। सन् १७८९ की राज्यक्रान्ति के पश्चात फ्रान्स में ऐसी ही परिस्थिति का प्रादुर्भाव हुआ था, जिसमें प्रति-क्रिया-वादी तत्वों की विजय होने से प्राचीन परम्पराएं परास्त हो गई और अचिरात् उनका अस्तित्व ही समाप्त हो गया। जो परम्परा परिस्थिति के साथ-साथ नहीं चल सकती है, वह पंगु और निर्जीव हो जाती हैं। स्वस्थ एवं समर्थ परम्पराएँ जीवित रहती हैं तथा अशक्त एवं निरुपयोगी तत्व समाप्त हो जाता है। मृत परम्पराओं के प्रति तीन प्रकार की प्रतिक्रिया आरंभ होती हैं—(१) उनके प्रति उपेक्षा का भाव हो जाता है, (२) उनमें सुधार-संस्कार किया जाता है, अथवा (३) उनके प्रति विद्रोह की प्रवृत्ति उठ खड़ी होती है। रीति-कालीन काव्य-परम्परा के प्रति भारतेन्दु युग में प्रथम दो प्रतिक्रियाएँ आरम्भ हो गई थीं तथा द्विवेदी युग में तीसरी प्रवृत्ति का सूत्रपात हुआ।

निष्कर्ष यह कि काव्य में क्रिया-प्रतिक्रिया चक्रवत् घूमती हैं। परिवर्तन का क्रम सदैव अपना काम करता रहता है। जीवन की तरह साहित्य के क्षेत्र में भी कोई प्रवृत्ति स्थायी नहीं होती है। एक प्रवृत्ति अपनी विरोधी प्रवृत्ति को जन्म देती है। उसी से वह अपनी पुष्टि करती है, कभी दबती है, कभी उभरती है, कभी रूपान्तरित होती है, तथा कभी अपना अस्तित्व ही खो बैठती हैं।

प्रयोग का मनोविज्ञान

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रयोग भी अनिवार्य हैं। कवि की चेतना पर पड़नेवाले जीवन और जगत के प्रभाव एक समान नहीं होते हैं। हर एक रचनाकार अपनी सापेक्ष दृष्टि से अनुभव करता है, अतएव अनुभव के क्षणों में वह जो आत्म-साक्षात्कार करता है, वह दूसरे के अनुभव से अवश्य भिन्न होता है। मीरा और महादेवी दोनों के काव्य में प्रेम की पीड़ा के उद्गार हैं, किन्तु फिर भी दोनों की प्रेमानुभूति एक सी नहीं है। किसी भी कलाकार के जीवन के

१—जान लिविंग्स्टन लोविस : कन्वेंशन ऐंड रिवोल्ट इन पोइट्री, पृ० ८७।

कोई से दो क्षण, दो अनुभव सर्वथा एक समान नहीं हो सकते हैं। अनुभव की भिन्नता ही प्रयोगों का मूल है। यदि इस भिन्नता को स्वीकार नहीं किया जाता तो सम्पूर्ण साहित्य पुनरावृत्ति मात्र रह जाता।

प्रयोग की प्रवृत्ति

प्राचीन वस्तु को नये नये रूपों में प्रस्तुत करना प्रयोग है। प्रयोग प्राचीन परम्पराओं में से नवीन वस्तु का अनुसन्धान करके लाना है तथा यह स्वच्छन्दता पूर्वक अपने को नये नये रूपों में अभिव्यक्त करता है। प्रयोग की प्रवृत्ति प्रतिक्रियात्मक होती है। वह प्राचीन प्रवृत्तियों को कविता-कामिनी के पैरों की शृंखलाएं समझता है। वह काव्य के परम्परागत उपकरणों का सदैव खंडन करता है। प्रयोग के दो रूप हैं, (१) रचनात्मक और (२) ध्वंसात्मक। प्रयोग की प्रवृत्ति निषेधात्मक ही नहीं, विधानात्मक भी होती है। वह पुनरावृत्ति को कला का दोष समझता है तथा स्वानुभूति को प्रकाशित करने के लिए अभिव्यक्ति के नये नये मार्गों का अन्वेषण करता है। सत्य एक है, किन्तु उसकी अनुभूति के स्तरों में भेद हैं। इसीलिए उसे नाना पथों से आत्मसात् करने का प्रयत्न चलता आया है और चलता रहेगा। प्रयोग काव्य-सत्य को पाने के लिए नये नये प्रयत्नों में विश्वास करता है। इसीलिए वह काव्य-चेतना की अभिव्यक्ति के लिए नवीन प्रवृत्तियों का सृजन करता है और नये नये पथों का अनुसंधान करता है। प्रबुद्ध कवि की चेतना विकासोन्मुख रहती है। बंधी-बंधायी काव्य सरणियों एवं परम्पराओं में फंसकर उसका जी घुटने लगता है। इसीलिए वह नवीनता की संभावनाओं में विश्वास रखता है तथा परम्पराओं से विद्रोह करके नये पथ से चलने का साहस दिखलाता है। द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता के विरुद्ध छायावाद ने यही साहस दिखलाया था, जिसका अभिनन्दन करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है—"वह दिन सचमुच ही हिन्दी की कविता की मुक्ति का दिन था, जब कवि ने परिपाटी-विहित रसज्ञता और रूढ़ि-समर्थित काव्य-कला को साथ ही चुनौती दी। मर्यादा विषयक अज्ञान और उपेक्षा दोनों ने उसकी मुक्ति में सहायता दी। यद्यपि वह मुक्त होकर ठीक रास्ते नहीं गया, पर मुक्त वह निस्सन्देह हो गया। पुराने पंडितों ने झुंझलाकर रोष प्रकट किया, मजाक उड़ाया, भद्दे-भद्दे नाम देकर उसे हतोत्साह करना चाहा, पुराने शास्त्रों के जटिल तर्कों की अवतारणा करके उसे डराना चाहा, पर वह इनसे विचलित नहीं हुआ।

प्रसाद, निराला, पन्त, सियारामशरण गुप्त, महादेवी वर्मा, आदि कवियों ने रूढ़ि मुक्त होकर अपनी बात कही।[1]"

प्रयोग और परम्परा

परम्परा का सम्बन्ध अतीत से तथा प्रयोग का वर्तमान युग से होता है। किन्तु अतीत और वर्तमान, प्राचीन और नवीन सापेक्षता में ही देखे जा सकते हैं। कर्त्तव्य और अधिकार की भाँति परम्परा और प्रयोग में अनिवार्य सम्बन्ध है। प्रत्येक कवि में प्राचीन और नवीन बातों का किसी न किसी अंश में अवश्यम्भावी योग रहता है, क्योंकि अतीत से विच्छिन्न होकर सर्वथा स्वतंत्र होकर चलना किसी भी कलाकार के लिए संभव नहीं है। टी० एम० ईलियट ने भी कहा है—कोई भी कवि या कलाकार अपने आप में सर्वथा पूर्ण नहीं होता है। प्राचीन युग के कवि या कलाकारों के सम्बन्ध से ही उसके गुण तथा गौरव की सराहना की जाती है। उसकी स्वतंत्र या निरपेक्ष सत्ता का कोई मूल्य नहीं होता। समान या असमान बातों में पुराने कवियों के साथ उसकी तुलना करने से ही उसका विशेषत्व प्रकट होता है।[2]

साहित्य की परम्पराओं को ऐतिहासिक क्रम में देखने से कार्य-कारण का सम्बन्ध प्रकट होता है। प्रयोग और परम्परा में कार्य कारण सम्बन्ध होता है। वर्तमान युग के प्रयोगों का कारण अतीत की परम्पराओं में ढूंढ़ा जा सकता है, क्योंकि अतीत वर्तमान का जनक है। वर्तमान की उत्पत्ति अतीत में से होने के कारण वह उसी का एक अंश है। हमारी वर्तमान परिस्थिति पूर्वकालीन परिस्थिति का प्रतिफल है तथा पूर्व की परिस्थिति उससे पूर्व की स्थिति का परिणाम है। कार्य-कारण की यह अखंड परम्परा एक महानद की भाँति सुदीर्घ काल से निरन्तर चली आती है। इसीसे वर्तमान की कोई निरपेक्ष सत्ता नहीं है। वर्तमान को समझने के लिए अतीत की ओर अवश्य दृष्टिपात करना चाहिए, क्योंकि अतीत भी वर्तमान में ही छिपा हुआ है। कार्य-कारण की इस शृंखला पर विचार करने से विदित हो जायगा कि वर्तमान काल के प्रयोगवादी कवि अपने से पूर्व पूर्वतर, प्रगतिवाद, छायावाद, द्विवेदी युग, भारतेन्दु युग एवं प्रारम्भिक युग के कवियों से एक ही शृंखला में जुड़े हुए हैं। अतः परम्परा से विच्छिन्न होकर कोई कवि कुछ भी मूल्य नहीं रखता।

१—हजारी प्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य की भूमिका, चतुर्थ 'आवृत्ति, पृ० १४८।

२—टी० एस० ईलियट : सेलेक्टेड प्रोज (पेंग्विन), पृ० २३।

परम्परा और प्रयोग में अच्छेद्य सम्बन्ध है तथा वे एक दूसरे के पूरक हैं। प्रत्येक प्रयोग कुछ काल के अनन्तर परम्परा बन जाता है तथा प्रत्येक परम्परा में से नये प्रयोगों की सृष्टि होती रहती है। जिस परम्परा में आगे प्रयोग करने की प्रेरणा नहीं होती, वह उतनी ही निरर्थक है, जितना कि वह प्रयोग जो नई परम्पराएं स्थापित करने में असमर्थ होता है[१]। प्रयोग की प्रेरणा परम्परा में ही होती है। यदि परम्परा में विकास की शक्ति नहीं, गति नहीं, तो वह अधिक दिनों तक जीवित नहीं रह सकती। प्रयोग-हीनता निर्जीव परम्परा का लक्षण है। परम्परा का प्रवाह सतत् गतिशील है। इसके बिना वह निश्चल, स्थिर एवं जड़ है। विकासशील जीवन में पुरातन प्रवृत्तियां भी परिवर्तित होती रहती हैं। स्वस्थ परम्परा सदैव विकासोन्मुख रहती है। कोई भी पुरातन वस्तु अथवा स्थिति अक्षुण्ण नहीं है क्योंकि जीवन की कोई विशेष स्थिति किसी विशेष प्रवृत्ति का परिणाम होती है। वह सदैव एक सी नहीं रह सकती[२]।

निष्कर्ष यह है कि प्रयोग और परम्परा में मूलतः कोई अन्तर नहीं है। प्रयोगशील कवि या कलाकार परम्परा को स्वायत्त करके ही नये प्रयोगों की सृष्टि करता है। स्वस्थ परम्पराओं में से ही नये रूप, नये रंग, एवं नयी अभिव्यक्तियों के नये प्रकारों का विकास होता रहता है, जिन्हें हम नया प्रयोग कहने लगते हैं।

परम्परा और स्वच्छन्दता (क्लैसीसिज्म और रोमेंटीसिज्म)

ग्रीस और रोम की कला में जिन गुणों का विकास हुआ था, उन्हें परम्परा (क्लैसीसिज्म) का नाम दिया जाता है। इस शैली में संयम, गौरव, सरलता, प्रसन्नता एवं शालीनता आदि गुणों की प्रधानता है। इसके अतिरिक्त विचारों की विशदता, रूप की समग्रता तथा कल्पनात्मक ज्ञानात्मिका शक्ति का भी इसमें समन्वय हो गया है। कल्पना और विवेक के समन्वय से क्लैसीसिज्म की प्रणाली आत्मगत होने की अपेक्षा वस्तुगत अधिक है।[३]

स्वच्छन्दतावाद (रोमेंटीसिज्म) की प्रवृत्ति परम्परा से भिन्न है। इसमें भाव और मनोवेगों का प्रभुत्व है। समुन्नत कल्पना, उद्दाम भावना, अनुभूति की प्रगाढ़ता, उत्साह एवं करुण भावों की अभिव्यक्ति इसके प्रधान तत्व हैं।[४]

१—लक्ष्मीकान्त वर्मा : नयी कविता के प्रतिमान, पृ० १६२।

२—टी० एस० ईलियट : आफ्टर स्ट्रेंज गॉड्स, पृ० १८-१६।

३—इन्साइक्लोपीडिया आव सोशल साइंसेज, जिल्द ३, पृ० ४४२।

४—वही, जिल्द १३, पृ० ४२७।

अमरीका तथा फ्रांस की राज्यक्रान्तियों के उपरान्त प्रजातंत्र की स्थापना हो जाने पर स्वातंत्र्य प्रेम तथा व्यक्तिवाद के रूप में इसकी अभिव्यक्ति हुई। इसने कला के क्षेत्र में वैयक्तिकता को जन्म दिया।

परम्परा की प्रवृत्ति वस्तुपरक है, जिसमें प्राकृतिक पदार्थों के बाह्य-चित्रण तथा उनसे पड़नेवाले प्रभाव पर अधिक ध्यान दिया जाता है। स्वच्छन्दता-वाद में चाक्षुष प्रत्यक्ष की अपेक्षा मानस-प्रत्यक्ष के चित्रण को अधिक महत्व दिया जाता है। इसमें बाह्य चित्रण की अपेक्षा सूक्ष्म आन्तरिक सौन्दर्य की ओर कवि का ध्यान रहता है। क्लैसीकल कविता में अनुभूति का तत्व प्रधान होता है जब कि रोमेंटिक काव्य में आत्माभिव्यक्ति की प्रधानता होती है। क्लैसीकल काव्य का सम्बन्ध बाह्य जगत से होता है जिससे सभी परिचित होते हैं। उसकी अपनी परम्पराएँ हैं, जिनसे उसमें प्रेषणीयता का तत्व अधिक है। इसके विपरीत आत्म-प्रेरित काव्य का अन्तर्जगत् स्वयं कवि के लिए अविदित है। अतएव उसमें प्रेषणीयता बहुत कम है।

क्लैसिकल काव्य की उन्नति के लिए सामन्तीय युग अनुकूल होना है। सामन्तीय युग के कठोर शासन सम्बन्धी नियमों और क्लैसिक काव्य के संयत काव्य-विधानों में बहुत कुछ समानता होती है। जब प्रजा के ऊपर कड़े नियमों का शासन होता है, धर्म एवं मर्यादाओं का पालन आवश्यक हो जाता है, तब परम्परावादी काव्य का विकास होता है। ऐसे युग के कवि काव्य शास्त्रीय मर्यादाओं का कठोरता से पालन करना अपना कर्तव्य समझते हैं तथा प्राचीन काव्य-मार्ग के उल्लंघन को अपराध समझते हैं। महाकाव्यों का सृजन अधिकतर सामन्तीय युग में ही होता है। काडवेल के मत से सामन्तवर्ग के शासन में ही महान कविता की सृष्टि होती है।[1] संस्कृत के महाकाव्यकार कालिदास, भारवि, माघ, श्रीहर्ष एवं हिन्दी के चन्द, तुलसी एवं केशव का जन्म सामन्तीय युग में ही हुआ था। इनके काव्यों में छन्दोविधान अलंकार-योजना तथा व्यवस्थित भाषा एवं रचना-शैली का आग्रह दृष्टिगोचर होता है। काव्य-विधान का ऐसा नियंत्रण अपेक्षाकृत भिन्न युग के कवियों में नहीं दिखाई पड़ता है।

जब धार्मिक परतंत्रता शिथिल हो जाती है, वैयक्तिक स्वातंत्र्य की भावना का विकास होने लगता है, परम्पराओं का बन्धन असह्य हो उठता है, तब स्वच्छन्दता वादी काव्य-प्रवृत्ति का श्रीगणेश होता है। सच्चा रोमेंटिक कवि शास्त्रीय नियमों से प्रेरणा नहीं पाता है, उसका काव्य बहुत कुछ आत्म-प्रेरित

१—काडवेल : इल्यूजन एण्ड रिएलिटी, पृ० ३६।

होता है। इसी कारण उसकी कविता में आत्माभिव्यक्ति का उल्लास अधिक वेग से प्रस्फुटित होता है।

योरुप में १५वीं शती के समाज में एक नए वर्ग का जन्म हुआ, जिसे बोर्जुआ समाज-व्यवस्था कहा जाता है। क्लैसिकल कविता जिस प्रकार सामन्तीय युग की साहित्यिक अभिव्यक्ति है उसी प्रकार रोमेंटिक काव्य-प्रवृत्ति बोर्जुआ या पूंजीवाद की साहित्यिक अभिव्यक्ति है। काडवेल ने भी आधुनिक युग की रोमेंटिक काव्यधारा को पूंजीवादी कविता बतलाया है।[1] हिन्दी-साहित्य के छायावादी कवि स्वच्छन्दतावाद की कोटि में आते हैं, क्योंकि इनके काव्य में कल्पना का वेग, मधुमय प्रेम चर्या, मधुर वेदना एवं आत्माभिव्यंजन का प्राचुर्य है। इनकी अभिव्यक्ति में वैचित्र्य है, जिसमें परम्परागत भावों को नई भंगिमाओं के साथ व्यंजित किया गया है। इससे स्पष्ट है कि क्लैसीसिज्म और रोमेंटीसिज्म परम्परा और प्रयोग के ही नामान्तर हैं।

परम्परा और स्वच्छन्दता में देश-काल की दृष्टि से भी भेद माना गया है। परम्परा (क्लैसीसिज्म) का सम्बन्ध मूलतः ग्रीक और रोम के कला-शिल्प से है, जिसका प्राचीन युग में आविर्भाव हुआ था। स्वच्छन्दता (रोमेंटीसिज्म) की प्रवृत्ति का विकास जर्मन, फ्रांस तथा इंग्लैंड आदि देशों में उन्नीसवीं शती के आरंभ से अपने-अपने ढंग पर हुआ था। यह भी निश्चित है कि योरुप के देशों में मूर्ति-पूजा के युग के भाव एवं कला-शिल्प में सामन्तीय युग के भाव एवं कला-शिल्प में अन्तर है। आलोचकों का कथन है कि क्लैसिक और रोमेन्टिक कलाकारों की बौद्धिक प्रवृत्ति, अनुभूति, कल्पना तथा शैली-शिल्प में बहुत अन्तर है। इसी के आधार पर ग्रीक और रोम की बौद्धिक चेतना में स्पष्टता, सरलता, संयम, एक-रूपता और पूर्णता के गुण विद्यमान हैं तथा इसी आधार पर आधुनिक काल की किसी कला-कृति में यदि रचना-शिल्प, एक-रूपता, संक्षिप्तता, स्पष्टता तथा सुनिश्चित रूप-रेखा आदि गुणों की अभिव्यक्ति होती है तो उसे निस्संकोच परम्परागत (क्लैसिकल) कह दिया जाता है तथा ऐसा कहने में किसी ऐतिहासिक युग का विचार नहीं किया जाता है। इसके विपरीत मध्यकाल के कवि एवं कलाकारों की रचना में भावात्मकता का आधिक्य, कल्पना का प्राचुर्य, रूप-विधान की उपेक्षा एवं अतिशयोक्ति की प्रधानता परिलक्षित होती है। अंग्रेजी साहित्य के ब्लेक, कालरिज, वर्ड्सवर्थ, शेली, कीट्स, बायरन के काव्य में यह प्रवृत्ति प्रधान रूप से परिलक्षित होती है।

1—काडवेल : इल्यूजन एण्ड रिएलटी, पृ० ४६।

स्टूटार्ड ने दोनों प्रवृत्तियों का भेद दिखलाते हुये कहा है—"शुद्ध क्लैसिकल काव्य में शैली और उद्देश्य के विषय में कुछ निश्चित नियमों का पालन करना होता है। उसमें रचना-सम्बन्धी नियमों की स्वीकृति का भाव प्रधान होता है। क्लैसिकल रचना में एक निश्चित आदर्श, सन्तुलन, शोभा, औचित्य एवं सामंजस्य पाया जाता है। ऐसे आदर्श की स्वीकृति से नियम, एकरूपता, विधि एवं बन्ध-सौष्ठव के गुण आप से आप आ जाते हैं। क्लैसीसिज्म का जन्म विधि (लॉ) से होता है। अधिकार में कर्त्तव्य का पालन प्रधान होता है तथा उसके आदर्श ज्ञात होते हैं। ऐसा कलाकार परिवर्तन के विरोधी विचारों का होता है तथा प्राचीनता के प्रति आस्थावान् होता है। स्वच्छन्दतावाद की प्रवृत्ति स्वीकृति के स्थान पर विरोध की होती है। यह प्रवृत्ति शाब्दिक की अपेक्षा रूपकात्मक अधिक होती है। ज्ञात से अज्ञात की ओर इसकी दृष्टि उन्मुख रहती है। यह प्रत्यक्ष को छोड़कर भावों के प्रतीकों की खोज में रहती है। अधिकार के विरोध में स्वच्छन्दतावाद का जन्म होता है। यह प्रवृत्ति नियम-बद्धता के स्थान पर नये नियमों की खोज में निरंतर संलग्न रहती है। फलतः परंपरावाद की दृष्टि से रोमेन्टिक कृति में संतुलन, सादृश्य एवं पूर्णता का अभाव रहता है, क्योंकि क्लैसीसिज्म सुसंस्कृत मान्यता है तथा रोमान्टिसिज्म अनियमित आकांक्षा।"

स्वच्छन्तावाद की व्याख्या अवरक्रोम्बे ने इस प्रकार की है—"यह बुद्धि के प्रति भाव की प्रतिक्रिया है। यह उच्छृंखलतापूर्ण है तथा यह यथार्थवाद का विरोधी है। यह वाह्यानुभूति की अपेक्षा भावानुभूति की ओर उन्मुख रहता है।" स्वच्छन्दता अपने अनिवादी रूप में यथार्थता और समाज के प्रति विद्रोह का रूप है जिसमें स्वप्न और उन्माद के सामने तथ्य और कर्तव्यों का त्याग हो जाता है।[२]

परंपरावाद (क्लैसीसिज्म) और स्वच्छन्दतावाद (रोमेन्टीसिज्म) दोनों काव्य-प्रवृत्तियों के विषय में यह स्मरण रखने योग्य है कि इनमें कोई वस्तुगत भेद नहीं है। भेद केवल शैलीगत है। किसी पुराने से पुराने विषय को नई शैली में तथा नये से नये विषय को पुरानी शैली में प्रस्तुत किया जा सकता है। उदाहरण के लिये कीट्स ने 'ओड आन ए ग्रीसीयन अर्न' कविता में क्लैसिक वस्तु को रोमान्टिक शैली में चित्रित किया है तथा टैनीसन ने 'यूलीसिस' और 'द लोटस ईटर्स' जैसे होमर युग के विषयों को

२—एफ० एल० लूकाज : लिट्रेचर ऍड साइकालाजी; पृ० १००, १०२।

क्रमशः क्लैसिक और रौमेन्टिक शैलियों में प्रस्तुत किया है। पंत और निराला ने क्रमशः 'नौका विहार' और 'यमुना के प्रति' कविताओं में पुराने विषयों को नए रूप-रंग में अंकित किया है। इसी प्रकार रामचन्द्र शुक्ल ने 'बुद्ध चरित' में नवीन कथानक को प्राचीन शैली में प्रस्तुत किया है। वस्तुतः कोई भी रोमैन्टिक विषय ऐसा नहीं है, जो क्लैसिकल शैली में उपस्थित न किया जा सके तथा ऐसा कोई भी क्लैसिकल विषय नहीं है, जो रोमैन्टिक शैली में प्रस्तुत न हो सके। दोनों ही काव्य-प्रवृत्तियों में 'प्रकृति की ओर' लौटने का समर्थन किया गया है। प्रकृति में कहाँ परम्परावाद है और कहाँ स्वच्छन्दतावाद। नदी, वन, पर्वत, कछार, पशु, पक्षी, जीव, जन्तु, फूल एवं पौधों में न तो कोई स्वच्छन्दतावादी तत्व है और न कोई परम्परावादी गुण। भेद तो केवल वस्तु को प्रस्तुत करने की शैली में हो जाता है। जिसमें आत्माभिव्यंजन एवं कल्पना का वैचित्र्य प्रधान है उसे स्वच्छन्दतावाद कह दिया जाता है तथा जिसमें वस्तुओं का एक नियत छंद एवं निर्धारित शैली में वर्णन किया जाता है, उसे परम्परावाद का नाम दिया जाता है।

परम्परा (क्लैसिसिज्म) तथा स्वच्छन्दता (रोमैंटीसिज्म) तत्वतः दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों के संयोग से काव्य में जीवन को प्रतिष्ठा होती है। जिस प्रकार राज्य की प्रगति के लिये परम्परावादी और क्रान्तिकारी दोनों वर्गों की आवश्यकता होती है उसी प्रकार काव्य एवं कला के स्वस्थ विकास के लिये दोनों ही काव्य-प्रवृत्तियां अपेक्षित हैं। दोनों में विरोध अनुचित है। दोनों का समन्वय काव्योत्कर्ष में सहायक होता है। काव्य के क्षेत्र में केवल परम्परा-वाद की प्रवृत्ति गतिरोध को जन्म देती है तथा केवल स्वच्छन्दतावाद के आग्रह से काव्य में अराजकता बढ़ती है। अतएव काव्य के गतिशील विकास के लिये दोनों काव्य-प्रवृत्तियों के सहयोग की आवश्यकता है।

परम्परा, प्रयोग तथा वाद

काव्य के क्षेत्र में जब ये दोनों प्रवृत्तियां 'वाद' के रूप में आती हैं तब ये अत्यन्त भ्रामक सिद्ध होती है। टी० एस० ईलियट का कथन है कि कोई भी रचनाकार परम्परावाद या स्वच्छन्दतावाद का लेबिल लगाकर उत्पन्न नहीं होता। 'वाद' तो राजनैतिक दलबन्दी को प्रकट करता है। साहित्य के इतिहास में तथा विद्वानों के मुख से भी ये शब्द सुने जाते हैं, किन्तु ये अधिक महत्व नहीं रखते। यदि कोई कलाकार या कवि किसी वाद का आग्रह लेकर कला के क्षेत्र में पदार्पण करता है, तो वह लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक उठाता है।

साहित्य के क्षेत्र में वाद का महत्त्व नहीं, महत्व है सृजनात्मिका शक्ति का। जब कोई कलाकार सृजन करने में प्रवृत्त होता है, तब वह यह नहीं सोच रहा होता कि उसकी रचना 'वाद' की किस श्रेणी में स्थान पा सकती है। सृजन के क्षणों में कलाकार आत्मानुभूति से प्रेरित होकर लिखता है, किसी वाद विशेष के पूर्वाग्रह से नहीं।[1]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं, 'सच्ची कविता किसी 'वाद' को लेकर नहीं चलती, जगत की अभिव्यक्ति को लेकर चलती है। वादग्रस्त काव्य अधिकतर काव्याभास ही होता है। उसमें प्रकृति के नाना रूप और व्यापार किसी वाद या संप्रदाय के घेरे में निरूपित बातों को मूर्त रूप में स्पष्ट करने या काव्य की भावात्मक शैली पर मनोरंजक बनाने के लिये साधन रूप में ही व्यवहृत होते हैं[2]।

पं० नन्ददुलारे वाजपेयी का मत है—'वाद तो वास्तव में जीवन संबंधित धारणाओं और प्रवृत्तियों के बौद्धिक निरूपण हैं। प्रत्येक वाद की एक सीमा रेखा होती है। प्रत्येक वाद के अंतर्गत समय-समय पर ऐसी जीवन दृष्टियाँ संघटित होती हैं जिनसे सामाजिक उन्नति और ह्रास दोनों के संयोग इकट्ठे हो सकते हैं। प्रत्येक वाद में शक्तिमता और दुर्बलता के परमाणु समयानुसार घटते-बढ़ते रहते हैं।' आगे चलकर उन्होंने कहा है—'वाद तो एक स्थूल और परिवर्तनशील जीवन दृष्टि है। काव्य जीवन व्यापी अनुभूति है। काव्य और वाद दोनों के स्वरूपों और प्रक्रियाओं में अंतर है[3]।

सुमित्रानन्दन पंत 'युगवाणी' में 'कवि' को लक्ष्य कर कहते हैं—

'हे राजनीति विद अर्थविज्ञ। रच शत शत वाद, विवाद, तंत्र,
परतंत्र किया तुमने मानव, तुम बना न सके उसे स्वतन्त्र।—पंत

उपर्युक्त सभी आचार्य और कवि इस संबंध में एक मत हैं कि 'वाद' एक साम्प्रदायिक दृष्टि है। वाद के संकीर्ण घेरे में बंद होकर कोई कवि जीवन को समग्र रूप में नहीं देख सकता है। इसकी दृष्टि सीमित हो जाती है। जब अनुभूति के ऊपर वाद का पूर्वाग्रह छा जाता है, तब कवि के काव्य में से कवित्व तो चला जाता है, वाद का प्रचार शेष रह जाता है। आधुनिक युग के प्रगति-

---

१—टी० एस० ईलियट, आफ्टर स्ट्रेन्ज गोड्स, पृ० २६।

२—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : काव्य में रहस्यवाद, चिन्तामणि, दूसरा भाग, पृ० ७३।

३—नन्ददुलारे वाजपेयी : नया साहित्य : नये प्रश्न, पृ० २१।

वादी काव्य में यही प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। जितने अंश में कवियों ने वाद-ग्रस्त काव्य का सृजन किया है उतने ही अंश में कवित्व का दर्शन नहीं मिलता। परम्परावाद, स्वच्छन्दतावाद, यथार्थवाद भी कविता की शैलियों के रूप में ही व्यवहृत हुये हैं। इनको वाद के रूप में ग्रहण करने से काव्य की हानि ही होती है। वस्तुतः यह भावाभिव्यक्ति के माध्यम हैं। अतः श्रेष्ठ कवियों ने इनको साधन के रूप में ही ग्रहण किया है, साध्य के रूप में नहीं। अंग्रेजी के स्वच्छ-न्दतावादी शैली के कवि शैली, कीट्स, वर्डसवर्थ आदि तथा हिन्दी के प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी का काव्य इसका प्रमाण है। इससे सिद्ध है कि 'वाद' कविता का नियामक नहीं हैं। यह काव्य के उन्मुक्त प्रवाह में बाधक तत्त्व है।

हिन्दी साहित्य का विकास—

साहित्य का इतिहास परम्परा और प्रयोग की कहानी है। क्रिया-प्रति-क्रिया, परम्परा-प्रयोग, रचनात्मक प्रवृत्ति और विरोधात्मक प्रवृत्ति में सदैव प्रतिद्वन्द्व चलता रहता है। जीवन की तरह साहित्य का प्रवाह भी परिवर्तनशील है। साहित्य में कोई प्रवृत्ति स्थायी नहीं है। जब एक प्रवृत्ति पुरानी हो जाती है, तब उसमें रूढ़ियाँ स्थिर हो जाती है। कवि प्रतिभा बंधी-बंधायी रीतियों के आसपास चक्कर काटती रहती है, जिससे एक से ही तुक, छंद, वस्तु, प्रतीक, उपमान एवं काव्य रूपों को पुनरावृत्ति होना प्रारंभ हो जाती हैं। इस स्थिति से क्रान्ति का प्रादुर्भाव होता है। नवीनता, मौलिकता एवं परिवर्तन की पिपासा नए काव्य की प्रेरक शक्ति है। पुरानी प्रवृत्ति से ऊब कर कवि-चेतना नये रूप; नये रंग तथा नये रेखा चित्रों के अनुसंधान में प्रवृत्त होने लगती है। नये-नये प्रयोग इसी प्रवृत्ति के परिणाम हैं। प्रयोग भी कुछ काल के पश्चात् परम्परा का रूप धारण कर लेते हैं। फिर प्रतिक्रिया आरंभ हो जाती है। साहित्य के विकास में क्रिया-प्रतिक्रिया का यही क्रम निरन्तर चलता रहता है और इसी में साहित्य का जीवन विकास पाता रहता है। अंग्रेजी के आधुनिक युग के एक आलोचक डा० एच० वी० रूथ ने इस परिवर्तन के मूल में निहित आश्चर्य तत्व को आवश्यक बताया है—"कला को सदैव नवीन स्वरूप देते रहना चाहिये। उसका रचनात्मक प्रभाव आश्चर्य तत्व पर निर्भर रहता है। एक बार जब कलात्मक अभिव्यक्ति की पद्धति की नवीनता समाप्त हो जाती है तो पाठक या सहृदय उससे विमुख होकर अपने दैनिक कार्यों में लग जाता है। कला या साहित्य में वह एक नई दृष्टि खोजता है, पर ऐसी बासी अभिव्यक्तियों में उसे केवल स्थूल रूप का ही दर्शन होता है। इसीलिये किसी महान पुस्तक में नवीनता

द्वारा चकित कर देने की शक्ति होनी चाहिये, जिससे पाठक प्रारम्भ में ही आगे पढ़ने के लिये उत्सुक हो जाय और इसे विश्वास हो जाय कि अनुभूतियाँ व्यापक और गम्भीर छवियों के निर्माण तथा कारयित्री प्रतिभा की क्रीड़ा का सामग्री मात्र है[१]।"

हिन्दी कविता के ऐतिहासिक विकास में भी परम्परा और प्रयोग का यही क्रम दृष्टिगोचर होता है। हिन्दी साहित्य के प्रारंभिक सामंती युग की स्थूल शास्त्रीय परम्परा के प्रति संत काव्य में सजग विद्रोह की भावना विद्यमान है। संत कबीर ने प्राचीन रूढ़ियों और मान्यताओं का खुलकर विरोध किया है[२]। उनके साहित्य में सामाजिक और आध्यात्मिक विद्रोह की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है। जो संत काव्य विद्रोह की इतनी सजग चेतना लेकर अग्रसर हुआ था, वह आगे चलकर स्वयं रूढ़ियों के जाल में बंध गया। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है—"कम संतों की वाणियों में बंधी-सँधी बोलियों के बाहर की बात मिलेगी, सबमें एक ही वक्तव्य विषय, एक ही शब्दावली, एक ही शैली में बार-बार दुहराया गया है[३]।" निर्गुण भक्तिकाल की प्रतिक्रिया स्वरूप सगुण भक्ति काल का उदय हुआ। भक्त कवियों में एकान्तिक धर्म साधना के विरुद्ध लोक-संग्रह का भाव अधिक है। सूर और तुलसी ने भक्ति काव्य को पूर्णोत्कर्ष को पहुंचा दिया है, जिससे परवर्ती कवियों के लिये उसके आगे जाना कठिन हो गया। भक्ति काव्य में धार्मिक एवं आध्यात्मिक भावना का इतना विकास हुआ कि रीतिकाल में लौकिक प्रेम भावना के रूप में इसकी प्रतिक्रिया दिखाई पड़ी। भक्ति काल में स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रवृत्ति का वेग था। रीतिकाल में इसके विरुद्ध रीतिबद्ध शास्त्रीय काव्य परम्परा का विकास हुआ। इसके साथ ही स्वच्छन्दतावादी रीतिमुक्त काव्यधारा भी चलती रही। इस प्रकार संपूर्ण मध्ययुग में परम्परा और स्वच्छन्दता दोनों काव्य प्रवृतियों का संघर्ष चलता है।

बीसवीं के शताब्दी के प्रारम्भ में पुनरुत्थान युग के साथ रीतिकालीन काव्य रूढ़ियों के विरुद्ध फिर विद्रोह हुआ, जिसकी परिणति द्विवेदी युग के काव्य में दृष्टिगोचर हुई। इस काल में कविता के छंद, तुक, लय, वस्तु, भाव एवं रूप में सर्वथा नये प्रयोग हुये। किन्तु जब नीति, उपदेश एवं वस्तु तत्व

१—डा० एच० वी० रूथ, : इंगलिश लिटरेचर ऐण्ड आइडियाज़ इन द ट्वेंटियेथ सेंचुरी, पृ० २।

२—हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य, पृ० २७।

३—वही, पृ० १२८-२९।

की एकरूपता से द्विवेदी युग की कविता में भी रूढ़िवादिता दृष्टिगोचर होने लगी, तब स्थूल के प्रति सूक्ष्म के विद्रोह को लेकर छायावाद युग का प्रारम्भ हुआ। प्रसाद, पंत, निराला के काव्य में वस्तु और शिल्प के क्षेत्र में अभिनव प्रयोगों का बाहुल्य है। इस काल में काव्यक्षेत्र में अभूतपूर्व क्रान्ति हुई। किन्तु कुछ समय के पश्चात् छायावादी काव्य-विधान भी रूढ़ियों की भूलभुलैयों के बीच चक्कर काटने लगा। उसकी पलायनवादी प्रवृत्ति और वायवी कल्पना के विरोध में प्रगतिवाद का आविर्भाव हुआ। अंचल, बच्चन, नरेन्द्र, भगवती चरण वर्मा के काव्य में जिस स्थूल एवं मांसल प्रेम तथा सामाजिक यथार्थ का चित्रण है, उसमें छायावादी काव्य की प्रतिक्रिया का तत्त्व प्रधान है। आगे चलकर यह काव्य-प्रवृत्ति भी मार्क्सवादी सिद्धान्तों के प्रचार के दलदल में फंस जाने से लड़खड़ाने लगी। तब प्राचीन प्रवृत्तियों के प्रति पूर्ण विद्रोह का स्वर लेकर प्रयोगवाद का जन्म हुआ। यह हिन्दी साहित्य की नवीनतम काव्य प्रवृत्ति है। इसमें परम्परागत छन्द, भाषा, तुक, लय, प्रतीक, उपमान, वस्तु एवं भाव सबके प्रति उद्दाम विरोध की भावना है। तार सप्तक के प्रकाशन के साथ प्रयोगवादी काव्य की रूपरेखा निश्चित हुई। अज्ञेय, मुक्तिबोध, भारतभूषण, डा० रामविलास शर्मा, गिरिजाकुमार, माचवे, धर्मवीर भारती आदि इस नई कविता के कवियों में प्रमुख हैं।

निष्कर्ष यह है कि हिन्दी साहित्य के समूचे इतिहास में परम्परा और स्वच्छन्दता (प्रयोग) का संघर्ष है। कभी ये दोनों प्रवृत्तियां एक दूसरे को दबाकर आगे बढ़ती हैं और कभी दोनों साथ-साथ चलती हैं। इन दोनों में कार्य-कारण का संबंध है। परम्परा में अनुकृति एवं पुनरावृत्ति का तत्त्व प्रधान होता है, प्रयोग में नये रूप एवं नये रंगों का। इन्हीं दोनों प्रवृत्तियों के आरोह-अवरोह के साथ काव्य की धारा निरंतर गतिशील रहती है।

परम्परा और प्रयोग का मूल्यांकन—

साहित्य में परम्परा का वही मूल्य है, जो जगत् में जीवन का। विकासशील जीवन में भी नई-नई परम्पराओं का विकास होता रहता है। परम्पराओं की स्वीकृति से एक बड़ा लाभ यह होता है कि जो कुछ परम्परागत निधि है, वह सुरक्षित रहती है। यह संचित निधि काव्य का बहुत बड़ा संबल है।

आज के प्रयोग कल परम्परा होंगे। प्राचीन परम्परायें भी किसी दिन के नवीन प्रयोग थे। परम्परायें युग विशेष की दृष्टि, प्रवृत्ति एवं सौन्दर्यबोध का परिचय कराती हैं। इनके अध्ययन से पता चलता है कि अतीत युग में सौन्दर्य एवं जीवन बोध का अन्वेषण किस रूप में प्रचलित था। उन पर युग

के संस्कारों की छाप लगी रहती है। चाहे आज उनमें सौन्दर्य का दर्शन करना लुप्त हो गया हो, चाहे उन धारणाओं को अब परित्याज्य समझा जाता हो, किन्तु उनमें अपना गौरव होता है, जो उन्हें स्थायित्व प्रदान करता है। मौर्य और गुप्त काल के सिक्के आधुनिक युग में प्रचलित नहीं हैं, किन्तु इसमें उनका महत्त्व नहीं घट जाता। मध्य युग के काव्य का अनुप्रास, यमक, श्लेष का चमत्कार, खड्गबन्ध, कमलबंध आदि चित्र काव्य का नैपुण्य आधुनिक युग के काव्य में बंद हो गया है, परंतु उसमें जो कलात्मक सौष्ठव है उसका अवमूल्यन नहीं किया जा सकता है। जो परम्परा जिस युग का प्रतिनिधित्व करती है, उस पर अपने युग के रुचि वैचित्र्य और कलात्मक सौन्दर्य की छाप रहती है। युग दृष्टि एवं जीवन बोध के परिवर्तित हो जाने पर उनका महत्त्व चला जाता है, किन्तु काव्य के ऐतिहासिक विकास क्रम अपने स्थान पर उसका गौरव अक्षुण्ण रहता है। डा० रामकुमार वर्मा ने जातीय संस्कृति और परम्पराओं के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुये लिखा है—

"ये हमारे सामने जातीय संस्कृति का अनुपम चित्र उपस्थित करती हैं। इनके द्वारा किसी युग विशेष की समस्त परम्परायें अपने स्वाभाविक क्रियाकलाप में स्पष्ट हो उठती हैं। ये परम्परायें, उत्सव, त्यौहार और मंगलमय आचारों की हृदयग्राही भावनाओं और उनकी स्मृतियों से जीवन की अनुभूति को और भी सरस बना देती हैं। प्रत्येक मंगलमय त्यौहार और उत्सव संयोग या वियोग में प्रेम का आश्रय पाकर भावनाओं के अत्यन्त समीप आ जाता है। और तब हम अनुभव करते हैं कि हमारी परम्परायें जीवन की कितनी गहराई से उठती हैं और उनके निर्माण में कितनी जातीयता या संगठन की भावना है। उन्हीं विचारों से पोषित होकर हमारे नायकों या नायिकाओं ने एक ऐसे आचरण का परिचय दिया है जो समय की अवहेलना करते हुये सर्वयुगीन हो गया है[१]।"

जातीय संस्कृति की तरह काव्य की भी संस्कृति है। उसकी धारा सतत प्रवहमान है। काव्य ने अपनी संस्कृति के निर्माण के लिये जीवन और जगत के सभी पार्श्वों को स्पर्श किया है। प्रशांत महासागर में पाई जानेवाली मूंगे की दीवारों का निर्माण न जाने कितने युगों से होता आया है। आज वे इतनी विशाल एवं सुदृढ़ हैं कि बड़े-बड़े जहाज उनसे टकराकर चकनाचूर हो सकते हैं। काव्य-परम्पराओं का निर्माण भी महान प्रतिभाओं की तपस्या का फल है। इनमें अनुभूति, अभिव्यक्ति एवं ऐन्द्रियिक संवेदनाओं का सार निहित है। ये

१—डा० रामकुमार वर्मा : साहित्यशास्त्र, प्रथम संस्करण, पृ० १०२।

वर्तमान में मनोरंजन की वस्तु ही नहीं भविष्य की संवल भी हैं। इनमें वह प्राणदायिनी शक्ति है, जो जीवन को निरन्तर विकसित एवं ऊर्जस्वित करती रहती हैं।

किसी देश के लिये साहित्य परम्परा का बहुत बड़ा महत्त्व है। उसमें प्राचीनता का गौरव और उज्जवल अतीत का प्रतिविम्ब झलकता है। पं० नन्द दुलारे वाजपेयी ने 'भारतीय साहित्य में 'एकता' निबंध में परम्परा के महत्त्व के संबंध में लिखा है—"कोई भी देश अपनी साहित्यिक परम्परा से नाता नहीं तोड़ सकता। अतीत का प्रभाव वर्तमान पर पड़ता ही है। इसके साथ ही उल्लेखनीय बात यह है कि भारतीय परम्परा बहुत पुरानी है। पुरानी ही नहीं वह अतिशय समृद्ध भी है। ऐसी स्थिति में यह संभव नहीं है कि हम अपनी सारी विरासत को छोड़कर दूसरे देशों के साहित्यों का छिछला अनुकरण करने लगें[१]।"

काव्य-संस्कृति का भवन उसकी आधारभूत परम्पराओं की शिलाओं पर ही निर्मित होता है। आधार को गिरा कर किसी भवन का निर्माण संभव नहीं है। जब काव्य की धारा का अतीत की परम्पराओं से संबंध विच्छिन्न हो जाता है तब उसका प्रवाह अत्यन्त क्षीण और हलका हो जाता है। अतीत के साथ संबंध जोड़ कर ही काव्य-संस्कृति समृद्धि को प्राप्त होती है। इसके विना वह दीन और निर्बल है। अतएव टी० एस० इलियट ने लिखा है—"कवि के लिये अतीत की चेतना से प्रभाव ग्रहण करना अत्यन्त आवश्यक है। उसको इस चेतना का विकास जीवन पर्यन्त करते रहने की आवश्यकता है[२]।"

दूसरी ओर प्रयोग की समस्या है। काव्यवस्तु अथवा रचनाशैली के क्षेत्र में जब पिष्टपेषण होने लगता है तब उसके सहज विकास में गतिरोध आ जाता है। काव्य में मौलिक सृजन का आदर है। काव्य-निर्माण के लिये प्रतिभा अपेक्षित है। भट्टतौत के अनुसार—नये-नये अर्थों का उन्मीलन करनेवाली प्रज्ञा ही प्रतिभा कहलाती है[३]। प्राचीन आचार्यों ने काव्य की रचना में व्युत्पत्ति को हेतु माना है। व्युत्पत्ति का अर्थ बहुज्ञता है। शास्त्र, लोक व्यवहार एवं प्रकृति-परिचय आदि का अधिक से अधिक ज्ञान ही व्युत्पत्ति है। राजशेखर के मत से प्रतिभा और व्युत्पत्ति दोनों संयुक्त रूप से काव्य रचना में हेतु हैं[४]। परम्परा-

---

१—नन्ददुलारे वाजपेयी : नया साहित्य : नये प्रश्न, पृ० १२८।

२—टी० एस० ईलियट : सिलेक्टेडप्रोज (पेंग्विन), पृ० २४।

३—नव नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मता—भट्ट तौत।

४—राजशेखर : काव्य मीमांसा, पंचम अध्याय।

नुगत विषयों पर भी काव्य की रचना करना दुष्कर है। सर्वथा नवीन तथा अनभ्यस्त विषयों पर रचना करना तो और भी कठिन है। प्रतिभा से ही उत्तम काव्य का निर्माण संभव है। राजशेखर ने प्रतिभा का लक्षण करते हुये लिखा है—'प्रतिभा शब्दों के समूह को, अर्थो के समुदाय को, अलंकारों एवं सुन्दर उक्तियों को तथा अन्यान्य काव्य सामग्री को हृदय के भीतर प्रतिभासित करती है। जिसे प्रतिभा नहीं है, उसके लिये प्रत्यक्ष दीखते हुये भी अनेक पदार्थ परोक्ष से मालूम होते हैं और प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति के लिये अनेक अप्रत्यक्ष पदार्थ भी प्रत्यक्ष से प्रतीत होते हैं। उदाहरण के लिये मेधाविरुद्र एवं कुमारदास आदि कवि जन्म से अन्धे थे परन्तु उनकी वर्णन शैली उत्कृष्ट थी[१]।

इससे सिद्ध है कि काव्य में सर्वथा नूतन एवं मौलिक प्रयोगों के लिये प्रतिभा की आवश्यकता है। प्रतिभाशील कवि ही नूतन कार्यों का अनुसंधान करने में समर्थ होता है। वस्तुतः काव्य के प्रयोग कवि की प्रवुद्ध चेतना के परिचायक हैं।

अब प्रश्न यह है कि प्रयोग और परम्परा में एकता का सूत्र क्या है? प्रयोग का परम्परा के साथ इतना ही सामंजस्य है कि वह अतीत के अनुभवों का संबल लेकर निरंतर आगे बढ़ने की शक्ति ग्रहण करता चलता है। जितने अंश में सत्य का अनुभव किया जा चुका है उससे लाभ न उठाना अनुचित है। अतीत का अनुभव आगे के लिये दृष्टि का द्वार उन्मुक्त करता है। इसके बिना कवि का मार्ग विपदग्रस्त हो सकता है। परम्परानुगत सत्य के शील से अनुप्राणित होकर नये-नये अन्वेषण करने में ही प्रयोग की सफलता है। प्रयोग का सत्य से स्नेह है, रूढ़ियों से नहीं। स्वस्थ परम्परा विकासमान जीवन के साथ परिवर्तित होती रहती है और नये प्रयोगों को प्रेरणा प्रदान करती है। प्रयोग का लक्ष्य भी परम्परा बनने में है। जब काव्य में रूढ़ियों के कारण अगति आ जाती है, तब नये प्रयोग क्रान्ति का उद्घोष सुनाते हैं तथा नवीन ऊर्जस्वित परम्पराओं की स्थापना करते हैं। इससे सिद्ध है कि प्रयोग परम्परा का सच्चा उत्तराधिकारी है। यही नहीं महान से महान कवि जितना प्रयोगशील होता है उतना परम्पराशील भी। प्रयोगशील कवि पुरानी परम्पराओं को नये रूप में ग्रहण करते हैं। उनकी विकृति को दूर करके नये रंग, नये रूप तथा नई छवियों में उनकी प्राणप्रतिष्ठा करते हैं। आलोच्यकाल में रामनरेश त्रिपाठी, मैथिली-शरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, गुरुभक्त सिंह, श्यामनारायण पांडेय, उदयशंकर

१—राजशेखर : काव्य मीमांसा, चतुर्थ अध्याय।

भट्ट आदि कवि इसी श्रेणी के अंतर्गत हैं। इनके विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है—

'वे प्रसंग के अनुकूल परम्परागत पुराने छन्दों का व्यवहार और नये ढंग के छंदों तथा चरण व्यवस्थाओं का विधान भी करते हैं, । व्यंजक चित्र विन्यास, लाक्षणिक वक्रता और मूर्तिमत्ता, सरल पदावली आदि का भी सहारा लेते हैं, पर इन्हीं बातों को सब कुछ नहीं समझते। एक छोटे से घेरे में इनके प्रदर्शन मात्र से वे संतुष्ट नहीं दिखाई देते हैं, उनकी कल्पना इस व्यक्त जगत और जीवन की अनंत वीथियों में हृदय को साथ लेकर विचरने के लिये आकुल दिखाई देती है[१] ।"

प्रयोग की समस्या—

आलोच्यकाल प्रयोगों का युग है। १६२० ई० के आसपास छायावाद युग के आरंभ के काव्य में वस्तु और शिल्प के प्रयोगों की बाढ़-सी आ जाती है। ये प्रयोग दो रूपों में हुये हैं। स्वाभाविक विकास के रूप में और विद्रोह के रूप में। पहले रूप के साथ कोई आपत्ति नहीं है क्योंकि इस प्रकार के प्रयोग हर एक युग में होते आये हैं तथा वे काव्य के इतिहास के विकास के पग चिन्ह हैं। जब प्रयोग दूसरे रुप में आते हैं, तब वे एक समस्या खड़ी करते हैं और विद्वानों का ध्यान आकर्षित करते हैं। छायावाद युग के प्रसाद, पंत और निराला ने काव्य में अभिनव प्रयोगों की सृष्टि की है। प्रयोगों की दृष्टि से निराला सबसे अग्रणी हैं। उन्होंने काव्यवस्तु, रूप प्रकार और सबसे अधिक छन्दों के क्षेत्र में क्रान्ति उत्पन्न की। पंत जी ने भी पल्लव की भूमिका में पुराने छंद,पुरानी भाषा, पुराने भाव एवं अलंकारों के प्रति विद्रोह प्रकट किया है। प्रगतिवादी काव्य में विषयवस्तु के क्षेत्र में नाना प्रकार के प्रयोग हुये हैं। सन् १६४२ में 'तारसप्तक' के प्रकाशन के साथ प्रयोगवादी कविता का आगमन हुआ। उसमें वर्तमान प्रयोगवादी कविता के प्रवर्तक अज्ञेय जी ने लिखा है—"भाषा को अपर्याप्त पाकर विराम संकेतों से अंकों और सीधी तिरछी लकीरों से, छोटे-बड़े टाइप से, सीधे या उलटे अक्षरों से, लोगों और स्थानों के नामों से, अधूरे वाक्यों से—सभी प्रकार के इतर साधनों से कवि उद्योग करने लगा कि अपनी उलझी हुई संवेदनाओं की सृष्टि को पाठकों तक अक्षुण्ण पहुँचा सके।[२] "इस कथन में

१—रामचंद्र शुक्ल : हिंदी साहित्य का इतिहास, नवां संस्करण, पृ० ६२८।

२—अज्ञेय : तार सप्तक, पृ० ७४।

'उलझी हुई संवेदना की सृष्टि'' को पाठकों तक पहुँचाने की समस्या की ओर संकेत हैं। मूलतः यह समस्या अभिव्यक्ति के प्रकार की है। मुक्ति बोध, भारत भूषण, माचवे, गिरिजाकुमार, रामविलास, भवानीप्रसाद, शमशेर, नरेशकुमार धर्मवीर भारती आदि कवियों की रचनाओं में प्राचीन परंपरा से विद्रोह करके अभिव्यंजना के नये प्रकारों का पूर्वाग्रह अदम्य ओज के साथ प्रकट हुआ है। इन सभी कवियों ने काव्य की प्राचीन परंपराओं के प्रति पूर्ण असंतोष प्रकट किया है। इन पर मार्क्स के समाजवाद तथा फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद का पूर्ण प्रभाव है। जिस प्रकार छायावाद युग की को कविता अंग्रेजी कवि शैली, कीट्स, वायरन, टैनीसन और ब्लेक के स्वच्छन्दतावाद से प्रभावित है, उसी प्रकार प्रयोगवादी कविता फ्रांस के पाल वर्लेन, रिम्वे, रिम्वो, वोदलेयर, लकोदली एवं अंग्रेजी कवि एजरा पाउन्ड, ईलियट और डी० एच० लारेंस के वैचित्र्य पूर्ण नये काव्य प्रयोगों से प्रभावित है। नई कविता विदेशी प्रभाव के कारण बौद्धिकता से इतनी बोझिल है, कि उसमें रागात्मक तत्त्व बिल्कुल लुप्त हो गया है। इसके अतिरिक्त नये कवियों ने परम्परागत भाषा, छंद, अलंकार, प्रतीक एवं काव्य रूपों का एक साथ बहिष्कार कर दिया है। ये प्रयोग काव्य के विकास में कहाँ तक हितकर है, कितने अंश में ग्राह्य हैं, अग्राह्य है, इस संबंध में एक प्रश्न चिन्ह जुड़ा हुआ है। इस प्रकार नये प्रयोगों ने एक जटिल समस्या खड़ी कर दी है।

इस समस्या पर अनेक विद्वानों ने अपने मत प्रकट किया है। आचार्य राम चन्द्र शुक्ल के मत हैं—"जितनी बातें आजकल काव्य क्षेत्र में नवीनता कह कर पेश की जाती हैं, एक-एक करके सबका मूल हम योरोप के नये पुराने प्रचलित प्रवादों में दिखा चुके हैं। सब नकल की नकल हैं। [१]" उन्होंने इस प्रवृत्ति को हानिकारक तथा साहित्य और संस्कृति के पतन का कारण बताया है। शुक्ल जी ने अनुकरण की प्रवृत्ति—चाहे वह पूर्ववर्ती कवियों की हो, चाहे विदेशी कवियों की, खूब भर्त्सना की है; किन्तु आगे चलकर उन्होंने छायावादी कवि प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी के काव्य की सराहना भी की है। नन्ददुलारे वाजपेयी ने छायावाद युग के कवियों को विद्रोह जन्य काव्य-प्रवृत्ति की महत्ता को स्वीकार किया है—"इन सुन्दरतम् काव्य प्रयोगों के मूल में एक अभिनव रहस्य भावना, एक विश्व-जीवन, दार्शनिकता और एक परिष्कृत सौन्दर्य चेतना काम कर रही है। बिना उस मूलवर्ती आधार के रचनाओं में यह चमत-

---

१—पं० रामचन्द्र शुक्ल : चिन्तामणि, दूसरा भाग, पृ० १७०।

स्कार और ये कलात्मक विशेषतायें नहीं आ सकती[१]। छायावादी कवियों ने वस्तु, रूप और शैली के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन किये थे; किन्तु परम्परागत काव्यादर्श में पूर्ण निष्ठा प्रदर्शित की थी। इस दृष्टि से छायावाद युग और वर्तमान युग की प्रयोगवादी काव्य प्रवृत्ति में महान अन्तर है।

वर्तमान काव्य प्रयोगों के विषय में आधुनिक विद्वानों ने अपना-अपना मत प्रकट किया है। डा० नगेन्द्र ने काव्य के मूल्यों के सन्तुलन की रक्षा पर बल दिया है तथा काव्य के विकास के लिये साधन के रूप में प्रयोगों को सार्थक माना है। उन्होंने कहा है—"काव्य के मूल तत्त्व रस-प्रतीति पर दृष्टि केन्द्रित रखकर, काव्य को गतिरोध और रूढ़िजाल से मुक्त करने के लिये नये प्रयोग स्तुत्य हैं, वे काव्य के साधक हैं। परन्तु क्रम को उलट कर काव्य की आत्मा का तिरस्कार करते हुये प्रयोगों को स्वातन्त्र महत्त्व देना उन्हें ही साध्य मान लेना हलकी साहसिकता मात्र है। काव्यगत मूल्यों का अनुचित तथा अनावश्यक क्रम-विपर्यय है।[२]" नगेन्द्र जी ने काव्य में रसात्मक अनुभूति को मान्यता प्रदान की है। प्रयोगवादियों के रस-विद्रोह से उनका समझौता नहीं है। रसात्मक बोध से रहित काव्य को वे अकाव्य समझते हैं। डा० सत्येन्द्र के मत से—"काव्य एक सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक परंपरा की देन है और प्रत्येक देशकाल में वह इसी अनुकूलता के साथ फलता-फूलता है और कल्याणकारी होता है। नयी उद्भावनायें, नये उन्मेष, नूतन सृजन उधार लिये हुये और बेगरी के रूप में नहीं हो सकते। वे परम्परा के बीजों में होने वाली देश-काल की नयी रसायन के फल होते हैं। हमारी कोई भी अभिव्यक्ति मात्र व्यक्तिगत नहीं हो सकती, इसका एक घनिष्ट सामाजिक मूल है क्योंकि व्यक्ति अत्यन्त व्यक्तिगत हो जाने पर समाज के लिये मृत हो जाता है।"[३] सत्येन्द्र जी ने काव्य को सामाजिक, सांस्कृतिक परिपार्श्व में रखकर परखने का प्रयत्न किया है। यदि कोई सृजन या प्रयोग सांस्कृतिक परम्परा से उद्भूत नहीं है, तो वह निरा वाग्जाल है। वे काव्य के सामाजिक मूल्य को प्रधानता देते हैं, अभिव्यक्ति को वे समाज के लिये अहितकर समझते हैं। परंपरा से आमूल विच्छिन्न होकर कोई रूप-सृष्टि नहीं हो सकती। कम-से-कम समाज के लिये वह निरर्थक है।

नयी कविता के प्रयोगों को असन्तुलित मनोवृत्ति का प्रकाशन बतलाते

१—पं० नन्ददुलारे वाजपेयी : आधुनिक साहित्य, पृ० ३४।

२—शिवदान सिंह चौहान : काव्य धारा, पुस्तक पत्रिका १ पृ० ४३।

३—वही, डा० सत्येन्द्र, कवि और काव्य, पृ० ४६–५०।

हुए शिवदान सिंह चौहान ने कहा है कि—"साधारणतया प्रयोगवादी कविताओं में एक दयनीय प्रकार की झुंझलाहट, खीझ, कुंठा, किशोर औद्धत्य और हीन-भाव ही व्यक्त हुआ है, जो कवि के व्यक्तित्त्व को प्रमाणित करने का नहीं, खंडित करने का मार्ग है। महान कविता का जन्म सारे संसार को, समाज को, जीवन के प्रगतिशील आदर्शों और नैतिक भावनाओं को एक उद्दंड और छिछोरे बालक की तरह मुँह बिचकाने से नहीं होता। सामाजिक बन्धनों के प्रति व्यक्ति-वादी प्रतिवाद का यह तरीका स्वांग बनकर ही रह जाता है।"[१] इस कथन में भी कविता को सामाजिक दायित्त्व की महत्ता स्वीकार की गई है, जिसके बिना कविता बालकों की खिलवाड़ मात्र रह जाती है।

'आधुनिक काव्य का अंतरंग' निबंध में पं० नन्ददुलारे वाजपेयी ने आधुनिक प्रयोगवादियों के संबंध में लिखा है—'प्रयोगवादियों का यथार्थ केवल अन्वेषण है। इस अन्वेषण की भी कोई निश्चित दिशा नहीं है, न उसके पीछे कुछ उद्देश्य ही है। जिस प्रकार 'निहिलिस्ट' समस्त मान्यताओं को अस्वीकार करने के बाद अपना पथ खोजता है और यह जानने के पूर्व ही कि उसे पथ किस मंजिल के लिये चाहिये, उसके पूर्व के समस्त विश्वासों को अस्वीकार कर देता है, उसी प्रकार ये प्रयोगवादी हैं। यह कहना कठिन है कि इनकी जीवन दृष्टि क्या है।[२]" इस प्रकार वाजपेयी जी ने आजकल की प्रयोगवादी रचनाओं की आलोचना करते हुये उन्हें उद्देश्यहीन बतलाया है।

उपर्युक्त विद्वानों ने आधुनिक काव्य-प्रयोगों के विषय में, जो कुछ कहा है, उसका सारांश यह है कि नये काव्य-प्रयोग वहीं तक ग्राह्य हैं, जहाँ तक वे कविता को रूढ़ियों के जाल में से निकाल कर उसे चरम लक्ष्य की ओर अग्रसर करते हैं। जब प्रयोग प्रयोग के लिये होने लगते हैं तथा कविता में साध्य का स्थान ग्रहण करने लगते हैं, तब एक कठिन समस्या खड़ी हो जाती है। प्रयोग की सार्थकता काव्य विकास में योग देने से होती है। यह तभी संभव है जब ये परम्परा के बीज से प्रादुर्भुत होते हैं। परम्परा से विच्छिन्न होकर काव्य-प्रयोगों का सामाजिक महत्त्व जाता रहता है। सामाजिक एवं नैतिक आदर्शों का विरोध करने से प्रयोग हास्यास्पद होने लगते हैं। नये प्रयोग एवं नये सृजन का तभी तक मूल्य है, जब तक उनसे सामाजिक दायित्त्व का निर्वाह होता है।

१—शिवदान सिंह चौहान : काव्यधारा, संख्या १, हिन्दी कविता का विकास, पृ० ४९।

२—नन्ददुलारे वाजपेयी : नया साहित्य : नये प्रश्न, पृ० १४४।

प्रयोगवादियों के समक्ष कोई निश्चित काव्यादर्श होना चाहिये, जिससे वे निभ्रांत सत्यान्वेषण के पथ पर चल सकें। केवल विरोध या विद्रोह की प्रवृत्ति अपने आप में कोई सिद्धांत नहीं है जिसके आधार पर कोई नया निर्माण हो सके। निष्कर्ष यह कि परंपरा का सहज उत्तराधिकार लेकर विश्वासपूर्वक प्रगति की ओर चलने में ही प्रयोगों की सफलता का तत्त्व निहित है। अतीत से विद्रोह करके चलने वाले प्रयोगवादियों का मार्ग शंका और भय से मुक्त नहीं है। लक्ष्य भ्रष्ट हो जाने पर वे काव्य में विकृति भी उत्पन्न कर सकते हैं।

कलाकार की मौलिकता विचित्र प्रयोगों को ऐसी सृष्टि खड़ी करने में नहीं होती, जो सहृदय के लिये अज्ञात एवं अपरिचित हो। कला के क्षेत्र में न तो अधिक परिचित और न अधिक अपरिचित वस्तु से हृदय को तृप्ति होती है। मानव-हृदय को दोनों के समन्वय से संतोष मिलता है। काव्य में भी जब परिचित वस्तु का नये रूप, नये रंग एवं नये वैचित्र्य के साथ दर्शन होता है, तब पाठक को अद्‌भुत आनंद मिलता है। कवि अपनी इच्छा से चाहे तो नई वस्तु को पुराने रूप सौष्ठव में प्रस्तुत कर सकता है, चाहे पुरानी वस्तु को नये रूप-रंग में चित्रित कर सकता है। काव्य का आनन्द इसी में है कि नवीन वस्तु हमको परिचित-सी प्रतीत हो। कवि अनेक प्रकार से परिचित वस्तु को अपरिचित वस्तुओं के साथ तथा अपरिचित वस्तुओं को परिचित वस्तुओं के साथ गूँथ कर इस प्रकार नूतन भावों की सृष्टि करता है कि सहृदय पाठक मुग्ध हो जाते हैं। जान लिविंग्स्टन लोवेस ने इस संबंध में ठीक ही कहा है—"हम लोग नवीन वस्तु के लिये उत्सुक तो अवश्य रहते हैं, किन्तु हमारा यह भी आग्रह रहता है कि जो परिचित है, तथा जो अपना है उससे भी उस वस्तु का संबंध अवश्य बना रहे; हम पुराने को तो चाहते हैं कि वह किसी न किसी रूप में नया प्रतीत हो[1]।" टी० एस० इलियट ने कहा है—"काव्य रचना करने से पहले कवि में ऐतिहासिक तत्त्व का भी विचार होना चाहिये। उसे केवल अतीत पर ही नहीं वर्तमान पर भी दृष्टि रखनी चाहिये। उसे साहित्य की समग्र परम्परा को दृष्टि में रखते हुये तथा राष्ट्रीय साहित्य के सम्पूर्ण विकास का चिन्तन करते हुये काव्य सृजन करने की आवश्यकता है। समय के अनन्त प्रवाह तथा उसकी सम्पूर्ण चिन्ताधारा को ध्यान में रखकर काव्य की सर्जना करने-वाला कवि ही वस्तुतः परम्परावादी कहलाता है[2]। इससे स्पष्ट है कि काव्य

१—जान लिविंग्स्टन लोवेस: कंवेंशन ऐंड रिवोल्ट इन पोइट्री, पृ० ६३।
२—टी० एस० इलियट : सिलेक्टेड प्रोज (पेंग्विन), पृ० २२।

में युगसत्य के साथ अतीत युग की परम्पराओं का समन्वय आवश्यक है। परम्परा को व्यापक दृष्टि से देखने पर नये-पुराने का भेद मिट जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मत ध्यान देने योग्य है। काव्य के स्वतन्त्र विकास के विषय में उन्होंने कहा है कि—"हम अपने हिन्दी काव्य को विश्व की नित्य और अनंत विभूति में स्वच्छन्दतापूर्वक, अपनी स्वाभाविक प्रेरणा के अनुसार, अपनी आँखें खोलकर, विचरण करते हुये देखना चाहते हैं। पर वह दिन तभी आ सकता है जब हमारी अंतर्दृष्टि को आच्छन्न करनेवाले परदे हटेंगे और हमारे विचारों में बल आयगा[1]। शुक्ल जी के कथन में परम्परा और स्वच्छन्दता का समन्वय हो जाता है। काव्य के सृजनात्मक विधान में स्वाभाविकता तभी आ सकती है, जब उसके विकास की गति परम्परा से निर्धारित होती है। विश्व की अनन्त विभूति में तन्मयता प्राप्त कर लेने पर कवि की दृष्टि में स्वच्छन्दता की व्याकुलता उत्पन्न होगी और स्वाभाविक प्रेरणा के अनुकूल चलने से वह दूसरों की अनुकृति से बच जायगा। जो कवि प्रतिभा सम्पन्न है, वे ही शाश्वत सत्य को युगीन सौंदर्य में रखकर नये माध्यमों द्वारा अभिव्यक्ति दे सकते हैं। अभिनय प्रयोगों का इसके अतिरिक्त और क्या अर्थ हो सकता है?

इस अध्ययन के द्वारा आलोच्य काल में काव्य संबंधी परम्पराओं एवं प्रयोगों के यथार्थ मूल्य को समझने का प्रयत्न किया गया है। काव्य-संस्कृति का इतिहास बहुत प्राचीन है। आधुनिक काव्य में कितनी ही परम्पराओं का लोप हो गया है, कितनी ही जीवित हैं तथा कितनी ही नये रूपों में प्रकट हुई हैं। उनका अध्ययन जितना ही रोचक है, उतना ही उपादेय भी, क्योंकि इसके बिना काव्य का मर्म समझ में नहीं आ सकता है। इसके अतिरिक्त आधुनिक प्रयोगों को प्राचीन परम्पराओं के सन्दर्भ में ही समझा जा सकता है। नये प्रयोगों का मूल्य अपने आप में कोई निरपेक्ष वस्तु नहीं है। परम्पराओं की सापेक्षता में ही उनका महत्त्व है। कारण यह है कि परम्पराओं की नींव पर ही नये प्रयोगों का उत्थान हुआ करता है। अतएव परम्पराओं और प्रयोगों के रूप में ही काव्य-संस्कृति का ह्रास-विकास होता आया है। प्रस्तुत निबन्ध में आधुनिक हिन्दी काव्य के अन्तर्गत विभिन्न परम्पराओं के ह्रास-विकास का विवेचन तो है ही, नवीन प्रयोगों के स्वरूप का भी उद्‌घाटन किया गया है। नयी कविता के कवि अभी जीवित हैं, तथा प्रयोगों का कोई अन्त नहीं, अतएव उनके विषय में अभी कोई निर्णय देना असंभव है। आलोच्य काल की सीमा में जितनी काव्यराशि

१—आचार्य रामचंद्र शुक्ल : चिंतामणि, द्वितीय भाग, पृ० १७१।

प्रकाशित हो चुकी है, उसी के आधार पर उसका मूल्य निर्धारण किया गया है।

साहित्य के किसी इतिहास में परम्परा और प्रयोगों का ऐसा अध्ययन नहीं मिलता है। संस्कृत एवं हिन्दी का काव्य-शिक्षा की पुस्तकों में पराम्पराओं का वर्णन अवश्य हुआ है। उसको यहां सहायक-सामग्री के रूप में लिया गया है। काव्यशास्त्रीय परम्पराओं के अध्ययन बहुत हुए हैं, किन्तु काव्य-संबंधी परम्पराओं एवं प्रयोगों का अध्ययन यह पहला ही प्रयत्न है। इस प्रकार का अध्ययन काव्य-संस्कृति के उत्थान-पतन को समझने में तो सहायता करता ही है, नये प्रयत्नों पर भी प्रकाश डालता है। अतएव इसकी आवश्यकता तथा उपादेयता निर्विवाद है।

द्वितीय अध्याय

प्रयोग की परंपरा : उद्‌भव तथा विकास

प्रयोग की परंपरा
उद्भव तथा विकास

काव्य का उदय

संस्कृत वाङ्मय का प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद है। इसके अनेक सूक्तों में काव्यमय वर्णन पाया जाता है, जिनसे काव्य के मूल तत्त्वों पर प्रकाश पड़ता है। ऋग्वेद के अनेक सूक्तों में अलंकार, प्रतीक, रूपकोक्ति, छन्द, भाषा, गीत, संवाद एवं प्रकृति वर्णन के उदाहरण मिलते हैं, जिनसे सहज ही यह परिणाम निकाला जा सकता है कि काव्य के प्रारंभिक प्रयोग वैदिक काल में ही आरंभ हो गए थे। वेद के अर्थज्ञान का साधक होने से सबसे प्रथम राजशेखर ने अलंकार को वेद का सातवाँ अंग कहा है। उनके मत से वाङ्मय के दो भेद हैं—शास्त्र तथा काव्य[1]। काव्य के अनुशीलन से पूर्व शास्त्राभ्यास की आवश्यकता बतलाई गई है, क्योंकि इसके बिना काव्य का रहस्य समझा नहीं जा सकता। इससे दो निष्कर्ष निकलते हैं। काव्य उतना ही प्राचीन है, जितना वेद तथा काव्य का मूल स्रोत शास्त्र है।

वेदों में देवताओं की स्तुति के मंत्रों के अतिरिक्त दानशील राजाओं की प्रशस्तियाँ भी मिलती हैं, जिन्हें "नाराशंसी" कहते हैं। संहिताओं में यशस्वी राजाओं की गाथा के वर्णन उपलब्ध होते हैं। ऐतरेय ब्राह्मण के शुनःशेप तथा ऐन्द्र महाभिषेक वाले प्रसंगों में इस प्रकार की अनेक साहित्यिक गाथाएँ पाई जाती हैं। दूसरी ओर वैदिक काल में संस्कृत से भिन्न किसी जनभाषा में लोक-कथाओं के आधार पर भी काव्य की रचना होती थी। ऋग्वेद के अनेक सूक्तों में लोक जीवन का चित्रण पाया जाता है। प्राकृत भाषा के वीर-गीत, प्रेम-गीत एवं प्रगीत काव्यों की परम्परा इसी का विकसित रूप है[2]। इससे स्पष्ट है कि वैदिक युग में एक ओर देवताओं एवं प्रतापी राजाओं की प्रशस्तियों का वर्णन किया जाता था और दूसरी ओर साधारण लोक-जीवन का चित्रण होता

१—इह हि वाङ्मयमुभयथा शास्त्रं काव्यं च।

(काव्य मीमांसा)

२—एस० एन० दास गुप्ता : हिस्ट्री आव संस्कृत लिटरेचर, पृ० ३-४।

था। उत्तरवर्ती महा काव्यों के युग में प्रबन्ध काव्यों के अन्तर्गत पहली परम्परा का विकास हुआ है तथा प्रगीत मुक्तकों में दूसरी का।

ऋग्वेद एवं ब्राह्मण ग्रन्थों के अतिरिक्त कठ, छान्दोग्य तथा श्वेताश्वतर उपनिषदों में भी काव्यमय वर्णन उपलब्ध होते हैं, किन्तु काव्य का वास्तविक स्वरूप रामायण और महाभारत में ही प्रस्फुटित हुआ है, इसमें किसी को सन्देह नहीं।

ईस्वी सन् की प्रारम्भिक शताब्दियों में काव्य के अन्यान्य गुणों का विकास होने लगता है, इसके प्रमाण तत्कालीन शिलालेख एवं प्रशस्ति पत्रों में उपलब्ध होते हैं। शक, क्षत्रप, रुद्र, दामन की प्रशस्ति में लिखा हुआ गिरनार का शिलालेख (१५० ई०) मिलता है, जिसमें रुद्र दामन को स्फुट, लघु, मधुर, चित्र, कान्त, शब्द-समय-सम्पन्न, उदार तथा अलंकृत गद्य-पद्य की रचना करने में कुशल बतलाया गया है। इसमें काव्य-भाषा के उत्कृष्ट गुणों की ओर स्पष्ट संकेत मिलता है। इसी प्रकार राजा समुद्रगुप्त की प्रशस्ति में लिखित कविवर हरिषेण कृत प्रयाग का शिलालेख (३५० ई०) गद्य-पद्य मिश्रित काव्य गुणोपयुक्त भाषा का अन्यतम उदाहरण है। मन्दसोर की वत्सभट्ट रचित (४७३ ई०) प्रशस्ति में वैदर्भी रचना शैली का आश्रय लिया गया है, जिसमें काव्य का स्वारस्य है। इसके अतिरिक्त पिंगल मुनि के छन्दः सूत्र में नानाप्रकार के लौकिक तथा गीतात्मक छन्दों का उल्लेख पाया जाता है। "गाथा" इसका स्पष्ट प्रमाण है। छंदों के नाम भी अधिकतर शृंगारात्मक हैं – वसन्त तिलका, तन्वी, सुन्दरी, रुचिरा, प्रमदा, प्रमिताक्षरा (कम बोलनेवाली), मंजु भाषिणी, शशि वदना, चित्रलेखा, विद्युन्माला, स्रग्धरा (माला धारण करनेवाली) आदि। इन नामों से सिद्ध होता है कि ये छन्द सर्व प्रथम स्त्रियों के वर्णन में एवं शृंगार विषयक रचनाओं में प्रयुक्त हुए हैं। डा० याकोबी का मत है कि छन्दों का प्रयोग तथा नामकरण ई० पू० की शताब्दियों से संबंध रखता है। इन सब प्रमाणों से स्पष्ट है कि ईसा की आरंभिक शताब्दियों में काव्य रचना के मूल तत्त्वों का सम्यक् विकास हो चुका था तथा काव्य में उनकी स्वस्थ परम्परा स्थापित हो चुकी थी। किंतु उस काल के काव्यों के उपलब्ध न होने से हमें उनका यथेष्ट परिचय नहीं है[१]।

नीचे काव्य के प्रयोगों की पृथक्-पृथक् परम्पराओं का संक्षिप्त वर्णन

१—देखिए, बलदेव उपाध्याय : संस्कृत साहित्य का इतिहास, तृतीय संस्करण, पृ० १५।

उपस्थित किया जाता है, जिससे आलोच्य काल से पूर्व काव्य संबंधी प्रयोगों तथा परम्पराओं के विकास का परिचय हो सके।

अलंकार—

अलंकारों का मूल उपमा है। ऋग्वेद में उपमा का प्रयोग अनेक मंत्रों में पाया जाता है।[१] इंद्र की स्तुति में उपमा का प्रयोग हुआ है—'जो पूर्ण रूपों का निर्माता है और जो दोहक के लिए अधिक दूध देने वाली गौ के सदृश है, उस इंद्र को समृद्धि के लिए हम प्रतिदिन पुकारते हैं—

'सुरूप कृत्नुमूतये सुदुघामिव गो दुहे, जुहूमसि द्यवि-द्यवि।
—ऋ० १।४।१

उषा विषयक एक मंत्र में चार उपमाओं का विधान है—

अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची, गर्तारुगिव सनये धनानाम्।
जायेव पत्य उशती सुवासा, उषा हस्रे व निरिणीते अप्सः॥
—ऋ० १।१२४।७

ऋग्वेद में उपमा, रूपक, अतिशयोक्ति, रूपकोक्ति (एलेगोरी), यमक, अनुप्रास के अनेक उदाहरण हैं। उपनिषदों में विशेषतः कठ एवं श्वेताश्वतर में अलंकारों का सौन्दर्य सबसे अधिक मिलता है—

आत्मान रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धि तु सारथि विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥
—कठ० उप० १।३।३

(इस शरीर रूपी रथ में आत्मा रूप स्वामी है, बुद्धि सारथी है तथा मन रस्सी है। इसमें रूपक स्पष्ट है।

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः॥
—ईश० मंत्र ५।

यह विरोधाभास का उदाहरण है। कठ उपनिषद् की छठी वल्ली के पहले मंत्र में अतिशयोक्ति अलंकार है। इसी वल्ली के पांचवें मंत्र में दृष्टान्त है तथा सातवें-आठवें मंत्रों में सार अलंकार प्रयुक्त हुआ है।

नाहं मन्ये सुवेदेति नो न वेदेति वेद च।
यो नस्तद् वेद तद्वेद नो न वेदेति वेद च॥
—केन० उप० २।२

ब्रह्म के विषय में शिष्य का कथन है कि उस परम तत्त्व को मैं भली-

---

१—देखिए, ऋग्वेद, १।३१।१५ तथा ५।३७।६

भांति जानता हूं, ऐसा मैं नहीं मानता, उसको नहीं जानता, ऐसा भी नहीं है। जो हममें से उसे जानता है, वही जानता है तथा वह यही जानता है कि मैं नहीं जानता हूं, किन्तु जानता हूं। इसमें ब्रह्म ज्ञान के विषय में जो कुछ कहा गया है, उसमें विचित्र भाषा का प्रयोग है। संभवतः इसी प्रकार के मंत्रों से आगे चलकर दृष्टकूट की शैली का विकास हुआ होगा। इससे सिद्ध है कि वैदिक साहित्य में अलंकारों के प्रयोग विद्यमान हैं, जिनसे उत्तरवर्ती साहित्य में अलंकारों का विकास हुआ है।

अलंकारों का विकास धीरे-धीरे हुआ है। भरत के नाट्यशास्त्र में केवल चार अलंकारों का उल्लेख मिलता है—यमक, उपमा, रूपक और दीपक।[१] इनमें से एक शब्दालंकार है और तीन अर्थालंकार। ये चार अलंकार ही विकसित होते-होते कुवलयानन्द में १२५ की संख्या तक पहुंच गए हैं। भरत ने उपमा और यमक के अनेक भेद किए हैं, तथा काव्य एवं लोक-व्यवहार के आधार पर उपमा के अन्य भेदों की ओर भी निर्देश किया है।

ईसा की पांचवीं-छठी शताब्दी से अलंकारों का निरूपण व्यवस्थित प्रणाली के आधार पर होने लगता है। भामह प्रथम आचार्य हैं, जिन्होंने काव्य-गत अलंकारों के प्रयोजन पर विचार किया है, उनकी संख्या निर्धारित की है तथा परम्परा को यथार्थ रूप में उपस्थित किया है। वे समस्त अलंकारों को वक्रोक्ति-मूलक मानते हैं। इसीसे काव्यार्थ विभामय होता है। वक्रोक्ति के बिना कोई अलंकार नहीं है, अतएव कवि को इसी के हेतु प्रयत्न करना आवश्यक है।[२] प्रकृत वर्णन और अलंकृत वर्णन का भेद इसी समय से आरंभ होता है। प्रकृत कथन को वार्ता और चारुत्व निबन्धना को अलंकार बताकर भामह ने ही अलंकार परम्परा का सूत्रपात किया है। इससे यह भी स्पष्ट है कि अलंकारों की संख्या चाहे जितनी हो, किन्तु चारुत्व-विशेषत्व धर्म एक ही है तथा वही समस्त अलंकारों का मूल तत्त्व है। अलंकारों की संख्या का ह्रास-विकास होता रहता है, किन्तु चारुत्व-अलंकारत्व का नहीं। अलंकारत्व के अभाव में काव्य अकाव्य है, इतिवृत्त है। इसी के अन्य नाम हैं—चारुत्व, वक्रता, वैचित्र्य, विच्छित्ति आदि।

अलंकारों का अध्ययन एक स्वतंत्र निबन्ध का विषय है। यहां केवल यही बतलाना इष्ट है कि आलोच्य काल से पूर्व अलंकारों की एक स्वतंत्र परम्परा विकसित हुई है, जिसको अग्रसर करने में उद्भट कवियों ने योग दिया है।

१—भरत : नाट्यशास्त्र, १६।६३

२—भामह : काव्यालंकार, २।८५।

संस्कृत के भारवि, माघ, श्रीहर्ष, बाण, जयदेव आदि महाकवियों ने अलंकारों के प्रति विशेष रुचि प्रदर्शित की है। भारवि ने उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, श्लेष के अतिरिक्त चित्रकाव्य लिखने में पूर्ण चातुरी प्रदर्शित की है। किरातार्जुनीय का पंचदश सर्ग केवल चित्रकाव्य को दिया गया है। इन्होंने एक ही अक्षर वाले एक श्लोक की रचना भी की है[1]। हिन्दी के कवियों में केशव बिहारी, देव, पद्माकर इत्यादि ने शब्द और अर्थ को चमत्कृत करने वाले विविध अलंकारों का प्रयोग करके अपने उत्कृष्ट प्रतिभा का परिचय दिया है।

निष्कर्ष यह है कि काव्य में अलंकारों का महत्त्व सदैव रहा है। यह दूसरी बात है कि भिन्न-भिन्न युगों में कवियों का ध्यान कभी शब्द को चमत्कृत करने की ओर रहा है और कभी अर्थ को। सूर और तुलसी जैसे प्रतिभाशाली कवियों ने शब्द और अर्थ दोनों में ही सौन्दर्य भर दिया है।

संस्कृत-वाङ्मय में गृहीत अलंकार-परम्परा का ही हिन्दी में अनुसरण हुआ है। "केशव दास से राम दहिन मिश्र तक सार्धत्रय शताब्दियों की इस दीर्घ अवधि में हिन्दी के आचार्यों ने अलंकार विषय पर जो कुछ लिखा है, उसका आधार संस्कृत-भाषा के अलंकार ग्रन्थ ही हैं[2]।" नीचे अलंकार विधान की रुढ़ियों को उपस्थित किया जाता है :—

अलंकारों में रूढ़ियाँ—

सादृश्यमूलक अलंकारों के क्षेत्र में बहुत-सी रुढ़ियाँ चल पड़ी हैं, जिनका पराम्परा के अनुरोध से कविजन अनुवर्तन करते आए हैं। काव्य में नारी का स्थान हर एक काल में प्रमुख रहा है। उसके अंगों के लिए उपमानों की रूढ़ियाँ स्थापित हो गई हैं, जिनका कवि समाज में बहुत प्रचार है। ये उपमान रूढ़ हो गए हैं—स्त्री का वर्णन अधिकतर सत्व गुण प्रधान अथवा रजोगुण प्रधान रूप में हुआ है। स्तोत्र-साहित्य में स्त्री के सत्व गुण प्रधान रूप का कथा अन्यत्र रजो गुण प्रधान विलासिनी के रूप में वर्णन पाया जाता है। स्त्री-शरीर के रंग के लिए प्रायः रोचना, स्वर्ण, विद्युत, हरिद्रा. वराटिका, चम्पा, केतक-पुष्प के रंग से सादृश्य दिखाया जाता है। स्त्री को कनक यष्टि, पुष्पितलता, दमनक यष्टि से उपमित किया जाता है। स्त्री के अंग प्रत्यंगों के उपमान काव्य कल्पलतावृत्ति से नीचे दिये जाते हैं[3] :—

१—किरातार्जुनीय, १५। १४

२—देखिए, डा० ओम प्रकाश : हिन्दी अलंकार साहित्य, पृ० २५० ।

३—काव्यकल्पलतावृत्ति, ४।१।१६—२१

वेणी के लिए सर्प, असि, भृंगाली, केश-पाश के लिए चामर, धम्मिल्ल के लिए राहु, सीमन्त के लिए अश्व दंड, ललाट के लिए अष्टमी विधु, फलक, कपोल के लिए मुकुर, चन्द्रमा, भौं के लिए खड्ग धनु, यष्टि, रेखा, नेत्र के लिए चकोर, मृग, मदिरा, खंजन, अम्बुज, नीलकमल, मीन आदि श्रुति के लिए दौला, पाश, नासा के लिए वंश, तूणीर, शुक चंचु, तिल प्रसून, अधर के लिए पल्लव, बिम्बाफल, प्रवाल, दन्त के लिए मुक्ताफल, कुन्द, दाड़िम, हीरक, स्मित के लिए ज्योत्स्ना, दुग्ध, पीयूष, श्वास के लिए कमल-सौरभ, जिह्वा के लिए अंचल, दोला, वाणी के लिए भृंगीरव, पिकी-स्वर, सुधा, मधु, वेणु, वीणा, हंस-स्वस, मुख के लिए शशी, कमल, दर्पण, कंठ के लिए कम्बु, स्कन्ध के लिए कुंभ, बाहु के लिए वल्लरी, बिस-लता, मृणाल नाल, विद्युल्लता, हथेली के लिए पद्म, पल्लव, विद्रुम, अंगुलि के लिए पल्लव, नखों के लिए रत्न, तारा, प्रसून, स्तन के लिए स्तवक, घट, गजकुंभ, गिरि, चक्र, शिव, चक्रवाक, जम्बीर, समुद्र, स्तम्ब, पुंगफल, कमल, बिल्व, ताल, गुच्छ, सौवीर, बीजपूर आदि, स्तन-मध्य के लिए वेदिका, रोमाली के लिए रेखा, मृणालवल्ली, नाभि के लिए अंभोज, आवर्त, ह्रद, विवर, कूप, त्रिवली के लिए वीचि, सोपान, निसेनी, नदी, जघन के लिए पुलक, पीठफलक, नितम्ब के लिए स्थल, पीठ, प्रस्तर, पृथ्वी, गिरि, चक्र; ऊरु के लिए कदली, स्तंभ, शुंडा, करभ, जंघा के लिए स्तंभ, गति के लिए हंस गति, गजगति, कटि के लिए सुई की नोंक, शून्य, अणु, वेदी, सिंह की कटि, मुष्टि ग्राह्यता, चरणों के लिए पल्लव, कमल, स्थल पद्म, प्रवाल नूपुर ध्वनि के लिए सारस, हंस की ध्वनि आदि, आदि।

पुरुष के अंगों में स्कन्धों के लिए वृषभ और रक्ताक्ष के स्कन्ध; भुजाओं के लिए सर्पराज, हाथी की सूंड, पवि, स्तंभ, अर्गला, दंड आदि।

हिन्दी के कवियों ने भी इन्हीं उपमानों में से कुछ को ग्रहण कर लिया है तथा कुछ को छोड़ दिया है।

प्रतीक—

कोश में प्रतीक का अर्थ है, चिह्न, प्रतिरूप, प्रतिमा या स्थानापन्न। साहित्य में प्रतीकों का प्रयोग बहुधा उपलक्षण के रूप में होता आया है। भावों या मनोविकारों को पूर्ण रूप से शब्दों में प्रकट करना हर समय संभव नहीं होता। इसीलिए भावों की व्यंजना के लिए काव्य में प्रतीकों का व्यवहार होता आया है। "प्रतीक से अभिप्राय किसी वस्तु की ओर इंगित करनेवाला न तो संकेत मात्र है और न उसका स्मरण दिलानेवाला कोई चित्र या प्रतिरूप ही

है। यह उसका एक जीता-जागता एवं पूर्णतः क्रियाशील प्रतिनिधि है जिस कारण इसे प्रयोग में लानेवाले को इसके व्याज से उसके उपयुक्त सभी प्रकार के भावों को सरलतापूर्वक व्यक्त करने का पूरा अवसर मिल जाया करता है[१]।"

प्रतीकों की योजना अलंकारों के अन्तर्गत होने पर भी दोनों में भिन्नता है। प्रतीक उपमान की अपेक्षा कहीं अधिक समर्थ एवं व्यापक होता है। उपमान के पीछे सादृश्य और साधर्म्य होता है, प्रतीक में इसके विपरीत प्रभाव साम्य होता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार 'प्रतीक का आधार सादृश्य या साधर्म्य नहीं, बल्कि भावना जागृत करने की निहित शक्ति है[२]। जब कवि के आन्तरिक भावों को प्रकट करने में भाषा पंगु एवं निर्जीव सिद्ध होती है, तब प्रतीक भावों का प्रतिनिधि बन कर आता है।

प्रतीकों का उद्‌भव—

प्रतीकों का इतिहास उतना ही पुराना है, जितनी मानव-संस्कृति। वैदिक साहित्य में प्रतीकों के बहुत से उदाहरण पाये जाते हैं।

> द्‌वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
> तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्‌वत्ति अनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति॥
>
> —ऋ० १।२२।१६४

अर्थात् सुन्दर पंखवाले, एक साथ रहनेवाले और परस्पर मित्रता रखने वाले दो पक्षी एक ही वृक्ष में निवास करते हैं। उन दोनों में से एक स्वादु युक्त फलों को खाता है और दूसरा बिना कुछ खाए ही चैतन्य रहता है। इसमें दो पक्षी जीवात्मा और परमात्मा है तथा वृक्ष शरीर को कहा है एवं वृक्ष के फल सांसारिक भोगों का प्रतीक है।

> चत्वारि शृङ्‌गास्त्रयोऽस्य पादा द्‌वे शीर्षे सप्त हस्त सोऽस्य।
> त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महादेवो मर्त्यमाविवेश॥
>
> —ऋ० ४।५८।३

इस मंत्र की अनेक व्याख्याएं मिलती हैं, किन्तु सभी में प्रतीकत्व स्पष्ट ही हैं। इसमें वृषभ, शृंग, पाद, शीर्ष, हस्त आदि प्रतीकात्मक अर्थ की अभिव्यक्ति करते हैं।

१—परशुराम चतुर्वेदी : 'कबीर साहब की प्रतीक-योजना,' अवंतिका, काव्यालोचनांक, वर्ष २, अंक १, जनवरी, १९५४।

२—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : चिंतामणि, द्वितीय भाग, पृ० १२६।

ऋग्वेद का पुरुष सूक्त प्रधानतः प्रतीकात्मक है। उपनिषदों में आत्म विद्या के गूढ़ तत्त्वों को समझने के लिए प्रतीकों की योजना की गई है।

नव द्वारे पुरे देही हंसो लेलायते बहिः।
वशी सर्वस्य लोकस्य स्थावरस्य चरस्य च॥

—श्वेताश्वतर ३।१८

इसमें नौ द्वारों वाला पुर शरीर का तथा 'हंस' चेतन आत्मा का प्रतीक है।

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदापस्तत्प्रजापतिः॥

—श्वेताश्वतर ४।२

इसमें अग्नि, सूर्य, चन्द्र, वायु, शुक्र, जल आदि प्रतीक हैं। अन्यत्र रथ-चक्र तथा नदी के प्रतीकों द्वारा आध्यात्मिक रहस्यों को स्पष्ट किया गया है[1]। बृहदारण्यक के दूसरे अध्याय के पाँचवें ब्राह्मण की मधु विद्या, पाँचवें अध्याय के दूसरे ब्राह्मण की कथा में 'द' अक्षर का उपदेश और केनोपनिषद के तीसरे खंड में यक्ष की कथा सब प्रतीकात्मक हैं। इनमें प्रतीकों के माध्यम से आध्यात्मिक रहस्यों का उद्घाटन किया गया है।

वैदिक साहित्य के कुछ प्रतीक नीचे दिये जाते हैं :—

१—स्वस्तिक —मांगलिक चिह्न जिसमें देवताओं का निवास माना जाता है।

२—अक्षर —ब्रह्म, प्राण, आत्मा का प्रतीक (देखिये ऐतरेय आरण्यक १० तथा माण्डूक्य कारिका १)

३—ओउम् —ब्रह्म का अभिधान। 'ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वम् तस्योपाख्यानं, भूतं भवत भविष्यदिति सर्वमोंकार एव। माण्डूक्य उप०कारिका २

४—ज्योतिः —प्रकाश, सूर्य, अग्नि, प्राण। कौषीतकी ब्राह्मण २५।२।६, शतपथ ६।४।२।२२

५—अग्निः —तेज, प्रकाश। अग्निर्वै प्रथमा विश्वज्योतिः। शत० ६।४।२।२५

६—श्रीः —सार, सर्वस्व। शतपथ० ६।१।१।४, ऐतरेय० ८।५

१—श्वेताश्वतर, १।४-५

७—	वायुः	—प्राण । शतपथ ३।१।२।२०
८—	लक्ष्मी	—सौन्दर्य, गुण । शतपथ ८।५।४।५, ८।४।४।११
९—	प्राण	—ब्रह्म, जीवन । शतपथ १४।६।१०।३, 'प्राणेन प्राणितः' केन उप० ८, 'प्राणो ब्रह्म,' छान्दो० ४।१०।५
१०—	अमृत	—आनन्द, ब्रह्म । मृत्योर्मामृतं गमय—यो वै भूमा तदमृतम्.........छान्दो० ७।२४
११—	शून्य	—आकाश ।

इससे सिद्ध है कि वैदिक काल में प्रतीकों का प्रादुर्भाव हो चुका था, क्योंकि वैदिक साहित्य में इनका प्रचुरता से प्रयोग हुआ है। आगे चलकर काव्य में भी इनको स्थान मिल गया। काव्य में पौराणिक युग के प्रतीकों का सबसे अधिक प्रचार है। अवतारों के रूप, आकार एवं कथाओं को बहुत से प्रतीकों के द्वारा प्रकट किया है। अनेक देवी, देवता, तत्सम्बन्धी गुण एवं कार्यकलापों को पौराणिक साहित्य में प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त किया गया है। त्रिदेवों में ब्रह्मा, विष्णु और शिव के नाम आते हैं। ये तीनों नाम प्रतीकात्मक ही हैं। ब्रह्मा चारों वेद एवं प्रचुर ज्ञान के, विष्णु व्यापकत्त्व के तथा शिव प्रलय के प्रतीक ही हैं। इन त्रिदेवों की शक्तियां भी प्रतीकात्मक हैं—ब्रह्म की शक्ति सरस्वती हैं, जो विद्या एवं कलाओं की प्रतीक हैं, विष्णु की शक्ति लक्ष्मी ऐश्वर्य की तथा शिव की शक्ति पार्वती, दुर्गा, काली भय एवं संहार का प्रतीक है। सरस्वती वीणा और पुस्तक से संयुक्त हैं, जो क्रमशः संगीत तथा ज्ञान के प्रतीक हैं। विष्णु के हाथों में शंख, चक्र, गदा और पद्म हैं जो क्रमशः उज्जवलता, भय, मृत्यु और कोमलता या निर्लिप्तता के प्रतीक हैं। भारतीय संस्कृति में कमल का स्थान प्रमुख है। यह स्वच्छता, कोमलता एवं सुन्दरता का प्रतीक है।

नीचे काव्यकल्पलतावृत्ति के आधार पर कुछ प्रतीक दिये जाते हैं, जो चिरकाल से काव्य में प्रयुक्त होते आए हैं—

१. मांगलिकता के प्रतीक —शंख, मधु, रजत, स्वर्ण, ताम्र, मणि, ताम्बूल, दर्पण, कलश, स्वस्तिक, नन्दी, चन्दन, अक्षत, दीप, दधि, दूध, दूर्वा।

२. अमांगलिकता के प्रतीक—उल्लू, सर्प, पाषण्ड, खर, चिता, धूम, चांडाल।

३. पवित्रता के प्रतीक —अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी, यति, द्विज, दर्भ, गंगा, यमुना, सरस्वती।

४. अपवित्रता के प्रतीक —रक्त, अस्थि, श्मशान, कुत्ता।

५. सुख के व्यंजक प्रतीक —स्वर्ग, सुधा, सुहृद।

६. दुख के व्यंजक प्रतीक —नरक, कारागृह, विष।

७. स्थिरता के प्रतीक —पृथ्वी, पर्वत, धर्म, सती, शूर।

८. अस्थिरता के प्रतीक —लहर, विद्युत, बुद्‌बुद्, दीप-शिखा, निमेष।

९. वेग के प्रतीक —अश्व, मन, वायु, इन्द्र, गरुड़।

१०. मन्दता के प्रतीक —शनि, गज, वृषभ।

११. बल के प्रतीक —इन्द्र, स्कन्द, राम, हनुमान, भीम, बलराम, सिंह, दिग्गज, शेष, कूर्म, ऐरावत।

१२. मधुर ध्वनि के प्रतीक —हंस, मयूर, पिक, कीर, वेणु, वीणा, मंजीर।

१३. कठोर ध्वनि के प्रतीक —गदहा, मेंढक, कुक्कुर, गीदड़, का शब्द।

१४. कोमलता के प्रतीक —शिरीष, पल्लव, कदली।

१५. मधुरता के प्रतीक —काव्य, गीत, सुधा, मधु, रस, चन्द्र, रश्मि, द्राक्षा, आम, रम्भा।

काव्य कल्पलतावृति आदि कवि शिक्षा की पुस्तकों में इनके संग्रह प्रचुर मात्रा में मिल जाते हैं। संस्कृत के काव्य ग्रन्थों में सभी कवियों ने इनका यथा-स्थान प्रयोग किया है। किन्तु काव्य एवं नित्य के व्यवहार में बार-बार आने से इनका प्रतीकत्व नष्ट हो गया है तथा ये साधारण शब्दों की श्रेणी में आ गए हैं। इससे सिद्ध है कि इनके विकास की परम्परा दीर्घकालीन है। ये प्रतीक अधिकतर धार्मिक और आध्यात्मिक भावों की व्यजना के लिए प्रयुक्त होते आए हैं। पौराणिक युग प्रतीकों की दृष्टि से सबसे अधिक समृद्ध है तथा संस्कृत एवं हिन्दी काव्यों पर पौराणिक संस्कृति का प्रभाव सबसे अधिक है। अतएव संस्कृत एवं हिन्दी काव्यों में इन प्रतीकों का प्राचुर्य है।

इन प्रतीकों का वर्गीकरण करना अत्यन्त कठिन है। श्री सुदर्शन सिंह ने सभी प्रतीकों को दो भागों में विभाजित किया है, नित्य तथा कल्पित। नित्य प्रतीक वे हैं, जिनका भाव या वस्तु के साथ नित्य सम्बन्ध है, जैसे, आकाश का

प्रतीक शून्य है। कल्पित प्रतीकों में व्यक्तियों के नाम, राष्ट्रों के ध्वज तथा दूसरे कल्पित चिह्न हैं। ये यदृच्छा निर्मित हैं। जैसे, अमेरिका के राष्ट्रध्वज में तारक चिह्न हैं[१]। उनके मत से नित्य प्रतीक के दस भेद हो सकते हैं—(१) चिह्न प्रतीक (२) रंग प्रतीक (३) पदार्थ प्रतीक (४) प्राणी प्रतीक (५) पुष्प प्रतीक (६) शस्त्र प्रतीक (७) वाद्य प्रतीक (८) वृक्ष प्रतीक (९) वेश प्रतीक और (१०) संकेत प्रतीक (मुद्राएं)।

प्रतीकों का एक अन्य विभाजन इस प्रकार किया गया है[२]—

१—अक्षरात्मक प्रतीक।

२—संकेतात्मक प्रतीक।

३—रूपात्मक प्रतीक।

४—कथात्मक प्रतीक।

५—संख्यात्मक प्रतीक।

डा० प्रेमनारायण शुक्ल ने प्रतीकों को चार श्रेणियों में विभाजित किया है[३]—

१—परम्परानुगत

२—देशगत

३—व्यक्तिगत और

४—युग गत

इस प्रकार दृष्टि भेद से प्रतीकों के अनेक वर्ग हो सकते हैं। कोई एक वर्ग अपने आप में सर्वथा पूर्ण नहीं हो सकता। डा० सुधीन्द्र के अनुसार प्रतीक वस्तुतः अप्रस्तुत की समग्र आत्मा या धर्म या गुण का समन्वित रूप लेकर आने वाले प्रस्तुत का नाम है······प्रतीक तो अप्रस्तुत का प्रस्तुत रूप में अवतार है[४]। आपके अनुसार जीवन के हर एक क्षेत्र में प्रतीकों का प्रयोग होता है। सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक जीवन के हर एक क्षेत्र में प्रतीक व्यवहृत होते हैं। जीवन का कोई पार्श्व इनसे बचा हुआ नहीं है। राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति के लिए राष्ट्रीय प्रतीक होते हैं, प्रेम, करुणा, आशा, अभिलाषा, आकांक्षा आदि संवेदनों की अभिव्यक्ति के लिए भावात्मक प्रतीक होते हैं।

१—देखिये, कल्याण वर्ष २८, अंक ५, पृ० १०४६।

२—राजाराम रस्तोगी : हिन्दी काव्य की अन्तश्चेतना, पृ० २१३।

३—हिन्दी साहित्य में विविधवाद, पृ० ४७२।

४—डा० सुधीन्द्र : हिन्दी कविता में युगान्तर, पृ० २६४।

दार्शनिक प्रतीकों में शास्त्रीय चिन्तन प्रतिफलित होता है और जहां आध्यात्मिक तत्त्व चिन्तन अभिप्रेत हो, वहां आध्यात्मिक प्रतीकों का प्रयोग होता है। दार्शनिक और आध्यात्मिक प्रतीकवाद अतीन्द्रिय तत्त्व होने के कारण 'संकेतवाद' भी कहे जा सकते हैं।

डा० सुधीन्द्र के प्रतीकों के विश्लेषण में वस्तुगत और भावगत दृष्टियों का सन्निवेश है, जो वैज्ञानिक होने से अधिक समीचीन है।

यदि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रतीकों पर विचार किया जाय, तो यह वर्गीकरण अधिक सुन्दर होगा, क्योंकि प्रतीक मनोगत भाव एवं प्रवृत्तियों के व्यंजक होते हैं। इस दृष्टि से शृंगारिक प्रतीक, आत्मख्यापन के प्रतीक, वात्सल्य के प्रतीक हीनता या दैन्य के प्रतीक, धार्मिक प्रतीक एवं नैतिक आदि भेद हो सकते हैं। यह वर्गीकरण सबसे अधिक पूर्ण एवं उपयुक्त दिखाई पड़ता है, क्योंकि प्रतीक मूलतः किसी-न-किसी प्रवृत्ति या भावना की ही अभिव्यक्ति में सहायता करते हैं। यदि वाङ्मय के विकास के ऐतिहसिक सन्दर्भ में काल-क्रम के आधार पर प्रतीकों की परम्परा के ऊपर विचार करें तो वैदिक युग के आध्यात्मिक एवं दार्शनिक प्रतीकों में, पौराणिक युग के धार्मिक प्रतीकों में, सिद्ध और नाथ कवियों के योग परक प्रतीकों में, सन्त कवियों के दाम्पत्य सम्बन्धी प्रतीकों में, सगुणवादी भक्त कवियों के लाक्षणिक एवं सांकेतिक प्रतीकों में, प्रगतिवादी कवियों के राजनीतिक प्रतीकों में तथा प्रयोगवादी कवियों के यौन प्रतीकों में मूल प्रवृत्तियों एवं भावों का ही उद्घाटन हुआ है। अतएव मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रतीकों का वर्गीकरण इस प्रकार होगा—

१—शृंगारिक प्रतीक

२—वात्सल्य सम्बन्धी प्रतीक

३—हीनता या दैन्य सम्बन्धी प्रतीक

४—आत्मख्यापन सम्बन्धी प्रतीक

४—सांस्कृतिक, आध्यात्मिक अथवा धार्मिक प्रतीक।

प्रतीकों का विकास—

हर एक युग नई प्रवृत्ति और परिस्थिति लेकर आता है। तदनुकूल प्रतीकों में भी नवीन विकास दृष्टिगोचर होता है। आठवीं, नवीं शती के सिद्ध कवियों के रहस्यवादी प्रतीकों से उस युग की विशेषताओं पर भी प्रकाश पड़ता है। राहुल सांकृत्यायन ने सिद्ध कवियों की रचनाओं के अनुशीलन से जो निष्कर्ष निकाले हैं, उनसे बौद्ध धर्म के पतन, आचार-भ्रष्टता, जीवन में अनाचार, मिथ्या

विश्वास और आडम्बरपूर्ण जीवन पर पूर्ण प्रकाश पड़ता है[1] ।

८०० ई० के नालन्दावासी भुसुकपा (शांतिदेव) की एक रचना यहां उद्धृत की जाती है, जो आद्योपान्त प्रतीकात्मक है—

'णिसि अंधारी मूसा करअ अचारा। अमिअ-भरवअ मूसा करअ अहारा।।
काला मूसा उहण वाण । गअणे उठि करअ अमिअ पाण ।
तब्बे मूसा अंचल चंचल । सद्गुरु वाते करहू सो निच्चल ।।

—भुसुकपा

इसमें 'णिसि अंधारी' (निशि अंधियारी), मूसा (चूहा), अमिअ (अमृत), गअणे (गगन) क्रमशः अज्ञानान्धकार, काम, क्रोधादि विकार, आत्मानन्द एवं अन्तःकरण के प्रतीक हैं। इन प्रतीकों द्वारा भ्रष्ट जीवन का चित्र खींचा गया है।

भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्य में रहस्यात्मक प्रतीक बहुत बड़ी संख्या में मिलते हैं। रहस्यवादी कवि आन्तरिक आनन्दानुभूति को वाह्य प्रतीकों द्वारा प्रकाशित करते हैं। कबीर के एक पद से इस बात को स्पष्ट किया जाता है—

'चल हंसा वा देस, जहां पिया बसे चितचोर ।
सुरत सुहागिनि है पनिहारिनि, भरे ठाड़ विन डोर ।
वहि देसवा वादर ना उमड़ै, रिमझिम बरसे मेह ।
चौवारे में बैठ रहो ना, जा भीजहु निर्देह ।।
वहि देसवा में नित्त पूरनिया, कबहुं न होय अंधेर ।
एक सूरज के कवन बतावे, कोटिन सुरज उजेर ।।

(कबीर ।)

इस पद में हंस जीवात्मा के लिए, चितचोर ब्रह्म के लिए, पनिहारिनि कुंडलिनी के लिए, डोर ध्यान के लिए, बादल माया के लिए, मेह आनन्द के लिए, चौवारा ब्रह्मरन्ध्र के लिए, पूर्णिमा और सूर्य ज्ञान के प्रकाश के लिए प्रतीक रूप में आए हैं। 'रिमझिम बरसे मेह' से आनन्दानुभूति की ओर इंगित है।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में फ्रांस के अन्दर प्रतीकवादी काव्यधारा बड़े वेग से प्रवाहित हुई तथा उसने अल्पकाल में ही साहित्य के सभी अंग एवं कला के सभी क्षेत्रों को आत्मसात कर लिया। योरुप के अन्य देशों में भी इसका प्रभाव पड़ा। रूस, जर्मन, अमरीका, आयरलेण्ड, इंगलैंड आदि देशों में भी इसकी

१—राहुल सांकृत्यायन (सं०) : हिन्दी काव्यधारा, भूमिका, पृ० ३५ ।

लहर बड़े वेग से चली। फ्रांस के रहस्यवादी कवियों में बोदलेअर, वर्लेन, मालार्मे रिम्बो, प्रूस्त और वालेरी के नाम प्रधान हैं। अमेरिका के हाथर्नि, ह्विटमेन, जर्मन के रिल्क, रूस के ब्लाक, आयर्लेण्ड के योट्स तथा इंग्लैण्ड के ब्लेक, ईलियट आदि इस धारा के कवि हैं। आधुनिक काल के हिन्दी के रहस्यवादी कवियों पर किसी-न-किसी अंश में इस काव्यधारा का प्रभाव है, जो बंगला के कवियों में विशेषतः रवीन्द्र बाबू की काव्य रचनाओं के अनुशीलन से हिन्दी में आया है[1]।

हिन्दी के सन्त कवियों के प्रतीक-विधान पर डा० रामकुमार वर्मा, डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, श्री परशुराम चतुर्वेदी, श्रीचन्द्रबली पांडेय ने विषद रूप से विचार किया है। कबीर का रहस्यवाद (डा० राम कुमार वर्मा), कबीर और हिन्दी साहित्य की भूमिका (डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी), उत्तरी भारत की सन्त परम्परा और कबीर साहब की प्रतीक योजना (श्री परशुराम चतुर्वेदी), द निर्गुन स्कूल आफ़ हिन्दी पोइट्री (डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल), सूफीमत और तसव्वुफ (श्री चन्द्रबली पाण्डेय) निर्गुण सन्तों की प्रतीक योजना (श्री प्रभाकर माचवे) आदि इस विषय के जिज्ञासुओं के लिए अच्छे उपादेय सन्दर्भ ग्रन्थ हैं।

सन्त कवियों में कबीर के साहित्य में सबसे अधिक प्रतीक आए हैं। नाद, विन्दु, सुरति, निरति, शून्य, निरंजन, सहज, लौ आदि शब्द प्रतीकात्मक हैं[2]। नैहर और ससुराल की प्रतीक योजना का एक संकलन सद्गुरुशरण अवस्थी ने प्रस्तुत किया है। सारांश यह कि वैदिक युग से आधुनिक युग तक का प्रतीकों की परंपरा का विकास अत्यन्त रोचक विषय है। विभिन्न कालों के प्रतीकों में युगगत अनुभूतियों एवं संस्कारों के छाया चित्रों की सुस्पष्ट झलक दिखाई पड़ती है। धर्म, अध्यात्म, संस्कृति, प्रेम एवं भक्ति के भावों को प्रतिफलित करने में इन प्रतीकों का बहुत योग है।

छन्द

सामान्य विचार

भारतीय वाङ्-मय में भाषा की उत्पत्ति के समय से ही छन्द का

१—आचार्य रामचंद्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ६६८।
परशुराम चतुर्वेदी : 'कबीर साहब की प्रतीक योजना', अवंतिका, वर्ष २, अंक १

२—हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० ४१,६४।

विचार प्रारम्भ हो जाता है। ऋग्वेद के मंत्रों में स्वर, ध्वनि, बल वर्णों की नियमित व्यवस्था तथा पाद-योजना के अन्तर्गत छन्द के अनेक तत्त्व विद्यमान हैं। इसी के आधार पर अनेक विद्वानों का मत है कि ये मंत्र किसी पूर्वकाल से चली आती हुई परम्परा के विकसित रूप हैं। जीवविज्ञान तथा भाषा विज्ञान के विद्वानों के विचार से आदि मानव की भाषा में स्वर, ध्वनि, बल, लय एवं नाद सौन्दर्य की प्रचुरता रही होगी तथा इसमें भी सन्देह नहीं कि मानव ने अपने भावावेगों की संकुलता में गद्य से पहले पद्य में ही बोलना प्रारंभ किया होगा। आदि मानव ने भाषा का प्रयोग सर्व प्रथम अपने उत्कट एवं तीव्र भावों की व्यंजना के लिये किया होगा। तत्त्व-विचार, मनन एवं चिन्तन की भाषा विकसित युग की देन है। गंभीर भावावेश की भाषा अवश्य ही बल, मात्रा तथा लय के साम्य से युक्त रही होगी। अतएव उसमें छन्द के तत्त्व अवश्य रहे होंगे। तीव्र भावोद्रेक की अवस्था में व्यक्ति जो कुछ बोलता है, उसमें लयात्मक प्रवाह स्वयमेव आ जाता है। भय, क्रोध, प्रेम, करुणा आदि मनोवेगों की उत्कटता के क्षणों में मनुष्य की अभिव्यक्ति अपने-आप छन्दोमयी हो जाती है[१]। निष्कर्ष यह कि छन्दोमयी भाषा उतनी ही प्राचीन है, जितना कि मानव।

ऋग्वेद में छन्दों के विविध प्रयोग मिलते हैं। छन्दों का महत्त्व इसी से सिद्ध है कि काव्य के अतिरिक्त कोश, व्याकरण, स्मृति, दर्शन, धर्मशास्त्र, राजनीति, आयुर्वेद, ज्योतिष आदि विषयों को भी छन्द में ही लिखा गया है। इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण, संस्कृत का साहित्य तथा पाली, प्राकृत और अपभ्रंश का अधिकांश साहित्य तथा हिन्दी साहित्य का विशाल भाग छन्दों में ही रचित है। इससे छन्द का गौरव प्रकट होता है।

छन्द : उद्भव—

छन्द का प्रयोग सर्व प्रथम ऋग्वेद में मिलता है। इसके पांच भेद हैं—अनादिष्ट छन्द, वृहच्छन्द, अतिच्छन्द कृतिच्छन्द तथा प्रचितिच्छन्द। अनादिष्ट छन्द पांच प्रकार के हैं—उक्त, अत्युक्त, मध्य, प्रतिष्ठा और सुप्रतिष्ठा। वृहत् छन्द के सात प्रकार हैं—गायत्री, उष्णिक, अनुष्टुप्, वृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप, धृति, अतिधृति। सात ही कृतिच्छन्द हैं—कृतिः, प्रकृतिः, आकृतिः, विकृतिः, संकृतः,

---

१—घाटे वैदिक मीटर, "द लैंग्वेज आव नेचर क्लोथ्स इट्सेल्फ इन मीटर, तथा, डीप स्ट्रांग पैशन्स एक्सप्रेस देमसेल्व्स इन मीटर।

अभिकृतिः और उत्कृतिः । शेष प्रचितिच्छन्द हैं, जिनकी कोई संख्या नहीं है[1] ।

पाद योजना—

ऋग्वेद के छन्द का मूलभूत आधार पाद-योजना है । प्रत्येक पाद में अक्षरों की नियत संख्या होती है । गायत्री छन्द के हर एक पाद में आठ अक्षर होते हैं तथा सम्पूर्ण छन्द त्रिपाद होता है । इस प्रकार गायत्री चौबीस अक्षर का छन्द है । जगती का प्रत्येक पाद बारह अक्षर का, विराज का पाद दश अक्षर का तथा त्रिष्टुप का पाद ग्यारह अक्षर का होता है[2] । जिस छन्द के एक पाद में जितने अक्षर होते हैं, उसी नियम से वह छन्द एक पाद, द्विपाद, त्रिपाद और कहीं चतुष्पाद होता है । गायत्री में त्रिपाद हैं । इसमें एक और चौथे पाद के योग से अनुष्टुप् हो जाता है । वेदों में गायत्री छन्द सबसे अधिक आया है । शतपथ में गायत्री को सबसे प्रथम छन्द कहा गया है—'गायत्री प्रथमा छन्दसाम्' गीता में श्रीकृष्ण ने गायत्री को अपना स्वरूप ही बताया है–'गायत्री छन्दसामहम्' । अक्षरों की न्यूनाधिक संख्या के पादों के अनुसार इसके 'कात्यायन ने नौ भेद किए हैं—त्रिपदा, पदपंक्ति, उष्णिगर्भा, पाद निवृति, अति निवृत, पद मध्या, वर्धमाना, प्रतिष्ठा तथा ह्रसीयसी ।

त्रिपदा गायत्री—(१) अग्नि मीले पुरोहितं, (२) यज्ञस्य देवमृत्विजम्
(३) होतारं रत्नधातमम् ॥ ऋ० सं० १।१।१।१

अति निवृत— (१) पुरूतमं पुरूणां, (२) स्तोतृणां निवाचि ।
(३) वाजेभिर्वाजयताम् ॥

ऋ० सं० ४।७।२६।४—

वेद के मंत्रों में यदि किसी पाद में अक्षर न्यून हो, तो 'इयं' आदि के द्वारा उसकी पूर्ति की जाती है—'तत्सवितुर्वरेण्यम्' । इस पाद में एक अक्षर कम है, उसकी पूर्ति उच्चारण द्वारा ध्वनि को बढ़ाकर की जाती है[3] । एक अक्षर कम होने से प्रसिद्ध गायत्री मंत्र 'निवृत्त गायत्री' है । इसी प्रकार दो अक्षर न्यून होने पर 'विराड्' संज्ञा होती है । यदि एक अक्षर अधिक हो तो 'भूक्ति' और दो अक्षर अधिक हो, तो उसे 'स्वराड्' कहा जाता है[4] । वेद के मंत्रों में

१—देखिए, पिंगल, छन्दःशास्त्र की भूमिका, पृ० ४५ ।

२—.खिए, पिंगल, छन्दः शास्त्र, सूत्र ३।१–७ ।

३—पिंगल, छन्द, सूत्र ३।२

४—वही, ३।५६–६०

नियम की कठोरता कहीं पर नहीं मिलती है। प्रायः अनेक मंत्रों में कहीं पाद के अक्षरों की संख्या घट जाती है तथा कहीं बढ़ जाती है। पीछे के अनुक्रमणीकारों ने न्यूनाक्षर छन्दों को 'विच्छन्द' और अधिकाक्षर छन्दों की 'अतिच्छन्द' के नाम से अभिहित किया है। संहिताओं में पद-पाठ व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध रूप में दिया गया है, किन्तु मंत्रोच्चारण के समय पाठ लय का अनुवर्ती होकर चलता है। यह बात बहुत से मंत्रों से प्रमाणित होती है। इसी से 'इन्द्र' शब्द को 'इन्दर' करके पढ़ा जाता है, कहीं 'ज्येष्ठ' को 'जमिष्ठ', 'सख्याय' को 'सखियाय,' 'स्याम' को सिजाम तथा 'व्युषाः' को 'वि उषाः' करके पढ़ने का नियम है।

वैदिक मंत्रों में ही छन्द के प्रथम प्रयोग मिलते हैं। प्रारंभ में नियमों की कठोरता नहीं हुआ करती है। वैदिक मंत्र भी इसके अपवाद नहीं है। किन्तु शनैः शनैः जब विस्तार प्रस्तार का युग आता है, तब नियमों की कठोरता भी बढ़ती चलती है। वैदिक छन्दों में प्रारंभिक अवस्था का यह नियम-शैथिल्य इतना अधिक है कि पीछे के वैयाकरणों ने 'छन्दसि सर्वे विधयो विकल्पन्ते' का सिद्धान्त इन्हीं अपवादों के लिए गढ़ा है। इस स्वाभाविक स्वच्छन्दता को आदर देने के लिए 'छान्दसप्रयोग' कह दिया जाता है। वस्तुतः यह छन्दों के क्षेत्र में प्रारंभिक प्रयोगों की अवस्था है। इन्हीं में भविष्यत् के विकास की अवस्था के बीज छिपे रहते हैं। पीछे के आचार्यों ने इन्हीं के आधार पर नये-नये छन्दों का निर्माण किया है।

मैकडानल्ड ने अपनी वैदिक ग्रामर में समपादी, संयुक्तपादी तथा विषमपादी छन्दों के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। ऋग्वेद में इनके उदाहरणों का प्राचुर्य है। गायत्री, अनुष्टुप् समपादी छन्द हैं। पहले अष्टाक्षर के तीन पाद तथा दूसरे में अष्टाक्षर के चार पाद होते हैं। त्रिष्टुप् छन्द ऋग्वेद में अधिकता से प्रयुक्त हुआ है। इसके एकादशाक्षर के चार पाद होते हैं। गायत्री और जगती के योग से अनेक नये छन्दों की रचना हुई है। उदाहरण के लिए ८+८+१२=२८ अक्षर का उष्णिह्, १२+८+८=२८ अक्षर का पुर उष्णिह् तथा ८+१२+८=२८ अक्षर का ककुभ छन्द होता है। इसी प्रकार छत्तीस अक्षरों (८+८+१२+८) का बृहती, चालीस अक्षरों (१२+८+१२+८) का सतोबृहती, साठ अक्षरों (८+८+८+८+८+१२+८) का अतिशक्वरी छन्द होता है। वह यौगिक छन्द है, जिसके छः पाद गायत्री के तथा एक पाद जगती का होता है। अत्यष्टि छन्द में अड़सठ अक्षर होते हैं, जिसमें चार पाद गायत्री के तथा तीन पाद जगती के होते हैं। ऋग्वेद के बहुत से छन्दों की रचना संयुक्त छन्दों के योग से हुई है। प्रगाथा ऐसा ही छन्द है। इसके दो भेद हैं—

ककुभ प्रगाथा तथा वृहत प्रगाथा। पहले की रचना ककुभ और सतोवृहत के योग से होती है तथा दूसरे की वृहती और सतोवृहती के मेल से[१]।

छन्दों का विकास—

वैदिक मंत्रों की पाद संख्या और अक्षर संख्या का बार-बार अनुसन्धान करके उत्तरवर्ती विद्वानों ने छन्दोराशि को विकसित किया है। पहले गण, अक्षर, मात्रा, लघु एवं गुरु का विचार हुआ। इसके पश्चात् इन्हीं के आधार पर नए-नए छन्दों का विकास हुआ। वैदिक मंत्रों में अक्षर संख्या से विहीन केवल उच्चारण के काल-मात्र पर अवलम्बित छन्दों के अनुशीलन से मात्रिक छन्दों की कल्पना का प्रारम्भ हुआ।

नीचे इसके कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं—

१—'रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवः' (ऋ० सं० १।७।२४)। इसमें वंशस्थ का बीज है। इसका लक्षण है, जगण, तगण, जगण और रगण।

२—'पुपण्वते ते चकृया करम्भं (ऋ०सं० ३।३।१८ए। इन्द्रवज्रा का पाद है, जिसका लक्षण है—दो तगण, एक जगण और दो गुरु।

३—'स्तुहि श्रुतं गर्तसदं युवानं (ऋ०सं०२।७।१८) उपेन्द्र वज्रा का पाद है, जिसके प्रत्येक पाद में एक जगण, एक तगण, एक जगण तथा दो गुरु होते हैं।

४—'अमीय कक्षा, निहितास उच्चा नक्तं दहश्रे कुह चिदिवेयुः' (ऋ० सं० १।२।१४) यह उपजाति है, क्योंकि इसमें इन्द्रवज्रा और उपेन्द्र-वज्रा के पादों का योग है।

५—'इन्द्रा सोमा दुष्कृते मा सुगं भूत्' (ऋ०सं० ५।७।६)। यह शालिनी वृत्त है, क्योंकि इसमें एक मगण, दो तगण और दो गुरु आए हैं।

इसी प्रकार अन्य वृत्तों के मूलभूत पादों के लक्षण सैकड़ों वेद मंत्रों में ढूंढ़े जा सकते हैं। यथा—गायत्री के अष्टाक्षर के तीन पादों में एक पाद की और वृद्धि करके 'अनुष्टुप्' छन्द हो जाता है[२]—

१—सहस्रशीर्षा पुरुषः   २—सहस्राक्षः सहस्रपात्।
३—स भूमिं विश्वतो वृत्वा   ४—त्यतिष्ठ दशाङ्गुलम्॥

—अ०स० ८।४।१७। १

१—देखिए, मैकडानल्ड, : वैदिक ग्रामर, पृ० ४४३=४६।

२—पिंगल, छन्दःशास्त्र, ३।२३

वस्तुतः अनुष्टुप् छन्द गायत्री का ही परिवर्धित रूप है। वैदिक मंत्रों में गायत्री की ही प्रधानता है तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में अनुष्टुप् का प्राचुर्य है। यहाँ आकर इसमें ताल एवं लय का संगीत फूट पड़ा है। गीत तत्त्व की प्रधानता होने से इसका नाम गाथा प्रसिद्ध हुआ। गाथा का छन्दःशास्त्र में उल्लेख नहीं मिलता है, किन्तु लक्ष्य ग्रन्थों में इसका प्रयोग मिलता है। यही गाथा छन्द पीछे काल मात्रा से नियंत्रित होकर संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश में 'आर्या' के रूप में दिखाई पड़ता है[1]। हिन्दी में आकर इसी ने दोहे का रूप धारण कर लिया है। इसी को विपरीत क्रम में रखकर पढ़ने से सोरठा हो जाता है। इस प्रकार वैदिक अनुष्टुप् वर्णवृत्त से आरंभ होकर किस प्रकार गाथा, आर्या की अवस्थाओं को पार करके दोहा बन गया है, यह अत्यन्त मनोरंजक कहानी है। रामायण, महाभारत, पुराण तथा स्मृतियों में अनुष्टुप् का ही व्यवहार सबसे अधिक हुआ है। यद्यपि अष्टाक्षर के चार पादों के इस छन्द में बत्तीस अक्षर होते हैं तथापि आगे चलकर इसमें पाँचवाँ वर्ण लघु और छठा वर्ण गुरु रखने का भी विधान चल पड़ा है[2]। गाथा, आर्या तथा कारिकाओं में इसका मात्रिक रूप प्रचलित हुआ है। वैदिक त्रिष्टुभ् (११,४) वर्णवृत्त के रूप में लौकिक संस्कृत में भी आ गया है। संस्कृत में इसके दो रूप हैं—एक में पाद का पहला अक्षर लघु और दूसरे में गुरु। उपेन्द्रवज्रा और इन्द्रवज्रा इसी के रूपान्तर हैं। वैदिक जगती छन्द से वंशस्थ और इन्द्रवंशा का जन्म हुआ है। अनुष्टुप की तरह त्रिष्टुप और जगती छन्दों ने भी प्राकृत और अपभ्रंशों में पहुँच कर मात्रिक छन्द का रूप ग्रहण कर लिया है तथा वैतालिक के नाम से अभिहित हुए हैं।

वैदिक छन्द उष्णिक्, बृहती, सतोबृहती, विराज, पंक्ति और शक्वरी आदि से अर्ध सम, विषम पाद छन्दों का प्रादुर्भाव हुआ है। जहाँ से पादों में एक समान लक्षण मिला, वहाँ अर्धसम तथा जहाँ चारों पादों में भिन्न लक्षण हुआ, वहाँ विषम छन्द होता है। ऋग्वेद में इस प्रकार के उदाहरण प्रचुर हैं।[3] पिंगल ने अर्धसम छन्दों की संख्या दस बताई है तथा हेमचन्द्र ने इनका कहीं अधिक विस्तार किया है।

पिंगल ने सबसे बड़ा सत्ताईस अक्षर के पाद का दण्डक छन्द रखा है,

---

१—दे०, रघुनंदन शास्त्री : हिन्दी छंद प्रकाश, पृ० ६।

२—पञ्चमं लघु सर्वत्र, सप्तमं द्विचतुर्थयोः।
गुरु षष्ठं तु पादनामन्येष्वनियमो मतः॥

३—देखिए, मैकडानल्ड : वैदिक ग्रामर, पृ० ४४२।

जिसमें दो नगण और सात रगण होते हैं। पीछे इनका और अधिक विकास हुआ है। हिन्दी में दण्डकों का प्रयोग संस्कृत से कहीं अधिक हुआ है। वैदिक छन्दों में गायत्री, त्रिष्टुप् और जगती के अवान्तर भेदों से प्रस्तार की रीति द्वारा अनेक छन्दों का विकास हुआ है। आगे चलकर वैदिक छन्दों की जातियाँ स्थापित हो गईं, जिनसे नए-नए छन्दों का विकास हुआ है।

वैदिक छन्दों में अक्षरों की संख्या के आधार पर ही ध्वनि का सन्तुलन किया जाता था। मंत्रों में लय की उत्पति के उदात्त-अनुदात्त स्वरों से काम लिया जाता था। ब्राह्मण ग्रन्थों में लय की प्राप्ति के लिए ताल-संगीत पर विशेष ध्यान रखा जाता था। संस्कृत के छन्दों में आधार तो अक्षरों की संख्या ही है, किन्तु लय की उत्पति के लिए लघु और गुरु अक्षरों की स्थिति का क्रम निर्धारित प्रणाली पर हो गया है। इसके लिए आचार्य पिंगल ने तीन-तीन अक्षरों के त्रिक या गण बनाए हैं, जिनकी संख्या आठ है। इन गणों के द्वारा लघु और गुरु वर्णों के क्रम को स्थिर कर दिया गया है। तब से आधुनिक काल तक लघु-गुरु वर्णों की योजना के लिए गणों की प्रणाली ही व्यवहार में लाई जाती है।

संस्कृत के पश्चात् प्राकृतों का युग आता है। प्राकृत छन्दों का विकास अपनी स्वतंत्र पद्धति पर हुआ है। संस्कृत के छन्दों में लघु-गुरु की स्थिति के क्रम को यथा रूप रखने के लिए गण-योजना पर पूरा ध्यान दिया जाता है। प्राकृत में ऐसा नहीं होता। इसके छन्दों में वैदिक छन्दों की सी स्वतंत्रता है। प्राकृत के छन्दों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनकी पाद-व्यवस्था का आधार अक्षर संख्या नहीं, मात्रा संख्या है। इसमें ध्वनि का आधार मात्रा है। मात्रा का आधार ह्रस्व-दीर्घ ध्वनियों से न होकर उस 'काल' से है, जो किसी ध्वनि के उच्चारण में लगता है। संस्कृत में मात्रिक छन्द बहुत कम हैं। जो हैं, उन पर प्राकृत के छन्दों का ही प्रभाव है। अपभ्रंश काव्य में भी मात्रिक छन्दों का ही अधिक व्यवहार हुआ है। हिन्दी के छन्द भी अधिकतर प्राकृत और अपभ्रंशों की देन हैं।

इस प्रकार भारतीय छन्दों के विकास में तीन अवस्थाएँ दृष्टिगोचर होती हैं—(१) स्वर तत्त्व प्रधान (२) ध्वनि तत्त्व प्रधान और (३) काल तत्त्व प्रधान।

वैदिक छन्द स्वर तत्त्व प्रधान हैं। इसमें छन्द की गति का आधार स्वर हैं, जिनके उच्चारण में आरोह-अवरोह का विधान पाया जाता है। संस्कृत के छन्द ध्वनि तत्त्व प्रधान हैं। इनमें ह्रस्व-दीर्घ ध्वनियों के आधार पर लय चलती है। संस्कृत में लघु-गुरु वर्णों के नियम स्थिर हो गए हैं। इन्हीं से लय का संचालन होता है।

हिन्दी के छन्दों में प्राकृत और अपभ्रंश के छन्दों के समान काल तत्त्व प्रधान हैं। इनमें मूलवर्ती ह्रस्व-दीर्घ ध्वनियों का विचार नहीं रखा जाता। इसके विपरीत किसी ध्वनि के उच्चारण पर जो काल लगता है, उसी के आधार पर उस ध्वनि ह्रस्वता या दीर्घता का निर्णय किया जाता है। उदाहरण के लिए 'ए' मूलतः दीर्घ ध्वनि है। संस्कृत में इसे गुरु माना जाता है, किन्तु हिन्दी में छन्द के अनुरोध से इसका कभी-कभी 'इ' के समान ह्रस्व उच्चारण भी होता है—

(१) अवधेश के द्वारे सकारे गई सुत गोद के भूपति लै निकसे।

(२) मानुष हौं तो वही रसखानि बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।

उक्त उदाहरण में चिह्नांकित 'ए' और 'ओ' का उच्चारण ह्रस्ववत् है। हिन्दी के छन्दों में ऐसे बहुत से उदाहरण मिलेंगे, जिनमें 'ए,' 'ऐ,' 'ओ' 'औ' का ह्रस्ववत प्रयोग हुआ है। तभी वे छन्द की व्यवस्था में ठीक बैठते हैं। इससे सिद्ध है कि हिन्दी के छन्दों में उच्चारण पर लगने वाला काल तत्त्व प्रधान है।

महाकाव्य—

वैदिक सूक्तों में काव्य के छन्द, अलंकार प्रतीक, रस एवं वस्तु के विविध उपकरण प्रचुरता से मिलते हैं,[१] किन्तु महाकाव्य का रूप वैदिक साहित्य में प्रस्फुटित नहीं हुआ है। अन्य प्रमाणों के अभाव में वाल्मीकि रचित रामायण ही आदि महाकाव्य ठहरता है, जिसकी रचना ५०० ई०पू० की बतलाई जाती है। इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि आदि कवि हैं तथा उनकी रामायण आदि महाकाव्य है। विद्वानों के मत से महाकाव्य का महत्त्व रामायण से ही स्थापित होता है। उत्तरवर्ती कवियों के लिए रामायण ने ही काव्य का मार्ग प्रदर्शित किया है, जिससे प्रेरणा ग्रहण कर आगे के कवियों ने महान् काव्यों का सृजन किया है। अतएव महाकाव्य की परम्परा का सूत्रपात इसी महाकाव्य से होता है। आगे चलकर लक्षणकारों ने रामायण को ही दृष्टि में रखकर महाकाव्य के लक्षणों की रचना की है।

रामायण में सीता और राम की पुनीत कथा का वर्णन है। बालकाण्ड के प्रारंभ में वाल्मीकि ने नारद जी से पूछा है—'चारित्र्येण च को युक्तः' इसके उत्तर में राम के जिस उदात्त चरित्र को चित्रित किया है, वही समस्त काव्य का मेरुदंड है। इसमें भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के उच्चादर्शों का सम्यक्

१—डा० सूर्यकान्त : 'काव्यशास्त्र का मूल और औचित्य, आलोचना, वर्ष ६, अंक ७, पृ० ३७।

चित्रण है। राम के लोक पावन चरित्र में सत्य, धर्म, शील, व्रत, त्याग एवं प्रतिज्ञा पालन का पूर्ण रूप से समावेश हुआ है। इसी प्रकार सीता के चरित्र में सतीत्व एवं पातिव्रत का आदर्श प्रतिफलित हुआ है। सीता के चरित्र के विषय में सामान्य जनता के सामने जब कटु वचनों से उपालंभ देते हैं, तब सीता उत्तर देती हैं—

"नर शार्दूल, आप मनुष्यों में श्रेष्ठ हैं, परन्तु क्रोध के वश में होकर आपने मेरे स्त्रीत्व को तो दोषारोपण करने के लिए आगे किया है किन्तु आपने इस बात पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया कि बालकपन में आपने मेरा पाणि-ग्रहण किया है। आश्चर्य है, मेरी भक्ति, शील तथा मेरी निश्छल प्रकृति को आपने पीछे ढकेल दिया है।"

"त्वया तु नर शार्दूल क्रोधमेवानुवर्तना।
लघुनेव मनुष्येण स्त्रीत्वमेव पुरस्कृतम्॥
न प्रमाणीकृतः पाणिर्बाल्ये बालेन पीडितः।
मम भक्तिश्च शीलं च सर्वं ते पृष्ठतः कृतम्।"

राम का चरित्र धैर्य और सहिष्णुता का उत्स है। वन को जाते समय उनके चित्त में कोई विकार उत्पन्न नहीं होता है—

न वनं गन्तुकामस्य त्यजतश्च वसुन्धराम्।
सर्वलोकातिगस्येव लक्ष्यते चित्त विक्रिया॥

—अ० कां० १६।३३

राम क्षात्र-धर्म के अवतार हैं। उनके क्षत्रियत्व का आदर्श महान् है—क्षत्रियों के द्वारा धनुष को इसलिए धारण किया जाता है कि पृथ्वी पर कोई पीड़ित न दिखाई दे।

क्षत्रियै धीर्यते चापो नार्तशब्दो भवेदिति'

—अरण्य० १०।३

प्रतिज्ञा-पालन राम के लिए सबसे बड़ा धर्म है। इसके लिए वे जीवन का, सीता का, लक्ष्मण का सभी का परित्याग कर सकते हैं। विशेषतः ब्राह्मणों के साथ की गई प्रतिज्ञा तो उनके लिए अपरिहार्य है—

अप्यहं जीवितं जह्यां त्वां वा सीते सलक्ष्मणाम्।
न तु प्रतिज्ञा संश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः॥

—अारण्य० १०।१६

रामायण की कथा-वस्तु इतनी विस्तृत एवं विशाल है कि इसकी परिधि में जातीय गौरव तथा मानव जीवन के विविध पक्षों का आकलन हो

गया है। इसकी कथा-वस्तु इतनी प्रौढ़ एवं सुसंगठित है कि अश्वघोश, कालिदास, भवभूति आदि अनेक उत्तरवर्ती कवियों ने इसी से काव्य की प्रेरणा ली है। महाभारत में वर्णित रामकथा पर भी इसका प्रभाव है। बौद्ध एवं जैन साहित्य के तिब्वती और चीनी अनुवादों की राम-कथा में भी रामायण की झलक पाई जाती है[२]। इसके अतिरिक्त पाली, प्राकृत, संस्कृत एवं हिन्दी के सैकड़ों काव्यकारों ने वाल्मीकि रामायण से कथा-वस्तु का संगठन किया है तथा काव्य-वर्णन की शैली का भी अनुसरण किया है[३]। वस्तुतः वैदिक साहित्य में जो स्थान ऋग्वेद का है, लौकिक संस्कृत में वही रामायण का है।

रामायण में कथा वस्तु की संश्लिष्ट योजना के भीतर वन,पर्वत, नदी, सरोवर तथा ऋतुओं का भी वर्णन किया गया है। वाल्मीकि के वर्षा, शरद, हेमन्त आदि ऋतुओं के वर्णन अत्यन्त सजीव तथा चित्रोपम हैं। चित्रकूट और मन्दाकिनी के वर्णन अत्यन्त सुन्दर हैं।

रामायण में वीररस प्रधान है। गौणरूप में सभी रसों का उन्मेष पाया जाता है। छन्द, भाषा एवं अलंकारों का सौन्दर्य तो इस महाकाव्य में स्थल-स्थल पर दिखाई पड़ता है[४]। शृंगार रस के प्रसंग अपेक्षाकृत कम आए हैं, क्योंकि इस महाकाव्य की कथावस्तु का मूल स्वर गम्भीर तथा करुण रस-सिक्त है। रामायण का महत्त्व इसी से प्रमाणित है कि काव्य की वस्तु एवं वर्णन की शैली के लिए पीछे के कवि एवं रचनाकारों ने इसी को अपना आदर्श बनाया है तथा ई० पू० के अश्वघोष से लेकर वर्तमानकाल में अयोध्यासिंह उपाध्याय तथा मैथिलीशरण गुप्त तक यह महाकाव्य निरन्तर कवियों को काव्य एवं जीवन में महान् आदर्शों से प्रभावित करता आया है। वस्तुतः रामायण उपजीव्य महाकाव्य है।

महाभारत—

रामायण के समान महाभारत भी उपजीव्य ग्रन्थ है, किन्तु यह इतिहास की कोटि में आता है। इसमें भारतीय संस्कृति के भव्य रूप का दर्शन मिलता है। यद्यपि इसमें कौरव-पाण्डवों के इतिहास का वर्णन है, तथापि इसमें जीवन

१—देखिए, डा० कामुल बुल्के : राम कथा, पृ० ४६।

२—वही, पृ० ६७।

३—कीथ, : ए हिस्ट्री आव संस्कृत लिट्रेचर, पृ० ४२।

४—वही, पृ० ४४।

और जगत की सभी महत्त्वपूर्ण समस्याओं का सम्यक् उद्घाटन हुआ है। इसमें जीवन को व्यापक दृष्टि से देखा गया है तथा मानव-धर्म के बाह्य एवं आन्तरिक स्वरूप का विशद पर्यालोचन किया गया है। इसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि 'इस ग्रन्थ में जो कुछ वर्णित है, वह अन्यत्र भी मिलता है, किन्तु जो कुछ इसमें नहीं है, वह अन्यत्र भी नहीं है'[१]। इसी से यह पंचम वेद के नाम से विश्रुत है। इस विशाल ग्रंथ में वर्णन-शैली के इतने रूप व्यवहृत हुए हैं कि उनसे प्रेरित होकर उत्तरवर्ती रचनाकारों ने काव्य, नाटक, गद्य, पद्य, चम्पू, कथा, आख्यायिका-नाना प्रकार के साहित्य की सृष्टि की है[२] आधुनिक युग के दर्जनों हिन्दी कवियों ने महाभारत से कथावस्तु का संग्रह कर अनेक काव्यों की सृष्टि की है। राजनीति, इतिहास, समाज-शास्त्र, आचारशास्त्र, धर्म एवं अध्यात्म की दृष्टि से यह अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ है।

रघुवंश—

संस्कृत के महाकाव्यों में कालिदास प्रणीत रघुवंश सर्वोत्कृष्ट रचना है[३]। भारतीय काव्यशास्त्रियों ने भी इसी को सबसे अधिक आदर दिया है। इसके उन्नीस सर्गों में महाराज दिलीप से लेकर अग्निमित्र तक इक्ष्वाकुवंश के राजाओं के इतिहास का वर्णन है। प्रथम नौ सर्गों में दिलीप, रघु, अज तथा राजा दशरथ का वर्णन है। दस से पन्द्रह सर्ग तक महाराज रामचन्द्र के पुण्य चरित्र का तथा अन्तिम चार सर्गों में उनके वंशधरों का वर्णन है। रघुवंश के राजाओं की माला में रामचन्द्र सुमेरु की तरह स्थित हैं। सूर्यवंशी राजाओं में वे कीर्ति, प्रताप एवं वीरता में अद्वितीय हैं। अतएव वे ही इस महाकाव्य के प्रधान नायक ठहरते हैं। इस काव्य में सूर्यवंश के राजाओं के आदर्श चरित्र का वर्णन प्रथम सर्ग के आरम्भ में किया गया है[४]। इसकी कथा-भूमि के विशाल अंचल में सभी रसों का उन्मेष हुआ है। छन्द, अलंकार एवं भाषा के सौन्दर्य ने इस काव्य को निरुपम बना दिया है। कालिदास की उपमाएँ प्रसिद्ध हैं। केवल एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा—

१—'यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्' ।—महाभारत।

२—देखिए, बलदेव उपाध्याय : संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ६१।

३—देखिये, कीथ : ए हिस्ट्री आव संस्कृत लिट्रेचर, पृ० ६२।

४—कालिदास : रघुवंश, १

संचारिणी दीप शिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा ।
नरेन्द्र मार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्ण भावं स स भूमिपालः ॥'

इसमें इन्दुमती के स्वयंवर के अवसर का वर्णन है—वह इन्दुमती जयमाला को हाथ में लेकर पति को चुनने की इच्छा से प्रेरित होकर जिस-जिस राजा को छोड़कर आगे को बढ़ गई, वह राजा इस प्रकार निष्प्रभ हो गया, जिस प्रकार रात्रि के समय राजमार्ग के भवन दीपक के प्रकाश के आगे निकल जाने पर धुंधले पड़ जाते हैं। इस काव्य में कवि की वर्णन चातुरी की शक्ति का अच्छा परिचय मिलता है। युद्ध, राज्याभिषेक, स्वयंवर, विवाह, देश, नगर, बन, पर्वत, गोचारण, ऋतुओं का वर्णन, दिग्विजय, यज्ञ, संयोग तथा विरह एवं करुणा के प्रसंगों में कवि की अद्भुत वर्णन शक्ति का परिचय मिलता है।

महाकाव्य का लक्षण—

भामह सबसे पहले आचार्य हैं, जिन्होंने महाकाव्य का लक्षण स्थिर किया है[1]। किन्तु दण्डी का लक्षण सबसे अधिक विशद है, जो नीचे दिया जाता है[2]—

१—महाकाव्य सर्गबद्ध रचना है।

२—प्रारंभ में आशीर्वादात्मक, नमस्कारात्मक अथवा वस्तु निर्देशात्मक मंगलाचरण होना चाहिए।

३—कथावस्तु इतिहास प्रसिद्ध, यथार्थ एवं सज्जनाश्रित हो।

४—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति उसका फल हो।

५—चतुर एवं धीरोदात्त नायक हो।

६—उसमें निम्नांकित वस्तुओं का वर्णन हो—नगर, समुद्र, पर्वत, ऋतु, चन्द्रमा तथा सूर्य का उदय एवं अस्त, उद्यान, जल-क्रीड़ा, मधुपान, संभोग, विप्रलंभ, विवाह, पुत्रोत्पत्ति, मंत्र, दूत, प्रस्थान, युद्ध, विजय आदि।

७—वस्तुवर्णन सूक्ष्म एवं अलंकृत हो।

८—रस एवं भावों से समृद्ध हो।

९—सर्ग-रचना न अधिक लघु और न अधिक दीर्घ हो। सुन्दर छन्द

१—भामह : काव्यालंकार, १।१९—२३

२—दंडी : काव्यादर्श १।१४—१९

एवं नाटक संधियों से युक्त हो। सर्गान्त में छन्द का परिवर्तन होना चाहिए।

आगे चलकर आचार्य विश्वनाथ ने इसको और अधिक सुन्दर रूप में उपन्यस्त किया है[१] :—

१—महाकाव्य सर्गबद्ध रचना है, जिसका नायक देवता अथवा सद्‌वंश जात क्षत्रिय होता है, जो धीरोदात्त नायक के गुणों से युक्त हो अथवा एक ही वंश के श्रेष्ठ कुलोत्पन्न अनेक राजा भी उसके नायक हो सकते हैं।

२—शृंगार, वीर तथा शान्त रसों में से एक रस अंगी होता है, शेष रस अंग भूत होते हैं।

३—नाटक की सभी सन्धियाँ होती हैं।

४—इतिहास प्रसिद्ध कथावस्तु अथवा सज्जनाश्रित वृत्त होता है।

५—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में से एक फल की प्राप्ति हो।

६—प्रारंभ में नमस्कारात्मक, आशीर्वादात्मक या वस्तु निर्देशात्मक मंगलाचरण होता है।

७—खल निन्दा और सज्जना-प्रशंसा का भी कहीं-कहीं उल्लेख होता है।

८—आठ से अधिक सर्ग होते हैं, जो न अधिक बड़े और न अधिक छोटे होते हैं। सर्ग में एक से छन्द होते हैं तथा सर्गान्त में छन्द को बदल दिया जाता है। किसी सर्ग में कहीं बहुत से वृत्तों का भी उल्लेख पाया जाता है तथा सर्ग के अन्त में आगे की कथा को सूचित कर दिया जाता है।

९—सन्ध्या, सूर्य, चन्द्र, रात्रि, प्रदोप, अन्धकार, दिन, प्रभात, मध्याह्न मृगया, पर्वत, वन, ऋतु, समुद्र, संयोग, विरह, मुनि, स्वर्ग, यज्ञ, युद्ध, प्रस्थान, विवाद, मंत्र, पुत्रोत्पत्ति आदि वर्ण्य वस्तुओं का सांगोपांग वर्णन किया जाता है।

१०—कवि, वस्तु, नायक अथवा किसी अन्य गुण पर ग्रन्थ का नाम होता है।

उत्तर कालिदास युग से संस्कृत महाकाव्यों की एक सुदीर्घ परम्परा का विकास होने लगता है, किन्तु संस्कृत महाकाव्यों की वृहत् त्रयी में किरातार्जुनीय

१—साहित्य दर्पण, ६।३१९—२४

शिशुपाल वध तथा नैषधचरित विशिष्ट स्थान रखते हैं। इन महाकाव्यों की रचना निर्धारित प्रणाली पर हुई दिखाई पड़ती है। इनकी कथावस्तु प्रख्यात एवं इतिहास-सम्मत है, जिसका आधार है, महाभारत। कथानक के नायकों के चरित्र में आदर्श गुणों की प्रतिष्ठा हुई है, जिससे उनमें धीरोदात्त नायक के सम्पूर्ण लक्षण घटित होते हैं। इन महाकाव्यों में वस्तु-वर्णन, प्रकृति वर्णन एवं कथा का वर्णन परम्परानुगत प्रणाली पर है, क्योंकि इनसे पूर्व महाकाव्य का लक्षण निर्धारित हो चुका था, जिसका ऊपर उल्लेख हो चुका है। रसोन्मेष, अलंकार योजना एवं छन्दोविधान की दृष्टि से ये महाकाव्य पूर्ण रूप से सफल हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत है—छन्दों की ऐसी परिमार्जित योजना, ध्वनियों का ऐसा सामंजस्य पूर्ण संस्थापन, मानवीय मनोभावों का ऐसा स्पष्ट और ठोस चित्रण और साथ ही मानवीय आदर्शों का ऐसा सम्मिश्रण संसार के साहित्य में दुर्लभ है।[1]

यह स्मरण रखने योग्य है कि अश्वघोष और कालिदास के काव्यों में वर्णन-शैली की जो नैसर्गिकता मिलती है, वह उत्तरवर्ती महाकाव्यों में नहीं रही। माघ और नैषध चरित में छन्द और अलंकारों का चमत्कार इतना अधिक दृष्टिगोचर होता है कि इससे कथा-प्रवाह दूर तक विच्छिन्न हो गया है। एस० एन० दास गुप्त के मत से उत्तर कालिदास युग के महाकाव्यों में कला-शिल्प का ही प्राधान्य है। इनमें कथा की अपेक्षा शिल्प का, अनुभूति से अधिक रचना-विधान का कौशल अधिक दिखाई पड़ता है। वस्तुतः इस युग की काव्यचेतना रूप-विधान की ओर अधिक सजग है। कालिदास के काव्य में जो सुघरता एवं रमणीयता है, उसका उत्तरवर्ती काव्यों में अभाव है। कालिदास ने काव्य को सुचारु आकृति दी थी, पीछे के कवियों ने उसे अलंकारों से विभूषित किया है।[2]

इसके पश्चात् ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी तक संस्कृत के महाकाव्यों की जो परम्परा चली, उसमें अभिजात्य का वातावरण ही सर्वत्र दिखाई पड़ता है, साधारण जीवन से उसका सम्बन्ध बहुत दूर तक हट गया है। किन्तु इस युग तक आते-आते लोकजीवन की धारा में अधिक वेग दिखाई पड़ने लगा था,

---

१—हजारीप्रसाद द्विवेदी : 'संस्कृत के महाकाव्यों की परम्परा, आलोचना, वर्ष १, अंक १, पृ० १६।

२—किरातार्जुनीय सर्ग ४,५,८, १० तथा माघ सर्ग ६–११।

३—एस० एन० दास गुप्त : हिस्ट्री आव संस्कृत लिटरेचर, पृ० १७६।

जिसने जायसी के पद्मावत और तुलसी के रामचरितमानस के रूप में अपने को प्रकट किया। इन दोनों महाकाव्यों में लौकिक जीवन का साधारणीकृत सहज रूप ही सामने आया है, राजकीय वातावरण का नहीं। इनमें काव्य की गरिमा के भीतर काव्यशैली का उत्कृष्ट रूप भी प्रकट हुआ है, किन्तु संस्कृत के कवियों समान भाषा-शिल्प अलंकारों की चमत्कृति एवं छन्दों विधान के भार से कथा-वस्तु की स्वाभाविक गति को कहीं पर भी क्षति नहीं पहुँची है। रामचरित-मानस में महाकाव्य के प्रायः सभी लक्षण घटित होते हैं, क्योंकि उसमें कथावस्तु प्रख्यात है, नायक धीरोदात्त है, रसों का पूर्ण उन्मेष है, चतुर्वर्ग की योजना भी है, प्रत्येक कांड के प्रारंभ में तथा अन्य स्थलों पर भी मंगलाचारण तथा स्तुतियाँ हैं, खल-निन्दा और सज्जन प्रशंसा के भी प्रसंग हैं, छन्द नैपुण्य भी स्फुट है, वर्षा शरद एवं वसन्त, गिरि, वन, नदी, आश्रम, विवाह, युद्ध, प्रस्थान, मंत्र आदि विविध वस्तुओं का वर्णन भी अत्यन्त सजीव एवं हृदयावर्जक है। सबसे बड़ी विशेषता है, कथा-प्रवन्ध के कौशल की। इसमें 'तुलसी' को बहुत अधिक सफलता मिली है। कथा के विकास में लौकिक जीवन का चित्रण प्रधान है।

केशव की रामचन्द्रिका भी मध्ययुग का प्रौढ़ महाकाव्य है। किन्तु केशव ने संस्कृत के महाकाव्यों से प्रेरित होकर चमत्कार-चारुता एवं रचना-शिल्प की ओर अधिक ध्यान दिया है, जिससे कथाप्रवन्ध का यथोचित विकास नहीं हुआ है। इसके अतिरिक्त केशव, तुलसी के समान साधारण जीवन का चित्रण नहीं कर सके हैं। अभिजात वर्ग के कार्यकलापों का वर्णन उनको अधिक प्रिय है। यह संस्कृत के महाकाव्यों का प्रभाव है और राजाश्रित जीवन का भी। इससे सिद्ध है कि आलोच्यकाल के पूर्व के हिन्दी महाकाव्यों में एकरूपता नहीं थी। तुलसी लोक जीवन से प्रेरणा लेकर महाकाव्य की रचना में प्रवृत्त हुए थे। इसके विपरीत केशव राजन्य वर्ग से प्रभावित थे। ये दोनों प्रवृत्तियाँ संस्कृत महाकाव्यों की परम्परा से विरासत में मिली थीं। तुलसी, वाल्मीकि एवं कालि-दास की परम्परा को लेकर चल रहे थे, केशव, माघ और श्रीहर्ष की परम्परा का अनुसरण कर रहे थे।

आलोच्यकाल के महाकाव्यों पर परम्परानुगत आदर्शों के साथ ही पाश्चात्य आदर्शों का प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है। आलोच्यकाल के प्रारंभ से ही भारतीय स्वतंत्रता संग्राम ने उग्र रूप धारण कर लिया था। जनता में अंगरेजी राज्य के प्रति विरोध की भावना प्रकट होने लगी थी। सामन्तवाद, साम्राज्यवाद, एवं राजन्यवर्ग के प्रति एक स्वाभाविक ग्लानि उत्पन्न हो चुकी थी। इससे जनजीवन में उत्क्रान्ति की भाव-तरंगें उठने लगी थीं। इस युग के

महाकाव्यों में भी इस नवोन्मेष के दर्शन मिलते हैं। इसके अतिरिक्त पाश्चात्य महाकाव्य के आदर्श ने भी नवयुग के कवियों को बहुत दूर तक प्रभावित किया है।

पाश्चात्य महाकाव्यों का लक्षण इस प्रकार है[१]—पाश्चात्य महाकाव्यों (एपिक) के दो भेद हैं—विकसित महाकाव्य (एपिक आव ग्रोथ) तथा कलात्मक महाकाव्य (एपिक आव आर्ट)। विकसित महाकाव्य उसे कहते हैं, जिसकी सम्पूर्ण कथावस्तु जनवरत युग युगों से संचित होती रहती है, अनेक कवियों के सहयोग से जिसका सम्पादन होता रहता है, जिसके सम्पूर्ण कथा-प्रबन्ध का निर्माता कोई एक कवि नहीं होता तथा बहुत-सी प्राचीन कथा, कहानी, गाथा एवं जनगीतों के मिश्रण से जिसके रूप का निर्माण होता है। विकसित महाकाव्य में अनेक छोटी-छोटी कथाएँ, आख्यान तथा वीर गीत किसी एक चरित्र के साथ अनुस्यूत हो जाते हैं। यूनान के महाकवि होमर के 'इलियड' और 'ओडेसी' इसके उदाहरण हैं। इसके विपरीत कलात्मक महाकाव्य एक ही कवि की प्रौढ़ प्रतिभा का परिणाम होता है। इसकी रचना विद्वत्तापूर्ण अनुसन्धान के आधार पर की जाती है तथा परम्परानुगत साहित्यिक आदर्शों की सुनिश्चित प्रणाली के अनुसार जिसका निर्माण किया जाता है। इस प्रकार विकसित महाकाव्य में जहाँ नवीनता, स्वाभाविकता एवं जातीयता का गुण प्रधान होता है, वहाँ कलापूर्ण महाकाव्य में प्राचीनता, पांडित्य की गरिमा तथा अनुकरण की प्रवृत्ति विशेष होती है।

कलापूर्ण महाकाव्य के उदाहरण हैं, वर्जिल का 'इनीड'। यह लैटिन का महाकाव्य है। इसकी रचना करने में वर्जिल ने होमर को अपना आदर्श मानकर उन्हीं की काव्यकला का अनुसरण किया है। मिल्टन के पैराडाइस लास्ट तथा पैरेडाइस रिगेंड भी कलापूर्ण महाकाव्यों की कोटि में आते हैं।

दोनों प्रकार के महाकाव्यों में कुछ सामान्य बातें भी पाई जाती हैं—

१—कथावस्तु परम्परागत होती है, जिसमें जातीय गौरव का भाव प्रधान होता है।

२—यह एक विशाल महाकाव्य होता है, जिसकी वर्णनात्मक शैली होती है तथा उसमें जातीय जीवन का चित्रण होता है।

३—इसकी वीरत्वपूर्ण प्राचीन घटनाओं एवं कार्यों के वर्णन में भूत,

---

१—हडसन : एन इंट्रोडक्शन टू द स्टडी आव लिट्रेचर पृ० १३८।

प्रेत एवं देवताओं का भी उल्लेख होता है, जिनका संबंध अलौकिक जगत से होता है।

४—इसकी शैली वस्तुगत, वर्णनात्मक तथा गौरवपूर्ण होती है।

५—इसकी रचनाशैली परम्परानुगत प्रवन्ध काव्यों के आदर्शों के अनुसार होती है. जिसमें परम्परागत पद-शैया, निर्धारित शब्द-योजना तथा प्राचीन युग से चले आते हुए विशिष्ट पद तथा मुहावरों के प्रयोगों की प्रधानता होती है।

अंगरेजी साहित्य में साहित्यिक महाकाव्य के अन्य भेद भी मिलते हैं—

क—प्रमाणित महाकाव्य (आर्थेंटिक एपिक)

ख—रूपकौक्ति महाकाव्य (अलेगोरीकल एपिक)

ग—परिहास महाकाव्य (माक एपिक)

भारतीय तथा पाश्चात्य महाकाव्य के लक्षणों की तुलना—

भारतीय और पाश्चात्य महाकाव्य के लक्षणों में विशेष अन्तर नहीं है। दोनों में नायक प्रख्यात एवं इतिहास-प्रसिद्ध कथानक होता है। पाश्चात्य महा-काव्यों की कथावस्तु में जातीय गौरव प्रधान होता है। भारतीय लक्षण के अनुसार नायक शूर, युद्धवीर तथा सत्कुलोत्पन्न होता है। उसके असाधारण साहस को प्रदर्शित करने वाले कार्यों, युद्ध-यात्राओं एवं विजयों में जातीय जीवन के आदर्शों की झलक विद्यमान होती है। कथानक के इतिहास प्रसिद्ध होने से तथा नायक के उदात्त गुण सम्पन्न होने से उसके प्रति आसानी से ही लोह-हृदय का साधारणीकरण भी हो जाता है। नायक के आदर्श में वीरत्व की प्रतिष्ठा, अलौकिक व्यापारों का वर्णन तथा ओजस्वी वर्णनों में प्रायः समानता है। रचनाशैली की उत्कृष्टता, छन्दोविधान की भव्यता, भाषागत विशिष्टताओं एवं अलंकरण की दृष्टि से भी बहुत कुछ बातें एक समान हैं। भारतीय लक्षण में रस, चतुर्वर्ग फल प्राप्ति एवं वस्तुवर्णन अपेक्षित है। सर्गों की संख्या तथा सानुबन्ध कथा का होना भी आवश्यक है। यद्यपि लक्षणों का कठोर प्रतिवन्ध दिखाई पड़ता है तथापि व्यवहार में ये नियम शिथिल हो जाते हैं। रामचरितमानस में ही आठ से कम सर्ग हैं तथा प्रत्येक कांड में छन्द भी नहीं बदलता। सम्पूर्ण कथा दोहा-चौपाइयों में ही वर्णित है, परन्तु फिर भी मानस एक उत्कृष्ट महाकाव्य है।

इससे प्रतीत होता है कि भारतीय और पाश्चात्य महाकाव्यों के लक्षणों में प्रायः समानता है। केवल स्थूल बातों में ही अन्तर है। भारतीय महाकाव्यों

में रक्षात्मक बोध का प्राधान्य है, इसके विपरीत पाश्चात्य महाकाव्यों में जीवन के घात-प्रतिघात, संघर्ष एवं चरित्र-चित्रण को अधिक महत्त्व दिया गया है। मिल्टन रचित पैराडाइज़ लास्ट तथा पैराडाइज़ रिगेंड इसके अच्छे उदाहरण है।

गीत

गीत कविता का उच्छ्वास है। समस्त सृष्टि गीतमय है। प्रकृति के हर एक स्पन्दन में गीत का स्वर है। पशु-पक्षियों की वाणी में भी एक प्रकार का स्वर-प्रवाह, लय-साम्य तथा नाद-सौन्दर्य है। प्रकृति के कलरव में एक अद्भुत लय-साम्य है। मानव अनादि काल से उस पर मुग्ध होता आया है। वस्तुतः यही लय-साम्य संगीत का जन्मदाता है।

वेदों में गीत-तत्व—

ऋग्वेद के मंत्रों में गीत के प्रयोग मिलते हैं। वैदिक सूक्तों में नाना देवताओं के प्रति जिन प्रार्थनामय भावों की अभिव्यक्ति हुई है, उनमें भावों की स्निग्धता, कल्पना की रुचिरता एवं अनूठी लयमयता विद्यमान है। उषा, इन्द्र, वरुण, तथा अग्नि विषयक मंत्रों में तन्मयता, अनन्यता, भावों की प्रगाढ़ता एवं सौन्दर्य भावना का प्राचुर्य है। उषा से रम्यरूप को देखकर वैदिक कवि का हृदय थिरक उठता है और वह गा उठता है—हे प्रकाशवती उषा ! तुम कन्या की तरह अत्यन्त आकर्षणमयी बनकर अभिमत फलदाता सूर्य के निकट जाती हो तथा उनके सम्मुख स्मितवदना युवती की भांति अपने वेष को अनावृत करती हो।[1] इसमें सुकुमारी उषा को प्रणय मिलन के हेतु अभिसार करती हुई युवती के रूप में देखा गया है। उषा के मानवीकरण से कल्पना में कितनी सरसता आ गई है —

कन्येव तन्वा शाशदाना एपि देवि देवमिपक्षमाणम्।
संस्मयमाना युवतिः पुरस्तादाविर्वक्षांसि कृणुषे विभाती॥
—ऋ० १।१२३।१०

उषा के विषय में कवि का हृदय इतना भाव-विभोर हो उठता है कि अनूठी कल्पनाएँ स्फुरित होने लगती हैं—

पशून्न चित्रा सुभगा प्रथाना
सिन्धुर्नक्षोद उर्विया व्यश्वैत।
—ऋ० १।९२।१२

उषा अपने प्रकाश को उसी प्रकार फैलाती है, जिस प्रकार ग्वाला चरागाह में गौओं को छोड़ देता है अथवा नदी अपने जल को फैला देती है।

प्राची के क्षितिज पर स्वर्णिम आभा छिटकनेवाली उषा को देखकर कवि का हृदय आनन्दोल्लास से उद्वेलित हो उठता है और उसका अभिनन्दन करते हुए गा उठता है—

उषो देव मर्त्या विभाहि चन्द्ररथा सुनृता ईरयन्ती।
आ त्वा वहन्तु सुयमासो अश्वा हिरण्य वर्णों पृथु पाजसो ये।
—ऋ० ३।६१।२

अर्थात् हे प्रकाशमयी उषा! तुम सोने के रथ पर चढ़ कर अमरण धर्मा बन कर चमको। तुम्हारे उदय के समय पक्षिगण सुन्दर रसमय वाणी का उच्चारण करते हैं। सुन्दर शिक्षित पृथुबल में सम्पन्न घोड़े सुवर्ण की सी आभा धारण करनेवाली तुमको वहन करें।

इसी प्रकार अग्नि, वरुण, सोम आदि देवों के सूक्तों के अध्ययन से विदित होता है कि इनमें स्वभावोक्ति, मंजुल उद्भावना, सुकुमार कल्पना, भाव-प्रवणता, पदलालित्य एवं उपमा का चमत्कार ओतप्रोत है।

वेदों में गीति-काव्य के अन्य स्रोत भी उपलब्ध होते हैं। प्रत्येक वैदिक सूक्त में उसके ऋषि, देवता, छन्द, स्वर तथा राग का नाम आता है। मंत्रों को उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित के स्वर-भेदों में उच्चारण करने का विधान है। वैदिक ऋचाएं प्रायः सामूहिक रूप में गाई जाती थीं। यज्ञ एवं अन्य उत्सवों में वीणा-वादन के साथ सस्वर मंत्रों का गान हुआ करता था। आज भी सस्वर वेद-पाठ की विधि प्रचलित हैं। मंत्रों के स्वर-हीन उच्चारण को बहुत बड़ा दोष माना जाता है। सामवेद में गीत-तत्त्व का प्राचुर्य है। वेद-मंत्रों को वाद्य-यंत्रों की सहायता से गाया जाता था। दुन्दुभी, कंध-वीणा, वनवीणा, तुनव, नदि, उदम्बर आदि उस समय के स्वरयंत्र थे। सामवेद का उपवेद गन्धर्व वेद है, जिसमें नाट्य और संगीत का विचार प्रचुरता से हुआ है। ऋक् प्राति-शाख्य में प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ स्वर का उल्लेख पाया जाता है। मन्द और अतिस्वर का भी विधान था। नारदीय शिक्षा के अनुसार सामगान के सात स्वरों का संगीत के सात स्वरों से संबंध है। इससे सिद्ध है कि संगीत के समस्त स्वर, ध्वनि, उच्चारण-भेद वैदिक काल में प्रचलित थे तथा वाद्य-यंत्रों पर वैदिक मंत्रों के सामूहिक गान की एक व्यवस्थित प्रणाली स्थिर हो चुकी थी। निराला जी का भी यही मत है—'आर्य जाति का सामवेद संगीत के लिए प्रसिद्ध है। यों इस जाति ने वेदों में जो कुछ भी कहा, भावमय संगीत में कहा। संगीत

का ऐसा मुक्त रूप अन्यत्र उपलब्ध नहीं होता। गायत्री की महत्ता आज भी आर्यों में प्रतिष्ठित है। इसके नाम में ही संगीत की सूचना है। भाव और भाषा की ऐसी पवित्र झंकार और भी कहीं है, मुझे नहीं मालूम। स्वर के साथ शब्द, भाव और छन्द तीनों मुक्त हैं।[१]

गीति काव्य का विकास—

वैदिक युग के पश्चात् लौकिक संस्कृत में गीत का रूप और अधिक प्रस्फुटित हुआ है। वैदिक गीत-तत्त्व स्वर-प्रधान था, लौकिक संस्कृत का गीति-काव्य लय-साम्य और नाद-सौन्दर्य पर स्थित हुआ। छन्दों में लय का माधुर्य दृष्टि-गोचर होता है। आर्या गीति तथा उसके उपभेदों में गीत का अविरल माधुर्य छलकता है।[२] वाल्मीकीय रामायण के श्लोकों को लव-कुश के द्वारा गाए जाने की बात बहुत प्रसिद्ध है। पुराणों में भागवत के अन्तर्गत गीति-काव्य का माधुर्य सबसे अधिक है। भ्रमरगीत, वेणुगीत, युगल गीत, गोपिका गीत तथा ऐलगीत इसके पांच प्रसिद्ध गीत हैं, जिनमें गीति-तत्त्व का पूर्ण प्रवाह छलकता है। भावाभिव्यक्ति, गीतात्मकता, एकतानता, सरसता एवं मधुरता का इनमें पूर्ण सन्निवेश हुआ है। संस्कृत एवं हिन्दी के उत्तरवर्ती साहित्य पर भागवत के माधुर्यपूर्ण गीतों का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है। इसके पश्चात् कालिदास के मेघदूत में हमें गीतिकाव्य का चरम विकास प्राप्त होता है। इसमें यक्ष तथा उसकी प्रियतमा की विरहावस्था का वर्णन है। इसके प्रत्येक श्लोक में प्रेम की विह्वलता, भावों की तीव्रता एवं कल्पना की सुकुमारता सहृदय के चित्र को आकर्षित करती है। मन्द्राक्रान्ता की लय में संगीत का माधुर्य प्रवाहित होता है। मेघदूत के पश्चात् सन्देश काव्यों में इसी पद्धति का अनुसरण दृष्टि-गोचर होता है। भर्तृहरि के शतकों में, हाल की गाथा सप्तशती में, अमरुक के प्रेम गीतों में, गोवर्धनाचार्य की आर्या सप्तशती में तथा जयदेव के गीतगोविन्द में गीति-काव्य का असीम भंडार पाया जाता है। इसके अतिरिक्त संस्कृत के स्तोत्र साहित्य एवं शृंगारिक रचनाओं में गीतिकाव्य का यथेष्ट विकास हुआ है। गीत गोविन्द में लौकिक संस्कृत के गीत-तत्त्व का चरम विकास पाया जाता

१—सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' : गीतिका की भूमिका, चतुर्थ संस्करण, पृ० १।

२—पिंगल : छन्दःशास्त्र, 'गीत्यार्या लः'। आर्या के प्रत्येक पाद में सोलह लघुवर्ण होते हैं।

है । 'ललितलवङ्गलता परिशीलन कोमल मलय समीरे' वाली अष्टपदी कविताओं में संगीत का माधुर्य फूट पड़ा है । इस काव्य से एक-एक पद में गीत का सौन्दर्य समन्वित है । विशेषता यह है कि इसके पद विविध राग-रागिनियों तथा ताल-स्वरों में बंधे हुए हैं ।

इसके साथ ही प्राकृत की थेरी गाथाओं और अपभ्रंश के लोकगीतों में प्रवाहित होती हुई गीति-काव्य की ध्वनि मैथिली कोकिल विद्यापति के कलकंठ में सुनाई पड़ती है । इस समय तक काव्य का संगीत राग और ताल में आबद्ध हो चुका था । संगीत की सभी मुख्य-मुख्य प्रचलित तालें एवं राग-रागिनियाँ गीत-गोविन्द में मिलती हैं । विद्यापति और चंडीदास आदि कवियों की रचनाओं पर गीतगोविन्द का प्रभाव स्पष्ट झलकता है ।

हिन्दी के कवियों में कबीर के भजन सबसे अधिक प्राचीन हैं । इनमें शास्त्रीय संगीत की अपेक्षा लोक धुनियों का आश्रय अधिक लिया गया है । वैष्णव कवियों के साहित्य में हिन्दी गीतिकाव्य का चरमोत्कर्ष पाया जाता है । सूर और तुलसी के गीतों में भावानुभूति की तीव्रता है, भाषा का प्रवाह है और है कल्पना का वैचित्र्य । मीरा के गीतों में अनुभूति की प्रगाढ़ता है, भाव-माधुर्य है और है तन्मयता । सन्त कवि एवं वैष्णव भक्तों के पद इतने हृदयावर्जक हैं कि उन्हें सुनने से जन-जन का हृदय झंकृत हो उठता है । निराला जी का कथन सत्य है— 'सन्त पदावली से एक बहुत बड़ा उपकार जनता का हुआ । जहाँ संगीत की कला दरबार में तरह-तरह की उखाड़-पछाड़ों से पीड़ित हो रही थी, भावपूर्ण सीधा-सादा स्वर लुप्त हो रहा था, वहाँ भक्त साधकों और साधिकाओं के रचे गीत और स्वर यथार्थ संगीत की रक्षा कर रहे थे और जनता पूरे आग्रह से यथासाध्य इनका अनुकरण करती थी—भजन की महत्ता का यही कारण है'[१] ।

लोकगीत—

किसी भी साहित्य में गीतों के दो रूप देखने को मिलते हैं, लोक गीत और साहित्यिक गीत । लोकगीत भी उतने ही पुरातन हैं, जितने साहित्यक गीत । साहित्यिक गीतों के साथ-साथ लोकगीतों की धारा भी प्राकृत, अपभ्रंश एवं अन्य देश-भाषाओं के माध्यम से लोक में प्रचलित रही हैं, व्रज भोजपुरी में मनोहर लोकगीत पाए जाते हैं । बंगला का संगीत स्वरमैत्री पर आधारित है ।

१—सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला : गीतिका की भूमिका, पृ० ४ ।

कजली, फाग, वसन्त, होरी, बारहमासा, सोहर, लचारी आदि लोकगीतों में भावों का उन्मुक्त प्रवाह दृष्टिगोचर होता है।

विदेशी प्रभाव—

मुसलमानी राज्य के प्रतिष्ठित हो जाने पर हिन्दी-गीतिकाव्य पर उर्दू का रंग पड़ना भी आरम्भ हुआ। सबसे अधिक गजलों की तर्जों का प्रभाव पड़ा है। भक्त नागरीदास ने अनेक पद गजलों की तर्ज पर लिखे हैं। भारतेन्दु के गीतों पर गजलों के अतिरिक्त बंगला का भी प्रभाव है। आधुनिक काल में हिन्दी के कवियों ने अङ्गरेजी संगीत के ढंग को भी अपनाया है। अङ्गरेजी संगीत के ढंग के नियम को सबसे पहले ग्रहण करने का श्रेय रवीन्द्रनाथ ठाकुर तथा डी० एल० राय को है। अङ्गरेजी संगीत को अविकल रूप में तो ग्रहण नहीं किया जा सकता। अतएव उसके ढंग को ही अपनाया गया है। इनमें भाव-प्रकाशन के अनुसार स्वर विशेष लगाए जाते हैं। संगीत का यह भावबोध पश्चिमी संगीतबोध पर आधारित है।

इस प्रकार वैदिक युग से आरम्भ होकर गीतिकाव्य स्वर के आरोह-अवरोह के क्रम, लय-साम्य, नाद-सौन्दर्य एवं विभिन्न राग-तालों की अवस्थाओं को पार करता हुआ आधुनिक युग तक आ पहुँचा है। आज इसके लय-प्रवाह में लोकगीत तथा उर्दू, बंगला एवं अङ्गरेजी लयों के स्रोत भी आकर मिल गए हैं; जिन्होंने इसकी धारा को बृहद्‌ाकार बना दिया है।

वैदिक देवता—

वैदिक देवताओं में अग्नि, सोम, पृथ्वी, वायु, इन्द्र, बृहस्पति, अश्विनी कुमार, रुद्र, मरुत, अप्, पर्जन्य, सविता, वाक्, पूषण, वरुण, उषा, द्यौः, विष्णु, मित्र, अश्विन आदि मुख्य हैं। आयुर्वेद के एक मंत्र में अनेक देवताओं के नाम हैं—

'अग्निर्देवता, वातो देवता, सूर्यो देवता, चन्द्रमा देवता, वसवो देवता, रुद्रा, देवतादित्या देवता, मरुतो देवता, विश्वेदेवा देवता, बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता, वरुणो देवता।'

यजु० १४।२०

इसका यह आशय है कि जिन-जिन वस्तुओं में दिव्य प्रकाश का आधिक्य है तथा जिनसे जीवन की धारण करने में सहायता मिलती है, वे सब देवता हैं। पौराणिक युग में इनमें से अनेक देवताओं के नाम लुप्त हो जाते हैं, कुछ देवताओं

की महिमा बढ़ जाती है और कुछ की घट जाती है तथा कुछ नये देवता प्रकट होते हैं। वैदिक साहित्य के इन्द्र, अग्नि, वरुण, सविता आदि देवों का स्थान रामायण-महाभारत युग में गौण हो जाता है, उषा, द्यौः, मित्र, अश्विन आदि के नाम लुप्त हो जाते हैं। इन्द्र की महिमा अधिक बढ़ जाती है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, कुबेर, गणेश, कार्तिकेय, लक्ष्मी, सरस्वती, पार्वती, यक्ष, गन्धर्व आदि कुछ देवता नये रूप में प्रकट हो जाते हैं। पौराणिक युग में इन्हीं देवताओं की कथाएँ विविध रूपों में वर्णित हैं, जिनको अन्तर्कथाओं के रूप में काव्यों में भी ग्रहण किया गया है। सूर और तुलसी के काव्य में इन देवताओं की कथाओं का प्रयोग सबसे अधिक पाया जाता है। मानस के पात्रों के जीवन की दिशा को बदलने में इन देवताओं का बड़ा हाथ है। कैकेयी की बुद्धि को सरस्वती ने ही बदल दिया था, जिसके कारण उसने चौदह वर्ष के लिए राम को वन में रहने का आग्रह किया था।[१]

इन्द्र और वृत्रासुर के युद्ध का वर्णन ऋग्वेद के अनेक मंत्रों में पाया जाता है। ऋग्वेद (८।६।६) में इन्द्र ने काँपते हुए वृत्र के मस्तक को सौ धारोंवाले पराक्रमशील वज्र के द्वारा काट डाला। इसी प्रकार ऋग्वेद (८।१२।२७) में तथा (८।२६।७) में वामन की कथा का वर्णन है जिसमें विष्णु ने सम्पूर्ण पृथ्वी को तीन पगों में नाप दिया था। इन कथाओं को पुराणों में और अधिक विशद रूप मिला है। संस्कृत एवं हिन्दी के काव्य साहित्य में ये कथाएँ सर्वत्र मिलती हैं। इसी प्रकार अत्रि, दधीच, पृथु, वेनु, नहुष, अदिति, अगस्त्य, उर्वशी, पुरुवा, मनु, मान्धाता, सुदास, च्यवन आदि की अन्तर्कथाओं के अंकुर वैदिक साहित्य में उपलब्ध होते हैं। इसके उपरान्त रामायण, महाभारत एवं भागवत आदि में ये कथाएँ पल्लवित होकर विशाल आकार ग्रहण कर लेती हैं। काव्य में भी इनका उपयोग प्रायः सभी कवियों ने किया है, इसके लिए प्रमाणों की आवश्यकता नहीं है।

वैदिक साहित्य में प्रकृति—

वैदिक कवियों ने प्रकृति के हर एक रूप की ओर दृष्टिपात किया है। उनकी मर्मभेदनी दृष्टि ने प्रकृति के अन्तरतल के अज्ञान रहस्यों को ढूँढ़ निकाला है। देश, काल, भूमंडल, अन्तरिक्ष एवं उससे भी परे स्वर्गलोक तक कोई विषय ऐसा नहीं है, जिस पर उनकी दृष्टि न पड़ी हो। दिन, रात, वर्ष, मास, छःऋतुएँ,

---

१—तुलसीदासः रामचरितमानस, अयोध्या कांड, दोहा—१२

गिरि, वन, सरिता, समुद्र आदि सबको उन्होंने गहरी दृष्टि से देखा है। अथर्व-वेद (१२।१।३६) में ग्रीष्म, वर्षा, शरदादि ऋतुओं एवं दिन-रात की उत्पत्ति पृथ्वी के परिभ्रमण से बतलाई हैं। अथर्ववेद (१०।८।४) में चक्र के १२ अरों से वर्ष के १२ मास, ३ नाभियों से ३ ऋतुएँ (ग्रीष्म, वर्षा, शीत), तथा ३६० शंकुओं से वर्ष के ३६० दिनों का भाव प्रदर्शित किया है। सूर्य, चन्द्र ग्रह-नक्षत्रों के वर्णन से वैदिक कवियों की अद्‌भुत निरीक्षण शक्ति पर प्रकाश पड़ता है।

प्रकृति के अन्तर्गत सरित-समुद्रों का स्थान है। ऋग्वेद (१०।७५।१-६) में सिन्धु के ओजस्वी प्रवाह का काव्यमय वर्णन है। नदियों के विषय में यह प्रसिद्ध सूक्त है, जिसमें सिन्धु, गंगा, यमुना, सरस्वती आदि भारत की मुख्य नदियों के नाम आए हैं। ऋग्वेद (१०।६।१) में गौ, गोपाल तथा गोष्ठों के प्रति मार्मिक भावों की अभिव्यक्ति है। गोवंश की उन्नति, अभिवृद्धि तथा उपलब्धि के लिए इन्द्र की स्तुति करते हुए उनका हृदय आनन्द से भर जाता है।

अथर्ववेद (१२।१) के पृथ्वी सूक्त में मातृभूमि का विशद् वर्णन है, जिसमें स्वदेश के पर्वत, वापी, कूप, तड़ाग, समुद्र एवं सम्पूर्ण खाद्य पदार्थों का उल्लेख पाया जाता है। मातृभाषा के वक्षस्थल पर नाना प्रकार की शक्ति-प्रद औषध विद्यमान हैं तथा उसके सब ओर शस्यपूर्ण क्षेत्र लहलहाते हैं, जिनमें खाद्यान्न की प्रभूत सामग्री विद्यमान है। इसी से वह सम्पूर्ण जीवधारियों का भरण-पोषण करती है।

'यस्यश्चतस्त्रः प्रदिशः पृथिव्या यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः। या बिभर्ति।' जिस मातृभूमि के वक्षस्थल पर अतीत युग में हमारे पूर्वजों ने पराक्रमपूर्ण कार्य किये थे तथा देवां, असुरों को पराजित किया था तथा जो गौ, अश्व, पशु आदि, तथा विविध खाद्य-पदार्थों का संस्थान है, वह हमें ऐश्वर्य और शक्ति प्रदान करे—

"विश्वम्भरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशिनी।
वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्रऋषभा द्रविणे नो दधातु॥"

इसी सूक्त के ग्यारहवें मंत्र में मातृभूमि के प्रति श्रद्धा प्रकट करते हुए हिमाच्छादित पर्वत-शिखर, गिरि-काननों का वर्णन है। उसकी उर्वरा शक्ति का परिचय देते हुए पराक्रमी पुरुषों से रक्षित होना बताया गया है। २६वें मंत्र में मातृभूमि के आकार, गुण एवं वैभव का वर्णन है। इसमें मातृभूमि के हिरण्यगर्भा स्वरूप के प्रति अभिवादन है। इस सूक्त में स्थान-स्थान पर मातृभूमि के प्रति निश्छल भक्ति का भाव प्रगट हुआ है। 'हे मातृभूमि, आगे से, पीछे से, नीचे से, ऊपर से, हमें दूर मत भगा। तू हमारा कल्याण कर। शत्रु हमें प्राप्त न हों। मारक शस्त्र हम से दूर हों।"

मातृभूमि के गुण-गौरव का वर्णन करते हुए उसके अतुल ऋण को श्रद्धापूर्वक स्वीकार किया गया है। ४४वें मंत्र में कहा गया है—'जिस मातृभूमि के गूढ़ हृदय में विविध प्रकार की रत्न-राशियाँ निहित हैं, वह हमें सुवर्ण, मणि, एवं विभूति प्रदान करे। जिसके पास सम्पूर्ण पदार्थ हैं, जो सर्वगुण सम्पन्ना हैं, वह देवी, भगवती, प्रेम एवं प्रसन्नता से पुलकित होकर हमको समस्त ऐश्वर्य प्रदान करे।

इसी सूक्त के 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' मंत्र १२ की डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने विस्तृत व्याख्या की है। भूमि के साथ जन का सम्बन्ध घनिष्ठतम है। जो जन भूमि के साथ इस परम पवित्र संबंध को स्वीकार करता है, वही मातृभूमि के सम्पूर्ण ऐश्वर्य का उपभोग करता है। उसी के लिए भूमि पुत्र के लिए जननी के सदृश दूध का विसर्जन करती है।

'सा नो भूमिः विसृजतां माता पुत्राय में पयः' ॥ मंत्र १० ॥

इसी सूक्त में कवि ने भूमि, उसके निवासी तथा उनके घनिष्ठ सम्बन्ध से उत्पन्न एक उत्तम राष्ट्र की कल्पना की है—

'सा नो भूमिस्त्विषिं वलं राष्ट्रे दधातूत्तमे' ॥मंत्र ८॥

वह भूमि ज्ञान और शक्ति से युक्त हमको एक उत्तम राष्ट्र बनावे।

पृथ्वी सूक्त के इस विशाल वर्णन के अध्ययन से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि वैदिक युग में भूमि के प्रति मातृभाव था। कवि को वसुन्धरा का समस्त ऐश्वर्य काम्य है। मातृभूमि के पदार्थों की उपलब्धि और रक्षा के लिए शक्ति, सत्य एवं उतम चरित्र वांछनीय है। इसमें मातृभूमि के समर्थ एवं योग्य सेवक बनने का भी भाव प्रगट है। पारस्परिक संगठन, उत्तम चरित्र एवं नैतिक वल के आधार पर एक महान् राष्ट्र के निर्माण की आकांक्षा है।

लौकिक संस्कृत के काव्यों में प्रकृति के रम्य दृश्यों का अत्यन्त हृदयग्राही वर्णन पाया जाता है। वाल्मीकि, कालिदास, भारवि, माघ, भवभूति, वाण, श्रीहर्ष आदि महाकवियों के ग्रन्थों में प्रकृति के मनोज्ञ रूपों का चित्रण स्थल-स्थल पर मिलता है। हिन्दी के काव्यकारों ने भी इसी पद्धति का अनुसरण किया है। वाल्मीकि की रामायण[१] और कालिदास के ऋतुसंहार, कुमार संभव,[२] रघुवंश[३] आदि काव्यों में प्रकृति का वर्णन आलम्वन के रूप में हुआ

१—देखिए वाल्मीकि रामायण, किष्किन्धा कांड, श्लोक ३–३०।

२—कालिदास : रघुवंश, नवम् सर्ग का वसन्त वर्णन तथा कुमार संभव का हिमालय वर्णन, प्रथम सर्ग।

३—वही।

है, किन्तु आगे चल कर प्रकृति वर्णन की अनेक विधाओं का जन्म हुआ है। इनमें प्रकृति को आलम्बन के रूप में, उद्दीपन के रूप में, अलंकारों के रूप में, उपदेश ग्रहण के रूप में तथा आत्मदर्शन के रूप में विशेष रूप से चित्रित किया गया है। हिन्दी काव्य की परम्परा में आलम्बन के रूप में प्रकृति का चित्रण बहुत कम हुआ है।

मातृभूमि के प्रति अनुराग भी किसी-न-किसी रूप में प्रकट हुआ है। लंका-विजय के पश्चात् राम को जन्मभूमि की सुध आती है। ये लक्ष्मण से कहते हैं—

अपि स्वर्णमयी लंका न मे लक्ष्मण रोचते।
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी॥

—वाल्मीकि रामायण

भारत की महिमा का वर्णन पुराणों में बहुत आता है।

गायन्ति देवा किल गीतकानि धन्यास्तु ये भारतभूमि भागे।
स्वर्गापवर्गास्पद हेतु भूमे भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्॥

सूर और तुलसी ने भी स्वदेश के माहात्म्य का वर्णन किया है। वर्तमान कवियों ने अपनी काव्य-रचनाओं में स्वदेश प्रेम के जो स्वर झंकृत किये हैं, वे उन्हें पूर्ववर्ती कवियों से ही विरासत में मिले हैं। इससे सिद्ध है कि प्रकृति तथा स्वदेश के प्रति प्रेम की भावना वैदिक युग से ही प्रारंभ हो जाती है। अथर्ववेद का पृथ्वी सूक्त इस दिशा में सबसे प्रथम प्रयोग है। वही परम्परा अपने विविध रूपों में पल्लवित होती हुई आधुनिक काल तक के कवियों को उत्प्रेरित करती आई है।

तृतीय अध्याय

आधुनिक काव्य : वस्तु तथा उपादानों की परंपरा

काव्य-वस्तु तथा उपादान की परम्परा

प्रस्तुत अध्याय में काव्य की वस्तु तथा उपादानों की परम्परा का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जाता है। वस्तुगत परम्परा से उन वर्ण्य-विषयों का ग्रहण है, जिनको संस्कृत एवं हिन्दी के पूर्ववर्ती कवियों ने अपनी रचनाओं में स्थान दिया है तथा जिनका आधार इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र, कामशास्त्र आदि ग्रन्थ हैं। इन विषयों को निम्नांकित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है :—

(क) पौराणिक विषय
(ख) ऐतिहासिक विषय
(ग) धार्मिक विषय
(घ) प्राकृतिक विषय
(ङ) कामशास्त्रीय विषय

(क) पौराणिक विषय

सर्व प्रथम पौराणिक विषयों की परम्परा का अध्ययन किया जाता है। इनको श्रेणियों में बाँटा जा सकता है—पात्र तथा वस्तु वर्णन। पात्रों के तीन वर्ग किए जा सकते हैं—(१) दिव्य (२) दिव्यादिव्य तथा (३) अदिव्य।

दिव्य पात्रों में देवी-देवताओं का स्थान है। देवताओं में ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गणेश, सूर्य, चन्द्र, इन्द्र तथा देवियों में लक्ष्मी, सरस्वती, सीता, पार्वती, राधा और दुर्गा मुख्य हैं। दिव्यादिव्यों में अवतारों की गणना है। मुख्य अवतार दस हैं—राम, कृष्ण, नृसिंह, वामन, परशुराम, मत्स्य, कच्छप, वराह, बुद्ध और कल्कि। काव्यों में इन्हीं अवतारों का वर्णन सबसे अधिक हुआ है। पाँच पाण्डव, हनुमानादि देव-संभव पात्र हैं। अदिव्य पात्रों में यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, असुर, दैत्य, दानव, भूत, प्रेत, वैताल आदि को परिगणित किया जा सकता है।

वस्तु-वर्णन में राज-वंशों का वर्णन, चौदह भुवन, तीनलोक, सात समुद्र, चौदहरत्न, सृष्टि, प्रलय, नन्दन वन, दिग्गज, दिग्पाल, ४९ पवन, सुमेरु, कैलास, शेषनाग, कल्पतरु, कामधेनु, चिन्तामणि, अष्टसिद्धि, नवनिधि, अष्टवसु, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य आदि मुख्य हैं।

आलोच्य काल से पूर्व संस्कृत एवं हिन्दी साहित्य में पौराणिक काव्य-परम्परा अत्यन्त समृद्ध रूप में मिलती है। संस्कृत के रघुवंश, कुमारसंभव,

मेघदूत, किरातार्जुनीय, शिशुपालवध, नैषधादि महाकाव्यों में पौराणिक विषयों की प्रभूत सामग्री विद्यमान है। हिन्दी साहित्य में विद्यापति पदावली, पद्मावत सम्पूर्ण कृष्णभक्ति काव्य एवं राम भक्ति काव्य रीतिकालीन कविता तथा भारतेन्दु के काव्य में पौराणिक विषयों का स्वच्छन्दतापूर्वक वर्णन हुआ है। जिन काव्यों की कथावस्तु पौराणिक नहीं हैं, उन पर भी पौराणिक प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

आलोच्यकाल में पौराणिक काव्य परम्परा का अध्ययन नीचे लिखे काव्य ग्रन्थों के आधार पर किया गया है :—

१. महाकाव्य —दैत्यवंश कृष्णायन
२. खंडकाव्य —पुरुषोत्तम, गंगावतरण, उद्धव शतक, विषपान, मधुपुरी।
३. मुक्तक काव्य —शर्वाणी, द्वापर, शक्ति।

उपर्युक्त काव्यों के आधार पर पात्रों का विवेचन किया जाता है।

१. दिव्य—

दिव्य पात्रों में गंगा के वेग को धारण करनेवाले तथा हलाहल का पान करनेवाले महादेव का वर्णन 'गंगावतरण' और 'विषपान' काव्यों में पाया जाता है। गंगा के प्रचण्ड वेग को धारण करने के लिए महादेव का बाघम्बर लपेटना, शेषनाग की फेंट कसना, मस्तक के चन्द्रमा को सुदृढ़ करना, मुंडमाल और यज्ञोपवीत को कटि तट पर अटकाना, उत्साहपूर्वक भुजदण्डों को फड़काना तथा दोनों पैरों को पृथ्वी पर रोपना आदि सब बातों का वर्णन पौराणिक पद्धति पर हुआ है।[१] 'विषपान' में विश्व की रक्षा के हेतु जब शंभु गरल-पान के लिए उद्यत होते हैं तब शृंगी, डमरू और विषाण बजाकर अपना उत्साह प्रकट करते हैं। उनके तीनों नेत्र चमक उठते हैं, उनका मुख अलौकिक आभा से उद्दीप्त दिखाई पड़ता है तथा वे अभयदान देते हुए से प्रतीत होते हैं।[२] गणेश और इन्द्र देवता रूप में वर्णित हैं। गणेश जगमुख हैं, बालक्रीड़ा-निरत हैं तथा स्मरण करने पर सब विघ्नों को दूर कर देते हैं।[३] लक्ष्मी, सरस्वती, पार्वती, दुर्गा,

---

१—जगन्नाथदास 'रत्नाकर' : गंगावतरण, ७।१०-१४
२—सोहनलाल द्विवेदी : विषपान, पृ० ४०-४१।
३—जगन्नाथदास 'रत्नाकर' : गंगावतरण, (मंगलाचरण)।
४—दैत्यवंश ३।२२,
५—शर्वाणी प्रथम विभाग।
६—जगन्नाथदास 'रत्नाकर' : गंगावतरण, (मंगलाचरण)

राधा और गंगा अलौकिक शक्ति सम्पन्न देवियों के रूप में चित्रित हैं।

कृष्णायन में युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव पाचों पाण्डवों की कथाओं का विस्तृत वर्णन मिलता है। ये देव संभव पात्रों की कोटि में आते हैं।

२. दिव्यादिव्य—

इस कोटि में भगवान विष्णु के अवतारों के चरित्र आते हैं। प्राचीन काव्यों में ईश्वरावतार राम और कृष्ण की अलौकिक कथाओं का बाहुल्य है। परन्तु परशुराम, नृसिंह, वामन, मत्स्य, कच्छप और वाराह अवतारों का भी काव्यों में यथेष्ट वर्णन पाया जाता है। आलोच्यकाल के प्रबन्ध काव्यों में अवतार के रूप में राम और कृष्ण का वर्णन अनेक काव्यों में मिलता है। साकेत के राम ईश्वरावतार हैं। कवि ने राम के ईश्वरत्व में पूर्ण विश्वास प्रकट किया है।[१] कृष्णायन, पुरुषोत्तम, मधुपुरी, द्वापर और जयद्रथ वध में कृष्ण में अलौकिक चरित्र का वर्णन अवतार रूप से हुआ है। कृष्णायन के कृष्ण पूर्णावतार हैं। वे सज्जनों की रक्षा, दुष्टों की शिक्षा के लिए तथा पृथ्वी पर धर्म का राज्य स्थापित करने के हेतु अवतरित हुए हैं।[२] पुरुषोत्तम और मधुपुरी के कृष्ण का अवतार भी भू-भार-हरण के लिए हुआ है। जयद्रथ-वध के कृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम, जनार्दन, जगन्नाथ, विभु, अच्युत एवं सच्चिदानन्द के रूप में वन्दित हैं।[३] दैत्यवंश में नृसिंह,[४] वराह और वामन[५] अवतारों की कथा का भी वर्णन मिलता है।

३. अदिव्य—

यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, दैत्य, दानव, असुर, भूत, प्रेत, बैताल आदि

१—'राम तुम मानव हो, ईश्वर नहीं हो क्या ?...तुम में रमा करे।'
मैथिलीशरण, गुप्त : साकेत, ।

२—कृष्णायन, अवतरण कांड, पृ० २-३ ।

३—मैथिलीशरण गुप्त : जयद्रथ वध, ४२वाँ संस्करण, पृ० १४ ।

४—दैत्यवंश, १।७७ और ५—वही १२।२४

५—श्रीमद्भागवत् १०।४७

अदिव्य पात्रों में रखे जा सकते हैं। सूर, तुलसी आदि भक्त कवियों के साहित्य में इनका वर्णन प्रचुरता से मिलता है। आलोच्यकाल के दैत्यवंश, कृष्णायन, मधुपुरी और शर्वाणी में इनका स्थल-स्थल पर वर्णन हुआ है। दैत्यवंश महाकाव्य में हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु, विरोचन, बलि, बाण और स्कन्द-दैत्यवंश के छः राजाओं की कथा का वर्णन है। कवि ने कथावस्तु का आधार भागवत, हरिवंश तथा वाल्मीकि रामायण को बनाया है। इस काव्य में दैत्यवंश के राजा नायक हैं और देवताओं को प्रतिनायक के रूप में चित्रित किया गया है। इस प्रकार कवि ने परम्परागत आदर्श को बदलने का प्रयत्न किया है। इसी से दैत्य राजाओं को सदगुणों से युक्त एवं उदात्त रूप में चित्रित किया है। दैत्यों को परम्परा से अधम कोटि में स्थान मिला है। प्रस्तुत काव्य के दैत्यों के वर्णन में परम्परा से पूर्ण विच्छेद प्रकट होता है।

वस्तु वर्णन—

नीचे लिखे काव्यों की कथावस्तु विविध पुराणों से संग्रहीत है :—

दैत्यवंश—

इसमें दैत्यवंश के राजाओं की गुण-गाथा का वर्णन है। यह अठारह सर्गों का प्रबन्ध काव्य है। भागवत, हरिवंश और वाल्मीकि रामायण से कथावस्तु का संग्रह किया गया है। इसमें समुद्र मंथन, देवासुर-संग्राम, वामन का बलि छलन तथा उषा-अनिरुद्ध-आख्यानों में अलौकिक घटनाएं भरी पड़ी हैं।

कृष्णायन—

पं० द्वारिकाप्रसाद मिश्र रचित कृष्णायन की कथावस्तु श्रीमद्‌भागवत, हरिवंश तथा महाभारत पर आधारित है। इसकी कृष्ण संबंधी कथाओं में पौराणिक प्रथा के अनुकूल अलौकिक चमत्कारों का वर्णन प्रथम अवतरण काण्ड में ही कृष्ण के बाललीला वर्णन में असंभव व्यापारों का वर्णन है। केशी, वक, व्योम, तृणावर्त, अघासुर आदि का वध, गोवर्धन धारण, दावानल पान और कालियनाग नाथन ऐसे ही प्रसंग हैं।

पुरुषोत्तम—

तुलसीराम शर्मा रचित यह आठ सर्गों का काव्य है। यह भी पौराणिक काव्य है, जिसकी कथावस्तु का आधार भागवत है।

गंगावतरण—

यह १३ सर्गों का काव्य है जिसके रचयिता जगन्नाथदास 'रत्नाकर' हैं। इसके कथानक का आधार भागवत का नवाँ स्कन्ध है, जिसके आठवें और नवें अध्यायों में राजा सगर की कथा, गंगावतरण और भगीरथ के वृत्तान्त का वर्णन है। सूर और तुलसी के काव्यों में गंगा की महिमा वर्णित है। पद्माकर जी की 'गंगालहरी' एक प्रसिद्ध रचना है। भारतेन्दु जी ने भी सत्य हरिश्चन्द्र नाटक में गंगा का वर्णन किया है। इस परम्परा के ये ही उत्कृष्ट पग-चिह्न हैं। इसी कथानक के आधार पर रत्नाकर जी ने एक सानुबन्ध प्रौढ़ काव्य की रचना की है।

उद्धव शतक—

जगन्नाथदास रत्नाकर रचित उद्धव शतक का कथानक भागवत पर आधारित है[१]। भागवत में उद्धव-गोपी-संवाद एवं भ्रमर गीत अत्यन्त संक्षिप्त रूप से वर्णित है, किन्तु इस लघु कथानक के आधार पर हिन्दी में अनेक काव्यों की रचना हुई है। इस परंपरा के सबसे पहले कवि सूरदास हैं। सूर का भ्रमर गीत सबसे अधिक प्रसिद्ध है। नन्ददास का भ्रमर गीत भी अत्यंत ललित एवं सरस है। आधुनिक काल में इसी प्रसंग को लेकर अयोध्यासिंह उपाध्याय तथा सत्यनारायण कविरत्न ने भी सुन्दर काव्य की रचना की है।

आलोच्यकाल में रत्नाकर जी के अतिरिक्त वियोगी हरि, डा० रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' तथा द्वारकाप्रसाद मिश्र ने इस परम्परा को अपने-अपने ढंग पर विकसित किया है। इस प्रकार हिन्दी साहित्य में भ्रमर गीत की अत्यन्त रोचक एवं सरस परम्परा का विकास हुआ है।

मधुपुरी—

गयाप्रसाद द्विवेदी के 'मधुपुरी' काव्य का कथानक भागवत के दशम् स्कंध के तृतीय अध्याय से संगृहीत है। कथा के आरंभ में पापभाराक्रान्त पृथ्वी गो रूप धारण कर देवी-देवताओं के साथ सिन्धु तीर पर भगवान कृष्ण की स्तुति करती है। तत्पश्चात् भगवान के अवतार का हेतु वर्णन किया जाता है। इस प्रकार सम्पूर्ण कथा का वर्णन परम्परानुगत पद्धति पर हुआ है।

१—श्रीमद्भागवत, १०।४७

विषपान—

सोहनलाल द्विवेदी रचित 'विषपान' विशुद्ध पौराणिक काव्य है जिसकी वस्तु योजना का आधार भागवत है। समुद्र-मंथन और शंकर के गरलपान की कथा भागवत के अष्टम स्कंध के सप्तम अध्याय में वर्णित है। इस घटना का लोक मानस के साथ पूर्ण साधारणीकरण पाया जाता है। मध्यकालीन कवियों ने स्फुटिक कविताओं में इसका यत्र-तत्र उल्लेख किया है[1]।

शर्वाणी—

अनूप शर्मा रचित 'शर्वाणी' सात भागों में विभाजित है। यह पौराणिक काव्य है। इसमें भगवती की प्रार्थना, चरणार्चन, मन्द मुस्कान, दृष्टिपात, चक्र वर्णन, कृपाण और महिषासुर के वध का वर्णन है। दुर्गा सप्तशती का कथानक मार्कण्डेय पुराण में वर्णित है। दुर्गा की वन्दना तथा प्रासंगिक वर्णन मध्यकालीन साहित्य में अनेक स्थानों पर मिलते हैं। 'शर्वाणी' इसी परम्परा का विकसित प्रवन्ध काव्य है।

शक्ति—

मैथिलीशरण गुप्त की रचना है। इस कथानक का आधार भी दुर्गा-सप्तशती है। इसमें शक्ति द्वारा महिषासुर के वध की घटना का वर्णन है।

विवेचन—

कथावस्तु की दृष्टि से उपर्युक्त काव्यों का उपजीव्य श्रीमद्भागवत है। कृष्णायन, पुरुषोत्तम, मधुपुरी तथा द्वापर में कृष्ण की कथा का वर्णन है। भगवान कृष्ण की सरस एवं रोचक लीलाओं का वर्णन कृष्ण भक्त कवियों का सबसे प्रिय विषय रहा है। इसके अतिरिक्त रीतिकालीन कवियों ने भी राधा-कृष्ण की ललित लीलाओं का ही वर्णन किया है। अतः यह परम्परा अत्यन्त पुष्ट एवं स्फीत है। आधुनिक युग के भारतेन्दु, हरिऔध एवं आलोच्यकाल के रत्नाकर, वियोगी हरि, सत्यनारायण, गयाप्रसाद द्विवेदी तथा द्वारकाप्रसाद मिश्र जैसे प्रतिभावान् कवियों ने कृष्ण काव्य परंपरा को समृद्ध किया है। गंगावतरण और विषपान जैसे विषयों का मुक्तक की शैली में तो वर्णन होता

१—'अमी पियावत मान बिनु 'रहिमन' मोहि न सुहाय।
मान सहित मरिबो भलो, जो विष देइ बुलाय॥'

आया है, किन्तु आलोच्यकाल में इन पर खण्ड काव्यों की रचना हुई। इसी प्रकार दुर्गा की कथा को लेकर पहले किसी स्वन्तत्रकाव्य की रचना नहीं हुई थी, किन्तु आलोच्य काल में 'शक्ति' और 'शर्वाणी' दो काव्यों की रचना हुई है।

अलौकिक वस्तु वर्णन—

सृष्टि और प्रलय का वर्णन प्रायः सभी पुराणों में मिलता है। हिन्दी काव्यों में इन विषयों का वर्णन स्फुट रूप से ही मिलता है। भागवत के सृष्टि वर्णन में द्रव्य, कर्म, काल, स्वभाव और जीव आदि को सृष्टि का उपादान कारण माना गया है। भगवान् की शक्ति से प्रेरित होकर पंचभूत, इन्द्रिय, मन तथा माया के तीनों गुण सृष्टि की रचना करने में तत्पर होते हैं[1]।

कामायनी के आशा सर्ग का सृष्टि वर्णन इससे भिन्न है। प्रसाद जी ने प्रकृति में चेतन शक्ति का प्रादुर्भाव दिखाकर मनु के हृदय में अहं के आश्रित आशा का स्फुरण दिखाया है। आधुनिक मनोविज्ञान शास्त्र में अहं की वृत्ति को मूल वासना के रूप में स्वीकार किया गया है। अन्य प्रवृत्तियों का इससे प्रादुर्भाव माना जाता है। मनु के हृदय में भी सर्वप्रथम 'अहं' की वासना का स्फुरण होता है। इसके पश्चात् आशा, श्रद्धा, काम, वासना, लज्जा आदि वृत्तियों का उत्तरोत्तर विकास होता है।

भागवत का सृष्टि-वर्णन दार्शनिक चिन्तन का फल है। उसका आधार वेदोक्त पुरुष-सूक्त है। कामायनी का सृष्टिवर्णन आधुनिक मनोविज्ञान के सिद्धान्तों के अनुकूल है।

कामायनी के प्रथम सर्ग में प्रलय (जल-प्लावन) का दृश्य वर्णित है। यह भी भागवत के प्रलय से भिन्न है। भागवत में नित्य, नैमित्तिक, प्राकृत और आत्यन्तिक चार प्रकार के प्रलय का वर्णन है[2]। प्रसाद जी ने इनमें से केवल भौतिक प्रलय का चित्रण किया है, जिसका आधार शतपथ का प्रलय वर्णन है[3]। किन्तु प्रसाद जी ने इसमें बहुत कुछ परिवर्तन कर दिया है। कामायनी के प्रलय वर्णन में प्रलय के कणों का आकर्षण विहीन होना बताया है तथा आकाश से भौतिक कणों की सृष्टि का वर्णन है। परमाणुओं में

१—भागवत, २।५।३१-३२

२—भागवत १२।४।३८

३—शतपथ १।८

आधुनिक वैज्ञानिक शोध की दृष्टि से आकर्षण की शक्ति है, जिससे वे गतिशील हैं। इनका आकर्षण-हीन होना ही प्रलय है। ऐसा प्रतीत होता है कि आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धान्त से प्रभावित होकर प्रसाद जी ने प्रलय का ऐसा वर्णन किया है। कामायनी का प्रलय वर्णन न तो शतपथ से मिलता है और न पुराणों से। इससे सिद्ध है कि विज्ञान के अणुवाद से प्रभावित होकर कवि ने अपनी समर्थ कल्पना से प्रलय का ऐसा वर्णन किया है।

क्षीर-समुद्र, चौदह रत्न (कल्पतरु, ऐरावत, वाजि, रंभा, कामधेनु, कौस्तुभ, शंख, धनु, लक्ष्मी, चन्द्र, वारुणी, अमृत, विष, धन्वन्तरि), शेष, कूर्म, मन्दराचल का वर्णन 'दैत्यवंश' के समुद्र-मन्थन प्रसंग में मिलता है[१]।

भगवान कृष्ण के विराट् रूप का वर्णन कृष्णायन के गीता काण्ड में आया है, जिसमें पंचमहाभूत, अष्टवसु, द्वादश आदित्य, विश्वेदेवा, एकादश रुद्र, मरुद्गण, अश्विनीकुमार, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, पितृगण, सिद्धगण संपूर्ण चराचर विश्व स्थित है[२]। कोल, कमठ, भूधर, दिग्गज, दिग्पाल, तीनलोक-चौदहभुवन, सूर्य-रथ, चन्द्र, तारागण, पवन, सिन्धु, ब्रह्मलोक, स्वर्ग, पाताल इन सब वस्तुओं का वर्णन गंगावतरण के प्रसंग में हुआ है[३]।

पौराणिक कथावस्तु, विषय एवं उपादानों को लेकर काव्य रचना करने की परम्परा अत्यन्त प्राचीन काल से चली आती है। संस्कृत के कालिदास, माघ, भारवि, बाण आदि संस्कृत के महारथियों से लेकर मध्यकालीन हिन्दी के भक्त कवि, रीतिकालीन कवि, भारतेन्दु, हरिऔध तक सभी कवियों ने इस परम्परा के विकास में योग दिया है। आलोच्यकाल में सत्यनारायण, वियोगी हरि, रत्नाकर, सोहनलाल द्विवेदी, हरदयालु सिंह, गयाप्रसाद द्विवेदी और द्वारकाप्रसाद मिश्र ने इस ओर विशेष रुचि प्रकट की है। पौराणिक कथानक एवं विषयों के आधार पर आलोच्यकाल में प्रबन्ध काव्य, एकार्थ काव्य, मुक्तक एवं गीत-काव्य सभी प्रकार की रचनाओं का सृजन हुआ है, जिससे हिन्दी साहित्य गौरवान्वित हुआ है।

किन्तु आधुनिक युग की वैज्ञानिक एवं बौद्धिक काव्य-प्रवृत्ति ने मध्यकालीन पौराणिक विश्वासों एवं आस्थाओं को झकझोर डाला है। फलतः आधुनिक युग के कवि इस ओर से उदासीन होते जा रहे हैं। प्रगतिवादी ए

१—दैत्यवंश ३।५०-५२

२—द्वारिकाप्रसाद मिश्र : कृष्णायन, पृ० ५८२-८३।

३—जगन्नाथदास रत्नाकर : गंगावतवरण, ७। ४-७

प्रयोगवादी कवियों ने तो पौराणिक विषयों का एक साथ बहिष्कार कर दिया है। मैथिलीशरण गुप्त और अयोध्यासिंह उपाध्याय जैसे परम्परावादी कवियों ने भी साकेत[1] और प्रियप्रवास[2] में अति मानवीय और अलौकिक व्यापारों को छोड़ दिया है अथवा उनकी वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की है।

निष्कर्ष यह कि आलोच्य काल में पौराणिक वस्तु-परम्परा उत्तरोत्तर क्षीण होती जा रही है। मुक्तक एवं गीतकाव्य में इन विषयों पर लिखना अब समाप्त-सा ही हो गया है। यह वैज्ञानिक युग की अतिशय तार्किकता एवं बौद्धिमता के विद्रोह का परिणाम है।

(ख) ऐतिहासिक विषय

ऐतिहासिक कथानकों के आधार पर रचित काव्य-ग्रन्थों की परम्परा हिन्दी साहित्य के प्रारंभिक युग से चली आती है। इसको ऐतिहासिक काव्य-परम्परा कह सकते हैं। नीचे आलोच्यकाल की ऐतिहासिक काव्य-परम्परा का विवेचन किया जाता है।

आलोच्य काल से पूर्व इस परम्परा में नीचे लिखे काव्य-ग्रन्थ पाये जाते हैं :—

(१) वीसलदेव रासो (नरपति नाल्ह)
(२) पृथ्वीराज रासो (चन्द वरदाई)
(३) जयचन्द प्रकाश (भट्ट केदार)
(४) आल्हा (जगनिक)
(५) कीर्तिलता (विद्यापति)
(६) पद्मावत (मलिक मुहम्मद जायसी)
(७) वीरसिंह चरित (केशवदास)
(८) जहाँगीर जस चन्द्रिका (केशवदास)
(९) गोरा-बादल की कथा (जटमल)
(१०) शिवा बावनी (भूषण)
(११) छत्रसाल दशक (भूषण)
(१२) छत्र प्रकाश (गोरेलाल)
(१३) सुजान चरित्र (सूदन)

१—मैथिलीशरण गुप्त : साकेत, द्वितीयावृत्ति, पृ० ३६४।
२—अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' : प्रियप्रवास, १२।६७

(१४) जगद्विनोद (पद्माकर)
(१५) हिम्मत बहादुर विरुदावली (पद्माकर)
(१६) हमीर रासो (जोधराज)

आलोच्यकाल की ऐतिहासिक काव्य-परम्परा के अध्ययन के लिए नीचे लिखे काव्यों को चुना गया है :—

महाकाव्य—

बुद्ध चरित, तक्षशिला, नूरजहाँ, सिद्धार्थ, हल्दीघाटी, विक्रमादित्य, जौहर।

खंडकाव्य—

मौर्य-विजय कुणाल, सिद्धराज, प्रणवीर प्रताप, यशोधरा।

मुक्तक—

झांसी की रानी, महाराणा का महत्त्व, वासवदत्ता।

ऐतिहासिक काव्यों को सुविधा के विचार से दो भागों में बांटा जा सकता है—(क) ऐतिहासिक कथानक (ख) ऐतिहासिक वस्तु वर्णन। ऐतिहासिक कथानकों के आधार पर रचित काव्य-ग्रन्थों का विवेचन नीचे प्रस्तुत किया जाता है :—

(क) ऐतिहासिक कथानक—

१—तक्षशिला—उदयशंकर भट्ट द्वारा प्रणीत प्रबन्ध काव्य है, जिसकी कथा सात स्तरों में समाप्त होती है। इसमें आम्भी के राज्य-शासन, अलक्षेन्द्र के आक्रमण, अशोक के शासन, तक्षशिला के उद्धार, रानी तिष्यरक्षिता द्वारा कुणाल को आँख निकलवाने और उसे देश से निर्वासित करने की अनेक ऐतिहासिक घटनाएं वर्णित हैं। कुणाल के कथानक के आधार पर सोहनलाल द्विवेदी ने भी एक सुन्दर प्रबन्ध काव्य की रचना की है। 'कुनाल' के नाम से अनूप शर्मा ने भी इसी चरित्र का वर्णन किया है। इस प्रकार महाराज अशोक के पुत्र कुणाल की कथा ने अनेक कवियों का ध्यान आकर्षित किया है।

२—कुणाल—सोहनलाल द्विवेदी रचित कुणाल का कथानक इतिहास सम्मत है। राजा अशोक के द्वारा कलिंग विजय, कुणाल के रूप पर रानी तिष्यरक्षिता की आसक्ति, कुणाल द्वारा रानी के प्रस्ताव का विरोध, तक्षशिला में कुणाल की शासक के रूप में नियुक्ति, रानी का कपट-प्रबन्ध करके कुणाल को नेत्रहीन कराना, कुणाल का अधिकारच्युत होना, कुणाल और कांचन

माला का पाटलीपुत्र गमन आदि प्रसंग ऐतिहासिक साक्ष्य के आधार पर वर्णित है[1]।

कुणाल के नेत्रों में ज्योति आ जाने के अलौकिक चमत्कार का वर्णन, रानी को क्षमादान, कुणाल का सिंहासनारोहण और अशोक के काषाय वस्त्र ग्रहण करने की घटनाएं कल्पना-प्रसूत हैं। सत्यकेतु विद्यालंकार ने प्राचीन भारत के इतिहास में रानी तिष्यरक्षिता और अन्य षड्यंत्रकारियों को कठोर दंड दिये जाने का वर्णन किया है। अशोक ने क्रुद्ध होकर रानी को आग में जलाने की आज्ञा प्रदान की। जिस जगह कुणाल की आँखें निकाली गई थीं, वहां अशोक ने एक विशाल स्तूप बनवाया। कुणाल ने राजाज्ञा का पालन करके एक महान् आदर्श की स्थापना की थी। उसकी स्मृति में अशोक ने जिस स्तूप का निर्माण कराया, वह अशोक के नौ सदी बाद तक मौजूद था, जबकि चीनी यात्री ह्वेनसांग भारत की यात्रा करने आया था[2]।

इस काव्य की कथा के नायक कुणाल के चरित्र में धैर्य, संयम, कर्तव्य-पालन, आज्ञापालन, क्षमा, सहिष्णुता आदि उदात्त गुणों का पूर्ण विकास हुआ है। धीरोदात्त नायक में ये ही विशिष्ट गुण पाये जाते हैं। इसमें अशोक तथा कुणाल के चरित्र आदर्श रूप में चित्रित हैं। कथा के विकास में कार्य की अवस्थाओं तथा सन्धियों का यथोचित निर्वाह नहीं हुआ है। 'कुणाल' शुद्ध ऐतिहासिक परम्परा का काव्य है।

३—बुद्ध चरित—सिद्धार्थ तथा यशोधरा के कथानक गौतमबुद्ध के जीवनवृत्त पर आधारित हैं। बुद्ध का कथानक ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। गौतम बुद्ध का स्थिति काल (५६७ ई०-४८७ ई० पूर्व) माना जाता है। इनकी कथा के स्रोत जातक ग्रन्थ हैं। कुषाण नरेश कनिष्क के समकालीन अश्वघोष (प्रथम शताब्दी पूर्वार्द्ध) ने 'बुद्ध चरित' की रचना की थी। दुर्भाग्य से इस काव्य का आजकल १४ सर्ग ही मिलते हैं, किन्तु इसके चीनी तथा तिब्बती अनुवादों में २८ सर्ग मिलते हैं। विद्वानों के परिश्रम से शेष ग्रंथ के हिन्दी एवं अंग्रेजी अनुवाद भी सुलभ हो गए हैं। इस प्रकार संस्कृत-साहित्य के प्रारंभिक युग में ही बुद्ध के कथानक पर रचित काव्य-परम्परा का सूत्रपात हो जाता है। भारतीय परम्परा ने बुद्ध को अवतारों में स्थान देकर उनका गौरव स्वीकार

१—देखिए, सत्यकेतु विद्यालंकार : भारत का प्राचीन इतिहास (दोनों भाग) प्रथम संस्करण, पृ० ४८१।

२—वही, पृ० ४८३।

किया है। इसके अतिरिक्त शिलालेख, चित्र एवं मूर्तिकाल में भगवान् बुद्ध की कथाओं को इतना स्थान मिला है कि यह विषय लोक-चित्त के लिए पूर्ण रूप से साधारणीकृत हो चुका है। वर्तमान काल में अनूप शर्मा ने 'सिद्धार्थ एवं मैथिलीशरण गुप्त 'यशोधरा' की रचना करके इसी परम्परा को विकसित किया है।

४—नूरजहाँ—यह १८ सर्गों का प्रबन्ध काव्य है, जिसके रचनाकार गुरुभक्त सिंह हैं। इसकी कथावस्तु मुगल वंश के इतिहास से सम्बन्धित है। काव्य के क्षेत्र में यह कथानक बिलकुल नवीन है, क्योंकि इस कथानक के आधार पर किसी दूसरे ग्रन्थ की रचना नहीं हुई है। इस काव्य का नायक जहांगीर है, जो धीर ललित कहा जा सकता है। उसके चरित्र में स्वच्छन्द प्रेम में विकास हुआ है। वह पहले अनारकली को और बाद में नूरजहां को अपने प्रेम की तृप्ति का साधन बनाता है। नूरजहां भी अन्त में उसके प्रणय-प्रस्ताव को स्वीकार कर लेती है। स्वच्छन्द प्रेम भारतीय परम्परा में कोई नवीन वस्तु नहीं है। रीतिकाल के सम्पूर्ण साहित्य में इसी का प्राचुर्य है।

इस काव्य के अन्तर्गत विमलराय और सर्व सुन्दरी के चरित्रों में कर्तव्य सेवा, त्याग और आत्मा के अमरत्व के आदर्श प्रतिफलित हुए हैं[१]। इस प्रकार नवीन कथानक होते हुए भी आदर्श की दृष्टि से इसकी कथा-वस्तु परम्परानुगत काव्यों की कोटि में ही आती है।

भट्ट जी के तक्षशिला में वीरत्व की भावना ओतप्रोत है। इस काव्य में तक्षशिला के सांस्कृतिक गौरव एवं मगध के राजाओं के ओज तथा पराक्रम का वर्णन है। इससे यह काव्य परम्परागत ऐतिहासिक काव्यों की श्रेणी में ही आता है। इसी प्रकार 'हल्दीघाटी' के राणा प्रताप, 'आर्यावर्त' के पृथ्वीराज, 'विक्रमादित्य' के चन्द्रगुप्त, (शकारि), 'जौहर' की पद्मिनी, 'मौर्य-विजय' के चन्द्रगुप्त, 'सिद्धराज' के जयसिंह, 'प्रणवीर प्रताप' के राणा प्रताप, 'झांसी की रानी 'लक्ष्मीबाई में आत्म-सम्मान, स्वातंत्र्य-प्रेम, देशोद्धार, जातीय अभिमान तथा वीरत्व के आदर्श की पूर्ण प्रतिष्ठा हुई है। ये आदर्श परम्परागत वीरत्व के आदर्शों से भिन्न नहीं हैं, क्योंकि वीरगाथा काल के समस्त काव्य इसी आदर्श से अनुप्रेरित हैं तथा रीतिकाल के भूषण, सूदन और गोरेलाल आदि कवियों ने इसी परम्परा की अभिवृद्धि की है। आलोच्य काल के उपर्युक्त काव्य-ग्रन्थ इसी परम्परा की प्रगति के चिह्न हैं। देश-प्रेम का भाव इनमें विशेष है।

१—गुरुभक्त सिंह 'भक्त' : नूरजहाँ; पृ० ६२–६३।

इसके अतिरिक्त अशोक, पृथ्वीराज, प्रताप, विक्रमादित्य, चन्द्रगुप्त, लक्ष्मीबाई और पद्मिनी की जीवन गाथाओं से हिन्दी जगत् इतना परिचित है कि इनके साथ लोक मानस का पूर्णतः साधारणीकरण हो चुका है। कथानकों के नवीन होने पर भी आदर्श एवं उद्देश्य की दृष्टि से ये नवीन नहीं हैं। अतएव ये सभी काव्य पराम्परागत ऐतिहासिक काव्य परम्परा की श्रेणी में ही आते हैं।

(ख) ऐतिहासिक वस्तु-वर्णन—

राज परिवार—इसमें राजा, रानी और राजकुमार का प्रमुख स्थान है। महाकाव्यों में इनका वर्णन अवश्य किया जाता है; साहित्य में यह परम्परा प्राचीन काल से ही चली आती है। वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड के आरम्भ में 'कोन्वस्मिन्साम्प्रतं लोके गुणवान्कश्च वीर्यवान्' इत्यादि सर्वगुण सम्पन्न व्यक्ति के विषय में पूछे जाने पर नारद जी ने इक्ष्वाकु वंश के राम के चरित्र में जिन उदात्त गुणों का वर्णन किया है, उनमें एक आदर्श राजा के गुणों का वर्णन है। राजा दशरथ, रामादि राजपुत्र और कौशिल्या आदि रानियों के चरित्र आदर्श रूप में चित्रित हैं। कालिदास ने रघुवंश के राजाओं के विमल चरित्र का वर्णन करने में इसी परम्परा को विकसित किया है। किरातार्जुनीय, शिशुपाल वध तथा नैषध में राजपरिवार की आदर्श परम्परा का पूर्ण विकास हुआ है।

हिन्दी साहित्य के पृथ्वीराज रासो, पद्मावत, रामचरित मानस एवं रामचन्द्रिका में प्राचीन परम्परा का अनुसरण दिखाई पड़ता है।

काव्य कल्पलतावृत्ति के अनुसार राजा के वर्णन में विद्या, नीति, शक्ति, बल, चोरों का नाश, प्रजा का शासन, प्रजा-प्रेम, धर्म, अर्थ, काम, संग्राम, प्रस्थान, शस्त्र, शास्त्र, अरि-विजय, पर्वत-वास, मित्र-मंडल, तेज, लक्ष्मी, दान, कीर्ति, गुण, रूप आदि का उल्लेख किया जाता है[1]। कवि कल्पलता और कवि-प्रिया में इन्हीं गुणों का वर्णन है। कविप्रिया में राजा की शक्ति, ऐश्वर्य और प्रसिद्ध को अधिक महत्त्व दिया गया है।

'नल-नरेश' के राजा नल[2], 'सिद्धार्थ' के राजा शुद्धोदन[3], 'वैदेही वन-

---

१—काव्यकल्पलता वृत्ति १।२। ४७-४६

२—नल-नरेश, २।२८

३—सिद्धार्थ, पृ० २।

वास' के राजा रामचन्द्र[१], 'दैत्यवंश' के हिरण्यकशिपु[२], 'कृष्णायन'[३] के महाराज युधिष्ठिर,[४] 'विक्रमादित्य' के चन्द्रगुप्त[५] (शकारि), 'सिद्धराज' के जयसिंह[६], 'कुणाल' के अशोक,[७] 'मौर्य-विजय' के चन्द्रगुप्त मौर्य[८] चरित्र में विद्या, नीति, धर्म, शक्ति, प्रजाप्रेम, अरि-विजय, तेज, लक्ष्मी, युद्ध, प्रस्थान और शूरता का पूर्ण विकास हुआ है। इन काव्यों में राजा के वर्णन में शत-प्रतिशत परम्परा का अनुसरण किया गया है।

'हल्दीघाटी' के राणा प्रताप तथा 'आर्यावर्त' के पृथ्वीराज में शक्ति, शौर्य, संग्राम, प्रस्थान, पराक्रम, दान, दया, तेज और गुण तो है, किन्तु विवेक, शत्रु-नाश, विजय, कोष, नीति, लक्ष्मी और मित्र-मंडल का अभाव है, जिसके कारण उन्हें युद्ध में विजय प्राप्त नहीं होती है। इन काव्यों में पचास प्रतिशत परम्परा की बातें मिलती हैं।

दैत्य-वंश[९], अंगराज[१०] और साकेत-सन्त[११] में क्रमशः राजा बलि, कर्ण तथा भरत के राज्य-शासन का वर्णन है। इन प्रसंगों में गुरुकुलों की स्थापना, शिक्षा-प्रसार, सैनिक-शिक्षा, स्वास्थ्य-रक्षा-विभाग, औषधालय, कृषि, सहकारी कोष, सिंचाई-विभाग, स्वराज्य-स्थापना, सत्य-अहिंसा, न्याय-युक्त शासन, समानाधिकार, सर्वोदय, अछूतोद्धार, किसान-मजदूरों के प्रति सहानुभूति तथा ग्राम-सुधार के वर्णन पर गाँधी-दर्शन एवं आधुनिक युग के शासन-सुधारों का प्रभाव है। यह प्राचीन परम्परा का युगानुकूल नवीन विकास है।

१—वैदेही वनवास, पृ० २५

२—दैत्यवंश पृ० ३।

३—कृष्णायन, पृ० ७८३।

४—कृष्णायन, पृ० ७८३।

५—विक्रमादित्य, पृ० २०१।

६—सिद्धराज, पृ० ११०।

७—कुणाल, पृ० २३।

८—मौर्य विजय, पृ० ५।

९—दैत्य-वंश, द्वितीय सर्ग

१०—अंगराज, तीसरा सर्ग

११—साकेत-सन्त, चौदहवाँ सर्ग

कामायनी[1] के मनु तथा नूरजहाँ[2] के जहांगीर में परम्परा-विहित गुणों का अभाव है। शासक के रूप में मनु निरंकुश अधिकार भोगना चाहते हैं तथा इड़ा पर भी बलात्कार करना चाहते हैं—

"मैं शासक मैं चिर स्वतन्त्र, तुम पर भी मेरा —
हो अधिकार असीम, सफल हो जीवन मेरा ॥"

ये सब लक्षण उच्छृंखल प्रवृत्ति और उद्दाम लालसा के परिचायक हैं, जिससे मनु शासक के रूप में भी सफलता नहीं पाते। जहांगीर प्रजा-पालन से अधिक प्रेम-पालन में दत्त-चित्त रहता है। नूरजहाँ के प्रेम में उन्मत्त होकर वह कह उठता है—

"राज्य करो तुम, मूर्ति तुम्हारी रहूँ देखता मैं प्रतियाम।
अपने हाथों से नित केवल, मुझे पिला देना दो जाम ॥"

वह प्रेमी के रूप में सफल है, किन्तु राजा के परम्परागत आदर्श से च्युत है। इस प्रकार इन दोनों काव्यों के राजाओं का चित्रण परम्परा अनुकूल नहीं है।

कविकल्पलता[3] के अनुसार राज-पत्नी में पति-प्रेम, लावण्य, शील, शृंगार, काम, लज्जा, चातुर्य, दाक्षिण्य, प्रेम, मान, पति-व्रत आदि गुणों का वर्णन किया जाता है। शृंगार के वर्णन में नख-शिख आवश्यक होता है। शृंगार वर्णन की यह परम्परा है कि पुरुषों के शृंगार का वर्णन मस्तक से आरम्भ होता है तथा देवी-देवताओं का चरणों से। माता के तुल्य देवियों के शृंगार वर्णन करना वर्जित है।

'कामायनी'[4] की श्रद्धा, 'नल-नरेश' की दमयन्ती[5] 'सिद्धार्थ' की यशोधरा[6] 'वैदेही-वनवास' की सीता,[7] 'कृष्णायन' की द्रौपदी,[8] 'साकेत-सन्त' की

१—जयशंकर प्रसाद : कामायनी (प्रथम संस्करण) पृ० १६४।

२—गुरुभक्त सिंह : नूरजहाँ, पृ० १५५।

३—कविकल्पलता ३।५-७

४—जयशंकर प्रसाद : कामायनी, प्रथम संस्करण, श्रद्धा सर्ग पृ० ५७

५—नल नरेश, ३।७२

६—सिद्धार्थ, पृ० ? ।

७—वैदेही-वनवास, पृ०

८—कृष्णायन, पृ० ७८३।

माण्डवी[1] के चरित्र में पति-व्रत, शील, प्रेम, सौन्दर्य, लज्जा, चातुर्य एवं दाक्षिण्य के गुण मिलते हैं। दमयन्ती तथा यशोधरा के श्रृंगार में नख-शिख की पद्धति का अनुसरण किया गया है। नख-शिख का वर्णन अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। यह परम्परा आजकल लुप्त प्राय है।

'कामायनी' की इड़ा, 'नूरजहाँ' की नूरजहाँ आर्यावर्त की संयोगिता और कविरानी, 'विक्रमादित्य' की ध्रुवदेवी और 'कुणाल' की तिष्यरक्षिता का वर्णन परम्परा-विहित नहीं है। इड़ा में पति-प्रेम, शील, लज्जा और पातिव्रत का अभाव है। वह बुद्धिमती, तार्किक एवं सन्देहशीला है। उसका जीवन दर्शन बुद्धिवाद और विज्ञानवाद के आश्रित है[2]। नूरजहाँ विवाह से पूर्व ही जहाँगीर में आसक्त हो जाती है तथा शेर अफगन की मृत्यु के बाद वह फिर जहाँगीर को अपना प्रेम अर्पण करती है। इस प्रकार वह अपने सतीत्व की रक्षा करने में असमर्थ है[3]। पृथ्वीराज की पत्नी संयोगिता तथा कवि चन्द की पत्नी कविरानी दोनों के चरित्र में पुरुषोचित कठोर गुणों का विकास हुआ है। उनमें कोमल वृत्तियों का अभाव है। आर्यावर्त के कवि ने इन दोनों वीरांगनाओं को पृथ्वीराज के वन्दी हो जाने पर प्रतिशोध के हेतु युद्ध का संगठन करते हुए तथा शत्रु पर विजय प्राप्त करते हुए चित्रित किया है। इनके चरित्र में स्वाभिमान, शौर्य और वीरत्व का पूर्ण विकास हुआ है[4]। विक्रमादित्य की पत्नी ध्रुवदेवी को भी इसी रूप में चित्रित किया गया है। वह शकों को परास्त कर देश से बाहर निकालने के लिए चन्द्रगुप्त को अपना सहचर चुनती है[5]। ये वर्णन परम्परा के विरुद्ध हैं। इस पर आधुनिक युग के बुद्धिवाद तथा नारी आन्दोलन का प्रभाव है। यह आन्दोलन पाश्चात्य आदर्श से प्रेरित है, जिसमें समानाधिकार स्वर मुखर है। अशोक की पत्नी तिष्यरक्षिता में लज्जा और शील का अभाव है। उसमें पतिव्रत एवं पति प्रेम का भी अभाव है। उसमें वासना, निर्लज्जता और प्रतिशोध की

१—साकेत-सन्त, पृ० १८७।

२—'हो तुम ही हो अपने सहाय।
जो बुद्धि कहे उसको न मान कर फिर किसकी नर शरण जाय।'
कामायनी, पृ० १७१।

३—नूरजहाँ, पृ० १४३।

४—आर्यावर्त, पृ० ६४-६५

५—विक्रमादित्य, पृ० ५५।

भावना प्रधान है[१] । इससे सिद्ध है कि यह वर्णन परम्परा से बाहर है ।

कविकल्पलता के अनुसार राजकुमार को शस्त्र चलाने में चतुर, शास्त्र-ज्ञाता, शोभायुक्त, कला-प्रेमी, बलवान्, गुणवान्, वाद्य में निपुण, राज-भक्त, रूपवान वर्णन किया जाता है[२]। कविप्रिया के अनुसार उसे विनोद प्रिय, आचार-युक्त और उदार भी होना चाहिये [३] ।

राजकुमार सिद्धार्थ,[४] 'साकेत' के राम,[५] 'दैत्यवंश' में कुमार स्कन्द,[६] 'कुणाल' के राजकुमार कुणाल,[७] कृष्णायन के अभिमन्यु और वैदेही-वनवास के लव-कुश में बल, विद्या, शक्ति, सौन्दर्य, धनुर्विद्या, विनय, भक्ति तथा सदाचार-परम्परानुगत सभी लक्षण विद्यमान हैं । इनके चरित्र में पराम्परा के शत-प्रतिशत लक्षण घटित होते हैं ।

'नूरजहाँ' के राजकुमार सलीम, 'हल्दीघाटी' के शक्तिसिंह और दैत्यवंश के प्रह्लाद के चरित्र में अनैतिक आचरण,[८] राज्य-द्रोह,[९] कुल-द्रोह[१०] एवं स्वेच्छाचार की प्रवृति प्रधान है । इस कारण बल, वीर्य, शोभा से युक्त होकर भी इनमें परम्परागत आदर्श की रक्षा नहीं हुई है । अतएव इनका चरित्र परम्परा से बहिर्भुत समझना चाहिए ।

(ग) धार्मिक विषय

काव्य में धार्मिक विषयों का वर्णन तभी से आरंभ होता है, जब से काव्य का जन्म हुआ है । वाल्मीकि की रामायण में धर्म का सैद्धान्तिक निरूपण अनेक प्रसंगों में हुआ है । इस महाकाव्य में धर्म के विविध पक्षों के स्वरूप का

१—कुणाल, पृ० ४ ।

२—कविकल्पलता १।३।६

३—कविप्रिया ८।६

४—सिद्धार्थ, पृ० ४८-४६ ।

५—साकेत (द्वितीयावृत्ति) पृ० ३६ ।

६—दैत्यवंश, पृ० १६४-६५ ।

७—कुणाल, पृ० १६-२० ।

८—नूरजहां, पृ० २६ ।

९—हल्दी घाटी, पृ० ३८ ।

१०—दैत्यवंश, पृ० २६ ।

उद्घाटन अत्यन्त मार्मिक शैली में हुआ है। धर्म के स्वरूप,[१] सत्य, शील, कर्त्तव्य,[२] तप, त्याग, अस्तेय, अपरिग्रह, संयम, ज्ञान, वैराग्य, आचार, दैव, नीति,[३] वर्ण एवं आश्रम-धर्म के सभी अंगों पर व्यापक दृष्टि से विचार किया गया है। संस्कृत के रघुवंश, किरात, माघ, नैषध आदि महाकाव्यों में ज्ञान, योग, वैराग्य, नीति, अद्वैत तत्त्व तथा धर्म के शास्त्रमय एवं व्यावहारिक पक्ष का विशद् वर्णन पाया जाता है।

हिन्दी-साहित्य की प्रचुर काव्य-राशि आध्यात्मिक विषयों से ओतप्रोत है। इसका कारण यह है कि अधिकतर हिन्दी-कवि भक्त हुए हैं। सन्त काव्य में ज्ञान, योग, भक्ति, प्रेम, वैराग्य, सत्-असत्, जीव-ईश्वर, संसार की अनित्यता तथा वेदान्त-दर्शन आदि आध्यात्मिक विषयों का प्रकृष्ट वर्णन मिलता है। कबीर, दादू, सुन्दरदास की रचनाओं में जीव, ईश्वर, जगत्, माया, मोक्ष, सम्बन्धी वर्णन का प्राचुर्य है।

तुलसी का मानस तो धार्मिक सिद्धान्तों और नैतिक शिक्षाओं का भंडार है। केशव की 'रामचन्द्रिका' में धर्म के विविध अंगों एवं नैतिक उपदेशों का यथातथ्य वर्णन है। रीतिकाल में यद्यपि शृंगारी कविता का प्राधान्य है, तथापि इस काल के अधिकांश कवियों ने किसी-न-किसी रूप में प्रेम, भक्ति, नीति एवं सदाचार के प्रति दृढ़ विश्वास प्रकट किया है। गुरु गोविन्द सिंह, नागरीदास, भगवत रसिक, दीनदयाल गिरि आदि कवियों ने धर्म, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य सम्बन्धी आध्यात्मिक विषयों का वर्णन किया है। वृन्द, गिरिधर, घाघ और बैताल इस काल के नीतिकार हैं।

नीचे आलोच्यकाल के उन ग्रंथों का उल्लेख किया जाता है, जिनको धार्मिक विषयों के अध्ययन के लिए चुना गया है:—

महा काव्य—

बुद्ध चरित, साकेत, कामायनी, सिद्धार्थ, कृष्णायन, साकेत-सन्त और अंगराज।

खंड काव्य—

जयद्रथ वध, सिद्धराज, पथिक, मिलन, तुमुल, मौर्य-विजय, जौहर, तुलसीदास, कुरुक्षेत्र।

१—वाल्मीकि रामायण, किष्किन्धा कांड १८।१९

२—वही, अरण्य कांड, ६६।५-७

३—वही, युद्ध कांड, २१।१४-१६

मुक्तक काव्य—

हरिऔध सतसई, वीर सतसई, राम की शक्ति पूजा, अर्चना, झरना, पाथेय, स्वर्णकिरण, स्वर्णधूलि, उत्तरा, मानसी।

नीचे लिखे वर्गीकरण के अनुसार धार्मिक विषयों का विवेचन प्रस्तुत किया जाता है :—

१—अध्यात्म तत्व तथा दर्शन

२—धर्म

३—नीति तथा उपदेश

सबसे पहले शास्त्रों में वर्णित अध्यात्म पर विचार किया जाता है। उपनिषदों में निर्गुण ब्रह्म के विषय में विस्तृत विचार हुआ है। यद्यपि ब्रह्म की दो सत्ताएँ हैं[1]—व्यक्त और अव्यक्त, तथापि उनमें अव्यक्त सत्ता पर ही अधिक विचार किया गया है। ब्रह्म को सर्व व्यापक मानते हुए उसे मूल चेतना बताया गया है। यह सबमें ओतप्रोत है तथा उसी की ज्योति से सम्पूर्ण विश्व प्रकाशित है।[2] परम पुरुष के विराट् स्वरूप के वर्णन में द्युलोक को सिर, चन्द्र-सूर्य को नेत्र, दिशाओं को कान, वेद को वाणी, वायु को प्राण एवं विश्व को हृदय बताया गया है।[3] ईश्वर अनन्त शक्ति है तथा सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का कारण है। जिस प्रकार प्रचण्ड अग्नि से सहस्रों समान रूप वाली चिनगारियाँ उत्पन्न होती हैं, उसी प्रकार अविनाशी ईश्वर से नाना पदार्थ प्रकट होते हैं और उसी में लय हो जाते हैं।[4]

वेदान्त दर्शन में जीव और जगत की सत्ता का निरास करके केवल ब्रह्म की सत्ता स्वीकार की गई है। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म,' 'अयमात्मा ब्रह्म,' 'नेह नानास्ति किंचन' आदि उपनिषद् वाक्यों के आधार पर आत्मैक्य का सिद्धान्त स्वीकार किया गया है। इस प्रकार जीव और ईश्वर को एकता करके अद्वैत की स्थापना की गई है। इसके अनुसार व्यावहारिक दशा में जगत् भी है, जीव-ईश्वर में भेद भी है और उपास्य-भाव-सम्बन्ध भी है। ज्ञान से व्यावहारिक दशा का बोध होने पर मोक्ष होता है। तब जीव ब्रह्म में लीन हो जाता है।

विशिष्टाद्वैत में चित्, अचित् और ईश्वर तीन तत्व हैं। यद्यपि ये तीनों पृथक्-पृथक् हैं, तथापि एक-दूसरे को छोड़कर नहीं रह सकते। ईश्वर अंशी है,

---

१—बृहदारण्यक २।३।१

२—मुण्डक २।२।१०

३—वही २।१।४

४—वही २।१।१

चित्र और अचित्र उसी के अंश हैं। योग दर्शन में चित्तवृत्ति के निरोध द्वारा साधक की स्वरूप में स्थिति मानी गई है।[१] इसके लिए अष्टांग योग की साधना की जाती है। योग में षट्चक्र हैं, जिनमें क्रम-क्रम से ध्यान द्वारा साधक को आत्म-स्वरूप की प्राप्ति होती है।

निष्कर्ष यह कि दार्शनिक विषयों के अन्तर्गत ब्रह्म, जीव, जगत्, माया, बन्ध, मोक्ष आदि का विचार है। यद्यपि यह सब ज्ञान का विषय है तथापि काव्यों से भी जीव-ईश्वर के सम्बन्ध को मधुर कल्पना का प्रचुर वर्णन पाया जाता है। इसीलिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है कि चिन्तन के क्षेत्र में जो अद्वैतवाद है, भावना के क्षेत्र में वही रहस्यवाद है।

आलोच्य काल के प्रवन्ध काव्यों तथा छायावादी रचनाओं में परम सत्ता के सौन्दर्य का चित्रण, अव्यक्त के प्रति प्रेम, जिज्ञासा, कुतूहल, जगत् की अनित्यता, अद्वैतवाद, मायावाद एवं जीव और ब्रह्म के मधुर सम्बन्ध तथा आध्यात्मिक विषयों का वर्णन अनेक स्थलों पर मिलता है। नीचे इन्हीं बातों का विवेचन किया जाता है :—

प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी, रामकुमार, सियारामशरण, हरिकृष्ण प्रेमी की रचनाओं में दार्शनिक विषयों का काव्यमय वर्णन पाया जाता है।

अध्यात्म क्षेत्र में पहली अवस्था का साधक अव्यक्त और विश्व के प्रति जिज्ञासा, कुतूहल एवं आश्चर्य का भाव रखता है। 'कौन तम के पार रे कह' (निराला), कौन तुम मेरे हृदय में, पथ देख बिता दी रैन, मैं प्रिय पहचानी नहीं (महादेवी), मौन निमंत्रण (पन्त), होली की रात, बिन्दु (प्रसाद) में अव्यक्त के प्रति जिज्ञासा तथा कुतूहल है। कामायनी के 'आशा' सर्ग में सृष्टि के आदि तत्त्वों को देखकर मनु के हृदय में यही भाव उठता है। उदयशंकर भट्ट की 'मानसी' में 'विश्व के प्रति जिज्ञासा एवं कुतूहल है।

अव्यक्त सत्ता में आस्था उत्पन्न हो जाने पर साधक अखिल विश्व में उसी के विराट स्वरूप को देखता है। उसे सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ में उसी का सौन्दर्य दृष्टिगोचर होता है तथा उससे मिलने के लिए साधक के हृदय में प्रेम का आविर्भाव होने लगता है। प्रसाद की झरना, लहर, पन्त की विश्वछवि, विश्व व्याप्ति, एक तारा, स्वर्णकिरण, सम्मोहन तथा स्वर्णधूलि की 'आर्य वाणी' की कविताएं महादेवी की नीरजा की 'अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर, जो विभावरी, वसन्त रजती, रामकुमार वर्मा की 'यह तुम्हारा हास आया' गोपाल-

---

१—योग दर्शन १।२

शरण सिंह की ज्योतिष्मती, निराला की अर्चना एवं सियारामशरण के 'पाथेय' के गीतों में इसी का वर्णन प्रधान है।

निराला और पन्त के काव्य में अद्वैत सत्य की झलक मिलती है। अर्चना में 'खुल गया रे अब अपना मन', 'पास ही रे हीरे की खान', परिमल में 'जागो फिर एक बार', 'अधिवास', 'कण' कविताओं में अद्वैत तत्त्व का ही प्रतिपादन है। पन्त की स्वर्ण किरण में 'पूवण', 'व्यक्ति और विश्व' स्वर्णधूलि में 'अन्तर्लोक', 'ज्योतिर्झर', रामकुमार की 'एक दीपक किरण-कण हूं, 'निराला की 'तुक और मैं 'विशिष्टाद्वैत को ओर इंगित करती है। निराला की 'राम की शक्तिपूजा' में योग की ध्यान-पद्धति का वर्णन है।

जगत् की अनित्यता और परिवर्तनशीलता का वर्णन परिमल की 'पतनोन्मुख', 'शेष' तथा पन्त की 'परिवर्तन' कविता में हुआ है। निराला की 'माया तथा गोपालशरण सिंह को 'भूल भुलैया', 'अज्ञान', महादेव की 'टूट गया वह दर्पण निर्मम, रचनाओं में वेदान्त के मायावाद की झलक पूर्ण रूप से विद्यमान है। श्यामनारायण पांडेय के 'तुमुल'[१] और जयद्रथ वध[२] को युधिष्ठिर कृत कृष्ण-वन्दना में सृष्टि, ईश्वर एवं अध्यात्म तत्त्व को विशद रूप से समीक्षा की गई है। साकेत-सन्त में राजा दशरथ के दिवंगत होने पर शोक-विह्वल भरत के प्रति वशिष्ट के ज्ञानोपदेश में जीवन, मरण, आत्मा की अमरता तथा आनन्दमयता और जगत् की अनित्यता का विचार है[३]। इसी प्रकार कृष्णायन के आरोहण कांड में मैत्रेय के प्रति भगवान् कृष्ण के उपदेश में अध्यात्म तत्त्व का सम्यक् निरूपण हुआ है। संसार का स्वरूप, उसकी अनित्यता, आविर्भाव-तिरोभाव, क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ, जीव-ईश्वर, बन्धमोक्ष, जड़-चेतन, निर्गुण-सगुण, आत्म अनात्म इत्यादि विविध आध्यात्मिक विषयों का रहस्य इस प्रसंग में निरूपित है[४]। कामायनी के आनन्द सर्ग में कैलास-यात्रा के प्रसंग में श्रद्धा के प्रति मनु के उपदेश में उसी अनिर्वचनीय आध्यात्मिक ज्ञान का निर्वचन है[५]।

आधुनिक छायावादी-रहस्यवादी कवियों ने सन्त कवियों की तरह ही दार्शनिक विषयों पर काव्य रचना की है, किन्तु प्राचीन और नवीन कवियों की

१—तुमुल, पृ० ७२।
२—जयद्रथ वध इक्कीसवाँ संस्करण, पृ० १८।
३—साकेत-सन्त ५।१६-२०।
४—कृष्णायन, ८८५-९५
५—कामायनी (प्रथम संस्करण) पृ० २८७-८९।

वस्तु-प्रतिपादन शैली में महान् अन्तर है। सन्त कवि भक्त और साधक भी थे, अतएव उनकी वर्णनशैली में साधना-पक्ष उभरा हुआ दिखाई पड़ता है। आधुनिक छायावादी कवियों में साधना और रहस्यानुभूति का अभाव है। यह इनके स्वाध्याय का प्रतिफल है। प्राचीन कवियों ने दार्शनिक विषयों को विस्तारपूर्वक वर्णन किया है तथा अज्ञात के प्रति विविधि भाव-सम्बन्धों को स्थापित किया है। छायावादी कवियों ने रहस्य का वर्णन सांकेतिक रूप में किया है जिसमें वस्तु की केवल झलक मात्र दिखाई पड़ती है। सन्त कवियों की वस्तु-प्रतिपादन शैली साम्प्रदायिक तथा परम्परागत है। इसके विपरीत आधुनिक कवियों का वर्णन बहुत कुछ रूढ़ि-युक्त तथा स्वतंत्र है। आलोच्य काल के छायावादी, रहस्यवादी कवियों का अध्यात्म-वर्णन प्राचीन आवरण को हटाकर नये रूप में प्रगट हुआ है। यह पुरानी वस्तु का नया संस्कार है।

धर्म—

यह एक व्यापक विषय है। इसके अन्तर्गत लोकहित के सम्पूर्ण कार्यों का समावेश हो जाता है। वैयक्तिक साधन से लेकर लोक-मंगल तक के सब प्रयत्न इसकी परिधि में आ जाते हैं। वर्णाश्रम धर्म, कर्म-फल, पुनर्जन्म, सत्य, मैत्री, आचार, त्याग, तप, दान आदि सभी में धर्म का रूप प्रस्फुटित होता है।

बुद्ध चरित, साकेत, कामायनी, सिद्धार्थ, कृष्णायन, साकेत-सन्त, कैकेयी और कुरुक्षेत्र में इस परम्परा का विशद वर्णन है। पथिक, मिलन, यशोधरा, जौहर, तुमुल, स्वर्ण-किरण, स्वर्णधूलि में भी यह परम्परा नये रूप में विद्यमान है।

आत्म-संयम, श्रद्धा, भक्ति, प्रेम, दया, जगत् की अनित्यता, आचार, कर्मफल, पुनर्जन्म, सत्य, अहिंसा, त्याग, तप, सेवा, परोपकार, लोक-संग्रह का विशद वर्णन सिद्धार्थ[1] बुद्ध चरित,[2] साकेत-सन्त,[3] कृष्णायन, कैकेयी, कुरुक्षेत्र, पथिक मिलन में पाया जाता है। शास्त्र-धर्म, लोक-धर्म, युग धर्म, आपद्धर्म, नित्यधर्म का अनेक सुन्दर, विशद् तथा विस्तृत वर्णन कृष्णायन में मिलता है। वर्णधर्म, आश्रम धर्म, त्याग, सत्य, अपरिग्रह, इन्द्रिय, जय तथा लोक-संग्रह

१—सिद्धार्थ २९३,

२—बुद्ध चरित्र पृ० १७४

३—साकेत सन्त १३ ४०

का प्रौढ़ एवं विशद वर्णन साकेत-सन्त,[१] कामायनी[२] और कृष्णायन[३] में पाया जाता है। धर्म के व्यवहार-पक्ष में सेवा, समता, निस्वार्थता, कर्त्तव्य-परायणता का वर्णन साकेत,[४] कुरुक्षेत्र,[५] कैकेयी और पथिक[६] में बहुत अच्छा मिलता है। परम्परानुगत धर्म के सभी अंगों का वर्णन कृष्णायन में मिलता है। इच्छा, ज्ञान, क्रिया, श्रद्धा, सेवा, आनन्द का काव्यमय वर्णन कामायनी में पाया जाता है[७]। भगवद्गीता और वैदिक धर्म के विविध अंगों का वर्णन कृष्णायन के गीता कांड और स्वर्णधूलि की आर्षवाणी में पाया जाता है। नारी धर्म के अन्तर्गत पातिव्रत, तप, त्याग और आत्मोत्सर्ग का वर्णन जौहर,[८] साकेत-सन्त और यशोधरा में अंकित है।

धर्म के लोक-पक्ष को लेकर आलोच्यकालीन कविता में मानव-धर्म की प्रतिष्ठा हुई है। पथिक, मिलन और स्वप्न काव्यों में दोनों से प्रेम, पीड़ितों के प्रति सहानुभूति, सामाजिक कर्त्तव्यों का पालन, देश-सेवा, त्याग और मानव-प्रेम के आदर्श का चित्रण है। साकेत में भी लोक-हित के लिए व्यक्ति के आत्मार्पण को महत्त्व दिया गया है :—

निज हेतु बरसता नहीं व्योम से पानी,
हम हों समष्टि के लिए व्यष्टि बलिदानी।

—साकेत।

साकेतकार ने राम के चरित्र में जो उच्चादर्श स्थापित किये हैं, उनमें दीन-हीन और पीड़ितों की सेवा, लोक-हित-साधन एवं नरता में ही ईश्वरता की प्राप्ति का उद्घोष है। पहले धर्म के द्वारा स्वर्ग प्राप्ति की कामना की जाती थी, अब इसी भूतल पर स्वर्ग की प्रतिष्ठा करना धर्म है। आधुनिक युग में राष्ट्र-प्रेम, देश-भक्ति धर्म के प्रधान अंग हो गए हैं। साकेत में राम के द्वारा इसी मानवधर्म की प्रतिष्ठा करायी गई है।

१—साकेत सन्त १३।४३
२—कामायनी (प्रथम संस्करण) १६६
३—कृष्णायन पृ० ८२१
४—साकेत (द्वितीयावृत्ति) पृ० २१६
५—कुरुक्षेत्र, पृ० १०१।
६—पथिक (तेरहवाँ संस्करण) पृ० ३०-३१।
७—कामायनी, रहस्य सर्ग पृ० २६२।
८—जौहर (प्रथम संस्करण) पृ० ८६।

सन्देश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया,
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।

—साकेत

देश-प्रेम, आर्य-संस्कृति और भारतीयता की रक्षा साकेत-सन्त में भी राम को चिन्ता का विषय है। चित्रकूट से लौटते हुए भरत को राम ने यही उपदेश दिया है। कुरुक्षेत्र में दिनकर का कवि भी मानव-धर्म के प्रदीप की लौ जलाना चाहता है तथा इसी जगत में सत्य, साम्य, सेवा और शान्ति के आदर्शों का विकास चाहता है। इससे स्पष्ट है कि धर्म का प्राचीन आदर्श साम्प्रदायिक विकास चाहता है। रूढ़ियों से मुक्त होकर स्वतंत्र रूप में भी विकसित हुआ है। अब धर्म वैयक्तिक साधना की वस्तु होकर समष्टिगत न होकर समष्टिगत हो गया है। उसका स्वरूप रूढ़ियों के जाल से बहुत कुछ छूट गया है। लोक, परलोक, भाग्यवाद अन्धविश्वास तथा वाह्याडम्बरों को छोड़कर उसमें राष्ट्र-प्रेरित मानवादर्शों का विकास हुआ है। व्यवहार-पक्ष में वह स्वदेशानुराग, समाज-सुधार, साम्प्रदायिक एकता, धार्मिक सहिष्णुता, दलितोद्धार, आर्थिक समानता के कार्यों में प्रतिफलित हुआ है। समष्टि में आधुनिक धर्म का मेरुदण्ड है, मानव-प्रेम यह सब प्रकार के जाति, वर्ण, सम्प्रदाय तथा राष्ट्र की संकुचित भावनाओं से विनिमुक्त है। पन्त का गीत-विहग मानवता के स्वर में गा उठता है :—

मैं नव मानवता का सन्देश सुनाता,
स्वाधीन देश की गौरव गाथा गाता।

—पन्त (उत्तरा)

साकेत, साकेत-सन्त, पथिक, मिलन, वैदेही-वनवास, स्वर्ण किरण, उत्तरा, युगवाणी आर्यावर्त, जन नायक में धर्म का यही नया रूप प्रस्फुटित हुआ है।

निष्कर्ष यह कि परम्परा-विहित शास्त्रीय धर्म का तात्विक निरूपण मुख्यतः बुद्धचरित्र, सिद्धार्थ, कृष्णायन, साकेत-सन्त में ही पाया जाता है। अन्यत्र बहुत कम है। वस्तुतः आलोच्यकाल में शास्त्र धर्म का वर्णन बहुत कम हुआ है, किन्तु युग-धर्म का विशेष। युग के प्रभाव ने धर्म के व्यवहार-पक्ष को कहीं अधिक महत्त्व प्रदान किया है। इस कारण आधुनिक काव्यों में धर्म का अधिकतर समाज, राष्ट्र एवं सर्वोदय के स्तर पर वर्णन हुआ है। संक्षेप में परलोकवाद की भूमि को छोड़ने पर धर्म लोक-सामान्य भूमि पर प्रतिष्ठित हुआ है। यही पुराने धर्म का नया रूपान्तर है। अयोध्यासिंह, मैथिलीशरण, पन्त, प्रसाद, दिनकर,

रामनरेश त्रिपाठी, सियारामशरण के काव्यों में जीवन-सापेक्ष धर्म का नया रूप विकसित हुआ है।

नीति—

धर्म के अन्तर्गत नीति तथा उपदेश का भी स्थान है। नीति, शिक्षा एवं उपदेश धर्म के व्यवहार-पक्ष में आते हैं, क्योंकि इनमें व्यवहारोपयुक्त बातों का समावेश होता है। नाथूराम 'शंकर' के दोहों में, हरिऔध के चौपदों में, मैथिलीशरण गुप्त के 'स्वर्गीय संगीत' में और वियोगी हरि की 'वीर-सतसयी' में नीति की बातों का सुन्दर वर्णन है। प्रबन्ध काव्यों के अन्तर्गत रामचरित चिन्तामणि, कृष्णायन,[१] दैत्यवंश,[२] अंगराज,[३] रश्मिरथी,[४] कुरुक्षेत्र,[५] पथिक[६] और सिद्धराज[७] में नीति शिक्षाओं के रत्न-कण बिखरे पड़े हैं।

रामनरेश त्रिपाठी की 'द्विविधा', 'प्रेम', 'विश्व-सुषमा' आदि स्फुटिक रचनाओं में, सियारामशरण की दूर्वादल, आर्द्रा, उन्मुक्त, मृण्मयी रचनाओं में, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' की 'सत्य की उपासना', 'क्रान्ति में शान्ति', बुझा हुआ दीपक, भवानीप्रसाद की 'असाधारण' स्नेह शपथ, मुक्ति बोध की 'नूतन अहं' और 'है महान्' स्फुटिक रचनाओं में नीति एवं शिक्षा का सुन्दर वर्णन है।

काव्यों में धर्म के दो रूप मिलते हैं—एक शास्त्रीय और दूसरा व्यावहारिक। पहले में धर्म का तात्त्विक वर्णन प्रधान है, दूसरे में धर्म के वाह्य पक्ष का। युग और परिस्थिति के अनुसार धर्म के वाह्य पक्ष में सदैव परिवर्तन होता आया है। मध्यकालीन काव्य-ग्रन्थों में धर्म भक्ति के आश्रित हो गया था तथा उसमें पुराणानुमोदित रूढ़ियों एवं अन्धविश्वासों का समावेश हो गया था। मंत्र-तंत्र, जादू-टोना, ऋद्धि-सिद्धि के अद्भुत चमत्कारों को धर्म का सर्वस्व माना जाता था। अवतारवाद, परलोकवाद तथा वैयक्तिक साधना का पक्ष

१—कृष्णायन, पृ० ८१६।
२—दैत्यवंश २।२८-२६।
३—अंगराज, पच्चीसवाँ सर्ग। छंद २-५।
४—रश्मिरथी, षष्ठ सर्ग,
५—कुरुक्षेत्र, पंचम सर्ग, पृ० ११४-११५।
६—पथिक, २।१६-२०
७—सिद्धराज (प्रथम संस्करण) पृ० २७।

उससे प्रबल हो गया था। रामचरितमानस, रामचन्द्रिका तथा अन्य भक्ति काव्यों में वर्णित धर्म में इन्हीं बातों को प्रधानता दिखाई पड़ती है। भक्त कवियों ने धर्म को व्यक्तिनिष्ठ एवं भावात्मक रूप में देखा है, जिसमें परलोक, वैराग्य एवं जीवन से निवृत्ति के सिद्धांतों पर अधिक बल दिया गया है। आधुनिक युग में पौराणिक धर्म एवं विश्वास खंडित होने लगे हैं। वैज्ञानिक युग के प्रभाव से धार्मिक विश्वास हिल उठे हैं। युग के प्रभाव से आधुनिक काव्यों में से चातुर्वर्ण्य व्यवस्था परलोकवाद, अवतारवाद एवं पौराणिक विश्वास हट गये हैं। भावात्मकता का स्थान बौद्धिकता ने ग्रहण कर लिया है तथा व्यक्ति-धर्म के स्थान पर समाज-धर्म आ बैठा है। धर्म का नया रूप रूढ़ि, सम्प्रदाय और पुराणों के प्रभाव से मुक्त हो गया है। साम्प्रदायिक घेरे से निकल कर वह राष्ट्रीय धर्म हो गया है। शास्त्र की अपेक्षा अब वह जीवन से अनुप्रेरित है।

निष्कर्ष यह कि आलोच्य काल में धार्मिक विषयों की परम्परा का नया संस्कार हुआ है। इसके विकास में आधुनिक युग के शत-प्रतिशत कवियों का योगदान है। राष्ट्र-धर्म के रूप में यह सर्वमान्य हो चुका है। प्रगतिवादी कवियों ने इसे समाज-धर्म के रूप में अपनाया है, तथा प्रयोगवादी कवियों ने स्व-रति के रूप में; वस्तुतः ये मानव-धर्म के ही अवान्तर रूप हैं।

(घ) प्राकृतिक विषय

परम्परा—प्रकृति अनादि तत्त्व है। पुरुष के साथ उसका चिरकाल से सम्बन्ध है। सांख्यमत में पुरुष के उपभोग के लिए उसका सृजन हुआ है। वह पुरुष के क्रीड़ा-कलाप की मनोज्ञ रंगस्थली है। पुरुष के मनोविनोद के हेतु वह विविध रूप एवं रंगों में प्रकट होती है और अनन्त छवियाँ धारण करती है। सृष्टि के सत्-असत्, शिव-अशिव और रूप-कुरूप—सम्पूर्ण पदार्थ प्रकृति के परिणाम हैं। यह समग्र जगत् जड़-चेतन भेद से द्विविध रूप है। जड़ वर्ग में गिरि, वन, सरित्, समुद्र, चन्द्र, सूर्य, षट् ऋतु आदि आते हैं और चेतन वर्ग में जीव-जन्तु, पशु-पक्षी, नर-नारी आदि प्राणि-जात हैं। प्रकृति मानव की सहचारिणी नर्तकी के सदृश है, जो उसकी प्रीति और आनन्द के हेतु नाना रूपों में प्रकट होती है।

प्रकृति के दो भेद और हैं—सूक्ष्म और स्थूल। पहला अन्तः प्रकृति और दूसरा बाह्य प्रकृति। अन्तः प्रकृति में मन, बुद्धि और अहंकार तथा उनकी समस्त चेष्टाओं का स्थान है। इसी से जीवन के विभिन्न कार्य-व्यापार संचालित होते हैं। हर्ष-शोक, सुख-दुःख, राग-द्वेष आदि सब अन्तः प्रकृति के क्षेत्र में घटित

होते हैं। मानवीय मन की प्रवृत्तियों में रति, भय, विस्मय और करुणा का प्रमुख स्थान है। मनुष्य का मन इन्हीं से प्रेरित होकर स्व-कार्य में प्रवृत्त होता है। प्रकृति के विभिन्न रूप जब मनुष्य के सामने आते हैं, तब वे उसके हृदय को प्रेम, भय, आश्चर्य अथवा विषाद से अभिभूत कर देते हैं। प्रकृति का कोई भी पदार्थ जब ऐन्द्रिय संवेदन का विषय बनता है, तब वह राग या विराग की अनुभूति अवश्य दे जाता है। प्रकृति के कार्य विविध रूपों में प्रकट होते हैं। मनुष्य जब प्रकृति के कार्यों के निकट सम्पर्क में आता है, तब वह कभी त्रस्त और कभी उल्लसित होता है। उषा, ज्योत्स्ना, पुष्प-विकास आदि से उसके हृदय में उल्लास छा जाता है, मेघाच्छन्न आकाश, इन्द्रधनुष आदि से वह आश्चर्य-चकित होता है एवं उल्का-पात, झंझावात, वज्र-निर्घोष से वह संत्रस्त हो उठता है। इस प्रकार मनुष्य का बाह्य और आन्तरिक समग्र व्यवहार प्रकृति से ही परिचालित है। इससे सिद्ध है कि मानव और प्रकृति का प्रगाढ़ सम्बन्ध है।

वैदिक वाङ्मय में प्रकृति के विविध रूपों का दर्शन मिलता है। इन्द्र, वरुण, सूर्य, सोम, अग्नि, उषा आदि के मंत्रों में देवत्व की भावना है। उषा में सुन्दरी के धर्मों का आरोप कर अत्यन्त हृदयग्राही भावों का वर्णन किया गया है, अनेक मंत्रों में प्रकृति का आलंकारिक वर्णन है। कहीं प्रकृति को प्रतीक रूप में चित्रित किया गया है। वैदिक मंत्रों में प्रकृति के साथ पूर्ण तादात्म्य पाया जाता है। उनके लिए प्रकृति प्राणदायिनी शक्ति है। वह चैतन्य-धर्म-समन्वित है।

आदि कवि वाल्मीकि ने रामायण में प्राकृतिक विषयों का सविस्तार वर्णन किया है। उनके प्रकृति-वर्णन को आचार्य शुक्ल ने यथातथ्य शुद्ध एवं स्वतन्त्र बतलाया है। परन्तु ध्यान से देखने पर विदित होता है कि उन्होंने मानव-कथा-प्रसंगों में ही प्रकृति का उपयोग किया है। रामायण के वर्षा-वर्णन के प्रसंग में राम की विरह-व्यथा का भी उल्लेख हुआ है।[१] अन्यत्र मानव-साहचर्य में ही प्रकृति का उपयोग हुआ, किन्तु उत्तरवर्ती कवियों की तुलना में इन्होंने प्रकृति में मानवीय भावों की उद्भावना कम दिखाई है। इसी कारण वाल्मीकि का प्रकृति वर्णन अन्य कवियों की अपेक्षा अधिक शुद्ध, संश्लिष्ट एवं स्वतन्त्र माना गया है। कालिदास के प्रकृति वर्णन की यह विशेषता है कि प्रकृति मानव-क्रिया-कलापों की प्रतिच्छाया के रूप में दृष्टिगत होती है। मानव-हृदय में जो हर्ष, विषाद, करुणा, प्रेम, घृणा आदि भाव उत्पन्न होते हैं, वे ही

१—वा० रा० किष्किन्धा कांड २८।२७-२९।

कालिदास की प्रकृति में प्रतिबिम्बित दिखाई पड़ते हैं। मेघदूत में यक्ष का संदेश-वाहक मेघ अलकापुरी को जाते हुए नदी, पर्वत, वन, पुष्पों का मित्र एवं हितेच्छु चित्रित किया गया है। यही नहीं यात्रा-पथ में मेघ के लिए शुभ शकुनों की योजना भी की गई है। अनुकूल पवन उसे प्रेरणा देता है, सगर्व चातक मधुर-मधुर शब्द करता है तथा बलाकाएं गर्भाधान के सुख की इच्छा से उसकी सेवा करती हैं, क्योंकि मेघ सन्तप्तजनों का कष्ट निवारण करता है। प्रकृति मूक अवश्य है, पर वह मनुष्य के सुख-दुःख को पहचानती है तथा सुहृद का सा व्यवहार करती है। कालिदास का ऋतु-वर्णन भी सजीव है। ऋतुएं उनके लिए जीवित अनन्त प्राणियों में अन्यतम हैं। मनुष्यों के प्रति उनमें सौहार्द तो है ही, उनके माध्यम से हर्ष व प्रेम की अत्यन्त विशद अभिव्यक्ति भी दिखाई पड़ती है। किन्तु उत्तर कालीन संस्कृत के काव्यों में प्रकृति-वर्णन की यह परम्परा लुप्त-सी हो गई है। प्रकृति का उपयोग अप्रस्तुत-विधान के रूप में अधिकता से होने लगा है। श्रीहर्ष के नैषध में प्रभात, सन्ध्या आदि के वर्णनों में अलंकारों की खिलवाड़ ही दिखाई पड़ती है।[१] संक्षेप में संस्कृत कवियों का प्रकृति-वर्णन तीन रूपों में पाया जाता है—

(१) प्रकृति का यथातथ्य वर्णन।

(२) प्रकृति में मानवीय भावों का आरोप।

(३) प्रकृति का अलंकार विधान के रूप में विनियोग।

वाल्मीकि रामायण आदि महाकाव्य है। उसी के आधार पर महाकाव्य के लक्षणों का निर्माण हुआ है। संस्कृत के उत्तरवर्ती महाकाव्यों में इसी आधार पर प्रकृति का वर्णन हुआ है। काव्य शास्त्र की परम्परा का पालन करने के लिए ही इन कवियों ने प्रकृति का वर्णन किया है। इसी से भारवि, माघ, श्रीहर्ष आदि कवियों के प्रकृति वर्णन में वह नैसर्गिकता नहीं, जो वाल्मीकि, अश्वघोष तथा कालिदास के महाकाव्यों में पाई जाती है। प्रकृति के अंग-प्रत्यंगों का इन कवियों ने सूक्ष्म निरीक्षण किया है, इसके विविध रूपों के साथ हृदय का रागात्मक सम्बन्ध स्थापित किया है तथा उसको शुद्ध, सचेतन सत्ता के रूप में ग्रहण किया है। इसीलिए उनके काव्यों में प्रकृति अपने विशुद्ध रूप में मानवीय चेतना से थिरकती हुई दृष्टिगोचर होती है। उनके काव्यों में अन्तः प्रकृति और वाह्य प्रकृति में पूर्ण समता हो गई है। प्रकृति का ऐसा शुद्ध वर्णन परवर्तीकाल की रचनाओं में नहीं दिखाई पड़ता। माघ और नैषधकार का

१—नैषध २२।२७ तथा १६।६।

प्रकृति वर्णन इसके सामने कृत्रिमतापूर्ण-सा लगता है। उसमें काव्य शास्त्र की परम्पराओं के निर्वाह का सचेष्ट प्रयत्न है। अथवा कल्पना शक्ति का अवांछित प्रदर्शन है। मुक्तक रचनाओं में भी इसी प्रवृत्ति का अनुसरण किया गया है।

'काव्य कल्पलता वृत्ति', 'कवि कल्पलता' आदि कवि शिक्षा की अनेक पुस्तकों में वस्तु-वर्णन की परम्परानुगत बातों का परिगणन कर दिया है। पीछे के कवियों ने कवि-सम्प्रदाय में प्रचलित इसी प्रणाली को आधार बनाकर प्रकृति-वर्णन के नाम पर वस्तु-परिगणन मात्र कर दिया है, इस कारण इसमें प्रकृति की ओर स्वाभाविक अनुराग दिखाई नहीं पड़ता। यदि किसी ने प्रकृति का वर्णन किया है तो उसमें केवल रूढ़िगत बातों का ही निर्वाह किया गया है।

संस्कृत-साहित्य के पतन-काल में हिन्दी-साहित्य का प्रादुर्भाव होता है। अतएव संस्कृत-साहित्य की परम्पराओं का अनुवर्तन हिन्दी साहित्य में भी होने लगता है। वीरगाथा काल से लेकर आधुनिक काल तक प्रबन्ध काव्यों में प्रकृति-वर्णन की प्रायः उन्हीं परम्पराओं का अनुसरण होता आया है जो संस्कृत-साहित्य में प्रचलित थीं। केशव की 'कवि-प्रिया' कविशिक्षा की प्रसिद्ध पुस्तक है। संस्कृत की 'कवि कल्पलता' आदि पुस्तकों के आधार पर ही इसकी रचना हुई है। कवि-सम्प्रदाय और काव्य-परम्परा की समस्त बातों का इसमें विस्तृत वर्णन है। रीतिकाल के कवियों ने प्रायः इन्हीं बातों का अनुसरण किया है। इससे सिद्ध है कि संस्कृत के काव्य-शास्त्र और कवि-शिक्षा के ग्रन्थ हिन्दी के आचार्य तथा कवियों के भी उपजीव्य हो गए।

हिन्दी-साहित्य के प्रारंभिक युग में प्रकृति की ओर से कवियों का ध्यान छूट-सा गया था। उस युग के कवि राजा-महाराजाओं के आश्रित थे। वे अपने आश्रयदाताओं के बल-विक्रम और पौरुष का गौरव-गान करने में ही अपने कर्तव्य की इतिश्री समझते थे। प्रकृति के सौन्दर्य की ओर आँख उठाने का उन्हें अवकाश ही नहीं था। यदि काव्यों के बीच कहीं प्रकृति-वर्णन आया भी है तो वह रूढ़ि मात्र है। उसमें हृदय का योग नहीं है।

निर्गुणमार्गी सन्त कवियों की रहस्यात्मक बानियों में कहीं-कहीं प्रतीकात्मक शैली के आवरण में प्रकृति का वर्णन मिलता है। अन्यत्र वे प्रकृति की ओर से उदासीन ही हैं। कबीर की रचनाओं में प्रकृति सचेतन है, पर उस पर रहस्य का पर्दा पड़ा हुआ है—

> काहे री नलिनी तू कुम्हिलानी,
> तेरे ही नाल सरोवर पानी।

इस पद में 'नलिनी' जीवात्मा का और 'पानी' ब्रह्म का प्रतीक है,

जायसी ने भी अपने काव्य में प्रकृति के रूप में परमतत्त्व का ही दर्शन किया है। इसके अतिरिक्त अलंकार विधान में भी उन्होंने प्रकृति का उपयोग किया है।

सूरदास एवं अष्टछाप के अन्य कवियों की रचनाओं में प्रकृति को यथेष्ट स्थान मिला है, क्योंकि उनके उपास्य राधा-कृष्ण की लीला-भूमि वृन्दावन थी, जहाँ प्राकृतिक दृश्यों का आधिक्य है। कृष्ण की रास-क्रीडा, गो-चारण आदि का केन्द्र यमुना-पुलिन, वन-उपवन, करीलकुंज, कदंव-वृक्ष, गिरि गोवर्धन आदि ही तो हैं। परन्तु सूर ने प्राकृतिक सामग्री का उपयोग राधा-कृष्ण के संयोग एवं विप्रलंभ शृंगार के उद्दीपन के रूप में ही किया है। स्वतंत्र रूप से प्रकृति का वर्णन सूर के काव्य में कहीं पर नहीं है। परवर्ती कवियों ने भी नायक-नायिकाओं के रतिभाव को उद्दीप्त करने के लिए ही प्रकृति का उपयोग किया है। इसके अतिरिक्त अष्ट छाप के कवियों के अप्रस्तुत-विधान में भी व्रज का प्राकृतिक वैभव छलका पड़ता है।

तुलसी के काव्यों में प्रकृति का क्षेत्र बहुत ही व्यापक है। उन्होंने राम-कथा के भीतर वन, वाटिका, सर, सरिता, ऋतु, पर्वत, समुद्र आदि विविध दृश्यों का स्वतंत्रतापूर्वक वर्णन किया है। यद्यपि उन्होंने प्रकृति का आलम्बन के रूप में भी चित्रण किया है, तथापि उसमें राम-कथा का प्रभाव ही अधिक झलकता है। फिर भी प्रकृति के स्वतंत्र वर्णन में कवि का हृदय रमता हुआ दिखाई पड़ता है। पुष्प-वाटिका, चित्रकूट आदि ऐसे ही वर्णन हैं। किन्तु उनका प्रकृति-वर्णन अधिकतर मानवीय कथा प्रसंग के ही अन्तर्गत है। सीताहरण के पश्चात् कवि ने प्रकृति का उपयोग अधिकतर विरह के भावों को उद्दीप्त करने के लिए किया है। तुलसी के वर्षा और शरद वर्णन में मानव-जीवन के अमूल्य उपदेशों का अनुसंधान किया गया है। अलंकार विधान में तो प्रकृति का उपयोग सर्वत्र ही मिलता है। लंकाकांड के प्रारम्भ में राम के विश्व-रूप वर्णन में प्रकृति के पदार्थों में परम तत्त्व का वर्णन मिलता है।

पद पाताल सीस अज धामा। अपर लोक अँग अँग विश्रामा॥
भृकुटि विलास भयंकर काला। नयन दिवाकर कच घन माला॥
जासु घ्रान अस्विनी कुमारा। निसि अरु दिवस निमेष अपारा॥
श्रवन दिसा दस वेद वखानी। मारुत स्वास निगम निज वानी॥

तुलसी ने अन्तः प्रकृति के चित्रण में भी सूक्ष्म निरीक्षण का परिचय दिया है। मानस के विविध पात्रों के चरित्र-चित्रण में उनका यह कौशल सर्वत्र दिखाई पड़ता है।

रीति कालीन कविता में शृंगारिक रचनाओं का बाहुल्य है। इसी से इसे शृंगार-काल भी कहा जाता है। इस काल के कवि स्वभावतः प्रकृति की ओर उन्मुख नहीं हुए। जिन कवियों ने प्रकृति-वर्णन किया भी है, वह परम्परानुगत है। शृंगार के अन्तर्गत प्रकृति से भावोद्दीपन का काम लिया गया है। इसके अतिरिक्त अलंकार विधान में भी प्रकृति का उपयोग हुआ है। सेनापति का ऋतु-वर्णन सबसे भिन्न है। उन्होंने प्रकृति का सूक्ष्म एवं स्वतंत्र रूप से चित्रण किया है।

भारतेन्दु युग के कवियों ने प्रकृति-वर्णन की ओर बहुत कम ध्यान दिया है। भारतेन्दु जी मानव प्रकृति के चितेरे थे। उनकी रचनाओं में स्वतन्त्र प्रकृति-वर्णन को कहीं भी स्थान नहीं मिला है। उन्होंने जो थोड़ा-बहुत प्रकृति-वर्णन किया है, वह अलंकार-विधान एवं शृंगार को उद्दीपन-सामग्री के रूप में ही है। इसी प्रकार द्विवेदी युग के कवियों का भी प्रकृति की ओर ध्यान नहीं है। केवल श्रीधर पाठक इसके अपवाद हैं। उनकी रचनाओं में प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण स्वतन्त्र रूप में मिलता है। उनकी वर्णन शैली भी संश्लिष्ट एवं चित्रोपम है। घन-विनय, काश्मीर-सुषमा एवं हिमालय-वर्णन में प्रकृति सजीव-साकार हो उठी है।

निष्कर्ष यह है कि हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत पाँच रूपों में प्रकृति का वर्णन पाया जाता है—

(१) प्रकृति का शुद्ध एवं स्वतन्त्र रूप में वर्णन
(२) शृंगार के अन्तर्गत उद्दीपन के रूप में वर्णन
(३) अलंकार-विधान के रूप में वर्णन
(४) धार्मिक एवं नैतिक उपदेशों के रूप में वर्णन
(५) प्रकृति में आत्म-दर्शन

आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रकृति वर्णन—

आलोच्य काल के नीचे लिखे काव्यों के आधार पर प्राकृतिक विषय-वर्णन की परम्परा का अध्ययन किया है।

(१) क—महाकाव्य—बुद्ध चरित, साकेत, नल नरेश, कामायनी, नूरजहाँ, सिद्धार्थ, वैदेही बनवास, हल्दीघाटी, दैत्यवंश, आर्यावर्त, कृष्णायन, साकेत-सन्त, विक्रमादित्य।

ख—खंड काव्य—मौर्य विजय, जयद्रथ वध, पंचवटी, सिद्धराज, पथिक, मिलन, स्वप्न, कुणाल, कुरुक्षेत्र, रश्मिरथी, जौहर, नकुल, प्रणवीर प्रताप।

(२) मुक्तक—पल्लव, गुंजन, स्वर्ण किरण, स्वर्णधूलि, ग्राम्या, परिमल, झरना, अनामिका प्रभातफेरी, ठंडा लोहा, धूप के धान, तारसप्तक, दूसरा सप्तक।

काव्य में पाये जाने वाले प्राकृतिक विषयों को कविप्रिया के आधार पर दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—स्थान-वर्णन और काल-वर्णन।

स्थान सम्बन्धी प्राकृतिक विषयों के अन्तर्गत देश, नगर, ग्राम, गिरि, वन-उपवन, आश्रम, समुद्र, सरोवर, नदी आदि का वर्णन आता है[१] तथा काल सम्बन्धी विषयों में चन्द्र, सूर्य, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर, अष्टयाम और बारहमासा आदि का वर्णन किया जाता है। आलोच्यकाल के उपर्युक्त प्रबन्ध काव्यों में इन सभी वस्तुओं का वर्णन पाया जाता है। आधुनिक काल की मुक्तक रचनाओं में इन विषयों का वर्णन सर्वथा नये रूप में दिखाई पड़ता है। प्राकृतिक विषयों के वर्णन में कहीं शत-प्रतिशत परम्परानुगत मार्ग का अवलम्बन किया गया है, कहीं आधुनिक युग के अनुकूल नया रूप प्रदान किया गया है और कहीं परम्परानुगत मार्ग का सर्वथा परित्याग कर दिया गया है।

(१) प्राकृतिक विषयों का शुद्ध व स्वतन्त्र रूप में वर्णन—आलोच्यकाल में वैज्ञानिक प्रगति एवं बौद्धिक चेतना के उद्‌बुद्ध हो जाने के कारण कवियों का ध्यान शुद्ध व स्वतन्त्र प्रकृति-वर्णन की ओर अधिक जाने लगा है। इसका बहुत बड़ा कारण अंगरेजी साहित्य का प्रभाव है। महावीर प्रसाद द्विवेदी, श्रीधर पाठक, हरिऔध आदि कवियों ने प्रकृति का शुद्ध व स्वतन्त्र रूप में वर्णन किया है। इनके बाह्य प्रकृति के चित्रण में प्रकृति के सूक्ष्म व्यापारों का यथातथ्य वर्णन है जिससे उनकी प्रकृति पर्यवेक्षण की दूरगामिनी दृष्टि का परिचय मिलता है। 'प्रिय प्रवास' के प्रारम्भ में ही सन्ध्या के वर्णन में आकाश की अरुणाभा, तरु-शिखरों की लालिमा, खग-वृन्द के कलरव, दिशाओं की शोभा, सरित-सरोवर की छटा, पृथ्वी की हरीतिमा आदि का अत्यन्त चित्रोपम शैली में सांगोपांग चित्र उतारा गया है। नवें सर्ग में उद्धव की ब्रज-यात्रा के प्रसंग में कवि ने प्राकृतिक दृश्यों की शोभा का वर्णन शुद्ध व स्वतन्त्र रूप में ही किया है किन्तु कहीं-कहीं नाम परिगणन की शैली से ही काम लिया गया है—

१—देखिये कविप्रिया पृ० ७।१

"जम्बू अम्ब कदम्ब निम्ब फलसा जम्बीर और आँवला।
लीची दाडिम नारिकेल इमली और शिंशपा इंगुदी।
नारंगी अमरूद बिल्व बदरी सागौन शालादि भी।
श्रेणी बद्ध तमाल ताल कदली औ शाल्मली ये खड़े॥"

'प्रिय प्रवास' में वर्णित वर्षा एवं वसन्त के चित्रों में भी प्रकृति का शुद्ध व स्वतन्त्र रूप मिलता है।

'वैदेही-वनवास' में प्रकृति-चित्रण का बाहुल्य है। प्रथम सर्ग का उषा वर्णन, पंचम सर्ग का सन्ध्या वर्णन, अष्टम सर्ग का प्रभात वर्णन, चतुर्दश सर्ग का वसन्त वर्णन कवि की सूक्ष्म प्रकृति-निरीक्षण-शक्ति के परिचायक हैं। वशिष्ठ और वाल्मीकि के आश्रम एवं विन्ध्याचल कथा-वस्तु के अंग बनकर आए हैं। इस काव्य में कवि ने कथा-वस्तु की पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृति का चित्रण कर बिलकुल नई दिशा दिखलाई है। इससे कथा-प्रसंग एवं घटनाओं को विकसित करने में प्रकृति भी योग देती हुई दिखाई पड़ती है। 'वैदेही वनवास' के प्रायः हर एक सर्ग में प्रकृति को कथा-वस्तु का पृष्ठाधार बनाकर उचित वातावरण का निर्माण किया गया है, जिससे प्रकृति घटनाओं के विकास में गहरा रंग देने में सहायक हुई है।

'साकेत' के प्रथम सर्ग के सूर्योदय वर्णन में, पंचम सर्ग के वन-मार्ग और पंचवटी के वर्णन में एवं दशम सर्ग के प्रभात वर्णन में शुद्ध व स्वतन्त्र पद्धति का अनुसरण किया गया है। गुप्त जी ने अधिकतर मानव-साहचर्य में ही प्रकृति का वर्णन किया है। प्रकृति सर्वत्र हर्ष एवं उल्लास में थिरकती हुई दिखाई पड़ती है—

आओ कलापि निज चन्द्रकला दिखलाओ,
कुछ मुझसे सीखो और मुझे सिखलाओ।
गाओ पिक, मैं अनुकरण करूँ, तुम गाओ,
स्वर खींच तनिक यों उसे घुमाते जाओ।
शुक पढ़ो, मधुर फल प्रथम तुम्हीं ने खाया,
मेरी कुटिया में राजभवन मनभाया।

ऐसा प्रतीत होता है, प्रकृति का सम्पूर्ण वातावरण हर्षोन्मत्त है तथा शुक, पिक, मयूरादि मानव-चेतना को आनन्द से पूरित करने में सहायता दे रहे हैं।

'कामायनी' आशा सर्ग के उषा वर्णन में तथा आनन्द सर्ग के कैलास एवं मानस वर्णन में प्रकृति को सहज सुन्दर रूप में चित्रित किया गया है। कवि ने प्रकृति वर्णन की परम्परा को नया रूप-रंग दिया है। प्रसाद जी की प्रकृति

मानवीय चेतना से स्पन्दित है। उषा जयलक्ष्मी के समान उदित होती है। प्रकृति हँसती है, आलोक बिखरता है, पराग क्रीडा करता है, वनस्पतियाँ जगती हैं, लहरें अँगड़ाई लेती हैं एवं धरा-वधू मानवती नायिका का रूप धारण करती है। इसके अतिरिक्त उषा का आगमन शनैः शनैः क्रमबद्ध अवस्थाओं के आधार पर होता है। इधर उषा प्रकट होती है, उधर रात्रि का अन्धकार तिरोहित होता है। इसके पश्चात् सृष्टि में नया विकास होता है, फिर आतप के प्रभाव से हिम का आवरण हटता है, फिर पेड़-पौधों में नई स्फूर्ति दृष्टिगोचर होती है, साथ-ही समुद्र में लहरें उठने लगती हैं। प्राकृतिक वस्तुओं के क्रमिक वर्णन की ओर कवि ने पूर्ण रूप से ध्यान दिया है, जिससे समस्त वर्णन में एकरूपता आ गई है। इसी प्रकार कैलास वर्णन में प्रकृति का स्वच्छ, रमणीय एवं चेतना-समन्वित रूप दृष्टिगोचर होता है, प्रकृति का कण-कण जीवित-जाग्रत है तथा आनन्दोल्लास से परिप्लुत है। कवि ने प्रकृति पुरुष में एकात्मता करके अभेद-दर्शन की स्थापना की है। पुरुष के सान्निध्य से ही प्रकृति प्राणवन्त है—

समरस थे जड़ या चेतन, सुन्दर साकार बना था;
चेतनता एक विलसती, आनन्द अखंड घना था।

प्रसाद के प्रकृति वर्णन में परम्परा को नया रूप मिला है। उन्होंने प्रकृति में नये सिरे से प्राण संचार किया है, जिसमें चेतना का संगीत है, भावों की समन्विति है और रूपों की चित्रोमता है।

'नूरजहाँ' में शुद्ध व स्वतंत्र प्रकृति वर्णन की छटा दिखाई पड़ती है। प्रथम सर्ग के यात्रा वर्णन और सोलहवें सर्ग के ग्राम वर्णन में कवि ने गाँवों की यथातथ्य स्थिति का वर्णन किया है। किसानों का अलाव पर बैठना, मिट्टी के घर, मिट्टी के दीपक, चरखा चलाना, सूत कातना, पंचायत करना, चौपाल का दृश्य, खेतों में अरहर के कल्ले फूटना, सरसों का फूलना, हिरन खुरी, पोलंगा आदि के वर्णन द्वारा कवि ने ग्राम्य वातावरण प्रस्तुत किया है। स्थानीय बातों के वर्णन (local colouring) ने कवि के प्रकृति प्रेम को गहरा रंग दिया है। इसमें स्वदेशानुराग की झलक भी पाई जाती है।

सिद्धार्थ,[१] विक्रमादित्य,[२] दैत्यवंश[३] और अंगराज[४] में चन्द्रोदय और

---

१. सिद्धार्थ ११४-१५,
२. विक्रमादित्य १८२,
३. दैत्यवंश १२।१-५,
४. अंगराज-चतुर्दश सर्ग,

सन्ध्या वर्णन स्वतंत्र रूप में हुआ है। दैत्यवंश के अष्टदश सर्ग का गिरि-वर्णन, कृष्णायन में रैवतक का वर्णन, बुद्ध चरित का हिमालय वर्णन, अंगराज के चौथे सर्ग का महेन्द्राचल वर्णन शुद्ध प्रकृति वर्ण के अन्तर्गत है। हल्दीघाटी में हल्दीघाटी पर्वत का स्वतंत्रता की वलिवेदी के रूप में चित्रण है। इसमें त्याग, वलिदान और स्वतंत्रता का महत्त्व अंकित है। इसमें राष्ट्रपिता एवं मातृभूमि के गौरव का भाव अधिक है। इस वर्णन में परम्परा को नया विकास मिला है। बुद्ध चरित्र के छठे सर्ग में, नूरजहाँ के पाँचवें सर्ग में दैत्यवंश के अष्टादश सर्ग में, साकेत-सन्त के दशम सर्ग में, सिद्धार्थ के चौदहवें सर्ग में, वैदेही बनवास के सप्तदश सर्ग में स्वतंत्र पद्धति पर वनों का वर्णन पाया जाता है। नदी-सरोवर, समुद्र, उपवन एवं ऋतुओं का स्वतंत्र वर्णन नूरजहाँ,[५] सिद्धार्थ,[६] वैदेही वनवास,[७] विक्रमादित्य,[८] दैत्यवंश,[९] साकेत-सन्त[१०] कृष्णायन,[११] हल्दी घाटी,[१२] बुद्ध चरित,[१३] और आर्यावर्त,[१४] में मिलता है। इसी प्रकार मौर्य-विजय, जयद्रथ वध, पंचवटी, रश्मिरथी, पथिक, मिलन, स्वप्न आदि काव्यों में भी प्रकृति का शुद्ध एवं स्वतंत्र रूप में वर्णन मिलता है।[१५]

प्रकीर्ण रचनाओं में पंत की 'प्रथम रश्मि,' नौका विहार, एक तारा, छाया, संध्या, चाँदनी, वसन्त श्री, बादल, हिमाद्रि, निराला की वासन्ती, सन्ध्या सुन्दरी, प्रथम प्रभात, प्रपात के प्रति, भारत भूषण की 'वह पहाड़ी साँझ, धूरा प्रभात, भवानी प्रसाद की मंगल वर्षा, रघुवीर सहाय की सायंकाल, वसन्त, नरेश कुमार की उषस्, गिरिजा कुमार की 'रुककर जाती हुई रात', 'क्वार की दोपहरी', माचवे की वसन्तागम, वृष्टि, राम विलास की प्रत्यूष के पूर्व, कतकी,

---

५. नूरजहाँ पृ० ८०
६. सिद्धार्थ पृ० ६८
७. वैदेही वनवास ११।१२
८. विक्रमादित्य पृ० १६६
९. दैत्यवंश १८।२३
१०. साकेत-सन्त १३।७-१३
११. कृष्णायन पृ० २५१
१२. हल्दी घाटी पृ० १७६-७७
१३. बुद्ध चरित पृ० १०२
१४. आर्यावर्त—तृतीय सर्ग
१५. मौर्य विजय—द्वितीय सर्ग

अज्ञेय की उषःकाल की भव्य शान्ति, 'भादों की उमस' में प्रकृति के स्वच्छन्द रूप के दर्शन मिलते हैं।

आलोच्यकाल में प्राकृतिक विषयों के वर्णन की परम्परा का बहुत अच्छा विकास हुआ है। प्रबन्ध काव्यों में तो यह परम्परा अत्यन्त सुन्दर रूप में मिलती ही है; प्रकीर्ण रचनाओं में इसका रूप और अधिक प्रस्फुटित हुआ है। युग और परिस्थिति के अनुकूल इस परम्परा का नया संस्कार भी हुआ है। प्राकृतिक क्षेत्र के नये-नये विषयों की ओर कवियों का ध्यान गया है, जिससे वस्तु वर्णन का विस्तार हुआ है। प्रकृति को सूक्ष्म रूप में चित्रित करने की दिशा में कवियों को अत्यधिक सफलता प्राप्त हुई है। साथ ही प्रकृति को मानवीय सुख-दुःख, विरह-मिलन की अनुभूतियों से अनुरंजित करके चित्रित किया गया है। यद्यपि इससे शुद्ध प्रकृति वर्णन को क्षति पहुँची है, तथापि यह परम्परा के अनुकूल नया विकास ही माना जायगा। इसके अतिरिक्त प्रकृति के माध्यम से मातृ-भूमि की विविध रूपों में झाँकी कराई गई है। प्रबन्ध काव्यों में विविध कथा-प्रसंगों के पृष्ठधारा के रूप में भी प्रकृति का चित्रण पाया जाता है। कहीं-कहीं अन्तः प्रकृति और वाह्य प्रकृति में एकरूपता स्थापित की गई है। इससे सिद्ध है कि आलोच्य काल में स्वतंत्र प्रकृति वर्णन की परम्परा का विविध रूपों में विकास हुआ है। पर प्रयोगवादी कवियों की रचनाओं में प्रकृति का शुद्ध एवं स्वतंत्र रूप में वर्णन बहुत कम मिलता है। जो थोड़ा-बहुत मिलता है, वह तथ्य-संग्रह मात्र है। उसमें प्रकृति के साथ रागात्मक सम्बन्ध का अभाव है। प्रकृति का विशुद्ध वर्णन न कर उसमें अधिकतर मानवीय भावों का आरोप कर दिया गया है। निष्कर्ष यह है कि प्रबन्ध काव्य छायावादी काव्य रचनाओं में इस परम्परा का युग और परिस्थित के अनुकूल सुन्दर विकास हुआ है, किन्तु प्रगतिवादी एवं प्रयोग-वादी रचनाओं में इसका ह्रास दिखाई पड़ता है।

(२) **प्रकृति में मानवीय भावों का आरोप**—कवि-हृदय संवेदनशील होता है। वह विविध प्रकार के भावों की क्रीड़ा-भूमि है। कवि जब प्रकृति के नाना पदार्थों पर दृष्टि डालता है, तब वह सर्वथा निर्लिप्त नहीं रहता। उसके मन का वस्तुओं के साथ तादात्म्य हो जाना बहुत ही स्वाभाविक है। प्रकृति का सर्वथा शुद्ध एवं तटस्थ भाव से वर्णन करना सबके लिये संभव नहीं होता। इसी कारण प्रकृति का शुद्ध वर्णन बहुत थोड़े कवियों ने ही किया है। मानवीय सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, भय-विस्मय आदि भावों को उद्दीप्त करने के लिये ही अधिकतर प्रकृति का उपयोग हुआ है। हिन्दी साहित्य के आदि काल से ही यह प्रवृत्ति चली आ रही है।

शृंगार रस की उद्दीपन-सामग्री के रूप में प्रकृति का वर्णन सबसे अधिक हुआ है। चन्द्र, चन्द्रिका, दक्षिण पवन, पक्षियों का कलरव, एकान्त स्थल, पुष्प-वाटिका लता-कुंज, भ्रमरों का गुंजन, कोकिल का गान, पपीहा की पुकार एवं ऋतुओं आदि का उद्दीपन के रूप में वर्णन होता है। ये पदार्थ संयोग दशा में आनन्द बढ़ाते हैं, किन्तु वियोग की अवस्था में दुःख देते हैं। इस प्रकार शृंगार के उभय पक्षों में रति-भाव को उद्दीप्त करने के लिये प्राकृतिक वस्तुओं का वर्णन चिरकाल से होता आया है। प्रबन्ध, मुक्तक एवं गीत-काव्यों में सर्वत्र इसी परम्परा का प्राधान्य दिखाई पड़ता है।

पृथ्वीराज रासो में नायक कन्नौज जाने के लिए उद्यत है। बसन्त का समय है। रानी पति को बाहर जाने से रोकती है—

> मनरि अंब फुल्लिग कदंब रयनी दिघ दीसं।
> भंवर भाव भुल्ले भ्रमंत मकरंदव सीसं।
> बहृत बात उज्जलति मौर अति विरह अगिनि किय।
> कुहकुहंत कलकंठ पत्र राषस रति अग्गिय।
> पथ लग्गि प्रान पति वीनवौं नाह नेह मुझ चित धरहु।
> दिन दिन अवद्धि जुव्वन घटै कंत बसंत न गम करहु॥

पृथ्वीराज रासो, ६१।१०

जायसी का 'बारह मासा' बहुत प्रसिद्ध है। इसमें नागमती के साथ समस्त प्रकृति रोती है। सूर-रचित भ्रमर गीत में प्रकृति का कण-कण चिन्ता, विषाद, दैन्य एवं स्मृति-जन्य खिन्नता से उच्छ्वसित है। रीति काल के कवियों में यह प्रवृत्ति चरम सीमा को पहुँच गई है।

आधुनिक काल में प्रिय प्रवास की राधा, वैदेही वनवास की सीता, साकेत की उर्मिला, कामायनी की श्रद्धा, नूरजहाँ की अनारकली, अंगराज की कर्ण-पत्नी, सिद्धार्थ की यशोधरा, दैत्यवंश की उषा, साकेत-सन्त की मांडवी, नल-नरेश की दमयन्ती, विक्रमादित्य की ध्रुवदेवी, कृष्णायन की गोपियाँ, कुणाल की तिष्यरक्षिता और यशोधरा की गोपा के विरह-मिलन के प्रसंगों में रति-भाव को उद्दीप्त करने के लिये प्रकृति का वर्णन किया गया है। प्रबन्ध काव्यों में परम्परानुगत पद्धति के आधार पर ही चन्द्रोपालंभ की योजना की गई है तथा दूत के रूप में भ्रमर, चन्द्र, पवन, हंस आदि को नियुक्त किया गया है। नल-नरेश में चन्द्रमा को लक्ष्य कर दमयन्ती अपनी सखियों से कहती है—"हे सखियो, इस कलंकी चन्द्रमा को कौन सुधाकर कहता है? मुझको तो यह अग्नि

का महान् गोला-सा दिखाई पड़ता है। इसकी जो किरणें चन्द्रिका को प्रफुल्लित करती हैं, वे मेरे लिये अंगार क्यों बरसाती हैं।[१]

साकेत और वैदेही वनवास में भी 'ओषधीश' और 'सिता' के प्रति उपालंभ दिये गये हैं। सिद्धार्थ में हंस का, नूरजहाँ में मलयानिल का, मधुपुरी में भ्रमर का, रावण महाकाव्य में चन्द्रमा का और दैत्यवंश और नल-नरेश में हंसों का दूत के रूप में वर्णन है।

प्रकीर्ण रचनाओं में भी इस परम्परा का अच्छा विकास हुआ है। पंत का कवि प्रकृति की निरूपम भंगिमाओं में विविध मानवीय भावों की झलक देखता है—उसे अम्बुधि के जल में अथाह सौन्दर्य, आकाश की स्वच्छता में आनन्द, चाँदनी में अपना भोलापन, बादलों के गर्जन में मधुर वार्तालाप, लहरों में कल्पना, वृक्षों की छाया में विषाद, नदी की गति में प्यास और अन्धकार में भयानक उन्माद दिखाई पड़ता है।

अम्बुधि के जल में अथाह छवि, अम्बर में उज्जवल आह्लाद,
ज्योत्स्ना में अपनी अजानता, मेघों में उदार सम्वाद।
विपुल कल्पनायें लहरों में, तरु-छाया में विरह-विषाद,
मिली तृषा सरिता की गति में, तम में अगम गहन उन्माद।

—अनंग

इसी प्रकार वह सुमनों के हास में, तुहिन अश्रु में, मौन-मुकुल में, अलि-गुंजन में, इन्द्र-धनुष में, जलद-पंख में, खद्योतों की चमक में, शिशु की स्थिति में—एक भावना, एक रागिनी, एक प्रकाश देखता है।

'यमुना के प्रति' कविता में निराला को अतीत की आकुल तान सुनाई पड़ती है। बीते हुये गौरवमय युग के सुखों की स्मृति कवि के हृदय को उत्पीड़ित करती है। यमुना को देखकर उसका हृदय विषाद-ग्रस्त हो उठता है। कहाँ ये आमोद-प्रमोद और कहाँ ये अवसाद-विषाद!

यमुने तेरी इन लहरों में, किन अधरों की आकुल तान,
पथिक-प्रिया सी जगा रही है, उस अतीत के नीरव गान।

महादेवी को प्रकृति की सम्पूर्ण वस्तुओं पर विषाद का आवरण पड़ा हुआ दिखाई पड़ता है। प्रकृति का प्रत्येक परमाणु उनके लिये आन्तरिक पीड़ा को अभिव्यक्ति दे रहा है—

१—नल-नरेश ५।१२

जलते नभ में देख असंख्यक,
स्नेह-हीन नित कितने दीपक,
जलमय सागर का उर जलता,
विद्युत ले घिरता है बादल।

—महादेवी

'चांद-सितारो मिलकर गाओ', 'चांद सितारो मिलकर रोओ'—दोनों कविताओं में बच्चन का कवि विरह-मिलन के भावों की अनुभूति में तन्मय हो उठता है। 'तुम तूफान समझ पाओगे' कविता में कवि विक्षुब्ध हृदय से गा उठता है—

गन्ध भरा यह मन्द पवन था,
लहराता इससे मधुवन था,
सहसा इसका टूट गया जो,
स्वप्न महान समझ पाओगे ?
तुम तूफान समझ पाओगे ?

—बच्चन।

'शरद सी तुम कर रही होगी कही शृंगार' कविता में शिव मंगल सिंह सुमन को दुःख एवं नैराश्य की झलक दिखाई पड़ती है—

सुलगता आकाश, धरती पुलकमाना,
आज हरियालो गई पथ भूल।
हृत उमंगों का भला कोई ठिकाना,
खो गई सरि, खो गये दो कूल।

—शिवमंगल सिंह 'सुमन'

बसन्त प्राणों में नवजीवन डालता है। उसे देखकर हरवाये गा उठते हैं। सबका हृदय आशा से थिरक उठता है।

गारे गा हरवाये दिल चाहे वही तान
खेतों में पका धान
मंजरियों में फैला आमों का गंध ध्यान
आज बने हैं कल के ज्यों निशान,
फूलों में फलने के हैं प्रमाण !

—माचवे।

'अज्ञेय' को सावन के मेघ देखकर ऐसा प्रतीत होता है, मानो भूमि और मेघ प्रणय-मिलन में निरत हों। यह दृश्य देखकर कवि का हृदय वासना से उद्दीप्त हो उठता है।

घिर गया नभ, उमड़ आये मेघ काले
भूमि के कम्पित उरोजों पर झुका-सा
विशद, श्वासाहत, चिरातुर
छागया इन्द्र का नील वक्ष
वज्र सा, यदि तड़ित से झुलसा हुआ सा।

—सावन-मेघ (अज्ञेय)

'जाड़े की शाम' में भारती थके हुए जीवन का अवसाद देखता है। शोषित-पीड़ित व्यक्ति की सन्ध्या 'मनहूस' दिखाई पड़ती है—

कोहरे की पाँखें फैलाती
मँडराती
यम की चिड़ियाँ सी
धीमे-धीमे
उतरी आती
यह जाड़े की मनहूस शाम।

—धर्मवीर 'भारती'

आलोच्य काल के प्रबन्ध, मुक्तक एवं प्रगीत-सभी काव्य रूपों में इस परम्परा का अच्छा विकास हुआ है। प्रकृति में मानव धर्म का आरोप करके विविध प्रकार के भावों की अभिव्यंजना की गई है। प्रबन्ध काव्यों में अधिकतर प्रकृति का चित्रण विरह के भावों को उद्दीप्त करने के लिए हुआ है। प्रकृति में विरह-मिलन के भावों की अभिव्यक्ति सर्वथा परम्परानुगत पद्धति पर आधारित है। प्रगीत काव्य में इसका और अधिक विस्तार हुआ है। छायावादी कवियों ने प्रकृति के नाना रूपों में चेतनधर्म का आरोप करके नए-नए भावों की अभिव्यक्ति की है। कहीं उसमें मृदुल-मधुर भावों की व्यंजना है और कहीं उग्र एवं कठोर भावों की। कहीं वसन्त—समीर हृदय में हर्ष, उल्लास एवं प्रेम को जगाता है, तो कहीं बादल अपने भैरव गर्जन से हृदय में उथल-पुथल मचा देता है। कहीं जूही की कली में नायिका धर्म का आरोप करके रति-भाव को उद्दीप्त किया गया है और कहीं गेहूँ की बालों में शोषणजन्य असन्तोष की भावना व्यक्त की गई है। निष्कर्ष यह कि प्रकृति की विविध रूपों में चेतन धर्म के आरोप द्वारा रति हर्ष, चिन्ता उग्रता, विषाद्, भक्ति, दैन्य, क्रोध, अधृति, असन्तोष आदि नाना भावों की व्यंजना की गई हैं। वस्तुतः आधुनिक काल में इस परम्परा का बहुमुखी विकास हुआ है।

(२) प्रकृति का अलंकार-विधान के रूप में वर्णन—काव्य की सुन्दर,

सुवोध एवं हृदयग्राही बनाने के लिये अप्रस्तुत विधान आवश्यक होता है। अलंकार-विधान अधिकतर सादृश्य या साधर्म्य मूलक होता है। दो वस्तुओं में साम्य स्थापित करने के लिये प्रकृति के क्षेत्र से उपमानों को ढूंढ़ कर लाया जाता है। इस कारण अप्रस्तुत-विधान में प्राकृतिक वस्तुओं का वर्णन आवश्यक हो जाता है। कवियों ने अपनी उर्वर कल्पना शक्ति के द्वारा उपमानों का संग्रह करने के लिये प्रकृति का कोना-कोना छान डाला है। बहुत से उपमान कवि परम्परा में बार-बार प्रयुक्त होने से रूढ़ हो गये हैं। नारी प्राचीन काल से ही कवियों का परम प्रिय विषय है। उसके अंग-सौन्दर्य का वर्णन प्रायः सभी कवियों ने किया है। इसके लिये प्रकृति से चुन-चुन कर उपमान लाये गये हैं। उसकी वेणी के लिये नागिन, नासिका के लिये कीर, नेत्रों के लिये मीन, मृग, खंजन, अधरोष्ठ के लिये बिम्बा फल, नव पल्लव, दन्त-पंक्ति के लिये कुन्दकली, मोती, दाड़िम, दन्त-द्युति के लिये विद्युत आदि उपमानों की योजना की गई है। हाथ, पैर और मुख के लिये कमल तथा चन्द्रमा के उपमान लाये जाते हैं। दो वस्तुओं में साम्य या वैषम्य प्रदर्शित करने के लिये प्रायः प्राकृतिक उपमानों से ही काम लिया जाता है।

वैदिक-साहित्य में सादृश्य एवं साधर्म्य मूलक अलंकारों का स्रोत मिलता है—

अग्निर्मूर्द्धा चक्षुषी चन्द्र सूर्यौ दिशः श्रोत्र वाग्विवृताश्च वेदाः।
वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यां पृथ्वी ह्येष सर्व भूतान्तरात्मा॥

—मुण्डक १।४

पुरुष के विराट स्वरूप का वर्णन करते हुये कहा गया है कि द्युलोक उस विराट पुरुष का सिर है, चन्द्र-सूर्य नेत्र हैं, दिशायें कान हैं और वाणी विस्तृत वेद हैं। वायु इसका प्राण और हृदय विश्व है। दोनों पैर भूमि हैं। यह पुरुष सब भूतों का अन्तरात्मा है यहां आकाश, चन्द्र-सूर्य, दिशा, वायु, पृथ्वी अप्रस्तुत के रूप में आये हैं। कालिदास का अप्रस्तुत-विधान अत्यन्त प्रिय, आह्लाद कारक एवं हृदयावर्जक है—

पर्याप्त पुष्पस्तवकस्तनाभ्यः स्फुरत्प्रवालोष्ठ मनोहराभ्यः
लतावधूभ्यस्तरवोऽप्यवापुर्विनम्र-शाखा-भुज-बन्धनानि।

—कुमार संभव

अर्थात् फूलों के गुच्छों के कुचों वाली, कोपलों के ओष्ठों से मनोहर दिखाई पड़ने वाली बेल-वधूटियों के साथ वृक्ष अपनी शाखाओं की भुजाएं नीचे की ओर

झुकाकर आलिंगन करने लगे। इसमें कुच, होठ, वधू और भुजाओं के लिये क्रमशः स्तवक, प्रवाल, लता और शाखाओं के उपमान लाये गये हैं।

धर्म शास्त्र में भी प्राकृतिक उपमानों से काम लिया गया है और साहित्य में भी। भेद केवल इतना ही है कि शास्त्र का उद्देश्य उपमानों के द्वारा अर्थ को स्पष्ट करना है और काव्य का अलंकार-विधान सौन्दर्य की प्रतिष्ठा के लिये होता है। शास्त्र की उपमायें दीपक की तरह वस्तु तत्त्व प्रकाशित करती हैं, किन्तु काव्य की उपमायें चन्द्रिका की तरह हृदय को आह्लादित करती हैं।

सिय मुख सरद कमल जिमि किमि कहि जाय।
निसि मलीन वह निस-दिन यह विनसाय॥

इसमें व्यतिरेक के द्वारा सीता के मुख की शोभा शरद-कमल से विशेष बताई गई है। आलोच्यकाल के कवियों ने प्रतीक एवं उपमानों की योजना में प्राकृतिक वस्तुओं का उपयोग प्रचुरता से किया है।

साकेत में कैकेयी की अवस्था का शब्द-चित्र अंकित करते हुये तुषारावृत चन्द्र-कला, तरंग माला, सिंहिनी और गोमुखी गंगा को सादृश्य के लिये उपस्थित किया गया है।

सबने रानी की ओर अचानक देखा,
वैधव्य-तुषारावृता यथा विधु-लेखा।
बैठी थी अचल तथापि असंख्य तरंगा,
वह सिंही अब थी ह हा! गोमुखी गंगा।

—साकेत

छायावादी काव्य में परम्परानुगत प्रतीक एवं उपमानों को स्वच्छन्दता पूर्ण ग्रहण किया गया है—

शशि मुख पर घूँघट डाले, अंचल में दीप छिपाए,
जीवन की गोधूलि में, कौतूहल से तुम आए।

—प्रसाद

इसमें मुख का शशि, नेत्रों का दीप तथा जीवन का गोधूलि से साम्य दिखाते हुये काव्यार्थ को कितना सुन्दर बना दिया है!

वसन्त-रजनी का शृंगार करने के लिये महादेवी ने प्राकृतिक वस्तुओं को चुन-चुन कर उपस्थित किया है। वे रूपक की शैली में कितना सुन्दर छवि-चित्र अंकित करती हैं—

धीरे धीरे उतर क्षितिज से,
आ वसन्त-रजनी ।
तारकमय नव वेणी वन्धन,
शीश फूल कर शशि का नूतन,
रश्मि-वलय सित घन-अवगुंठन;
मुक्ताहल, अभिराम बिछादे,
चितवन से अपनी !
पुलकती आ वसन्त-रजनी ।

—महादेवी

यहाँ वसन्त-रजनी के लिये तारागण, चन्द्रमा, रश्मि, सित घन और मुक्ताफल शृंगार के प्रसाधन आये हैं।

वेदान्त दर्शन के अनुसार जीव तथा ब्रह्म में अभेद है। महादेवी ने इसी तथ्य को कवि की भाषा में कहा है—

मैं तुम से हूँ एक, एक है जैसे रश्मि-प्रकाश।

प्रसाद का अप्रस्तुत-विधान अत्यन्त हृदय स्पर्शी होता है। उससे उनकी सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति का पता चलता है—

घिर रहे थे घुंघराले बाल, अंश अवलंबित मुख के पास,
नील घन-शावक से सुकुमार, सुधा भरने को विधु के पास ॥कामायनी ॥

इसमें केशों को लघु, नील मेघ-खंडों से उपमा दी गई है। इस उपमा से केशों की केवल सुकुमारता का ही बोध नहीं होता, घनता, स्निग्धता और आर्द्रता भी व्यंजित होती है। ऋग्वेद में उषा की स्तुतियों में प्रभात का वर्णन अत्यन्त सुन्दर है। नरेश कुमार ने उसी के आधार पर किरन धेनुओं का वर्णन किया है—

उदयाचल से किरन धेनुएँ,
हाँक ला रहा वह प्रभात का ग्वाला।
पूँछ उठाये चली आरहीं, क्षितिज जंगलों से टोली,
दिखा रहे पथ, इस भूमी का सारस सुना सुना बोली।

—नरेशकुमार

प्रगतिवादी कवियों ने प्रकृति से भद्दे प्रतीकों को भी चुन लिया है—

सड़ी झीलों से उड़ते आज
लोभी माँस के बगुले
दबाए चोंच में मछली—

—शकुन्तला माथुर—ताजा पानी

इसमें 'सड़ी झील' 'बगले' और मछली, क्रमशः रूढ़िवाद, शोषक वर्ग और शोषित जन के प्रतीक हैं।

उपर्युक्त अध्ययन से सिद्ध है कि आलोच्य काल के छायावादी काव्य में अप्रस्तुत विधान के रूप में प्रकृति का पर्याप्त वर्णन हुआ है। प्रबन्ध काव्यों में भी इसका प्राचुर्य है। प्रगतिवादी और प्रयोगवादी कवियों ने प्रकृति की ओर कम ध्यान दिया है। इनकी प्रतीक योजना में प्रकृति के जिन उपादानों का संग्रह किया गया है, वे घृणित एवं कुरुचि पूर्ण हैं। इससे नयी कविता में इस परम्परा का ह्रास हुआ है।

(४) धार्मिक एवं नैतिक उपदेशों के लिये प्रकृति वर्णन—भारतीय काव्य परम्परा में प्रकृति का सचेतन रूप में अधिक वर्णन किया गया है। वह सदैव मानव के लिये स्फूर्ति और प्रेरणा का केन्द्र रही है। मानव ने उसे जितना बाह्य नेत्रों से देखा है उससे कहीं अधिक अन्तश्चक्षुओं से। वैदिक स्तुतियों में प्रकृति देवता के रूप में परिकल्पित है। उषस्, सविता-पर्जन्य, अग्नि, सोम आदि में देव रूपों की भावना की गई है तथा उनसे विविध शिक्षायें ग्रहण की गई हैं। ज्ञान, बल, प्रकाश एवं आनन्द की प्राप्ति के लिये वैदिक ऋषियों ने अग्नि देव का आह्वान किया है—

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्य स्मज्जु हुराण मेनो भूयिष्ठां ते नम उक्ति विधेम॥

—ईश उप०, १८

(हे अग्नि, प्रकाश स्वरूप, तू हमें ऐश्वर्य के लिये सुपथ से ले चल। हे देव, तू हमारे सब कामों को जानता है। इससे तू हमसे कुटिल पाप दूर कर। हम तुझे बहुत बार नमस्कार करते हैं)।

इस प्रकार के अनेक वेद-मंत्र हैं, जिनमें ऋषियों ने प्राकृतिक वेदों से जीवन के लिये शक्ति, ज्ञान और आनन्द की प्राप्ति के लिये प्रार्थना की है। प्रकृति से शिक्षा और उपदेश ग्रहण करने की प्रवृत्ति का स्रोत इन्हीं प्रार्थनाओं में ढूंढा जा सकता है।

भागवत के वर्षा और शरद वर्णन में प्रकृति से बहुत सुन्दर-सुंदर नैतिक शिक्षाओं का सार संग्रह किया गया है। यथा—

तपः कृष्णा देव पीढा आसीद्वर्षीयसी मही,
यथैव काम्य तपसस्तनुः सम्प्राप्य तत्फलम्॥

—भागवत १०।२०।७

ग्रीष्म के ताप से तपी हुई पृथ्वी वर्षा के जल से अभिषिक्त होकर फिर हरी भरी

हो गई, जैसे काम्य तपस्या से दुर्बल हुआ शरीर फल मिल जाने पर फिर पुष्ट हो जाता है।

निशा मुखेषु खद्योतास्तमसा भान्ति न ग्रहाः।
यथा पापेन पाखण्डाः न हि वेदाः कलौ युगे॥ —भागवत १०।२०।८

रात्रि के समय बादलों के घोर अन्धकार में जुगनुओं की ज्योति चमकने लगी और ग्रहों का दिखलाई देना बन्द हो गया, जैसे कलयुग में पाप की प्रबलता से पाखंड मतों का प्रचार हो जाता है और वैदिक सम्प्रदाय लुप्त प्राय हो जाते हैं।

श्रीमद्‌भागवत के वर्षा और शरद वर्णन को परम्परा का हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य कवि गोस्वामी तुलसीदास ने यथावत् अनुसरण किया है। मानस के वर्षा और शरद वर्णन में उपदेशात्मकता की प्रवृत्ति ही प्रधान है। तुलसीदास के बाद रहीम, केशव, बिहारी, दीनदयाल गिरि, वृन्द आदि कवियों के प्रकृति वर्णन में इसी परम्परा का विकास पाया जाता है। एक ही उदाहरण देना पर्याप्त होगा—

वरनत केसव सकल कवि, विषम गाढ़ तम सृष्टि।
कुपुरुष सेवा ज्यों भई, सन्तत मिथ्या दृष्टि॥

आधुनिक काल में द्विवेदी युग के कवियों में इस परम्परा का अच्छा विकास दिखाई पड़ता है। इस युग में कविता के क्षेत्र में विविध परिवर्तनों के साथ-साथ एवं उपदेशात्मकता की प्रवृत्ति का बाहुल्य है। महावीरप्रसाद द्विवेदी, सत्यनारायण, हरिऔध, नाथूराम 'शंकर', रामनरेश त्रिपाठी, मैथिलीशरण आदि कवियों के प्रकृति वर्णन में धार्मिक एवं नैतिक उपदेशों की झलक विद्यमान है—

जल तुल्य निरन्तर शुद्ध रहो,
मलयानिल ज्यों प्रतिबुद्ध रहो। —मैथिलीशरण

हरिऔध जी की 'एक तिनका' 'एक बूंद', 'फूल और काँटा' कविताओं में इसी परम्परा का विकास हुआ है।

देखो, फल स्वादिष्ट रसीले अपने आप न खाते हैं।
बाँट-बाँट सर्वस्व सबों को अचल प्रतिष्ठा पाते हैं।
छायावाद किया करते हैं, प्रखर ताप शिरधार,
सोखो, पादप सिखलाते हैं, करना पर उपकार।
—नाथूराम 'शंकर'

छायावादी काव्य में भी इस परम्परा के दर्शन मिलते हैं—

थके चरण-चिह्नों को अपनी नीरव उत्सुकता से भर,
दिखा रही हो अथवा जग को पर-सेवा का मार्ग अमर! —छाया (पन्त)

प्रसाद ने भी 'आत्मकथा' कवियों में मधुपों के गुनगुनाने में, पत्तियों के गिरने में और इस अनन्त नीलिमा-पट पर जगमगाते हुए नक्षत्रों में किसी व्यंग्य मलिन उपहास की कहानी को दुहराते हुए सुना है—

मधुप गुन गुनाकर कह जाता कौन कहानी यह अपनी,
मुरझा कर गिर रहीं पत्तियाँ देखो कितनी आज घनी।
इस गंभीर अनन्त नीलिमा में असंख्य जीवन इतिहास–
यह तो–करते ही रहते हैं अपना व्यंग्य मलिन-उपहास। —प्रसाद

निराला की 'जागो फिर एक बार' कविता में प्रकृति देश-वासियों को जागरण का सन्देश सुना रही है—

प्यारे जगाते हुए हारे सब तारे तुम्हें,
अरुण पंख तरुण-किरण
खड़ी खोलती हैं द्वार।
जागो फिर एक वार। —निराला

महादेवी के अनेक गीतों में यह परम्परा अत्यन्त सुन्दरता से पल्लवित हुई है। उनके उपदेशों में आध्यात्मिक रंग है तथा उनमें विविध भावों के संकेत मिलते हैं।

जलते नभ में देख असंख्यक,
स्नेहहीन नित कितने दीपक,
जलमय सागर का उर जलता,
विद्युत ले घिरता है बादल !
विहँस-विहँस मेरे दीपक जल ! —महादेवी

हरिकृष्ण 'प्रेमी' की 'पंखी को पीड़ा' कविता में त्रस्त पक्षी की पीड़ा के साथ पीड़िता मानवता की तुलना करके प्रेम-पथ की ओर मुड़ने का संकेत दिया गया है। इसमें कवि धर्म और नीति की ओर न जाकर के यथार्थ की ओर आकर्षित हुआ है—

पंखी नीड़ तुम्हारा ही क्या, सभी गरीबों के घर लुटते,
आज मानवों के खाने को, दो दाने भी सहज न जुटते।
पर यह सब कृत्रिम उबाल है, इसका दौरा चल न सकेगा,
हिम्मत मत हारो यह जग फिर, प्रेम-पंथ की ओर मुड़ेगा।
—हरिकृष्ण 'प्रेमी'

'आषाढस्य प्रथम दिवसे' कविता में कविवर जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द' ने आषाढ के प्रथम मेघ को नंगी मानवता का देवदूत बताया है और उससे क्षुधित, पीड़ित मानवों का दुःख, दैन्य निवारण करने की याचना की है। दिनकर का कवि

'हिमालय के प्रति' कविता में एक अजेय, निर्बन्ध, पौरुष युक्त, महान् आत्मा का दर्शन करता है। उसका विश्वास है कि यदि हिमालय करवट ले तो उसकी अंगड़ाई से पृथ्वी हिल सकती है। वह उसे भूतल के अन्धकार का नाश करने के लिए सिंहनाद करने को प्रेरित करता है। बच्चन 'तुम तूफान समझ पाओगे' कविता में क्रान्ति का आह्वान करता है। क्रान्ति में प्रतिगामी शक्तियों का ध्वंस हो जाता है और विरोधी तत्त्व नष्ट हो जाते हैं।

प्रगतिवादी प्रयोगवादी कवियों की वाणी में प्रकृति ज्ञान-जागरण, नव निर्माण और पुरातन वस्तुओं का ध्वंस करने के लिए आतुर दिखाई पड़ती है।

फिर मिट्टी में जीवन की आशा जागी है
गलते हैं दकियानूसी मिट्टी के ढेले
पिछली फसलों की गिरी पड़ रही हैं मेंड़ें
सारे अनबोए खेतों की उजली धरती
अब एक हुई, स्वीकार कर रही है नव जल
गुरु आशा-सा

—रघुवीरसहाय —पहला पानी

नये कवियों को प्रकृति में प्रगतिशील भावों की गूँज सुनाई पड़ती है। वे सम्पूर्ण प्रकृति-सूरज, चाँद, तारे, नदी, बादल में एक अभिनव चेतना का दर्शन करते हैं। प्रकृति सब मनुष्यों का 'चलते-चलो' की प्रेरणा दे रही है—

नदियों ने चलकर ही
सागर का रूप लिया
मेघों ने चलकर ही
धरती को गर्भ दिया
रुकने का मरण नाम, पीछे सब प्रसार है।

—नरेशकुमार-जनगरवा

आधुनिक युग के कवियों में हरिऔध, मैथिलीशरण, रामनरेश त्रिपाठी, सियाराम शरण आदि ने प्रकृति के विविध रूपों का वर्णन करके किसी-न-किसी धार्मिक या नैतिक उपदेश की ओर इंगित किया है। छायावादी कवियों ने परम्परा को और अधिक विकसित किया है। उन्होंने प्रकृति से जो संकेत ग्रहण किये हैं उनमें आध्यात्मिक रंग है, लाक्षणिक छटा है और है भावना का माधुर्य। प्रगतिवादी-प्रयोगवादी कवियों की रचनाओं में प्रकृति के माध्यम से जीवन के यथार्थ का उद्घाटन किया गया है। इन कवियों ने प्रकृति के अन्तस्तल में आन्दोलन देखा है, सिंहनाद सुना है, क्रान्ति को जगाया है एवं पुरातन के ध्वंस

पर नूतन-सृजन का गीत गाया है। निष्कर्ष यह कि आलोच्यकाल में प्रकृति के द्वारा उपदेश वर्णन की परम्परा ने सर्वथा नया रूप ग्रहण किया है।

(५) प्रकृति में आत्म-दर्शन—अग्नि, सूर्य, वायु, चन्द्रमा, शुक्र, जल इत्यादि प्रकृति के सभी पदार्थों में उस परम सत्ता का प्रकाश विद्यमान है। 'तस्य भाषा सर्वमिदं विभाति' (मुण्डक २।१०) उसी की ज्योति सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करती है। श्रीमद्भगवद् गीता में उस परम तत्त्व को पृथ्वी के समस्त भूतों की आत्मा कहा गया है।[१] सूर्य, अग्नि, तथा चन्द्रमा में जो तेज है तथा जिससे अखिल लोक प्रकाशित है, वह सब परम तत्त्व का प्रकाश है।[२] समस्त वैदिक साहित्य में यही 'भावना' व्याप्त है।

हिन्दी-साहित्य में सबसे पहले कबीर हैं, जिन्होंने प्रकृति में उस आत्म-तत्त्व का दर्शन किया है। ब्रह्मवाद की भावना से प्रेरित होकर कबीर समस्त भूमंडल में उसी परम तत्त्व का दर्शन करते हैं। 'लाली मेरे लाल की जित देखो तित लाल'। उन्हें सम्पूर्ण जगत उसी अव्यक्त सौन्दर्य की अनुपम छटा से अनुप्राणित दिखाई पड़ता है। उस दिव्य ज्योति के विषय में जायसी ने भी वर्णन किया है—

बहुतै जोति जोति ओहि भई।
रवि ससि नखत दिपहिं ओहि जोती। रतन पदारथ मानिक मोती॥
जहँ जहँ विहँसि सुभावहिं हँसी। तहँ तहँ छिटकि जोति परगसी॥
नयन जो देखा कमल भा निरमल नीर सरीर।
हँसत जो देखा हंसा भा, दसन जोति नग हीर॥

जायसी ग्रन्थावली पृ० ५०

जायसी को निखिल जगत उसी ज्योति से अनुरंजित दिखाई पड़ता है। हर एक परमाणु में उसी की दिव्य विभूति छिटक रही है।

सूर ने भी निखिल लोक में ज्योति का दर्शन किया है—

नाथ तुम्हारी जोति अभास। करति सकल जग में परकास॥
थ वर जंगम जहँ लगि भए। जोति तुम्हारी चेतन किए॥

—सूर सागर दशम स्कन्ध पृ० १७१२

तुलसी सगुणोपासक भक्त होते हुये भी सम्पूर्ण जगत् को 'सीय राममय' देखते

१—भगवद् गीता १०।२१
२—वही १५।१२

हैं तथा 'जगत प्रकास्य प्रकाशक रामू' कह कर अखिल विश्व में उसी परम तत्त्व का आभास पाते हैं।

प्रकृति के नाना रूपों में आध्यात्मिक-सौन्दर्य का दर्शन करने की परम्परा पूर्व मध्यकाल के कवियों में तो बहुत मिलती है किन्तु रीतिकाल में यह लुप्त-प्राय सी हो जाती है। इस काल के कवियों की दृष्टि प्रकृति की रम्य छटाओं में दिव्य ज्योति का अवलोकन न कर सकी; स्थूल शारीरिक प्रेम के वर्णन पर ही टिकी रही।

आधुनिक काल के नवोत्थान की वेला में कवि नवोन्मेष से प्रेरित हुये और वे पुनः आत्म तत्त्व की ओर झुके। हरिऔध जी प्रकृति के विविध रूपों में उस अज्ञात कलाकार की निराली छटा देखते हैं—

जगमगाती गगन मंडल विविध तारावली,
फूल फल सब रंग के सब भाँति की सुन्दर कली।
सब तरह के पेड़ उनकी पत्तियाँ साँचे ढली,
अति अनूठे पंख की चिड़ियाँ प्रकृति हाथों पली।

—प्रभुप्रताप

उसकी अनन्त ज्योति से रवि-शशि प्रकाश ग्रहण करते हैं—

पाते हैं रवि-शशि अनल, जिससे प्रखर प्रकाश,
कहो उसी को कहाँ से, लावें दीप उजास?[१]

रामोपासक कवियों की परम्परा में मैथिली शरण गुप्त का नाम अन्यतम है। उन्हें भी प्रकृति के सभी पदार्थों में दिव्याभास दिखाई पड़ता है—

तू ही तू है विश्व में राम रूप गुण धाम,
है तेरी ही सुरभि से सुरभित यह आराम।
आँखें उठती हैं जिस ओर, तू ही तू देखा जाता है।[२]

कवि 'शंकर' सब वस्तुओं में आत्म-तत्त्व का विकास-प्रकाश देखते हैं—

जिसमें तेरा नहीं विकास,
ऐसा कोई फूल नहीं है।
मैंने देख लिया सब ठौर,
तुझसा मिला न कोई और।[३]

१—सरस्वती, फरवरी १९१३, षोडशोपचार पूजा।
२—सरस्वती अगस्त १९१४, मैथिली शरण गुप्त।
३—नाथूराम 'शंकर' सत्य विश्वास।

वह परम तत्व कंज-कंज में, सरोवर में, जलद में—प्रकृति की हर एक छटा में दृष्टिगोचर हो रहा है—

कंज रूप में कभी सरोवर में तुम मिलते,
लता-अंक में कभी सुमन बनकर हो खिलते।
पाते तुमको कभी प्रकृति की नई छटा में,
कभी देखते तुम्हें जलद की सजल घटा में।[१]

छायावादी काव्य में प्रकृति के माध्यम से उस अव्यक्त सौन्दर्य का निरूपण प्रचुर परिमाण में हुआ है। पन्त का कवि नक्षत्रों से मूक सन्देश सुना करता है—

स्तब्ध ज्योत्स्ना में जब संसार,
चकित रहता शिशु सा नादान,
विश्व के पलकों पर सुकुमार,
विचरते हैं जब स्वप्न अजान,
न जाने नक्षत्रों से कौन !
निमंत्रण देता मुझको मौन।[२]

निराला का कवि 'विन्दु' में विश्व की कारण-सत्ता का दर्शन करता है—

विन्दु ! विश्व के तुम कारण हो
या यह विश्व तुम्हारा कारण ![३]

महादेवी के गीत उस अव्यक्त प्रियतम के विरह-मिलन के भावों से संकुल हैं। वे विश्व के कण-कण में उस अरूप का नर्तन देखती हैं। 'लय गीत मदिर, गति ताल अमर, अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर।' गीत में उसी अव्यक्त प्रियतम का दिव्य नृत्य दिखाई पड़ रहा है।

रामकुमार वर्मा ने मधु-मास के हास में उसी दिव्य ज्योति का दर्शन किया है—

यह तुम्हारा हास आया।
इन फटे से बादलों में कौन-सा मधुमास आया ?

नक्षत्र-मंडित आकाश से किसी की करुणा की किरणें चमकती आ रही हैं, पर उसका रूप अदृष्ट होने से कवि किसी की सुध में बेसुध हो जाता है—

१—गोपाल शरण सिंह, भूल भुलैया।
२—सुमित्रा नन्दन पन्त, मौन निमंत्रण।
३—परिमल, 'कण'।

इस रत्न-जटित अंबर को, किसने वसुधा पर छाया !
करुणा की किरणें चमका, क्यों अपना रूप छिपाया !
नभ के पर्दे के पीछे करता है कौन इशारे !
सहसा किसने जीवन के खोले हैं बन्धन सारे ![१]

छायावादी काव्य में स्थल-स्थल पर अव्यक्त सौन्दर्य के कण बिखरे पड़े हैं। प्रसाद का झरना, लहर, पन्त का गुंजन, निराला का परिमल, महादेवी की नीरजा ऐसी ही रचनाओं का कोश हैं, जिनमें अव्यक्त सौन्दर्य का निरूपण हुआ है। किन्तु छायावादी कवियों के चित्रण में मध्यकालीन कवियों की अपेक्षा नूतनता का रंग है। संत तथा सूफी कवियों ने प्रकृति को साम्प्रदायिक घेरे में होकर देखा है, छायावादी कवियों ने स्वच्छन्द रूप से। वे कवि दर्शन से प्रभावित हैं, ये कवि स्वच्छन्दतावाद से। उनके वर्णन में आत्मानुभूति का रंग है, इनके वर्णन में शैली-शिल्प का। किन्तु प्रकृति निरीक्षण की जैसी व्यापक एवं गंभीर दृष्टि आधुनिक कवियों की है, वैसी पहले कवियों की नहीं। इसी से छायावादी काव्य धारा में इस परम्परा का पूर्ण उन्मेष हुआ है।

छायावाद युग के पश्चात् प्रगतिवादी, प्रयोगवादी कवियों ने इस परम्परा को बिल्कुल छोड़ दिया है। उनके काव्य में अध्यात्म और परमतत्व के निरूपण को वायवी कल्पना कहकर दिया गया है। उत्तरवर्ती कवियों का दृष्टिकोण घोर वस्तुवादी हो चला है, अतः उसमें इस धारा का लुप्त हो जाना स्वाभाविक ही है।

उपसंहार—उपर्युक्त अध्ययन से पता चलता है कि प्रकृति वर्णन की परम्परा हिन्दी साहित्य के प्रारंभिक युग से ही चली आ रही है। कवियों ने प्रकृति का वर्णन विविध रूपों में किया है। सामन्तीय युग के कवियों का ध्यान वीरत्व की भावना को स्फूर्ति देने की ओर था। वे प्रकृति की ओर उन्मुख न थे। इसलिए उनका प्रकृति वर्णन प्रायः परम्परा का निर्वाह मात्र है। उसके साथ कवियों के हृदय का योग नहीं है। काव्यों के बीच-बीच में प्राकृतिक विषयों का वर्णन या तो किसी विरहिणी की काम दशा को उद्दीप्त करने के लिए है या अलंकार-विधान के रूप में। सन्त कवियों ने अपनी साम्प्रदायिक प्रवृत्ति के अनुसार प्रकृति में परम तत्त्व के सौन्दर्य की निरुपम झलक देखी है अथवा किसी नीति या उपदेश का सार ग्रहण किया है। सूफी कवियों ने प्रकृति के विविध व्यापारों में अव्यक्त सत्ता की झांकी की है और शृंगार की उद्दीपन-सामग्री के

१—हरिकृष्ण 'प्रेमी' अनन्त के पथ पर।

रूप में भी प्रकृति से काम लिया है। सगुणोपासक भक्त कवियों ने प्रकृति में सचेतन धर्म का आरोप किया है, कहीं आलम्बन के रूप में प्रकृति का चित्रण किया है, कहीं उद्दीपन के रूप में प्रकृति का वर्णन किया है, कहीं अलंकार-विधान में प्रकृति का उपयोग किया है और कहीं प्रकृति से धार्मिक एवं नैतिक उपदेशों का सार ग्रहण किया है। इसके अतिरिक्त उसमें विराट पुरुष की अलौकिक छवि का भी चित्र उतारा गया है। रीतिकालीन कवियों ने अधिकतर प्रकृति का वर्णन दो रूपों में किया है—विरहिणी नायिकाओं की व्यथा को उद्दीप्त करने के लिए और अलंकार-विधान के हेतु। प्रकृति के अन्य रूपों के वर्णन की ओर ध्यान देना उनके लिए संभव न था क्योंकि सामन्तीय युग में अपने आश्रयदाताओं की मनस्तुष्टि का ही उन्हें बराबर ध्यान रखना पड़ता था।

आधुनिक काल में राष्ट्रीय-सांस्कृतिक जागरण के प्रभाव से और पाश्चात्य साहित्य के सम्पर्क में आने से कवियों ने प्रकृति का स्वतंत्र रूप में वर्णन किया है। हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, श्रीधर पाठक, प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी के काव्य में प्रकृति का चित्रण विविध रूपों में हुआ है। आलोच्यकाल में प्रकृति का चित्रण स्वतंत्र रूप में ही अधिक हुआ है। प्रकृति में मानव धर्म का आरोप करके उसको सचेतन रूप में चित्रित करने की प्रवृत्ति इस युग के प्रायः शत-प्रतिशत कवियों में दिखाई पड़ती है। प्राकृतिक विषयों को आधार बनाकर छायावादी कवियों ने प्रचुरता से काव्य-रचना की है। प्रकृति ही छायावादी काव्य का मुख्य विषय है। इसी कारण आलोच्य काल में प्रकृति के व्यापक क्षेत्र से नए-नए विषयों को चुनकर विशाल काव्य राशि का सृजन हुआ है। इसके अतिरिक्त आधुनिक कवियों ने सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा प्रकृति का कोना-कोना झाँक लिया है। इस प्रकार प्रकृति के व्यापक क्षेत्र का अन्वेषण करने की रुचि छायावादी कवियों में सबसे अधिक बढ़ी हुई है। फलतः छायावादी काव्य में प्रकृति के लघुतम कण से लेकर अनन्त आकाश तक विविध विषय एवं उपादान आ गए हैं। प्रकृति का ऐसा यथार्थ, स्वतंत्र एवं चित्रोपम वर्णन हिन्दी साहित्य के पहले कवियों में नहीं मिलता है।

निष्कर्ष यह है कि आधुनिक काल के प्रकृति चित्रण में सर्वांगीणता, स्फीतता, चित्रोपमता, व्यंजकता एवं हृदयग्राहिता सबसे अधिक है। यदि छायावादी कवियों ने प्रकृति के माध्यम से अन्तर्वृत्तियों का निरूपण किया है तथा उसकी विविध छवियों को संश्लिष्ट एवं स्वतंत्र रूप से चित्रित किया है तो प्रगतिवादी, प्रयोगवादी रचनाकारों ने प्रकृति के द्वारा चुटीले व्यंग्य, नग्न सत्य एवं यथार्थ तथ्यों का उद्घाटन अधिकता से किया है। राष्ट्रीय कवियों ने प्रकृति

से क्रान्ति और स्वातंत्र्य का दान माँगा है। प्रकृति सतत परिवर्तनशील है और वह जीर्ण एवं पुरातन वेश को उतार कर निरन्तर अभिनव रूपों में अपने को सजाती-सँवारती रहती है, अतः प्रगतिवादी कवियों ने उससे सामाजिक वैषम्य, दरिद्रता, शोषण और उत्पीड़न का समूल नाश करके नव निर्माण की आशा प्रकट की है। संक्षेप में छायावादी कवियों की रचनाओं में अन्तःप्रकृति और बाह्य प्रकृति दोनों में एकरूपता स्थापित हो गई है। अतः इन कवियों का प्रकृति चित्रण हर एक दृष्टि से स्वस्थ, सफल एवं हृदयग्राही है। उत्तर छायावादी युग के कवियों की प्रकृति में मनोविकृतियों का चित्रण प्रधान हो गया है। इसमें प्रकृति के शुद्ध एवं स्वतंत्र वर्णन का अभाव है।

(ङ) कामशास्त्रीय विषय

वात्स्यायन ने अपने कामसूत्रों में चौसठ कलाओं का वर्णन किया है।[1] इनमें से कुछ तो विशुद्ध साहित्यिक हैं कुछ नायक-नायिकाओं की विलास-क्रीड़ाओं में सहायक हैं, कुछ मनोविनोद की साधक हैं तथा कुछ दैनिक कार्यों की पूरक हैं। साहित्य में इनका प्राचीन काल से ही वर्णन होता आया है। काव्य के अन्तर्गत शृंगार रस के विभाव-वर्णन में इनका बहुत-से कवियों ने स्वच्छन्दता-पूर्वक प्रयोग किया है।

संस्कृत के कालिदास,[2] भारवि,[3] माघ,[4] श्रीहर्ष,[5] जयदेव[6] आदि के काव्यों में कामशास्त्रीय विषयों का प्रचुर वर्णन पाया जाता है। विवाह के वर्णन में प्राथमिक परिचय को तथा कौतुकागार की जो बातें काम सूत्रकार ने बताई हैं, कालिदास के कुमार संभव में उन सबका वर्णन मिलता है। सूरत काल के विभ्रम विलासों को नैषधकार ने नल-दमयन्ती के संभोग-वर्णन में घटित किया है। कामशास्त्र का कन्या-विसंभण व भाव-प्राप्ति के विषय भी नैषध में देखने को मिलते हैं। जलकेलि, वन-विहार, गोष्ठी-समवाय के प्रसंग किरात और माघ में आये हैं। चुम्बन, आलिंगन, मान, प्रणय-कलह के भेदोपभेद सभी का वर्णन गीत-गोविन्द और जानकी हरण में मिलता है। इससे सिद्ध है कि

१—वात्स्यायन; कामसूत्र, प्रथम अधिकरण, तृतीय अध्याय।

२—कुमारसंभव, ८।१-१०

३—किरातार्जुनीय ६।२५-३०

४—शिशुपाल वध सर्ग सात आठ संपूर्ण

५—नैषध १६।९६

६—गीतगोविन्द, १२।६२

संस्कृत के काव्य-ग्रन्थों में कामशास्त्र के विषयों का प्राचुर्य है। कीथ महोदय इस विषय में लिखते हैं कि शृंगारिक कविता के लिए कामशास्त्र का ज्ञान कवियों के लिए आवश्यक समझा जाता था। इसके प्रमाण है कि कवि बनने की इच्छा रखनेवालों को कामसूत्रों का अध्ययन उतनी ही निष्ठा के साथ करना पड़ता था, जितना व्याकरण, काव्यशास्त्र तथा कोश का अध्ययन।[१]

आलोच्यकाल से पूर्व हिन्दी साहित्य में इस परम्परा का अच्छा विकास हुआ है। विद्यापति, जायसी, सूर, तुलसी, केशव, बिहारी, देव, पद्माकर, दास, घनानन्द, भारतेन्दु आदि के काव्यों में रति-केलि, एकान्त विहार, चित्र, रचना, चन्द्रोदय, शीतल समीर, वन-विहार, संकेत स्थल, सुरापान, द्यूत क्रीड़ा, जलकेलि, प्रणय कलह, चुम्बन, आलिंगन, सम्पीडन, नखक्षत, हिंडोला, संगीत, वाद्य, नृत्य आदि विविध कामशास्त्रीय विषयों का वर्णन है। रीति-कालीन कविता में, नायक-नायिका भेद, दूती, सखी, सहायक आदि का प्रचुरता से वर्णन किया गया है। आलम्बन के रूप में नायिका के नख-शिख और षोडश शृंगार भी वर्णित है। इससे सिद्ध है कि साहित्य में कामशास्त्रीय विषयों की परम्परा सुदीर्घ काल से चली आती है। तथा इसका काव्य से अच्छेद्य सम्बन्ध रहा है।

आलोच्यकाल के कामशास्त्रीय विषयों का विवेचन नीचे लिखे काव्यों के आधार पर किया गया है—

१—प्रबन्ध काव्य—बुद्ध चरित्र, साकेत, नल-नरेश, नूरजहाँ, सिद्धार्थ, दैत्यवंश, कृष्णायन, साकेत-सन्त, विक्रमादित्य, कुणाल, सिद्धराज।

२—पल्लव, गुंजन, परिमल, अनामिका, आँसू, नीरजा, प्रभातफेरी, अपराजिता, मधुकलश, मधुशाला, ठंढा लोहा, धूप के धान।

अध्ययन की सुविधा के लिए काव्य में पाये जानेवाले कामशास्त्रीय विषयों को नीचे लिखे वर्गों में बाँटा जा सकता है:—

१—रंग-गृह

२—शृंगार के प्रसाधन

३—आमोद-प्रमोद के विषय

४—सुरत वर्णन

१—ंग-गृह वर्णन—

कामशास्त्र के प्रथम अधिकरण के चौथे अध्ययन में नागरक वृत्त का

१—कीथ : ए हिस्ट्री आव संस्कृत लिट्रेचर, पृ० ५१।

प्रकरण आया है। इसमें नागरक के भवन के निर्माण और उसकी सज्जा के वर्णन से प्रकट होता है कि उसमें प्राकृतिक शोभा, सौन्दर्यमय विविध वस्तु-संग्रह और ललित कलाओं की अद्भुत व्यवस्था रहती है। उसके भवन के समीप नदी, तालाब या अन्य जलाशय होता है तथा उसका भवन वाटिका या फुलवाई में स्थित होता है। वास्तुकला की दृष्टि से सब बातों का यथोचित ध्यान रखते हुए उसका निर्माण किया जाता है। उसमें वीणा, चौपड़, चित्रकला सम्बन्धी वस्तुओं का संग्रह, चन्दन, माला और सुगन्धित द्रव्यों का भी संग्रह होता है। इससे प्रतीत होता है कि नागरक के भवन के निर्माण में प्राकृतिक शोभा, मनोरंजन के साधन तथा कलात्मक सौन्दर्य का विचार सम्यक् रीति से रखा गया है तथा उसका भवन स्वच्छ, सुन्दर एवं शृंगारिक प्रसाधनों से युक्त एक उत्कृष्ट आवास होता है।

बुद्ध-चरित्र, सिद्धार्थ, नूरजहाँ, दैत्यवंश, साकेत और कृष्णायन में रंग-भवन का वर्णन मिलता है। बुद्ध-चरित्र और सिद्धार्थ में राजकुमार सिद्धार्थ के रंगगृह के वर्णन में उद्यान, लता-कुंज, नदी, झरना, कुंड, चित्रित भीतियाँ, संगमरमर की शिला, उपल निर्मित चन्द्रशाला, सुन्दर शिल्पकला, ग्रीष्मकला में शीत आवास माणिक्य, हीर, मणिमंडित स्तंभ, स्वर्णमय पर्यंक, वीणा, मृदंग, संगीत-वाद्य, नृत्य, पानभूमि, वीणा और वामाओं एवं नर्तकियों का साहचर्य, अगर, धूप, कपूर, उशीर, चन्दनादि सुगन्धित द्रव्य तथा दीपकों का उल्लेख किया गया है। यह सम्पूर्ण प्रसंग शत-प्रतिशत कामशास्त्र के नागरक के रंग-गृह के आधार पर वर्णित है।

नूरजहाँ में राजकुमार सलीम का महल तथा कृष्णायन में द्वारका के राजभवन के वर्णन में शत-प्रतिशत परम्परानुगत वस्तुओं का उल्लेख पाया जाता है। इन प्रसंगों में संगमरमर के कलात्मक भवन, मणि-जटित आँगन, प्राकृतिक शोभा, चन्द्रकान्त एवं सूर्यकान्त मणियों की योजना, सलिल यंत्र, ग्रीष्मऋतु के योग्य निवास-स्थान, ललित कलाओं का विधान, उद्यानों का सौन्दर्य, पक्षियों का कलकल स्वर, सुगन्धित पदार्थ इत्यादि सभी वस्तुओं का वर्णन कामशास्त्रीय परम्परा के अनुकूल है।

साकेत, दैत्य-वंश और साकेत-सन्त के वर्णनों में संगीत, वाद्य, नृत्य, चित्रित भित्तियाँ, रत्न, चंवर, आसन, चित्र-रचना, पायन्दाज, शुक-पढ़ाने का उल्लेख है। दैत्यवंश में उषा और अनिरुद्ध के रंग-भवनों के वर्णन में सुसज्जित पलंग, हेममंडित बिल्लोर के भवन, दुग्ध-फेन सी कोमल शय्या, गुलाब, पंखे, अंजन, पान, चौसर तथा परिचारिकाओं के साहचर्य का उल्लेख किया गया है।

इन प्रसंगों में उद्यान की शोभा, पक्षियों के कलरव, जल-यंत्र, सरिता, सरोवर तथा आमोद-प्रमोद के विविध-साधनों का अभाव है। फिर भी इनमें पचास प्रतिशत परम्परा के विषयों का वर्णन है। इससे सिद्ध है कि इन भवनों की शोभा का वर्णन कामशास्त्र के रंग-भवन के आधार पर ही किया गया है।

कामशास्त्र के रंग-गृह में कुशासन, वेदिका, मोमबत्तियों की पेटिका का भी उल्लेख है, किन्तु आधुनिक काव्यों में इनको कहीं पर भी स्थान नहीं मिला है। वैज्ञानिक युग के प्रभाव से इन वस्तुओं का वर्णन अनावश्यक हो गया है।

२—शृंगार के प्रसाधन—

कामशास्त्र के अनुसार इसके अन्तर्गत प्रिया के कपोल और ललाट की शोभा बढ़ाने के लिए भोजपत्र के काटे हुए पत्रों की रचना करना (विशेष कच्छेद्य), फूलों की शय्या बनाना (पुष्पास्तरण), दांत और वस्त्रों को रंगना (दशन वसनांगराग) विविध प्रकार की मालाएँ गूँथना (माल्य ग्रथन विकल्पाः), वेष रचना (नेपथ्य प्रयोगाः), कानों के लिए आभूषण बनाना (कर्णपत्र भंगाः), सुगन्धित धूप, दीप और वत्तियों का प्रयोग करना (गन्धयुक्तिः), उचित रीति से आभूषण पहनना (भूषण योजनम्), शरीर को विलास योग्य बनाने की कला (कौचुमार योगाः), आदि प्रयोग है।

स्त्री के सोलह शृंगारों का वर्णन इस प्रकार है—उबटन, मज्जन, उज्जवल वस्त्र धारण, पैरों में जावक लगाना, केश संवारना, मांग में सिन्दूर लगाना, मस्तक पर खौर देना, कपोलों पर तिल बनाना, केसर लगाना, मेंहदी रचना, स्वर्ण के आभूषण धारण करना, फूलों से शरीर को सजाना, मुख को सुगन्धित करना, मिस्सी लगाना, ओठों को रंगना और काजल लगाना।[1]

नल-नरेश में दमयन्ती के शृंगार का वर्णन है। इसमें शृंगार के समस्त उपकरण तथा द्वादश आभरणों का विशेष रूप से उल्लेख हुआ है। शारीरिक शुद्धि, उबटन, केशों का संवारना, बालों में फूलों गूँथना, अंगराग, अंजन, मेंहदी रचना, दांतों को रंगना, ताम्बूल, सुगन्धित लेप इत्यादि सब बातों का वर्णन कामशास्त्रीय पद्धति पर हुआ है।[2] विक्रमादित्य में रानी ध्रुवदेवी और उसकी सखियों की जल-क्रीड़ा का वर्णन है। इसके पश्चात् रानी ध्रुवदेवी शृंगार

१—कविप्रिया, ४।१७

२—नल-नरेश सर्ग १५

करती है, जिसमें कामशास्त्रीय प्रसाधनों का वर्णन है। पराग पूर्ण केसर के झूमर कानों में पहनना, पुष्पों के कर्णफूल बनाना, मुक्ताओं से माँग संवारना, होठों को लोध्र-कुसुम से अनुरंजित करना, कपोलों पर विशेष कच्छेद्य (पत्रलेखा) रचना, अगर, गोरोचन, कुंकुम आदि का अंगराग लेकर कपोलों पर बिन्दुओं द्वारा पुष्प-पत्रादि के चित्र आलेखित करना, रेशमी वस्त्र ओढ़ना तथा रक्तांशुक धारण करने में परम्परा की पचास प्रतिशत वस्तुओं का उल्लेख हुआ है। रानी ध्रुवदेवी के शृंगार में विशेष कच्छेद्य, दशनवसनांगराग नेपथ्य प्रयोग और भूषण योजनम् कामशास्त्रीय कलाओं का उपयोग हुआ है।[1]

बुद्धचरित्र[2] में रंग-भवन की परिचारिकाओं के शृंगार वर्णन में केशों का प्रसाधन, अंगों पर सुगन्धित द्रव्यों का लेप और सुन्दरवस्त्र पहनने का वर्णन है। सिद्धार्थ[3] में विवाह के समय पर यशोधरा के शृंगार में अलक्तक, सिन्दूर ललाटिका और कुन्तलों की सजावट का वर्णन है। दैत्यवंश[4] में राजकुमारी उषा के केश-कलाप उज्जवल वस्त्र और फूलों के शृंगार का वर्णन है। कृष्णायन[5] में रुक्मिणी और द्रौपदी के शृंगार में शुभ वस्त्र, आभूषण, मणि, दशनों का रंगना और केसर के सुगन्धित लेप का वर्णन है। इससे स्पष्ट है कि उक्त प्रसंगों में शृंगारिक प्रसाधनों की परम्परा का आंशिक रूप में ही पालन हुआ है।

३—मनोविनोद के विषय—

इसके अन्तर्गत गीत, वाद्य, नृत्य, चित्र-रचना, काव्य रचना तथा जुआ खेलना, जल-केलि, वन-विहार, गोष्ठी-विहार, एवं सुरापान आते हैं। इनमें से पहले पाँच विषयों का उल्लेख कामशास्त्र की चौसठ कलाओं में तथा अन्तिम पाँच का नागरक वृत्त प्रकरण में उल्लेख हुआ है। कामशास्त्र में इनके अतिरिक्त मनोविनोद की अन्य क्रीड़ाओं का भी वर्णन है, किन्तु साहित्य में उनका व्यवहार न होने से यहाँ पर उनका उल्लेख नहीं किया है।

गीत, वाद्य, नृत्य, चित्र रचना, काव्यालाप का वर्णन, बुद्धचरित,[6]

१—विक्रमादित्य सर्ग ४२

२—बुद्ध चरित्र, पृ० ४५

३—सिद्धार्थ पृ० ८६।

४—दैत्यवंश १३।२०३४

५—कृष्णायन, पृ० २४४ तथा २१८।

६—बुद्धचरित्र, पृ० ४५

साकेत,[१] नूरजहाँ,[२] सिद्धार्थ,[३] दैत्यवंश,[४] कृष्णायन,[५] साकेत-सन्त,[६] विक्रमादित्य,[७] कुणाल,[८] और सिद्धराज[९] में पाया जाता है। शुक-सारिका-प्रलापन (तोता, मैना पढ़ाना) भी मनोरंजन की एक कला है। विक्रमादित्य में रानी ध्रुवदेवी के वन-विहार वर्णन में तथा साकेत के प्रथम सर्ग के उर्मिला-लक्ष्मण-संवाद में इसका भी उल्लेख हुआ है। कुणाल में अक्षर-मात्रा-च्युतक, विन्दुमती, गूढ़ार्थ पदक, कूटपद, प्रहेलिका की भी चर्चा है।[१०]

जुआ खेला, जल-केलि, वन-विहार,-गोष्ठी विहार, सुरापान, पुष्प चयन भी मनोरंजन के साधन हैं। जुआ खेलने में हाथ की सफाई और पासों को अनुकूल डालने का वर्णन होता है। जल-केलि में तालाव, कमल, सुन्दर शोभा, प्रिय के साथ आलिंगन, गोता लगाना, जल उछालना, नेत्रों का राग, हंस-चक्रवाकादि का अपसरण, आभूषणों का गिर जाना आदि बातों का वर्णन किया जाता है[११]। वन-विहार में मेंढा, मुर्गा लड़ाना. नाटकादि देखना, जुआ खेलना, गीत, नृत्य, वाद्य आदि का वर्णन किया जाता है[१२]। गोष्ठी के वर्णन में काव्य और कला की समस्याओं पर विचार किया जाता है तथा उत्तम कोटि के कलात्मक मनोरंजनों का विधान किया जाता है[१३]। सुरापान में व्याकुलता, स्खलित होना, निर्लज्ज वचन, लज्जा और मान की हानि, प्रेम की अधिकता, लाल नेत्र, सम्भ्रमादि का वर्णन होता है[१४]। पुष्प-चयन के वर्णन

१—साकेत (द्वितीयावृत्ति) पृ० १८
२—नूरजहां, पृ० २४।
३—सिद्धार्थ, पृ० १०२।
४—दैत्यवंश, पृ० १६७।
५—कृष्णायन, पृ० ६७।
६—साकेत-सन्त, पृ० २१
७—विक्रमादित्य पृ० २१५।
८—कुणाल, पृ० २७।
९—सिद्धराज पृ० १२६
१०—कुणाल, पृ० १७।
११—कवि कल्पलता १।३।४१
१२—कामशास्त्र १।४।२५
१३—वही, १।४।२०
१४—कविकल्पलता १।३।३६

में फूलों को चुनना, प्रिय को पुष्प भेंट करना, मान, ईर्ष्या, वक्रोक्ति, सम्भ्रम तथा आलिंगन का उल्लेख किया जाता है[१]।

द्यूत-क्रीड़ा में हाथों की सफाई और पासों को अपने अनुकूल डालने की कला का प्रदर्शन होता है। कृष्णायन में शकुनि तथा युधिष्ठिर के जुआ खेलने में इसका अच्छा वर्णन किया गया है[२]। शकुनि इस कला में इतना चतुर है कि द्यूत-क्रीड़ा में युधिष्ठिर सर्वस्व हार जाते हैं। द्यूत का अन्य किसी काव्य में वर्णन नहीं है। चौसर-चौपड़ का वर्णन दैत्यवंश और नूरजहाँ में बहुत अच्छा मिलता है।

जल-केलि का वर्णन दैत्यवंश,[३] विक्रमादित्य[४] और सिद्धार्थ[५] में मिलता है। इन प्रसंगों में प्रेमियों का परस्पर एक दूसरे पर जल उछालना, कमल, तालाब, प्रेमालिंगन, गोता लगाना, शरीर की शोभा तथा मनोविनोद सभी बातों का वर्णन परम्परानुगत है। इन दोनों काव्यों के अतिरिक्त जल-केलि का वर्णन और कहीं नहीं है।

वन-विहार का वर्णन दैत्यवंश[६] और नूरजहाँ[७] में आता है। इन प्रसंगों में आमोद-प्रमोद, प्राकृतिक दृश्यों की शोभा, गाना, बजाना तथा काव्यालाप के मनोरंजनों का वर्णन तो हुआ है, किन्तु मेढ़ा-मुर्गा आदि लड़ाने तथा नाटक खेलने का नहीं। वस्तुतः मेढ़ा-मुर्गा आदि लड़ाने का मनोरंजन प्राचीन काल में बहुत प्रचलित था। आजकल के विकसित युग में मनोविनोद के ये साधन समय से पिछड़े हुए हो गए हैं। अतएव इनका वर्णन किसी भी काव्य में नहीं है।

गोष्ठी और मदिरापान का सबसे अच्छा वर्णन नल-नरेश[८] काव्य में है। इसके अतिरिक्त और किसी काव्य में नही है। नल नरेश के सोलहवें सर्ग में पान गोष्ठी का वर्णन है। राजा ऋतुपर्ण सरयू के तीर पर अपने इष्ट मित्रों

१—वही १।३।४०

२—कृष्णायन, पृ० ४१८

३—दैत्यवंश १८।२१

४—विक्रमादित्य सर्ग ४२।

५—सिद्धार्थ, पृ० १०२।

६—दैत्यवंश १८।७

७—नूरजहां १३८-४०

८—नल नरेश, सर्ग १६।

के साथ एक गोष्ठी आयोजित करते हैं, जिसमें गुणी गायक मधुर संगीत सुनाते हैं। सभी साथियों के हाथ में सुरापात्र है। राजा शीतल, सुगन्धित एवं उन्मादिनी वारुणी के पान करने का सुख लूटने में मग्न हो जाते हैं।

वस्तुतः द्यूत-क्रीड़ा और मदिरा-पान दुर्व्यसन हैं। प्राचीन काल में मनोरंजन के रूप में इनका उपयोग किया जाता था, किन्तु आगे चलकर यह प्रथा दूषित हो गई तथा इसके अनिष्टकारी परिणाम भी दृष्टिगोचर हुए। जुआ खेलने से ही पाण्डवों की दुर्गति हुई थी। इससे इनके प्रति स्वाभाविक ग्लानि हो गई। आधुनिक युग में राष्ट्रीय सरकार ने भी इनको सामाजिक अपराध घोषित किया है। फलतः ये विषय आधुनिक काव्यों से बहिष्कृत हो गए हैं।

४. सुरत वर्णन—

इसके अन्तर्गत सात्विक भाव, सीत्कार, संकुचित नेत्र, कांची, कंकण और नूपुरों का स्वर, अधर-चुम्बन, नखक्षत आदि बातों का वर्णन किया जाता है। सात्विक भाव आठ हैं—स्तंभ, स्वेद, रोमांच, हर्ष, कम्प, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलाप। कांची से विपरीत रति का ग्रहण है। सीत्कार से प्रगाढ़ालिंगन का भाव है। अधरों के चुम्बन और कुचों के मर्दन से क्रमशः दन्तक्षत और नखक्षत हो जाते हैं। सुरत के वर्णन में इन सब बातों का उल्लेख किया जाता है।

वस्तुतः संभोग श्रृंगार कामशास्त्र का विषय है। यद्यपि साहित्यशास्त्र में भी श्रृंगार के उभयपक्ष संभोग और विप्रलंभ का निरूपण हुआ है तथापि कामशास्त्र में इन विषयों का सूक्ष्म एवं विस्तृत वर्णन होने से प्रकट होता है कि साहित्य के श्रृंगार पर कामशास्त्र का गहरा प्रभाव है।

सुरत-वर्णन के सात्विक भाव, सलज्ज दृष्टि, चुम्बन, आलिंगन, सीत्कार आदि का वर्णन साकेत,[१] कामायनी,[२] नूरजहाँ, सिद्धार्थ,[३] दैत्यवंश और विक्रमादित्य[४] में मिलता है। 'नूरजहाँ[५] में राजकुमार सलीम और अनारकली के रति केलि के प्रसंग में चुम्बन, आलिंगन, सलज्ज दृष्टि, हर्ष, पुलक आदि का

१—साकेत (द्वितीयावृत्ति) पृ० २३-२४।

२—कामायनी (प्रथम संस्करण) पृ० ६४

३—सिद्धार्थ पृ० १०३

४—विक्रमादित्य, पृ० २२०

५—नूरजहाँ पृ० २५

वर्णन है। इसी प्रकार दैत्यवंश[१] में उषा-अनिरुद्ध के प्रथम मिलन में सहवास, संभोग, रोमांच, वैवर्ण्य, स्तंभ आदि सात्विक भावों का वर्णन है।

मुक्तक रचनाओं में पन्त की 'प्रथम मिलन,' निराला की 'जूही की कली' बच्चन की मधुशाला, नरेन्द्र की प्रभात फेरी, अंचल की अपराजिता, शमशेर की 'एक मुद्रा', भारती की 'गुनाह के गीत' आदि स्फुटिक कविताओं में सुरत का वर्णन है।

नयी धारा की कविताएँ यद्यपि परम्परानुगत कामशास्त्र के विषयों के अन्तर्गत नहीं आती हैं, किन्तु इनमें प्राय आंशिक रूप से सुरत का वर्णन आ गया है।

सुरत वर्णन की कांची, कंकण, नूपुरों की ध्वनि, दन्तक्षत और नखक्षत आदि बातें आधुनिक युग के काव्यों में कहीं पर भी नहीं वर्णित हैं। विपरीत रति का वर्णन भी आजकल की कविता में निषिद्ध हो गया है।

इस प्रकार आधुनिक युग के काव्यों में सुरत का वर्णन प्रचुरता से मिलता है। हिन्दी-साहित्य के हर एक युग में इस परम्परा को प्रधानता मिली है। आधुनिक युग के काव्यों पर भी इसी का प्रभाव सबसे अधिक है। प्रबन्ध, मुक्तक एवं प्रगीत-काव्य के तीनों रूपों में इसका एक समान महत्व दिखाई पड़ता है।

छायावादी कवियों ने रूढ़ि का पल्ला छोड़कर सुरत वर्णन के स्वाभाविक एवं शिष्टजनोचित रूप को ग्रहण किया है। इसी कारण उनके काव्य में विपरीत रति तथा दन्तक्षत, नखक्षत आदि का वर्णन नहीं है तथा सुरत का संकेत प्रतीकों के माध्यम से करा दिया गया है। प्रसाद की 'बीती विभावरी जाग री,' पन्त की 'आंसू,' निराला की 'जूही की कली' ऐसी ही रचनाएँ हैं, जिनमें सुरत का अप्रत्यक्ष वर्णन किया गया है। इस प्रकार प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी तथा रामकुमार वर्मा के काव्यों में प्राचीन परम्परा का नया संस्कार हुआ है।

प्रगतिवादी कविता में यह परम्परा पुनः अपने पूर्व रूप में प्रकट होती है। नरेन्द्र, अंचल, भगवतीचरण, बच्चन आदि की रचनाओं में यह अपने सीधे-सादे रूप में दिखाई पड़ती है। इन कवियों ने काम-प्रसक्ति, चुम्बन, आलिंगन, मधुपान, आसव, हाला, प्याला, संगीत, नृत्य आदि अनेक कामशास्त्रीय

१—दैत्यवंश पृ० २३५।

विषयों का रूढ़ि-मुक्त वर्णन किया है। परम्परा वही है, किन्तु अभिव्यक्ति में परिवर्तन हो गया है।

प्रयोगवादी रचनाओं में यह अभिनव रूप में प्रकट हुई है। इन कवियों ने कामशास्त्र की रीति-केलि यौन-वासना (सेक्स इंस्टिंक्ट) के रूप में देखा है। वे उसे अतृत इच्छा का परिणाम मानते हैं। भारती, शमशेर, गिरिजाकुमार और अज्ञेय की रचनाओं में रति की वासना को यौन-कुंठा के रूप में देखा गया है। कामशास्त्र के शृंगारिक प्रसाधनों का स्थान आजकल क्रीम, पाउडर, सेंट, लिपस्टिक, स्नो, वेसलीन, नेल पालिश आदि ने ले लिया है।

आलोच्यकाल में कामशास्त्रीय परम्परा का स्वरूप केवल प्रबन्ध काव्यों में ही मिलता है, जिनका ऊपर उल्लेख हो चुका है। प्रगीत काव्य में यह परंपरा नये रूप में प्रकट हुई है। छायावादी कवियों ने प्रतीकात्मक शैली में, प्रगतिवादी कवियों ने प्रकृत रूप में, तथा प्रयोगवादी कवियों ने यौन कुंठा के रूप में सुरत का ही वर्णन किया है।

निष्कर्ष यह कि कामशास्त्रीय परम्परा का विकास आलोच्यकाल में विभिन्न रूपों में हुआ है। प्रबन्ध काव्यों में उसका रूप बहुत कुछ परम्परानुगत है। युग-प्रवृत्ति के अनुसार छायावादी, प्रगतिवादी एवं प्रयोगवादी रचनाओं में उसका नये रूप में विकास हुआ है। राष्ट्रवादी काव्य में उसका कहीं भी दर्शन नहीं मिलता है।

चतुर्थ अध्याय

रस-परम्परा

रस

प्रस्तुत अध्याय में रस-परम्परा के विकास को संक्षिप्त रूप में दिखाते हुए आलोच्य काल की कविता में रस की स्थिति पर विचार किया गया है। पहले शृंगार रस की परम्परा का अध्ययन किया जाता है।

शृंगार रस की परम्परा—

संस्कृत के प्रबन्ध काव्यों में तो शृंगार का वर्णन है ही, मुक्तक काव्यों में उससे भी अधिक है। कालिदास, अश्वघोष, माघ, भवभूति, श्रीहर्ष आदि महाकवियों ने प्रेम का विशद वर्णन किया है। अमरुक, भर्तृहरि, घटकर्पर, गोवर्धनाचार्य, जयदेव आदि कवियों की मुक्तक रचनाओं में शृंगार की परम्परा चरम सीमा तक पहुँच गई है। प्रारंभ से ही संस्कृत के प्रेम-काव्यों में एक तो वर्णनात्मक तत्त्व की प्रधानता रही है, यथा—मेघदूत तथा घटकर्पर काव्य, दूसरे उपदेशात्मक तत्त्व की प्रधानता रही है यथा अश्वघोष का सौन्दरानन्द तथा भर्तृहरि का शृंगार शतक और तीसरे स्वच्छन्द प्रेम की, यथा—अमरुक शतक, आर्यासप्तशती एवं गीतगोविन्द।

हिन्दी साहित्य में भी शृंगार की परम्परा प्रारंभिक युग से ही चली आ रही है। हर एक युग में इसका भिन्न रूपों में विकास हुआ है। सिद्ध कवियों ने युग-नद्ध के रूप में, विद्यापति ने राधा-माधव के लीला-विलास में, सन्त कवियों ने अव्यक्त-अगोचर के रूपकात्मक चित्रण में, सूफी कवियों ने लौकिक कथाओं के सरस वर्णन में, कृष्ण-भक्त कवियों ने राधा-कृष्ण की मनोहर केलियों में रामोपासक कवियों ने सीता-राम की मर्यादापूर्ण भंगिमाओं, में रीतिकाल के कवियों ने नायक-नायिकाओं की उच्छृंखलतापूर्ण अठखेलियों में प्रेम का ही चित्रण किया है। प्रेमानुभूति वही है, विभाव-पक्ष में अन्तर हो गया है। इससे सिद्ध है कि आलोच्य काल से पूर्व शृंगार की परम्परा चरमोत्कर्ष को पहुँच चुकी थी।

शृंगार का वर्णन दो रूपों में पाया जाता है—संभोग तथा विप्रलंभ। अतः इस अध्याय में पहले संभोग शृंगार का विवेचन किया जाता है। इसका अध्ययन निम्नांकित काव्य-ग्रन्थों के आधार पर किया गया है :—

महाकाव्य—

साकेत, नल-नरेश, कामायनी, नूरजहाँ, सिद्धार्थ, दैत्यवंश, वर्द्धमान, कृष्णायन, विक्रमादित्य, अंगराज।

खंड काव्य—

मधुपुरी, कुणाल।

मुक्तक तथा प्रगीत काव्य—

गुंजन, परिमल, अनामिका, प्रभात फेरी, अपराजिता, ठंडा लोहा, धूप के धान, तार सप्तक, दूसरा सप्तक।

यों तो शृंगार की परम्परा में पाँच प्रकार की रति का वर्णन पाया जाता है—कान्ता विषयक, राजा विषयक, देव विषयक, पुत्र विषयक और सखा विषयक, किन्तु काव्यों में कान्ता विषयक रति का ही वर्णन सबसे अधिक मिलता है। रीतिकालीन कविता में इसी का प्राधान्य है। इसके अन्तर्गत पति-पत्नी, प्रेमी-प्रेमिका तथा नायक-नायिका की रति का वर्णन सबसे अधिक है। नायिकाओं के अनेक भेद हैं— स्वकीया, परकीया तथा गणिका। स्वकीया के तीन भेद हैं—मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा। नायिकाओं के आठ भेद हैं— स्वाधीन भर्तृका, वासकसज्जा, खंडिता, अभिसारिका, कलहान्तरिता, विप्रलब्धा प्रोषितभर्तृका और विरहोत्कंठिता। रीतिकालीन कविता में नायिकाभेद का पूर्ण विस्तार-प्रस्तार पाया जाता है। इसी कारण इसे शृंगार काल भी कहा जाता है, किन्तु आधुनिक काल में चलकर यह प्रवृति बहुत कुछ बदल जाती है। आलोच्यकाल में शृंगारिक प्रवृत्ति का तो यथेष्ट विकास हुआ है, किन्तु रति के आश्रय नायक-नायिका-भेद में विशाल परिवर्तन हो गया है।

ग्रंथ परिचय	आश्रय	आलम्बन	उद्दीपन	अनुभाव	सात्विक भाव	संचारी
१—साकेत पृ० २१	लक्ष्मण	उर्मिला	अंग-शोभा, चित्रांकन	प्रिया का कर थामना, चूमना, लज्जित होना		हर्ष व्रीड़ा
२—सिद्धार्थ पृ० १०३	यशोधरा	सिद्धार्थ	नेत्रों का सौंदर्य, वीणा वादन, भ्रू भंग	तीव्र श्वास, सलज्ज दृष्टि	वैवर्ण्य	चपलता, हर्ष, अभिलाष

ग्रंथ परिचय	आश्रय	आलम्बन	उद्दीपन	अनुभाव	सात्विक भाव	संचारी भाव
३–वर्द्धमान पृ०८५	महाराज सिद्धार्थ	रानी त्रिशला	वर्षा ऋतु, मन्द वायु, पक्षियों का कलरव		कम्प	हर्ष, आवेग
४–नूरजहाँ पृ० २५	सलीम	अनार-कली	रमणी-यौवन, अंग सौन्दर्य,नृत्य वाद्य, उद्यान,	मदहोश होना सुध बुध खोना, हृदय मंथन	स्तंभ	हर्ष, मद, औत्सुक्य
५–दैत्यवंश १८।२४	राजा-रानी	राजा-रानी	उद्यान, पावस, झूला गान,वाद्य, नृत्य	कंठ गाना भौंहें चलाना हंसना आदि		हर्ष, आवेग
६–कामायनी पृ०१३६	मनु	श्रद्धा	निभृत स्थान अन्धकार	चुम्बन	कम्प	आवेग, औत्सुक्य
७–कृष्णायन पृ०९७	गोपियाँ	श्रीकृष्ण	बाँसुरी बजाना, नृत्य गीत, वाद्य, शरद	थिरकना, मुसकाना, शिथिल होना		हर्ष, औत्सुक्य
८–मधुपुरी १४।४६	कृष्ण	राधा	वसंत, बाँसुरी बजाना चंद्र प्रभा	चुम्बन, आलिंगन	स्तंभ	अभिलाष हर्ष
९–विक्रमादित्य पृ०८	ध्रुव देवी	विक्रमादित्य	प्रभात, कलियां छिटकना,सुमन खिलना	गाढ़ालिंगन	स्तंभ	अभिलाष
१०–अंगराज पृ०१४।३८	कर्ण-पत्नी	कर्ण	वसन्त, चन्द्रिका प्राकृतिक शोभा			,,
११–कुणाल पृ०४६	रानी तिष्यरक्षिता	कुणाल	नटवेष, अभिनय का सौन्दर्य	विक्षिप्त होना भटकना		मोह, आवेग
१२–प्रथम मिलन (पंत)	कवि स्वयं	मुग्धा नायिका	अंग-सौन्दर्य, आम्र कुंज ज्योत्स्ना, कोयल का शब्द चंचलता, प्रगल्भता	मुख-सुधा का पान, स्पर्श, चुम्बन, आलिंगन		हर्ष, मद आवेग, चपलता
१३–प्रेयसी (निराला)	प्रेमिका	प्रेमी	उषःकाल, वसन्त प्रातःपवन, उपवन	अपलक दृष्टि	स्तंभ	आवेग, जड़ता औत्सुक्य

ग्रंथ परिचय	आश्रय	आलम्बन	उद्दीपन	अनुभव	साहित्य भाव	संचारी
१४-जूही की कली (निराला)	नायक (मलयपवन)	नायिका (कली)	चलित चितवन हँसना, खेलना हाव-भाव दिखलाना आदि मसलना	स्पर्श करना, झकझोरना, कपोलों को मसलना		आवेग, हर्ष,
१५-प्राप्ति (निराला)	कवि	प्रेमिका	स्पर्श, चुम्बन, आलिंगन		स्वेद	
१६-गुंजन (पंत)	कवि स्वयं	प्रेयसी	मन्द, सुगन्ध वायु			औत्सुक्य
१७-चाँद सितारों मिलकर गाओ (बच्चन)	प्रेमी प्रेमिका	प्रेमी प्रेमिका	चाद-सितारों	चुम्बन,		हर्ष
१८-मंगल वर्षा (भवानीप्रसाद)	प्रेमी	प्रेमिका				हर्ष
१९-गुनाह का गीत (भारती)	कवि स्वयं	प्रेमिका	आलिंगन			
२०-केसर रंग रगे आंगन (शकुंतला माथुर)		सखि	होली, तन की सुन्दरता			
२१-रूप-शिखा नरेन्द्र	कवि स्वयं	प्रेमिका				अभिलाष
२२-चांदनी (अंचल)	कवि स्वयं	प्रेमिक				औत्सुक्य
२३-आषाढ़स्य प्रथम दिवसे (अज्ञेय)	कवि स्वयं	प्रेयसी				अभिलाष
२४-पानी बरसा (अज्ञेय)	पत्नी	पति				आवेग

ग्रंथ परिचय	आश्रय	आलम्बन	उद्दीपन	अनुभाव	साहित्य संचारी भाव
२५–कितनी बार तुम्हें देखा (सुमन)	कवि स्वयं	प्रेयसी			औत्सुक्य
२६–प्रिये, न ऐसा करना[1] (केदार)	कवि स्वयं	प्रेयसी			अभिलाष
२७–इस रंगीन सांझ में (गिरिजाकुमार)	कवि स्वयं	प्रेयसी			अभिलाष
२८–प्लेटफार्म पर (विदाई) भारत भूषण	”	”			”
२९–प्रगल्भ प्रेम[2] (निराला)	”	”			”
३०–तट पर[3] (निराला)	”	”			”

आधुनिक हिन्दी कविता में परम्परागत नायक और नायिकाओं के समस्त भेद लुप्त हो गए हैं। रीतिकालीन नायिका भेद और उनके सूक्ष्म वर्ग आधुनिक युग के किसी काव्य में नहीं मिलते हैं। स्वकीया और परकीया की रति के उदाहरण तो बहुत मिलते हैं, किन्तु गणिका को कहीं स्थान नहीं मिला है। उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि साकेत,[4] सिद्धार्थ,[5] वर्द्धमान,[6] दैत्यवंश,[7]

१—नींद के बादल पृ० ६।
२—अनामिका : निराला
३—वही
४—साकेत, प्रथम सर्ग, पृ० २१।
५—सिद्धार्थ, पृ० १०३।
६—वर्द्धमान पृ० ८५
७—दैत्यवंश, १८।२४।

कामायनी[१] और अंगराज[२] में स्वकीया की रति का वर्णन है, अन्यत्र परकीया की रति का। गणिका का कहीं उल्लेख नहीं है। स्वाधीन भर्तृका, वासकसज्जा आदि नायिकाओं के आठ प्रमुख भेदों का भी किसी काव्य में वर्णन नहीं है।

शृंगार की परम्परा में नायिकाओं की तरह नायकों के भी भेद हैं। अपनी स्त्री में आसक्त को पति, पर स्त्री में अनुरक्त को उपपति और हर एक नायिका में प्रीति रखनेवाले को व्यभिचारी (वैषिक) कहते हैं। साहित्य दर्पण में नायक के ४८ भेद किये हैं। धीरोदात्त, धीरललित, धीरप्रशान्त और धीरोद्धत। दक्षिण, धृष्ट, अनुकूल और शठ के अनुसार इनमें से प्रत्येक के चार-चार भेद हैं। इस प्रकार १६ भेद होते हैं। फिर इनमें से प्रत्येक के उत्तम, मध्यम और अधम के विचार से कुल ४८ भेद होते हैं।

मधुपुरी के कृष्ण, नूरजहाँ का सलीम दैत्यवंश का अनिरुद्ध, धीरललित दक्षिण नायक हैं, क्योंकि ये कला-प्रेमी एवं कोमल प्रकृति के हैं। 'साकेत' के 'लक्ष्मण' 'सिद्धार्थ' के सिद्धार्थ, 'विक्रमादित्य' के विक्रमादित्य, 'वर्द्धमान' के सिद्धार्थ और 'दैत्यवंश' के स्कन्द धीरोदात्त अनुकूल नायक हैं। प्रगतिवादी और प्रयोगवादी काव्यों के नायक धृष्ट तथा शठ कोटि में आते हैं, क्योंकि इनके आचरण में उच्छृंखलता और स्वैराचार की प्रवृत्ति देखी जाती है।

पंत, निराला, नरेन्द्र, अंचल, बच्चन, गिरिजाकुमार, केदार एवं भारती की कविताओं में जिन प्रेमी-प्रेमिकाओं और नायक-नायिकाओं का वर्णन है, वह स्वतंत्र कल्पना प आधार पर है। इनमें शास्त्रीय लक्षण घटित नहीं होते हैं। पन्त की अप्सरा; भावी पत्नी के प्रति, निराला की सन्ध्या-सुन्दरी, तट पर, प्रेयसी, केदार की 'मेरी प्यारी सबसे सुन्दर,' भारती की 'गुनाह के गीत' की नायिकाएँ कवियों की कल्पना-प्रसूत सृष्टियाँ हैं। कवियों की मानस-सृष्टि की भौतिक जगत् की नारियों के साथ कोई तुलना नहीं हो सकती हैं। अवस्था, व्यापार एवं कार्य की दृष्टि से आधुनिक कवियों की नायिकाएँ रीतिकालीन परम्परागत नायिकाओं से सर्वथा भिन्न हैं। यही भेद नायकों में लक्षित होता है। इसके अतिरिक्त साकेत, सिद्धार्थ, दैत्य-वंश और विक्रमादित्य के रति-प्रसंगों में शील, औचित्य एवं मर्यादा का पूर्ण ध्यान रखा गया है, जिसका परम्परागत रीतिकालीन काव्य में नितान्त अभाव है। इससे सिद्ध है कि आधुनिक युग की कविता में इस ओर युगानुकूल नया विकास हुआ है। इसके तीन कोटि-क्रम हैं—

१—कामायनी, पृ० १२६।

२—अंगराज १४।२८

(१) नायक एवं नायिकाओं के चारित्र्य में शील एवं मर्यादा का विचार—प्रबन्ध काव्यों में अधिकतर यही रूप दिखाई पड़ता है।

(२) कल्पना-प्रसूत आदर्श नारियों का सृजन—प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी के काव्य की नायिकाएं प्रायः मानसी-सृष्टियां हैं। छायावाद से प्रभावित कवियों ने इसी कोटि के कल्पित छाया चित्र बनाये हैं।

(६) सामान्य नारियों का वर्णन—इसके उदाहरण अधिकतर प्रगतिवादी-प्रयोगवादी रचनाओं में मिलते हैं। अंचल, बच्चन, नरेन्द्र, भगवतीचरण, अज्ञेय, सुमन, शमशेर, गिरिजाकुमार तथा भारती की कविताओं में नायिकाओं के भौतिक एवं मांसल रूप का वर्णन प्रधान है। यह रीतिकालीन परम्परा के मेल में होने पर भी परम्परा से बिलकुल भिन्न है, क्योंकि इनका वर्णन स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति से प्रेरित है, जिस पर रीतिशास्त्र का कोई प्रभाव नहीं है।

शृंगार के आलम्बनों के साथ ही आश्रय के क्षेत्र में भी विस्तार हुआ है। परम्परागत काव्य में आश्रय के रूप में प्रेमी एवं प्रेमिकाओं का ही अधिकतर वर्णन है। आलोच्यकाल में इनके अतिरिक्त शील सम्पन्न राजा-रानी भी आश्रय के रूप में चित्रित हैं। साकेत, सिद्धार्थ, वर्द्धमान, दैत्यवंश, विक्रमादित्य, अंगराज में राजा-रानी परस्पर आश्रय एवं आलम्बन के रूप में चित्रित हैं। प्रगतिवादी और प्रयोगवादी शृंगारिक रचनाओं में अधिकतर स्वयं कवि ही आश्रय हैं।

संभोग शृंगार में चुम्बन, आलिंगन, षड्ऋतु, चन्द्रोदय, सूर्यास्त, जल-केलि, वन-विहार, प्रभात, मधुपान, रात्रि, हिंडोला, अनुलेपन, वस्त्राभूषण आदि विविध वस्तुओं का उद्दीपन के रूप में वर्णन किया जाता है[१]। आधुनिक काव्य में उद्दीपन-सामग्री का और भी विकास हुआ है। चित्रांकन, वीणा-वादन, अभिनय एवं अन्य ललित कलाओं का प्रदर्शन भी आलोच्यकालीन काव्यों में पाया जाता है। साकेत, सिद्धार्थ, दैत्यवंश, कुणाल इसके उदाहरण हैं। परम्परागत उद्दीपन-सामग्री का उपयोग तो प्रायः सभी काव्यों में पाया जाता है, जिसमें प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन प्रधान है। मधुपान का वर्णन किसी काव्य में नहीं है।

शास्त्रीय दृष्टि से सात्विक भाव आठ हैं—स्तंभ, स्वेद, रोमांच, स्वर-भंग, कंप, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलय[२]। इनके अतिरिक्त कायिक, वाचिक अनुभाव भी होते हैं, जिनकी संख्या अनियत है। परम्परागत काव्यों में इनका पृथक्-

---

१—विश्वनाथ : साहित्य दर्पण ३।२११—१२

२—वही, ३।१३५-३६

पृथक् रसों के साथ स्वाभाविक रूप से चित्रण हुआ है। वस्तुतः अनुभाव ही रस के सच्चे व्यंजक हैं। आलोच्यकाल की संभोग श्रृंगार की कविता में ये सर्वत्र पाये जाते हैं। सात्विकों में स्तंभ, स्वेद, कंप, वैवर्ण्य अधिकतर से आए हैं, संचारियों में अभिलाष, हर्ष, आवेग, क्रीड़ा, चपलता, मद, औत्सुक्य, मोह, जड़ता की व्यंजना प्रधानता से मिलती है।

निष्कर्ष यह कि आलोच्यकालीन कविता में विशेषतः प्रबन्ध काव्यों में संभोग श्रृंगार की परम्परा का सुन्दर विकास हुआ है। आलम्बन के रूप-सौन्दर्य के साथ-साथ चारित्रिक शील एवं सौन्दर्य का भी चित्रण पाया जाता है। नायक-नायिकाओं के क्षेत्र में सर्वथा नये टाइपों का विकास हुआ है। छायावादी काव्य की नारियाँ प्रायः सुकुमार कल्पना की मानसिक सृष्टि हैं। उद्दीपन सामग्री का भी पर्याप्त विकास हुआ है। अनुभाव और संचारियों के क्षेत्र में अधिकतर परम्परा का ही निर्वाह हुआ। इससे सिद्ध है कि आधुनिक कविता में भावों की अपेक्षा आश्रय एवं आलम्बनों के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं।

रसाभास—

ऊपर दी हुई तालिका से स्पष्ट है कि विक्रमादित्य, अंगराज, कुणाल में रति का वर्णन रसाभास की कोटि में आता है, क्योंकि इन स्थलों में रति की अभिव्यक्ति उभयनिष्ठ नहीं है। विक्रमादित्य में रानी ध्रुव देवी प्रेमातुर है, किन्तु नायक विक्रमादित्य नहीं। वह अपने आदर्श से च्युत नहीं होता है। अतएव रानी की प्रेम-याचना निष्फल हो जाती है। अंगराज में कर्ण की पत्नी में रति का उत्कर्ष प्रकट होता है, किन्तु उसका पति रणोद्यत होने से अपनी पत्नी के प्रेम को नहीं स्वीकार करता है। अतएव उभयनिष्ठ रति का प्रकर्ष न होने से ये रसाभास की कोटि में आते हैं। कुणाल में रानी तिष्यरक्षिता की रति की अभ्यर्थना अनुचित है, क्योंकि कुणाल उसको माता की दृष्टि से देखता है। रानी के अनुचित प्रस्ताव को कुमार ठुकरा देता है। अनुचित रति होने से यह भी रसाभास है[1]। निराला की 'जूही की कली' में निरिन्द्रिय वस्तुओं की रति का वर्णन है। नायक है मलय पवन और नायिका कली। वास्तविक नायक के धर्मों का अभाव होने से यह भी रसाभास में आता है। धर्मवीर भारती के 'गुनाह के गीत' में प्रदर्शित रति भी अनौचित्य का प्रकाशन है। अतः यहाँ भी रसाभास है।

१—विश्वनाथ : साहित्यदर्पण, ३।२६४

विप्रलंभ श्रृंगार

विरह की परम्परा—

संस्कृत-साहित्य में विरह का वर्णन प्रचुरता से मिलता है। प्रायः सभी महाकवियों ने किसी-न-किसी नारी के विरह का वर्णन किया है। कालिदास का मेघदूत विरही यक्ष के आंसुओं से आर्द्र है। अश्वघोष के बुद्धचरित में विरहिणी यशोधरा की पीड़ा अंकित है। नैषधकार ने नल के विरह में दमयंती की वेदना को उच्छ्वसित किया है। भवभूति के उत्तर रामचरित में राम की दारुण व्यथा ने पत्थरों को भी रुला दिया है।

हिन्दी के कवियों में विद्यापति, कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, केशव, देव, बिहारी, घनानन्द, भारतेन्दु एवं हरिऔध आदि अनेक समर्थ कवियों ने विरह की परम्परा को पल्लवित किया है। इससे सिद्ध है कि विरह-वर्णन की परम्परा बहुत प्राचीन है।

परम्परागत विरह के वर्णन में काव्य कल्पलता वृत्ति के अनुसार ताप, निःश्वास, मौन, शरीर की कृशता, कमल की शय्या, रात्रि का लम्बा होना, जागरण तथा शिशिर की उष्णता का उल्लेख किया जाता है[१]। साहित्य दर्पण-कार ने विरहिणी के अंग तथा वस्त्रों की मलिनता, शिर पर एक वेणी का धारण करना, निःश्वास-उच्छ्वास, रुदन, भूमिपात आदि बातों का उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त शारीरिक व्याधि, सन्ताप, पीलापन, कृशता, अरुचि, व्याकुलता, मानसिक शून्यता, तन्मयता, उन्माद, मूर्च्छा तथा मरण का भी वर्णन है[२]। केशव की कविप्रिया में विरह के समय श्वास, निशा और चिन्ता का बढ़ना, रुदन करना, प्रतीक्षा करना, शरीर का काला, पीला, दुबला, गर्म और ठंडा होना, भूख-प्यास और सुध-बुध का घटना, सुख, नींद तथा शरीर की शोभा का घटना कहा गया है। साहित्य दर्पणकार ने शारीरिक पीड़ा का प्रधानता से वर्णन किया है। काव्य कल्पलता वृत्ति में विरहिणी की शारीरिक दशा के साथ मानसिक चेतना का भी वर्णन है। उन्होंने दिवस-गणना, रात्रि की-दीर्घता, जागरण और शीत-काल में भी ताप के वर्णन द्वारा मानसिक वेदना की ओर इंगित किया है। इस प्रकार काव्य कल्पलताकार ने शारीरिक और मानसिक दोनों पक्षों को प्रधानता दी है। केशवदास ने विरह के समय श्वास,

---

१—काव्यकल्पलतावृत्ति, १।५।८७

२—साहित्यदर्पण, ३।२०४–५।

रात्रि तथा चिन्ता का बढ़ना बताया है। इससे मानसिक वेदना की ओर लक्ष्य है। रुदन और प्रतीक्षा से भी वही अभिप्राय है। विरहिणी के शरीर के काला, पीला, दुबला, गर्म और ठंडा होने से, भूख-प्यास तथा सुध-बुध घटने से और सुख-नींद तथा शरीर की कांति नष्ट होने से शारीरिक दौर्बल्य प्रकट किया गया है। इस प्रकार केशव ने शारीरिक एवं मानसिक प्रभावों को समान रूप से वर्णन किया है। इससे सिद्ध है कि विरह में शारीरिक एवं मानसिक दोनों ही दशाओं का वर्णन होता आया है।

आलोच्य काल के प्रबन्ध काव्यों में विरह का वर्णन नीचे लिखे स्थलों पर पाया जाता है :—

'बुद्ध चरित' की यशोधरा, 'साकेत' की उर्मिला, 'नल-नरेश' की दमयन्ती, 'सिद्धार्थ' की यशोधरा, 'यशोधरा' की गोपा, 'वैदेही-वनवास' की सीता, 'दैत्यवंश' की उषा, 'कृष्णायन' और 'उद्धवशतक' की गोपियों के विरह का वर्णन परम्परानुगत है। इन प्रसंगों में शारीरिक कृशता और मानसिक वेदना का मार्मिक वर्णन किया गया है। बुद्धचरित की यशोधरा काम-ज्वर से पीड़ित है। अतएव उसके अधर, कपोल, नेत्र तथा शरीर की शोभा क्षीण हो गई है। सम्पूर्ण देह पीली पड़ गई है, उसको चलना-फिरना दूभर हो गया है तथा नेत्रों की ज्योति मन्द है। रात्रि की विकरालता, प्रतीक्षा के दिवस एवं प्रेम की प्रगाढ़ता से मानसिक पक्ष का बोध होता है[1]। साकेत की उर्मिला तथा यशोधरा की गोपा के विरह में काम-ज्वर से उद्भूत निश्वास, उच्छ्वास, पीलापन, भूख और नींद का घटना, सन्ताप, अरुचि, व्याकुलता, उन्माद, मूर्च्छा, दौर्बल्य, सुखदायक वस्तुओं की दुःखप्रद अनुभूति, समदुःखिनी प्रोषित पतिकाओं के प्रति सहानुभूति, दिवस गणना, रात्रि की दीर्घता, शीतकाल की उष्णता, चन्द्रोपालंभ तथा उद्दीपन के रूप में छः ऋतुओं का वर्णन पाया जाता है। इन प्रसंगों में कवि ने प्रेमानुभूति के साथ पतिव्रता नारी के शील का भी चित्रण किया है। 'साकेत' की उर्मिला को परिजनों की सेवा, दुखीजनों के प्रति सहानुभूति तथा प्रियतम की शुभ कामना का निरन्तर ध्यान रहता है[2]। 'यशोधरा' की गोपा भी कुटुम्बीजनों के प्रति कर्तव्य-पालन, राहुल के लालन-पालन तथा गौतम की मंगल कामना करती रहती है। दिवस-गणना, जागना,

१—बुद्धचरित, पृ० १६६—६७।
२—साकेत (द्वितीयावृत्ति), पृ० ३०५।

वाट जोहना, प्रिय का नाम जपना, स्वप्न देखना, प्रिय के ध्यान में तन्मय होना से मानसिक क्षोभ प्रदर्शित किया गया है[१]।

'नल-नरेश' की दमयन्ती 'सिद्धार्थ' की यशोधरा, 'वैदेही वनवास' की सीता, 'दैत्यवंश' की उषा,[२] 'कृष्णायन[३] और 'उद्धव शतक' की गोपियों के विरह में शारीरिक कृशता, अंगों का पीला पड़ना, सन्तप्त होना, अविरल अश्रु ढालना, फूट-फूट कर रुदन करना, व्याकुल होना, मूच्छित होना, दीर्घ साँस लेना, देह की सुधबुध खोना, चिन्ता, प्रतीक्षा एवं प्रिय की स्मृति का वर्णन हुआ है। इन सभी प्रसंगों में विरह के शारीरिक और मानसिक दोनों पक्षों का चित्रण है। सिद्धार्थ, वैदेही-वनवास, दैत्यवंश और उद्धवशतक में विविध ऋतुओं के वर्णन द्वारा विरह के भावों को उद्दीप्त किया गया है। सिद्धार्थ की यशोधरा विरहावस्था में सरोज-कली, भ्रमर तथा रोहिणी नदी के समक्ष अपना दुःख निवेदन करती है तथा हंस द्वारा अपने प्राणपति को सन्देश भेजती है।[४] उपर्युक्त काव्यों में विरह की व्यंजना नारियों में दिखाई गई है तथा विरह का वर्णन शत-प्रतिशत रूढ़िगत है।

'नूरजहाँ' में सलीम का, 'तुलसीदास' में तुलसी का, 'दैत्यवंश' में इन्द्र का, 'रावण महाकाव्य' में मेघनाद का और 'स्वप्न' काव्य में वसन्त के विरह का वर्णन है। इन काव्यों में विरह की व्यंजना पुरुषों में दिखाई गई है। नूरजहाँ के दसवें सर्ग में सलीम के विरह का वर्णन है। उसकी प्रेमिका मेहरुन्निसा शेर अफगन के साथ बंगाल को चली गई है। राजकुमार सलीम उसके विरह में इतना अधिक व्याकुल हो उठता है कि प्रेयसी के निकट सन्देश ले जाने के लिए मलय पवन को दूत बनाकर भेजता है। इस प्रसंग में सलीम की काम-बाधा का वर्णन है, जिसमें विरह की पीड़ा, तन्मयता, कसक, वेदना, स्मृति, अधीरता, लालसा का अत्यन्त हृदयग्राही वर्णन है। इसमें मानसिक वेदना का ही चित्रण प्रधान है, शारीरिक पक्ष की ओर कवि का ध्यान कम है।

'तुलसीदास' में रत्नावली के वियोग में तुलसी की विरह-दशा का चित्रण है। इस प्रसंग में विरह का वर्णन अत्यन्त सूक्ष्म है। इसमें केवल तुलसी की अन्यमनस्कता, उदासी, उन्मनता, मुग्धता आदि बातों का ही वर्णन किया गया

१—यशोधरा,

२—दैत्यवंश १३।३६-४४।

३—कृष्णायन, पृ० २२४।

४—सिद्धार्थ, सर्ग १६।

है। परम्परा का आंशिक रूप में पालन हुआ है क्योंकि परम्परा का आधार न लेकर कविवर निराला ने स्वतंत्र उद्भावनाओं का समावेश अधिक किया है[1]।

दैत्यवंश महाकाव्य के सप्तम सर्ग में शची के वियोग इन्द्र के विरह का वर्णन है। दैत्यों के भय से मानसरोवर में छिपे हुए इन्द्र हंस को दूत बनाकर अपनी प्रियतमा के पास भेजते हैं। इसमें इन्द्र की विरहानुभूति, तन्मयता, सन्ताप और काम-व्यथा का अत्यन्त सजीव चित्रण है। इसी प्रकार रावण महाकाव्य में पातालपुरी में स्थित सुलोचना के सौन्दर्य का दर्शन कर मेघनाद को पूर्वराग हो जाता है और वह काम-व्यथा से पीड़ित होकर चन्द्रमा को दूत नियुक्त करता है। इस चन्द्र-दूत के प्रसंग में मेघनाद के मदन-ज्वर का वर्णन अत्यन्त सरस शैली में वर्णित है। इस वर्णन पर कालिदास के मेघदूत का प्रभाव है। स्वप्न नामक काव्य में सुमना के वियोग में वसन्त के विरह का वर्णन है। इसमें मानसिक उद्वेगों का ही वर्णन अधिक है तथा परम्परा का आंशिक रूप से ही पालन हुआ है।

प्रबन्ध काव्यों के अन्तर्गत 'कामायनी' की श्रद्धा, 'वैदेही वनवास' की सीता और 'कुणाल' की तिष्यरक्षिता का विरह-वर्णन रूढ़ि-मुक्त है। कामायनी के 'स्वप्न' सर्ग में मनु के वियोग में श्रद्धा के विरह का वर्णन है। यह वर्णन अत्यधिक काल्पनिक है तथा प्रसाद जी ने इस प्रसंग में प्रकृति का आधार लेकर स्वतंत्र उद्भावनाओं का आश्रय लिया है। परम्परागत विरह के प्रसंगों में वस्तु-वर्णन की प्रधानता है, इसमें भावोद्गारों की। अतः यह वर्णन सर्वथा स्वतंत्र पद्धति पर हुआ है। कुणाल में तिष्यरक्षिता के विरह का वर्णन अत्यन्त संक्षिप्त तथा कल्पनापूर्ण है। इसमें परम्परा की किसी बात को भी स्थान नहीं मिला है। समस्त वर्णन कवि की स्वतंत्र कल्पना है। इसी प्रकार वैदेही-वनवास में रूढ़िगत बातों का आश्रय न लेकर कवि ने स्वतंत्र वर्णन किया है।

मुक्तक रचनाओं में पन्त जी की 'ग्रन्थि,' उच्छ्वास तथा आंसू, निराला जी की 'प्रेयसी', रेखा, प्रसाद का आँसू, द्वापर, की गोपी, महादेवी की नीरजा की कविताएं, नरेन्द्र की 'मेरी याद' और 'विदा,' अंचल की 'फागुन की रात,' 'अन्तिम भेंट' बच्चन के आकुल अन्तर और एकान्त संगीत के विरह गीत, सुमन की 'शरद सी तुम कर रही होगी कहीं शृंगार,' गिरिजाकुमार की

१—तुलसीदास, छं० ७१-७५।

'विदा समय,' 'बीत चली सूनी की सूनी,' अज्ञेय की 'सावन-मेघ' और 'पानी बरसा' में वियोग के भावों की व्यंजना मिलती है।

उपरि निर्दिष्ट कविताओं में विरह की व्यंजना सर्वथा स्वतंत्र एवं नवीन है। परम्परागत विरह के वर्णन से इसका बिलकुल साम्य नहीं है। इन कविताओं में विरहजन्य कृशता और दौर्बल्य का वर्णन करने की ओर ध्यान न देकर शरीर पक्ष की बिलकुल उपेक्षा की गई है, जिससे विरह का वर्णन वस्तु-सापेक्ष न होकर भावात्मक हो गया है। भावों की व्यंजना कभी सूक्ष्म, कल्पनात्मक तथा अधिकतर प्रतीकों के सहारे की गयी है। पन्त की ग्रन्थि तथा प्रसाद का आँसू विरह-काव्य है। इन दोनों ही काव्यों में मानसिक घात-प्रतिघातों के बीच विरह की व्याकुलता का वर्णन किया गया है। ग्रन्थि में भावोद्वेगों का चित्रण अन्योक्ति की पद्धति पर किया गया है—

शैवलिनि, जाओ मिलो तुम सिन्धु से,
अनिल आलिंगन करो तुम गगन को,
चन्द्रिके, चूमो तरंगों के अधर
उडुगणों गाओ पवन वीणा बजा
पर हृदय सब भाँति तू कंगाल है
देख रोता है चकोर इधर सिहर
वह मधुप विधकर तड़पता है, यही
नियम है संसार का रो हृदय रो।

—ग्रन्थि।

प्रसाद के आँसू में विकल रागिनी का हाहाकार है, हृदय का रो रो कर सिसकना, झंझा झकोर का गरजना, अभिलाषाओं का करवट बदलना तथा सुप्त व्यथाओं के जागने का वर्णन है। कवि ने स्मृति-पटल पर अंकित प्रिय की मनोहर छवि का भी चित्रांकन किया है। इसके अतिरिक्त हृदय के छालों के छिलने और फोड़ों के फूटने का भी वर्णन किया है, जिस पर फारसी शायरी का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। अभिप्राय यह कि इस वर्णन में सर्वत्र सूक्ष्मता, भावात्मकता, लाक्षणिक मूर्ति-विधान एवं प्रतीक-योजना का आश्रय लिया गया है। विरह के वर्णन में प्राचीन कवियों ने स्वभावोक्ति का मार्ग अपनाया है। उसमें वियोग की बातों को सीधे प्रकार से कहा गया है। छायावादी काव्य में विरह का वर्णन गूढ़, सांकेतिक एवं प्रतीकात्मक है।

महादेवी के गीतों में विरह की वेदना सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त दिखाई पड़ती है। किन्तु यह आध्यात्मिक विरह के भावों से संवलित है। उन्होंने विरह

के भावों को उद्दीप्त करने के लिए विविध ऋतुओं का भी वर्णन किया है। इन गीतों में ऋतुओं के आलंकारिक वर्णन द्वारा विरह की अभिव्यंजना की गई है।

१—मधुर पिक हौले बोल ! (वसन्त)
२—मैं बनी मधुमास आली। (वसन्त)
३—यह पतझर मधुवन भी हो। (हेमन्त)
४—लाये कौन संदेश नये घन। (वर्षा)
५—मैं नीर भरी दुख की बदली। (वर्षा)
६—पावस घन सी उमड़ बिखरती (वर्षा)
शरद निशा सी नीरव घिरती। (शरद)

महादेवी के रूपकात्मक ऋतु वर्णनों में विरह की व्यंजना साकार हो गई है, किन्तु यह विरह के वर्णन का बिलकुल नया विकास है, जो परम्परागत ऋतु-वर्णन से सर्वथा भिन्न है। निष्कर्ष यह कि छायावादी कवियों के विरह-वर्णन सूक्ष्मता आलंकारिकता, प्रतीकात्मकता एवं प्रधान है। छायावादी काव्य में इस पद्धति का नूतन विकास पाया जाता है।

नरेन्द्र की 'मेरी याद,' सुमन की 'शरद सी तुम कर रही होगी कहीं शृंगार' बच्चन की 'चांद-सितारों मिलकर रोओ,' अंचल की 'जब नींद नहीं आती होगी' कविताओं में विरह का स्थूल एवं अनावृत वर्णन है। इनमें परम्परागत विरह की वस्तुओं का वर्णन नहीं है, केवल भावों का प्रकाशन है तथा अनुमान के द्वारा प्रेमिकाओं की दशा का काल्पनिक चित्रण है। वस्तु की अपेक्षा मनोवेगों का चित्रण प्रधान है, जिनमें स्वप्नों के टूटने, अरमानों के बिखरने और आकुल अन्तर के तड़पने का वर्णन अधिक है। नरेन्द्र की 'मेरी याद' में नारी के विरह में कल्पित वेदना का चित्रण है, खीझ है, और है भावी मिलन की लालसा। सुमन की 'शरद सी तुम कर रही होगी कहीं शृंगार' में कवि के आत्म-विरह का वर्णन है, जिसमें व्यथा, अश्रु, अन्तर्दाह, अन्तर की पीड़ा, प्रतीक्षा, वक्ष की धड़कन, चिन्ता, क्रन्दन, मनुहार, उपालंभ एवं अन्तर्वेदना की विवृति है। इस वर्णन में परम्परागत विरह की अनेक बातों का समावेश हो गया है, किन्तु इसमें कवि के आत्म-विरह का स्थापन है। इस प्रकार के आत्म-विरह को स्थापित करने की यह बिलकुल नई शैली है, जिसको परम्परा पर आधारित नहीं कहा जा सकता है। प्रगतिवादी कवियों की अन्य रचनाओं में भी इसी पद्धति का अवलम्बन किया गया है। अंचल की 'फागुन की रात,' बच्चन की 'इस पार प्रिये तुम हो, मधु है, उस पार न जाने क्या होगा,' गिरिजाकुमार

की 'बीत चली सूनी की सूनी' और 'इस रंगीन सांझ में' इसी प्रकार के भावों का प्रकाशन है। अज्ञेय की 'सावन-मेघ' कविता में विरह का प्रतीकात्मक वर्णन है। कवि ने नारी के विरह में उत्तप्त श्वास, धमनियों में उमड़ती हुई लहू की धार एवं अभिशप्त प्यार का वर्णन प्रतीकात्मक शैली पर किया है; इसमें कुंठा-ग्रस्त प्रेम का प्रकाशन है। इसी प्रकार अज्ञेय की 'पानी बरसा' में विरहातुर नायिका के हृदय की वेदना, अंगों का फड़कना तथा प्रिय के मिलन की उद्दाम लालसा की अभिव्यक्ति है। विरह की वेदना का स्थापना स्वयं नारी के मुख से ही होने के कारण इसमें रति की वासना प्रधान है। विरह के वर्णन की यह शैली बिलकुल नवीन है। इसमें परम्परा का आश्रय नाम मात्र को भी नहीं है।

ऋतु, बारहमासा और अष्टयाम—

विरह की परम्परा में इनका वर्णन प्राचीन काल से होता आया है। रीतिकाल के बिहारी, देव, घनानन्द, पद्माकर आदि सभी प्रतिनिधि कवियों ने इनको स्थान दिया है। नागमती के विरह का वर्णन करने के लिए जायसी ने बारहमासा की योजना की है। लोक गीतों के बारहमासे प्रसिद्ध हैं। आलोच्यकाल में अष्टयाम और बारहमासों के वर्णन की प्रथा लुप्त प्राय है। साकेत-सन्त के चतुर्दश सर्ग में एक अष्टयाम का वर्णन आया है। इसमें राम के वियोग में भरत की आठोयाम की दिनचर्या का वर्णन है। किन्तु इस प्रसंग में विरह की अपेक्षा भरत के शील, सेवा एवं कर्त्तव्य-पालन की प्रधानता है। इस प्रकार यह परम्परागत अष्टयाम का नूतन विकास है। बारहमासों का वर्णन कहीं नहीं मिलता है। पन्त के 'उच्छ्वास' में 'सावन-भादों' में कवि के विरहोच्छ्वासों का वर्णन है। 'आषाढस्य प्रथम दिवसे' शीर्षक से अनेक कविताएँ लिखी गई हैं, जिनमें अज्ञेय की कविता में विरह का वर्णन पाया जाता है। अज्ञेय ने 'माघ-फागुन-चैत' शीर्षक से कविता लिखी है, किन्तु इनमें बारहमासे का अस्फुट रूप ही सामने आता है। ये कविताएँ परम्परागत बारहमासा से भिन्न आधुनिक युग की नवीन शैली में वर्णित है।

उद्दीपन के रूप में ऋतुओं का वर्णन साकेत, यशोधरा, नल-नरेश उद्धवशतक, वैदेही वनवास, साकेत-सन्त एवं महादेवी के गीतों में मिलता है। इन प्रसंगों में भिन्न-भिन्न ऋतुओं में विरहिणी के विविध भावों की व्यंजना की गई है। साकेत सन्त और वैदेही-वनवास का ऋतु वर्णन कथानक के पृष्ठाधार के रूप में है। महादेवी का ऋतु-वर्णन सूक्ष्म एवं आलंकारिक है। उद्धव शतक

में भी आलंकारिक वर्णनों द्वारा विरह की व्यंजना की गई है। इनमें वैदेही-वनवास, साकेत-सन्त और महादेवी के गीतों में ऋतु वर्णन की शैली स्वतंत्र एवं नवीन है, क्योंकि इन काव्यों में प्रकृति का वर्णन स्वतंत्र रूप से हुआ है। महादेवी के गीतों में ऋतुओं का अस्फुट रूप ही सामने आया है। इस पर परम्परा का प्रभाव बिलकुल नहीं है। शेष काव्यों का ऋतु-वर्णन परम्परानुगत है। यशोधरा में गुप्त जी ने विरहिणी यशोधरा की वियोगावस्था को छः ऋतुओं में वर्णन किया है। हर एक ऋतु विरहिणी की पीड़ा को उद्दीप्त करती है। इसके साथ ही हर एक ऋतु में वह प्रियतम के रूप, गुण एवं स्वभाव का सादृश्य ढूंढ़ती है। कहीं-कहीं विरहिणी के तन और मन की दशा का ऋतुओं के साथ सादृश्य दिखाया गया है। इसमें तीन बातें प्रधान हैं—

१—ऋतुओं के प्रभाव से विरहिणी के ताप का बढ़ना।

२—ऋतुओं में प्रिय के गुण, धर्म एवं रूप के सादृश्य का वर्णन।

३—विरहिणी के तन-मन के साथ ऋतुओं के सादृश्य का वर्णन।

उदाहरण के लिए ग्रीष्म की प्रचंडता में अपने ताप और प्रिय के तप के साम्य का वर्णन। इसी प्रकार वियोग की ऊष्मा से पृथ्वी भी जलती-सी दिखाई पड़ती है। साकेत के नवम् सर्ग में वियोगिनी उर्मिला हर एक ऋतु में प्रियतम के ही किसी-न-किसी गुण अथवा सौन्दर्य का दर्शन करती है। ऋतु के माध्यम से विरहिणी के हृदय के भावों की व्यंजना अत्यन्त मधुर है।

दूत या सन्देशहर—

वियोगावस्था में प्रिय के पास सन्देश ले जाने के लिए दूतों की योजना की जाती है। कालिदास का मेघदूत इस दिशा में सबका पथ-प्रदर्शक है। श्रीहर्ष के नैषध में हंसदूत का एक अत्यन्त रोचक प्रसंग आया है। इसके अतिरिक्त संस्कृत साहित्य में इस परपरा का बहुत अच्छा विकास हुआ है। दास गुप्ता ने संस्कृत साहित्य के इतिहास में इनकी संख्या पचास के ऊपर बतलाई है—चन्द्र-दूत, पिकदूत, पवनदूत, पादांदूत, उद्धवदूत, कपिदूत, भ्रमरदूत, काकदूत आदि[१]।

हिन्दी साहित्य में भी इस परम्परा का अच्छा विकास हुआ है। जायसी की नागमती 'भौंरा और काग' के द्वारा प्रियतम के पास सन्देश भेजने का उपक्रम करती है। सूर के भ्रमर गीत में उद्धव को दूत के रूप में भेजा गया है। इसी प्रकार नन्ददास का भँवरगीत, हरिऔध का पवनदूत, सत्यनारायण 'कविरत्न' का

१—दास गुप्ता : ए हिस्ट्री आव संस्कृत लिटरेचर, पृ० ३७२।

भ्रमरदूत आलोच्यकाल के पहले ही लिखे जा चुके थे। इससे सिद्ध है कि वियोग के वर्णन में दूत-काव्यों की एक समर्थ परम्परा का विकास हुआ है।

आलोच्यकाल में दूत या सन्देशहरों की योजना अनेक काव्यों में मिलती है। बुद्धचरित की यशोधरा प्रियतम के पास सन्देश ले जाने के लिए 'गगन चर' को भेजती है। सन्देश में दैन्य एवं मरण की सूचना है।[१] नल-नरेश में 'हंस-दूत' का प्रसंग है। राजा नल का प्रिय करने के लिए हंस दमयन्ती के पास जाता है तथा नल के रूप, गुण एवं सौन्दर्य की ओर प्रेमी को आकर्षित करता है। यह प्रसंग नैषध के आधार पर वर्णित है तथा इसमें प्राचीन परम्परा का पूर्ण रूप से निर्वाह हुआ है। दैत्यवंश के सातवें सर्ग में हंस-दूत का एक अन्य प्रसंग है। एक समय देवराज इन्द्र को दैत्यों से परास्त होकर इन्द्रपुरी से पलायन करना पड़ता है। वे मानसरोवर में छिपकर प्राण बचाते हैं। अपनी प्रियतमा से विमुक्त होकर इन्द्र को असीम दुःख भोगना पड़ता है। तब वे हंसों के द्वारा अपनी पत्नी को सन्देश भेजते हैं। इस प्रसंग में कवि ने कालिदास की पद्धति का अनुसरण करते हुए हंसों के यात्रा-मार्ग का वर्णन किया है। 'हो तुम हंस के वंसिन में विधि के वर वाहन आप सुहाये,' में मेघदूत के यक्ष की 'जातं वंशे भुवन विदिते पुष्करावर्तकानां, जानामि त्वां प्रकृति पुरुषं काम रूपं मघोनः' की प्रतिच्छाया दृष्टिगोचर होती है। काम-ज्वर से पीड़ित इन्द्र के सन्देश दैन्य, स्मृति, अभिलाष एवं औत्सुक्य की व्यंजना अत्यन्त मार्मिक है। मार्ग के दृश्यों की योजना में कामोद्दीपक प्रसंगों का ही प्रचुरता से वर्णन है।

रावण महाकाव्य के सातवें सर्ग में चन्द्रदूत का वर्णन है। इस प्रसंग में मदन-ज्वर से पीड़ित मेघनाद पातालपुरी में स्थित सुलोचना के पास सन्देश पहुँचाने के लिए चन्द्रमा को दूत बना कर भेजता है। इसमें मेघदूत की परम्परा का ही सफलतापूर्वक अनुसरण किया गया है।

रावण महाकाव्य के—

"रथ चक्र के नेमि फिरै तर-ऊपर, त्यों मग में चलिबे के हितै।

क्रम काल कौ लै जग त्यों नर की, फिरती रहै भाग्य की रेखा नितै।"

पद्य में मेघदूत के—'नीचैर्गच्छ त्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण' का ही सफल अनुवाद हुआ है।

सिद्धार्थ के सोलहवें सर्ग में विरहिणी यशोधरा तपस्या रत सिद्धार्थ के पास सन्देश ले जाने के लिए हंस को दूत बना कर भेजती है। विरहिणी यशोधरा

१—बुद्ध चरित, पृ० १६८।

प्रियतम के श्री-चरणों में पत्रिका छोड़ने तथा झंकारों की ध्वनि से उनका ध्यान आकर्षित करने के लिए हंस को प्रेरित करती है।

नूरजहाँ के दसवें सर्ग में राजकुमार सलीम मलयानिल को दूत बनाकर अपनी प्रेयसी मेहरुन्निसा के पास भेजता है। मेहर की शेर अफगन से शादी हो जाने पर वह सुन्दरी बंगाल को चली गई है। इधर सलीम उसकी रूप-माधुरी से मतवाला होकर असीम वेदना का अनुभव करता है। इस प्रसंग में मलयानिल को सन्देश प्रदान करते हुए कामोद्दीपक दृश्यों की सुन्दर योजना की गई है। आशा, अभिलाष, औत्सुक्य, उद्वेग आदि संचारियों की व्यंजना सुन्दर है।

'मधुपुरी' काव्य के १६ वें सर्ग में कवि ने राधा के विरह में एक सन्देश काव्य की योजना की है। श्रीकृष्ण की वियोग-व्यथा से पीड़ित राधा जी भ्रमर को दूत बनाकर प्रियतम के पास भेजती हैं। राधा के सन्देश में प्रिय के लिए आँसुओं का अर्घ्य है, स्नेह की तरलता है तथा करुणा की आर्द्रता है।

इससे सिद्ध है कि आधुनिक काल में दूतों के द्वारा सन्देश भेजने की परम्परा का सुन्दर विकास हुआ है। इन प्रसंगों में परम्परा की पद्धति पर चलते हुए नई उद्भावनाओं का विकास करने के लिए कवियों को अच्छा अवसर मिला है।

चन्द्रोपालंभ —

वियोग के वर्णन में चन्द्रोपालंभों की परम्परा बहुत प्राचीन है। संस्कृत-साहित्य में श्रीहर्ष का चन्द्रोपालंभ अद्वितीय है[1]। कालिदास एवं भवभूति ने भी इस विषय पर पर्याप्त लिखा है। काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में चन्द्रमा पर अनेक उक्तियाँ मिलती हैं। पंडितराज जगन्नाथ ने कहा है कि भू-मंडल को अपनी प्रखर किरणों से भस्म करता हुआ यह अग्नि का गोला उदित हो रहा है। इसे शशांक कौन कहता है[2] ?

१—"मुखरय स्व यशो नव डिण्डिमं जलनिधेः कुल मुज्ज्वलयाधुना।
अपि गृहाण वधूवध पौरुषं हरिण लाञ्छन ! मुंच कदर्थनाम् ॥

—नैषधीयचरितम् ४।५३

अपने यश का नव डिंडिम घोष सुनाओ तथा अब अपने कुल समुद्र का नाम उज्ज्वल करो। हे चन्द्रमा, स्त्री का वध कर पुरुषार्थ दिखाओ, पर यह पीड़ा मत दो।

२—"अंगार प्रखरैः करैः कवलयन्नेत-मही मण्डलम्।
मार्तण्डोऽयमुदेति केन पशुना लोके शशांकीकृतः ॥" —जगन्नाथ।

हिन्दी-काव्य में जायसी, सूर,[१] तुलसी, बिहारी,[२] केशव, घनानन्द, पद्माकर[३] आदि अनेक कवियों ने वियोगियों को पीड़ा पहुँचाने वाले चन्द्रमा पर व्यंग्य कसे हैं।

आलोच्यकाल की कविता में इसके छुटपुट उदाहरण मिल जाते हैं। नल-नरेश में विरह से पीड़ित दमयन्ती चन्द्रमा को देखकर सखियों से कहती है—'हे सखियों ! इस कलंकी चन्द्रमा को कौन सुधाकर कहता है ? मुझको तो यह अग्नि का महान् गोला प्रतीत होता है। इसकी जो किरणें कुमुद को प्रफुल्लित करती हैं, वे मेरे लिए अंगार क्यों बरसाती हैं[४]।"

साकेत की उर्मिला को ऐसा प्रतीत होता है कि यह चन्द्रमा अपनी किरणों से वियोग के अंकुरों को ही पल्लवित करता है।

"सखि, मेरी धरती के करुणांकुर ही वियोग सेता है,
यह औषधीश उनको स्व करों से अस्थिसार देता है।"

—साकेत, नवम् सर्ग।

वैदेही-वनवास की सीता अपने प्रवास काल में चन्द्रिका को देखकर विविध भावों में मग्न हैं। पहले तो वे उसके गुणों पर मुग्ध होती हैं, फिर उपालंभ देती हैं[५]। किन्तु इस प्रसंग में कुछ नई उद्भावनाएँ द्रष्टव्य हैं। विरहिणी सीता (चन्द्रिका) के गुणों की ओर ही देखती हैं तथा सादृश्य द्वारा

१—"नाहिन होत चन्द कर हरिबो।"

—सूरदास।

२—"हौं ही बौरी विरह बस, के बौरो सब गांव।
कहा जानि ए कहत हैं, ससिहिं सीतकर नांव॥"

—बिहारी।

३—"हाल ही तू विरह विचारी ब्रजबाल ही पै,
ज्वाल से जगावत जुवाल सो जुन्हाई के।
एरे मतिमन्द चन्द, आवति न तोहि लाज,
ह्वै के द्विजराज काज करत कसाई के॥"

—पद्माकर।

४—नल-नरेश, ५।१२-१८

५—हां प्रायः वियोगिनी तुम से, व्यथिता बनती रहती हैं।
देख तुम्हारे जीवन-धन को, मर्म वेदना सहती हैं।"

: वैदेही बनवास, १०।३८

उसके दिव्य गुणों को धारण करने की आकांक्षा करती हैं। इस प्रकार हरिऔध जी ने परम्परा को नई दिशा की ओर मोड़ दिया है।

काम दशाएँ—

वियोग में काम दशाओं को भी दिखाया जाता है। दस काम दशाएँ इस प्रकार हैं—अभिलाष, चिन्ता, स्मृति, गुण-कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण। नीचे इनके उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं:—

(१)अभिलाष—प्रिय से मिलन की स्पृहा।

अनमने फागुन दिवस ये हो रहे हैं प्राण कैसे,
आज सन्ध्या से प्रथम ही भर चला उर लालसा से।
आज तो मधुमास रे मन[1]।

(२) चिन्ता—प्रिय की प्राप्ति के अभाव से उत्पन्न ध्यान का नाम चिन्ता है। इसमें सूनापन, सन्ताप, ऊँची साँस लेना आदि होते हैं—

क—न तो आज कुछ कहती है वह और न कुछ सुनती है,
अन्तर्यामी यह जानें, क्या गुनती-बुनती है।"
—द्वापर (गोपी)

इसमें राधा की विरह-दशा का चित्रण है। प्रिय के ध्यान में उसे सब कुछ भूल गया है। चिन्ता का भाव-व्यंजित है।

ख—विचारती हूँ सखि, मैं कभी-कभी,
अरण्य में हैं प्रिय लौट आते।
छिपे छिपे आकर देखते सभी,
कभी स्वयं भी कुछ दीख जाते[2] !"

वियोगिनी उर्मिला प्राणपति के ध्यान में निमग्न होकर प्रिय के दर्शन का सा सुख लूटती है। इसमें चिन्ता की व्यंजना है।

(३) स्मृति—सदृश वस्तु के दर्शन तथा चिन्तन आदि से पहले के अनुभूत सुख-दुःख आदि विषयों का स्मरण ही स्मृति है। इसमें भौंहें चढ़ना, एकटक देखना आदि अनुभाव हैं।

क—आलि, इस वापी में हंस बने बार-बार बिहरे
सुध कर उन छीटों की मेरे ये अंग आज भी सिहरे"
—साकेत—नवम् सर्ग।

१—अंचल : अपराजिता, पृ० ७२।

२—मैथिलीशरण गुप्त : साकेत, नवम् सर्ग।

ख—निज पलक मेरी विकलता साथ ही,
अवनि से उर से मृगेक्षणि ने उठा,
एक पल निज स्नेह श्यामल दृष्टि से
स्निग्ध कर दी दृष्टि मेरी दीप-सी। —ग्रन्थि—पन्त।

(४) गुण-कथन—प्रिय के गुणों का कथन करना।

क—प्रिय, प्राणों की प्राण!
न जाने किस गृह में अनजान
छिपी हो तुम, स्वर्गीय विधान।
नवल कलिकाओं की सी वाण,
बाल-रति-सी, अनुपम, असमान—
न जाने कौन, कहाँ अनजान,
प्रिये, प्राणों की प्राण!

—भावी पत्नी के प्रति—पन्त।

इसमें प्रियतमा के गुणों का वार-वार कथन है।

ख—प्रेम पद्मिनी! प्रेम-लता! हे प्राण-वल्लभे! हे प्राणेश्वरि!
मेरी प्रिय सद्मिनी! कहाँ हो? हे मेरे जीवन की सहचरि!
मैं पुकारता हूँ पर मेरी ही ध्वनि सुन पड़ती है फिर कर।
मानों प्रिया-विहीन जानकर करता है उपहास आज घर।

—स्वप्न ४।१

नायक प्रियतमा के विरह में वार-वार उसका गुणानुवाद करता है।

(५) उद्वेग—किसी घटना के कारण, प्रिय या अप्रिय बात को सुन कर हृदय जब शान्त स्थिति को छोड़कर उत्तेजित हो उठता है, तब उसे उद्वेग कहते हैं। व्याकुल होना, स्तंभ कंप आदि इसमें कार्य होते हैं:—

उद्धव, कहो नहीं लौटा क्यों, हाय हमारा राजा?
बजा यहाँ उसके विरुद्ध था, क्या विप्लव का बाजा?

—द्वापर—गोपी।

प्रियतम कृष्ण के न जाने पर गोपियों की व्याकुलता में उद्वेग प्रकट हो रहा है—

(६) प्रलाप—विरह-व्यथा मे पीड़ित होकर निरुद्देश्य बक-झक करना।

क—अभी विलोक एक अलि उड़ता, उसने चौंक कहा था—
सखि वह आया, इस कलिका में क्या कुछ शेष रहा था?

—द्वापर—गोपी

इसमें विरह की वेदना से पीड़ित राधा के प्रलाप की व्यंजना है—

ख—धिक् ! तथापि हो सामने खड़े ?
तुम अलज्ज से क्यों यहाँ अड़े ?
जिधर पीठ दे दीठ फेरती,
उधर मैं तुम्हें ढीठ, हेरती !

—साकेत—नवम् सर्ग

विरहिणी उर्मिला विरह से कातर होकर सब ओर लक्ष्मण को ही देखकर निरुद्देश्य प्रलाप करती है।

(७) उन्माद—काम, शोक, भय आदि से चित्त का भ्रान्त होना। इसमें हँसना, रोना, प्रलाप करना आदि कार्य होते हैं।

क—लो, वह आप आ रही देखो, 'सखी,' 'सखी' चिल्लाती।
पर उद्धव उद्धव की ध्वनि भी, है यह कैसी आती ?

—द्वापर—गोपी

कृष्ण के विरह में राधा का चित्त भ्रान्त है, अतएव वह सखी-सखी, उद्धव-उद्धव चिल्लाती है। इसमें उन्माद की व्यंजना है।

ख—स्वजनि, क्या कहा-वे यहाँ कहाँ ?
तदपि दीखते हैं जहाँ तहाँ ?
यह यथार्थ उन्माद, भ्रान्ति हैं ?
ठहर तो मिटा क्षोभ, शान्ति है।

—साकेत—नवम् सर्ग

विरहिणी उर्मिला भ्रान्तिवश अपने प्राणपति को सर्वत्र देखती है। इसमें उन्माद की दशा स्फुट है।

(८) व्याधि—लम्बी साँसें चलना, पाण्डुता तथा कृशता इसके लक्षण हैं—

क—मेरी दुर्बलता क्या दिखा रही तू अरी, मुझे दर्पण में ?
देख निरख मुख मेरा वह तो धुंधला हुआ स्वयं ही क्षण में।"

—साकेत—नवम् सर्ग

ख—हृदय, यह क्या दग्ध तेरा चित्र है ?
धूप ही है शेष अब जिसमें रहा।
इस पवित्र दुकूल से तू देव का
वदन ढकने के लिये क्यों व्यग्र है ?

—ग्रन्थि

पहले उदाहरण में सुख की तथा दूसरे में हृदय की व्याधि ग्रस्त दशा का वर्णन है।

(९) जड़ता—चिन्ता, उत्कंठा, विरह, इष्ट-अनिष्ट के देखने-सुनने से चित्त की विमूढ़ात्मक वृत्ति का नाम जड़ता है। इसमें अपलक देखना, चुप रहना आदि अनुभाव है।

क—आठ पहर चौंसठ घड़ी, स्वामी का ही ध्यान।
छूट गया पीछे स्वयं, उससे आत्मज्ञात॥

—साकेत-नवम् सर्ग

ख—किधर जायं, पग धरें कहां हम, सीधे शूल पड़े हैं,
अब भी कुंजों में क्रीड़ा के, सूखे फूल पड़े हैं।

—द्वापर-गोपी

कृष्ण के वियोग में गोपियों के चित्त की किंकर्त्तव्यविमूढ़ दशा का वर्णन है।

(१०) मरण—चित्तवृत्ति की ऐसी दशा, जिसमें मरण की सी पीड़ा का अनुभव हो। इसमें प्राण-वियोग उचित नहीं क्योंकि भाव-दशा में शरीर और प्राणों के संयोग से ही कार्य होते हैं[१]।

क—जब जल चुकी विरहिणी बाला,
बुझने लगी चिता की ज्वाला,
तब पहुँचा विरही मतवाला,
सती-हीन ज्यों शूली।

—साकेत-नवम् सर्ग

ख—स्वामी मुझको मरने का भी दे न गए अधिकार,
छोड़ गए मुझ पर अपने उस राहुल का सब भार।
जिये जल-जल कर काया री।
मरण सुन्दर बन आया री। —यशोधरा

इन प्रसंगों में विरह की अवस्था में मृत्यु की सी ही पीड़ा का वर्णन है। अतएव व्याम् अवस्था है।

१—"रोगादिजन्या मूर्च्छा रूपा मरण प्रागवस्था मरणम्। न चात्र प्राण वियोगात्मकं मुख्यं मरणमुचितम् ग्रहीतुम्। चित्त वृत्यात्मकेषु भावेषु, कार्य सहवर्तितया शरीर प्राणयोगस्य हेतुत्वात्।

रसगंगाधर, प्रथम आनन, पृ० ३११।

पं० बद्रीनाथ झा कृत टीका सहित।

साकेत के नवम् सर्ग में, द्वापर के गोपी प्रकरण में, कामायनी के लज्जा और स्वप्न सर्गों में तथा ग्रन्थि, आँसू, स्वप्न, तुलसीदास, अपराजिता, मधुबाला, आकुल अन्तर, प्रवासी के गीत, यशोधरा आदि रचनाओं में विप्रलम्भ शृंगार के अन्तर्गत दश काम दशा, विविध संचारी एवं शारीरिक कृशता के उदाहरणों का प्राचुर्य है। इन प्रकरणों में विरह की अन्तर्दशाओं का सम्यक् वर्णन पाया जाता है।

आलोच्यकालीन हिन्दी के प्रबन्ध काव्यों में शृंगार के उभय-संयोग और विप्रलम्भ-सम्यक् रूपेण अभिव्यंजित है। छायावादी काव्य में विप्रलम्भ शृंगार की अभिव्यक्ति प्रधान है, किन्तु उसकी शैली गूढ़, सूक्ष्म एवं सांकेतिक है। प्रगतिवादी रचनाओं में संभोग शृंगार का प्राचुर्य है। नायक-नायकाओं के सूक्ष्म भेदोपभेदों को छोड़कर रीतिकाल तथा प्रगतिवादी काव्य की शृंगारिक अभिव्यक्ति में पूर्ण समानता है। दोनों काव्यधाराओं में प्रेमाभिव्यक्ति उन्मुक्त तथा स्वच्छन्द है। किन्तु यह समानता केवल संभोग शृंगार के क्षेत्र तक ही सीमित है। विप्र-लंभ शृंगार की अभिव्यक्ति में पर्याप्त अन्तर है। प्रगतिवादी कवियों ने परम्परा-गत विरह वर्णन की रूढ़ियों का एकदम परित्याग कर दिया है तथा स्वच्छन्द प्रेम का मार्ग अपनाया है।

प्रबन्ध काव्यों में शृंगार रस की दृष्टि से नल-नरेश, सिद्धार्थ, दैत्यवंश, वर्द्धमान, उद्धव शतक, यशोधरा और नूरजहाँ अत्यन्त समृद्ध हैं क्योंकि इन काव्य ग्रन्थों में वस्तु की संश्लिष्ट योजना के अन्तर्गत शृंगार रस की पूर्ण अभिव्यक्ति को यथेष्ट अवकाश मिला है। साकेत की वस्तु-योजना इतनी संकुचित है कि शृंगार का पूर्ण विकास नहीं हो सका है। उसकी कथावस्तु में विभिन्न पात्रों के भावोद्‌गारों के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इस कारण उसमें शृंगारान्त-र्गत संचारियों के भाव-सीकरों का ही संस्पर्श है, शृंगाराम्बुधि में निमज्जित होने का आनन्द नहीं। प्रिय प्रवास में जैसा शृंगार का माधुर्य छलकता है, वैसा साकेत में नहीं। साकेत के नवम् सर्ग में विप्रलंभ का सौन्दर्य अवश्य है, पर वर्ण्य वस्तु के अभाव के कारण संचारियों का ही दर्शन-दिग्दर्शन मात्र है। रस की परिणति के स्थल बहुत कम हैं।

आँसू, ग्रन्थि, नीरजा, अपराजिता, प्रवासी के गीत, हिल्लोल जैसी शृंगारिक रचनाओं में रस की पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं मिलती है। मुक्तक एवं प्रगीत काव्यों में कथा-वस्तु का आधार क्षीण होने से रस की पूर्णता नहीं आ सकती है। आलम्बन, उद्दीपन, अनुभाव एवं संचारियों में से दो-एक तत्त्व ही आ पाते हैं। अतएव रस अपुष्ट दशा में ही रह जाता है। छायावादी, रहस्यवादी,

तथा प्रगतिवादी कवियों ने अधिकांश में मुक्तक एवं प्रगीत काव्यों का ही सृजन किया है। अतः इनकी रचनाओं में अधिकतर भावों का ही उन्मीलन हुआ है, शृंगार का पूर्णोत्कर्ष बहुत कम है। इसके अतिरिक्त आधुनिक कवियों ने रस-दृष्टि से काव्य में रस की रचना नहीं की है। इसी कारण रस के सम्पूर्ण अवएव एकत्र संघटित नहीं मिलते हैं।

प्रयोगवादी-प्रगतिवादी कवि सिद्धान्तः रस के विरुद्ध हैं। इसी से इनके काव्य में रस को स्थान नहीं मिला है। इनके काव्य में यों तो शृंगार ही प्रधान है, किन्तु कविजन आलम्बन का ही वर्णन करके छुट्टी पा लेते हैं। प्रयोगवादी कवि रति के महत्त्व को स्वीकार तो करते हैं, किन्तु उनके काव्य में इसकी सम्यक् प्रतिष्ठा नहीं हो सकी है। उनकी कविता में आलम्बन या उद्दीपन ही दिखाई पड़ते हैं या केवल अनुभावों का ही वर्णन है अथवा कहीं पर संचारियों की ही प्रदर्शनी लगाई गई है।

निष्कर्ष यह है कि आलोच्यकाल के प्रबन्ध काव्यों में ही शृंगार की पूर्ण प्रतिष्ठा हुई है। उनमें प्राचीन रूढ़ियों को भी उचित स्थान मिला है तथा उद्दीपन एवं अनुभावों में यथेष्ट विकास भी हुआ है। उनमें काम दशाओं एवं विरह की अन्य रूढ़ियों का भी दर्शन मिलता है। मुक्तक एवं प्रगीत काव्यों में रस की पूर्ण सामग्री के अभाव में उसकी केवल झलक दिखाई पड़ती है। प्रयोगवादी रचनाओं में रस एवं भाव-व्यंजना को पूर्णरूप से वहिष्कृत कर दिया गया है।

हास्य रस

हास्य की परम्परा—

संस्कृत-साहित्य में शृंगार, वीर, करुण के समान हास्य रस की कोई समर्थ परम्परा नहीं मिलती है। वाल्मीकि रामायण, महाभारत तथा अन्य प्रवन्ध काव्यों में यत्र-तत्र हास्य रस की झलक मिलती है। संस्कृत के सुभाषित ग्रन्थों में हास्य रस के प्रकीर्ण श्लोक पाये जाते हैं। इनमें हास्य की अत्यन्त सरस व्यंजना मिलती है। देखिए एक वृद्ध की इस हास्य की उक्ति में कितनी रोचकता है—

"पाण्डुराः शिरसिजास्त्रिवली कपोले,
दन्तावलिर्विगलिता न च मे विषादः।
एणी दृशो युवतयः पथि मां विलोक्य,
तातेति भाषणपराः खलु वज्रपातः[१]।"

१—काशीनाथः सुभाषित रत्न भांडागारम्, पृ० ३८०।

शिर के बाल सफेद हो गए, कपोलों पर झुर्रियाँ पड़ गईं, दाँत टूट गए, किन्तु इन बातों का मुझे कुछ भी दुःख नहीं है। हाँ, मृगनयनी युवतियाँ मार्ग में जाते देखकर जब मुझसे पूछती हैं कि बाबा कहाँ जाते हो? तो निश्चय कहता हूँ कि मेरे ऊपर वज्र-सा गिरता है।

हिन्दी-साहित्य में हास्य रस की परम्परा का विकास अपनी स्वतंत्र पद्धति पर हुआ है। डा० नगेन्द्र इस तथ्य का समर्थन करते हुए लिखते हैं—"हिन्दी ने जहाँ संस्कृत-प्राकृत की और रीति-नीति उत्तराधिकार में प्राप्त की वहाँ हास्य की सामग्री भी थोड़ी-बहुत अपनायी। परन्तु धीरे-धीरे सभ्यता और समाज में परिवर्तन होते रहने के कारण हिन्दी का हास्य उसके शृंगार की भाँति उसी परम्परा का अन्धानुयायी न रह सका और उसका जो यत्किंचित विकास हुआ, वह स्वतंत्र ही हुआ [१]।"

हिन्दी के प्रारंभिक युग में हास्य रस का एकान्त अभाव-सा है। आगे चलकर कबीर के साहित्य में हास्य और व्यंग्य का अच्छा विकास हुआ है। सूर के भ्रमरगीत तथा तुलसी के मानस और कवितावली में शिष्ट एवं स्मित हास्य के दर्शन मिलते हैं। इसके पश्चात् रीतिकाल में रहीम, गंग, बिहारी, सेनापति, बोधा, ठाकुर, पद्माकर, बेनी कवि की रचनाओं में यत्र-तत्र इसकी झलक मिलती है।

कबीर ने सामाजिक कुरीतियों तथा पाखंडों को अपने तीक्ष्ण व्यंग्यों का विषय अवश्य बनाया है, किन्त अन्य कवियों के हास्य रस के विषय अधिकतर इष्ट-देवों के उपालंभ, पेटू, स्वार्थी और सूम ही रहे हैं।

भारतेन्दु युग में परिस्थिति और समाज में एक नया परिवर्तन आया, जिससे हास्य रस के आलम्बन भी परिवर्तित हुए। ढोंगी देशभक्त, लीडर, वेदान्ती, पुराणपन्थी, खुशामदी लोग तथा फैशन के गुलाम इस युग में हास्य रस के विषय बने हैं। देश की दुर्दशा और सामाजिक अधोगति पर भारतेन्दु जी ने अत्यन्त चुटीले व्यंग्य किए हैं। भारत-दुर्दशा, अन्धेरनगरी इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं।

हास्य रस—

दशरूपककार ने विकृत आकृति, वचन, वेष को हास्य रस का आलम्बन बताया है। यह उत्तम, मध्यम, अधम प्रकृति भेद से छः प्रकार का है—(१) स्मित, जिसमें नेत्र खिले हों (२) हसित, जिसमें कुछ दाँत दिखाई देते हों (३)

१—डा० नगेन्द्र : हिन्दी कविता में हास्य रस, वीणा, नवम्बर, १६३७, पृ० ३३

विहसित जिसमें मधुरता हो (४) उपहसित जिसमें सिर झूमने लगे (५) अपहसित जिसमें आँखों में आँसू आ जावें तथा (६) अतिहसित जिसमें अंग विक्षिप्त होते हों। स्मित और हसित उत्तम, विहसित और उपहसित मध्यम तथा अपहसित और अतिहसित अधम प्रकृति के पात्रों का हास्य होता है। निद्रा, आलस्य, श्रम, ग्लानि और मूर्च्छा आदि इसके संचारी हैं।[१]

वाग्भट्ट ने विकृत वेश आदि को विभाव कहा है, नासिका, कपोल, होठों का मुलकना, नेत्रों का खुलना, स्वेद, मुख पर लाली दौड़ना, पेट पकड़ना आदि अनुभाव और निद्रा, अवहित्था, तन्द्रा, लज्जा, आलस्य आदि व्यभिचारी होते हैं।[२]

केशव मिश्र ने चेष्टा, अंग, वेश आदि की विकृति को हास्य का विषय बताया है। उत्तम कोटि के हास्य में कपोल और नेत्र उल्लसित होते हैं, मध्यम में मुंह फट जाता है और अधम श्रेणी के हास्य अट्टहास का शब्द होता है।[३]

साहित्य दर्पणकार ने हास्योत्पादक विकृत आकृति, वचन और चेष्टाओं को आलम्बन और उसकी चेष्टाओं को उद्दीपन कहा है। नेत्र संकुचित होना, मुसकाना आदि इसके अनुभाव हैं और निद्रा, आलस्य, अवहित्था आदि व्यभिचारी होते हैं। हास्य की तीन प्रकृतियां तथा छः भेद दशरूपक के समान ही हैं।

अन्य रसों की भाँति हास्य रस में आश्रय का प्रत्यक्ष उल्लेख नहीं होता है विभावादि की सामर्थ्य से ही उसका आक्षेप कर लिया जाता है। विभावादि के साधारणीकरण द्वारा सामाजिकों को उसकी अनुभूति हो जाती है।[४] काव्य प्रकाशकार ने भी इसे स्वीकार किया है।[५]

हास्य रस के छः भेद और तीन प्रकृतियों के विषय में प्रायः सभी आचार्य एक मत हैं। विकृत आकार, वचन और वेश को आलम्बन के रूप में सभी ने स्वीकार किया है। आलम्बनगत चेष्टाओं को सभी ने उद्दीपन माना है। मुख, नेत्र और कपोलों के खिलने, संकुचित होने और लाली दौड़ने को सभी ने अनुभाव बताया है। संचारियों में निद्रा, आलस्य, अवहित्था, श्रम, ग्लानि, मूर्च्छा

१—दशरूपक, ४।७६-७७।
२—काव्यानुशासन, अध्याय २।
३—अलंकार शेखर, २०।१६-१७।
४—साहित्यदर्पण ३।२१४-२१
५—काव्यप्रकाश ४।२७ की टीका (वामन कृत)

आदि के विषय में सब सहमत हैं। इसी आधार पर आधुनिक काल के काव्यों में हास्य रस का विवेचन किया जाता है।

आलोच्यकालीन काव्यों में आए हुए हास्य रस के प्रसंगों में हास्य के समस्त शास्त्रीय लक्षण घटित होते हैं। इन प्रसंगों में सर्वत्र आलम्बन के विकृत रूप, आकार, वेश, वचन तथा चेष्टाओं का वर्णन पाया जाता है। अनुभावों का वर्णन भी यथा संभव शास्त्रीय पद्धति पर हुआ है। संचारी भावों में प्रायः अवहित्था, हर्ष, ग्लानि एवं लज्जा आदि की व्यंजना प्रधान है। साकेत,[१] कृष्णायन[२] यशोधरा,[३] एवं जयद्रथ वध[४] में स्मित रूप उत्तम पात्रों का हास्य है, सिद्धार्थ,[५] साकेत-सन्त[६] और सिद्धराज[७] में विहसित और अवहसित रूप मध्यम पात्रों का हास्य तथा दैत्यवंश,[८] नूरजहाँ,[९] विक्रमादित्य,[१०] रावण महाकाव्य,[११] परिमल[१२] एवं अनामिका[१३] प्रसंगों ने अपहसित एवं अतिहसित रूप अधम पात्रों का हास्य है।

कृष्णायन के अवतरण कांड में कृष्ण की बाल लीलाओं के प्रसंगों में हास्य रस की प्रचुर सामग्री मिलती है। इन प्रसंगों में हास्य रस के अन्तर्गत विनोद, व्यंग्य, उपालंभ एवं परिहास की मधुर व्यंजना प्रच्छन्न है। यहाँ केवल एक ही उदाहरण दिया जाता है—

'पायो माखन भरी कमोरी। खान लगे प्रभु चोरी चोरी॥
चितवत चहुँ दिसि कहुँ कोउ नाहीं। लखी खंभ आपनि परिछाहीं॥

१—साकेत पृ० १३,
२—कृष्णायन पृ०,
३—यशोधरा पृ० ५३,
४—जयद्रथ वध पृ० १२
५—सिद्धार्थ पृ० २१,
६—साकेत सन्त ८।८-६,
७—सिद्धराज पृ० १२८,
८—दैत्यवंश ३।३८,
६—नूरजहाँ पृ० १११
१०—विक्रमादित्य पृ० ४६
११—रावण महाकाव्य ६।२६-२७
१२—परिमल—पंचवटी प्रसंग ३
१३—अनामिका, (सरोज स्मृति) पृ० १२६।

पूछत, 'को तुम ? कवन पठावा ? अब लगि केतिक माखन खावा ?
हंसी ठठाय सुनत ब्रज बाला। भागे भय-विह्वल नंदलाला ॥'

—कृष्णायन।

कृष्ण का चोरी-चोरी मक्खन खाना आलम्बन है, चारों ओर देखना उद्दीपन है। ब्रजबाला का ठहाका मारना अनुभाव तथा हर्ष संचारी है। ठहाका मारकर हंसने में अतिहसित हास्य का रूप है जो अधम कोटि के पात्र में व्यंजित हुआ है।

दैत्यवंश और विक्रमादित्य काव्यों में भी हास्य रस का प्राचुर्य है। दैत्यवंश का लक्ष्मी-स्वयंवर और विक्रमादित्य में वीरसेन की उक्तियों में हास्य रस की सरस व्यंजना मिलती है।

आलोच्यकाल के प्रबन्ध काव्यों में हास्यरस का पूर्णोत्कर्ष हुआ है।

मुक्तक काव्यों में हास्य रस—

नाथूराम शंकर की कविता में हास्य रस अत्यन्त चुटीला बन कर आया है। सामाजिक कुप्रथाओं और फैशन परस्ती पर इन्होंने अत्यन्त तीखे व्यंग्य-बाण छोड़े हैं[1]।

'ईश गिरिजा को छोड़ योशु गिरजा में जाय,
शंकर सलोने मैन मिस्टर कहावेंगे।'

इस प्रसिद्ध छन्द में फैशन परस्तों को आलम्बन बनाकर तीव्र व्यंग्य किया गया है। शंकर जी ने बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, मूर्तिपूजा आदि विषयों को लेकर जो कठोर व्यंग्य किए हैं, वे भारतेन्दु की परम्परा के विकसित चिह्न हैं।

निराला जी ने भी ढोंगी भक्तों को हास्य का विषय बनाया है। अनामिका की 'दान' कविता में से एक उदाहरण दिया जाता है—

'मेरे पड़ोस के वे सज्जन,
करते प्रतिदिन सरिता-मज्जन,
झोली में पुए निकाल लिए,
बढ़ते कपियों के हाथ दिए,
देखा भी नहीं उधर फिर कर
जिस ओर रहा वह भिक्षु इतर,

१—नाथूराम शंकर शर्मा : अनुराग रत्न, पृ० २३६।

चिल्लाया किया दूर दानव,
बोला मैं—'धन्य, श्रेष्ठ मानव !'

वृद्ध-विवाह को आलम्बन बनाकर 'सरोज स्मृति' कविता में निराला जी ने एक कटु व्यंग किया है—

'ये जो जमुना के से कछार
पद फटे बिवाई के उघार।
खाने के मुख ज्यों, पिये तेल,
चमरौधे जूते हो सकेल
निकले, जो लेते, घोर गन्ध,
उन चरणों को मैं यथा अन्ध,
कल घ्राण-प्राण से रहित व्यक्ति
हो पूजूँ, ऐसी नहीं शक्ति।
ऐसे शिव से गिरिजा-विवाह
करने की मुझको नहीं चाह।'

—अनामिका

इसके पश्चात् 'कुकुरमुत्ता' में निराला जी ने हास्यरस के सर्वथा विषयों की सर्जना की है, जिनका परम्परागत पद्धति से कोई सम्बन्ध नहीं है। अतएव वह एक स्वतंत्र परम्परा है, जिसका प्रयोगों में विवेचन किया जायगा।

हरिशंकर शर्मा ने अपनी हास्य रस की रचनाओं में भारतेन्दु युग के पं० प्रतापनारायण मिश्र की परम्परा को पुनरुज्जीवित किया है।

आपने 'अल्हड़राम की रें रें' शीर्षक से तृप्यन्ताम् पर कविता लिखी है। हिन्दू जाति की अवनति पर व्यंग्य करते हुए आपने कहा है—

'हिन्दू सुनो खोल कर कान,
हो जाओ बिलकुल वीरान।
ऋषि मुनियों को जाओ भूल,
काटो दैविक धर्म बबूल, तृप्यन्ताम्।'[1]

आपने 'चमर पंच' कविता में पंचों की अच्छी खबर ली है। 'अगुआ' की आत्मकथा,' 'चवन्नी का चमत्कार' कविताओं में ढोंगी देश-भक्तों का मार्मिक चित्र उतारा गया है।

१—हरिशंकर शर्मा : चिड़ियाघर, पृ० २५।

बेढब बनारसी,[1] कान्तानाथ पांडे 'चोंच,' 'बचनेश,' बेधड़क बनारसी, और गोपाल प्रसाद व्यास[2] ने हास्यरस की धारा का यथेष्ट विकास किया है। इनकी कविताओं में राजनीतिक, सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन के सुन्दर व्यंग्य चित्र हैं। श्रीनारायण चतुर्वेदी, देवराज 'दिनेश' ने अपनी कविताओं में मधुर हास्य की सृष्टि की है। चतुर्वेदी जी ने अधकचरे साहित्यकारों को और 'दिनेश' जी ने आधुनिक कवियों को हास्यरस का आलम्बन बनाया है।

मुक्तक कविताओं में हास्य व्यंग्य एवं वाग्विदग्धता की जो नई धारा चली है, यह कोई सर्वथा नूतन प्रयोग नहीं है। सामाजिक कुरीतियों, धार्मिक आडम्बरों एवं जातीय ढोंगों को हास्य का विषय बनाने का मार्ग कबीरदास बहुत पहले खोल चुके थे। कबीर के साहित्य में इन विषयों पर अत्यन्त मार्मिक व्यंग्य मिलता है। आलोच्यकाल से पूर्व भारतेन्दु युग में कबीर की परम्परा का और अधिक विकास हुआ है। भारतेन्दु युग के कवियों ने धर्म, जाति, भाषा, देश, नारी, शिक्षा आदि विविध विषयों पर हास्य-व्यंग्य की कठोर वर्षा की है। आलोच्यकाल के मुक्तककार भारतेन्दु युग के कवियों की परम्परा में आते हैं। नये युग में हास्य व्यंग्य के विषयों की कुछ और वृद्धि हो गई है। हास्य के नये आलम्बनों में भक्त, पुजारी, नेता, मंत्री, डाक्टर, वकील और कवि भी आ गए हैं। यह भारतेन्दु युग की हास्य-परम्परा का ही नूतन विकास है।

निष्कर्ष यह कि आलोच्यकाल के प्रबन्ध काव्यों में हास्य रस की शास्त्रीय परम्परा के शत-प्रतिशत लक्षण घटित होते हैं। मुक्तक रचनाकारों ने कबीर एवं भारतेन्दु युग के कवियों की परम्परा को आगे बढ़ाया है, जिसमें हास्य के साथ व्यंग्य एवं वाग्विदग्धता की प्रधानता है।

करुण रस

करुण की परम्परा—रामायण में आदि कवि वाल्मीकि ने करुण रस को ही स्थापित किया है, क्योंकि 'शोक ही श्लोक रूप में प्रकट हुआ'—ऐसा उन्होंने स्वयं कहा है। उसका परिपाक अन्त तक—सीता के अत्यन्त वियोग पर्यन्त उसका निर्वाह किया गया है[3]। कालिदास के काव्यों में भी शोक का यथेष्ट विकास

१—देखिये, बेढब की बहक,

२—देखिये, गोपालप्रसाद व्यास : अजी सुनो।

३—'रामायणे हि करुणोरसः स्वयं आदिकविना सूत्रितः। शोकः श्लोकत्व-मागत इत्येवं वादिना। निर्व्यूढश्च स एव सीतात्यन्त वियोग पर्यन्तमेव एव प्रबन्धमुपन्यस्यता।'—ध्वन्यालोक, चतुर्थ उद्योत की पाँचवीं कारिका की वृत्ति।

हुआ है। रघुवंश में इन्दुमती के दिवंगत हो जाने पर राजा अज का विलाप तथा कुमार सम्भव में कामदेव के भस्म होने पर रति का विलाप करुण रस के उत्कृष्ट प्रसंग हैं। भवभूति की दृष्टि में करुण की ही एक मात्र सत्ता है। अन्य रस उसी के रूपान्तर हैं—'एको रसः करुण एवं' कहकर उन्होंने करुण रस को ही प्रधान माना है।

हिन्दी-साहित्य में शृंगार और वीर के पश्चात् करुण रस की भी पुष्ट परम्परा है। जायसी, सूर, तुलसी, केशव आदि महाकवियों की रचनाओं में करुण रस के प्रसंग अनेक स्थलों पर मिलते हैं। रामचरितमानस में राम-वन-गमन, अशोक वाटिका में सीता, जटायु-मरण, दशरथ की मृत्यु और लक्मण की मूर्च्छा के प्रसंगों में शोक की व्यंजना चरमोत्कर्ष को पहुँच गई है। भारतेन्दु की कविताओं में भी अनेक स्थलों पर करुणा की झलक विद्यमान है। सत्य हरिश्चन्द्र और भारत-दुर्दशा में शोक की पूर्ण व्यंजना मिलती है। हरिऔध जी के प्रिय प्रवास में करुण का वेग अत्यन्त हृदयस्पर्शी है।

करुण रस का विवेचन—

शृंगार के पश्चात् करुण ही सबसे अधिक तीव्र, व्यापक एवं प्रभावोत्पादक है। काव्यों में चिरकाल से इसका महत्त्व चला आता है क्योंकि इसकी संवेदना बड़ी तीव्र एवं मार्मिक होती है तथा उसका प्रभाव सुख की अपेक्षा कहीं अधिक स्थायी होता है। इसका कारण यह है कि करुण में सह-अनुभूति की मात्रा अधिक होती है। अन्य रसों में भी यही बात है। हम किसी दुखी को देखकर दुखित होते हैं और सुखी को देखकर सुख का अनुभव करते हैं। इसी प्रकार भयभीत को देखकर भाग खड़े होते हैं, आश्चर्य में मुग्ध व्यक्ति को देखकर स्वयं तदवत् आचरण करने लगते हैं—यह सब सह-अनुभूति के कारण है। इससे सिद्ध है कि सह-अनुभूति में समानुभूति का भाव प्रच्छन्न रहता है। करुण में इसका प्रादुर्भाव विशेषरूप से लक्षित होता है।

सह-अनुभूति सामाजिक गुण है। इसमें पर दुःख कातरता, उदारता, संवेदनशीलता आदि गुणों का समावेश रहता है। अपने प्रिय की सभी वस्तुएं प्रिय होती हैं। प्रिय के अनिष्ट की आशंका से ही हृदय सिहर उठता है। प्रेमी अपने प्रिय के साथ इतना तादात्म्य स्थापित कर लेता है कि उसके वियोग में तद्वत अनुभूति से व्याकुल हो उठता है। समानुभूति का भाव जड़-चेतन सभी के साथ हो सकता है। नित्य के सहचर पेड़-पौधे, जीव-जन्तु, लता-गुल्म सभी के वियोग में दुःखानुभूति होने लगती है।

करुण का आधार शोक है। इष्ट-नाश एवं अनिष्ट की प्राप्ति से चित्त में जो विकार उत्पन्न होता है, उसे शोक कहते हैं। साहित्य दर्पणकार ने इसके अतिरिक्त बन्धु-वियोग, विभव-नाश में भी शोक व्याप्ति मानी है[१]। भाव यह है कि जिनके साथ हृदय का रागात्मक सम्बन्ध हो चुका है, वे चाहे जड़ हों, चाहे चेतन उनके नाश से, विपत्ति से, वियोग से मन में जो दुःखात्मक अनुभूति होती है, वही शोक है। इच्छा, आशा-अभिलाषा का विघात भी शोक को जन्म देता है।

किन्तु शोक और सहानुभूति में अन्तर है। शोक का भाव सीमित तथा सहानुभूति का असीमित होता है। सहानुभूति के पात्र विश्व के स्थावर-जंगम सभी प्राणी हो सकते हैं, परन्तु शोक के नहीं। शोक में इष्ट जनों का वियोग हो आता है। प्रिय का अनिष्ट देखकर हमें शोक होता है, किन्तु किसी पड़ोसी की मृत्यु पर हमें सहानुभूति ही होती है। इसी कारण प्रिय अथवा इष्ट जनों से माता, पिता, भाई, बहिन, पुत्र, पति, बन्धु, परिजन आदि का ग्रहण है। यदि इष्ट जनों के नाश की परिधि से बाहर करुण रस को प्राणी मात्र के साथ सहानुभूतिमूलक मान लें तो शोक का भाव असीम हो जायगा। काव्य की परम्परा में शोक को सीमित रूप में ही ग्रहण किया गया है तथा इष्ट नाश, अनिष्ट की प्राप्ति में ही उसको आबद्ध कर लिया गया है।

आधुनिक युग के प्रबन्ध काव्यों में करुण रस की परम्परा का यथेष्ट विकास हुआ है। दैत्यवंश,[२] अंगराज,[३] जयद्रथ वध,[४] साकेत[५] में इष्ट नाश संबंधी करुण के; नूरजहाँ,[६] जौहर,[७] कुण्डल,[८] साकेत[९] में अनिष्ट-प्राप्ति संबंधी

१—एवं बन्धु वियोग विभव नाशादावप्युदाहार्यम् ॥ साहित्यदर्पण ३।२२५

२—दैत्यवंश १७।२०

३—अंगराज पृ० २७०

४—जयद्रथवध पृ० २१

५—साकेत पृ० १६१

६— नूरजहाँ पृ० १२७-२८

७—जौहर पृ० ८८

८—कुणाल पृ०१०५

९—साकेत पृ० ११२

करुण के; सिद्धार्थ,[१] कृष्णायन,[२] कुरुक्षेत्र,[३] तुमुल,[४] साकेत-सन्त[५] में बन्धु-वियोग संबंधी करुण के; रावण महाकाव्य,[६] हल्दी घाटी,[७] आर्यावर्त में पराभव, राज्य नाशादि संबंधी करुण के अत्यन्त हृदयस्पर्शी उदाहरण मिलते हैं। आश्रय और आलम्बन के क्षेत्र में भी विस्तार हुआ है। पहले अधिकतर पति-पत्नी की मृत्यु एवं बन्धु-वियोग में ही शोक का भाव सीमित हो गया था। आजकल राजा-प्रजा, पुत्र, पिता, बन्धु के प्रति भी शोक की व्यंजना मिलती है। इन्हीं प्रसंगों में अनुभाव और संचारियों का प्रसार भी अधिक हुआ है। इन काव्यों में करुण रस की परम्परा का शत-प्रतिशत अंश में निर्वाह हुआ है। इससे सिद्ध है कि आलोच्य काल के प्रबन्ध काव्यों में करुण रस की सम्पूर्ण सामग्री विद्यमान है तथा उसका यथोचित विकास भी हुआ है।

प्रबन्ध काव्यों से बाहर मुक्तकों के क्षेत्र में भी विषाद की प्रभूत सामग्री मिलती है, किन्तु इसके आश्रय, आलम्बनादि परम्परानुगत नहीं हैं। अतएव इनका अध्ययन परम्परा ने बहिर्भूत होने के कारण प्रयोग के अन्तर्गत किया जायगा।

रौद्र रस

स्थायी भाव.........क्रोध
आलम्बन............शत्रु
उद्दीपन ....मुष्टि प्रहार, शस्त्र चालन, छेदना, विदारना, लड़ना आदि
अनुभाव ....रोमांच, स्वेद, कंप, भ्रू-भंग, ओष्ठ दंशन, भुज ताड़न, तर्जन, आत्म-श्लाघा, शस्त्रों का प्रयोग, क्रूरता के कार्य आदि।

१—सिद्धार्थ पृ० २००
२—कृष्णायन पृ० ६६६
३—कुरुक्षेत्र पृ० ६
४—तुमुल पृ० ७४
५—साकेत सन्त ३।३६
६—रावण—सर्ग १४
७—हल्दीघाटी पृ० १७८-७६

संचारी ....मोह, अमर्ष, उग्रता, आवेग, उत्साह
विबोध, चपलता आदि।

हिन्दी-साहित्य के अन्तर्गत रौद्ररस के प्रसंगों में प्रायः आश्रय एवं आलंबन के रूप में वीरों एवं प्रतिपक्षी नायकों का ही वर्णन आया है। पद्मावत के गोरा-बादल खंड में, रामचरितमानस के राम-रावण युद्ध में एवं शिवा बावनी के शिवा-औरंगजेब के संग्राम-वर्णन में सर्वत्र प्रतिपक्षी योधाओं को ही आलम्बन के रूप में चित्रित किया है। साथ-ही रौद्र रस के लिए युद्ध के प्रसंग ही उपयुक्त समझे जाते हैं, क्योंकि ऐसे अवसरों पर ही रौद्र रस की व्यंजना का उत्कर्ष अच्छा होता है।

आधुनिक काल के प्रबन्ध काव्यों में रौद्र रस का उत्कर्ष पूर्ण रूप में हुआ है। रौद्ररस के सभी प्रसंग युद्धस्थल से सम्बन्ध रखते हैं तथा इनके आश्रय-आलम्बन परम्परानुगत हैं। वर्तमान काल की प्रयोगवादी, प्रगतिवादी एवं राष्ट्रीय रचनाओं में रौद्र रस की प्रभूत सामग्री मिलती हैं, किन्तु उसके आश्रय एवं आलम्बन सर्वथा नवीन एवं आधुनिक युग की परिस्थितियों से उद्भूत हैं। अतएव परम्परा से वहिर्भूत होने के कारण ये प्रयोग के अन्तर्गत रौद्र रस के स्वतंत्र विकास के रूप में अन्यत्र दिखाये जायंगे। साकेत,[१] हल्दीघाटी,[२] दैत्यवंश,[३] आर्यावर्त,[४] कृष्णायन,[५] जौहर,[६] अंगराज,[७] विक्रमादित्य[८] आदि प्रबन्ध काव्यों में शत-प्रतिशत अंश में परम्परा के दर्शन मिलते हैं। इनके आश्रय-आलम्बन योधा, प्रतिपक्षी एवं सैनिक आदि हैं। इस प्रकार विभाव पक्ष की सभी बातें प्राचीन परम्परा के अनुकूल हैं। अनुभावों में मुख एवं नेत्रों की लालिमा, भौंहें टेढ़ी करना, भुजाओं का ताड़न, शस्त्रों का प्रदर्शन, ललकार, गर्जन-तर्जन एवं सात्विकों में स्तंभ, स्वेद, रोमांच, कम्प आदि तथा अमर्ष, उग्रता, आवेग, विबोध, चपलता और मद-संचारी भाव भी मिलते हैं।

१—साकेत पृ० ४१८-१६।
२—हल्दी घाटी पृ० १२७,
३—दैत्यवंश पृ० ६।२५,
४—आर्यावर्त पृ० २०
५—कृष्णायन पृ० ७००,
६—जौहर पृ० ५५,
७—अंगराज २१।१२७-२६
८—विक्रमादित्य पृ० १७२।

इससे सिद्ध है कि आधुनिक कविता रौद्र रस की दृष्टि से पूर्णतः समृद्ध है तथा उसमें परम्परा की सम्पूर्ण सामग्री विद्यमान है। यह केवल प्रबन्ध काव्यों को ही दृष्टि में रखकर कहा गया है। अन्यत्र मुक्तक रचनाओं में रौद्र रस का स्वतंत्र विकास हुआ है, जिसका विवेचन अन्यत्र किया जाएगा।

वीर रस

वीर रस की परम्परा—वीरगाथा काल के चन्द आदि कवि, तुलसी, केशव, भूषण, गोरेलाल, सूदन, जोधराज तथा पद्माकर आदि कवि इस धारा के प्रधान कवि हैं।

आधुनिक हिन्दी-काव्य में वीर रस की परम्परा का अध्ययन करने के लिए नीचे लिखे काव्यों को चुना गया है :—

महाकाव्य—

साकेत, तक्षशिला, कामायानी, हल्दीघाटी, दैत्यवंश, आर्यावर्त कृष्णायन, जौहर, विक्रमादित्य, अंगराज।

खण्ड काव्य—

जयद्रथ वध, सिद्धराज, वीर प्रताप, अभिमन्यु वध, रश्मिरथी, तुमुल, प्रणवीर प्रताप, मौर्य विजय।

मुक्तक—

वीर सतसई, मनहर वीर ज्योति, झांसी की रानी, पानीपत (श्री अनूप शर्मा)

वीर रस—

साहित्यदर्पणकार ने 'उत्तम प्रकृतिर्वीरः' लक्षण देकर वीर रस को अन्य रसों से उत्तम माना है। इनके अनुसार इसका स्थायीभाव उत्साह, देवता महेन्द्र और रंग सुवर्ण के सदृश होता है। इसमें जीतने योग्य रावणादि आलम्बन विभाव होते हैं और उनकी चेष्टा आदि उद्दीपन विभाव होते हैं। युद्ध के सहायक (धनुप, सैन्य आदि) का अन्वेपणादि इसके अनुभाव होते हैं। धैर्य, मति, गर्व, स्मृति, तर्क, रोमांचादि इसके संचारी भाव हैं। इसके चार भेद हैं, यथा—(१) दान वीर (२) धर्म वीर (३) दया वीर और (४) युद्ध वीर[१]।

१—साहित्य दर्पण ३।२३२-३४।

वीर रस के भेदों के विषय में आचार्यों का मतभेद है। अग्निपुराण में वीर रस के केवल तीन ही भेद माने गए हैं। उनमें दया वीर को स्थान नहीं है। धनञ्जय ने दशरूपक में इसके तीन ही भेद माने हैं। इनमें धर्म वीर का स्थान नहीं है। रसगंगाधरकार पंडितराज जगन्नाथ ने भी वीर रस के चार भेद स्वीकार किए हैं। इन्होंने चार प्रकार का उत्साह माना है, किन्तु आगे चलकर उन्होंने यह भी कह दिया है—"वस्तुतः शृंगार रस की तरह वीर रस के भी अनेक भेद हो सकते हैं, यथा—सत्य वीर, पाण्डित्य वीर, बल वीर और क्षमा वीर आदि। इसका कारण भी स्पष्ट है। उत्साह के अनेक रूप होते हैं। यदि विचार करके देखें तो उत्साह के जितने स्वरूप हो सकते हैं, वीर रस के भी उतने ही भेद होंगे।

वास्तव में उत्साह ऐसा व्यापक भाव है कि वह जीवन की किसी भी चेष्टा में व्यक्त हो सकता है। जब किसी भी कार्य में उत्साह का प्रदर्शन हो सकता है, तब उसकी सीमा भी कैसे बांधी जा सकती है? उत्साह का प्रदर्शन तो हर एक मानव प्रवृत्ति में हो सकता है। कार्य करने का अभिनिवेश तथा शौर्य प्रदर्शित करने की प्रबल इच्छा को उत्साह कहते हैं। भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, क्रोध, प्रेम, क्षमा, सत्य, करुणा, अहिंसा आदि हर एक भाव में उत्साह को प्रदर्शित किया जा सकता है। मन, वचन एवं कर्म से सम्पादित होने वाले किसी भी असाधारण कार्य में मनुष्य के शौर्य का प्रदर्शन संभव है। इस दृष्टि से जिस व्यक्ति की मानसिक शक्ति का असाधारण विकास हुआ है, उसे बुद्धि शूर, जिसकी वाणी में बल है, उसे वाक्शूर तथा जिसमें साहस के कार्य करने की शक्ति हो, उसे कर्म शूर कह सकते हैं। इसीलिए महाभारत में 'शूरा बहुविधाः प्रोक्ताः' कहा गया है।

किन्तु इस प्रकार की मान्यता से वीर रस के वृत्त में सभी रसों का अन्तर्भाव हो जाता है। यह अनुचित है क्योंकि अन्य रसों के स्थायीभाव भिन्न हैं। इससे अतिरिक्त वीरत्व की स्थिति सर्वत्र मानने से अनवस्था दोष आ जाता है। इससे वीर रस के अनन्त भेद मानना उपयुक्त नहीं है। फलतः आचार्यों ने वीर रस को सीमित कर दिया है। साहित्यदर्पणकार की तरह पंडितराज जगन्नाथ ने भी उसको चार प्रकार का ही माना है। अतः परम्परानुगत इसी वर्गीकरण को मानकर आधुनिक काव्यों से वीर रस के उदाहरण दिए जाते हैं :—

ग्रन्थ का संदर्भ	आश्रय	आलम्बन	उद्दीपन	अनुभव	संचारी
१—साकेत (द्वितीयावृत्ति) पृ० ४१५	युद्धवीर भरत शत्रुघ्न	रावणादि निशाचर		शंख-भेरियों की ध्वनि, शस्त्र उठाना	हर्ष, आवेग

ग्रन्थ का सन्दर्भ	आश्रय	आलम्बन	उद्दीपन	अनुभाव	संचारी
२—कामायानी प्र० सं० पृ० २०१	मनु (राजा) युद्धवीर	प्रजापक्ष	अपमान, भर्त्सना	शस्त्र उठाना टंकार, श्वास लेना आदि	अमर्ष, गर्व आवेग
३—दैत्यवंश पृ० ६८-६६	राजाबलि	इन्द्र	शक्ति, पराक्रम, सेना का पलायन	तिरस्कार, अधिक्षेप, शौर्य-प्रदर्शन	अमर्ष, उग्रता, हर्ष
४—हल्दीघाटी पृ० ११५	राणा प्रताप (दयावीर)	बंदी मान सिंह	मस्तक झुकना पानी-पानी होना	दया	चिन्ता, गर्व
५—आर्यावर्त, षष्ठ संस्करण पृ० ६५	आर्य सेनापति	यवन दल		वीरत्व का प्रदर्शन, शस्त्र धारण करना आदि	हर्ष, मद
६—कृष्णायन पृ० ६२२-२३	भीम	कौरव दल	गर्जना, बल, प्रताप दिखाना, सेना, रण वाद्य, धनुष-बाण का शब्द	दर्प, शौर्य, शक्ति गर्जन, मारना आदि	रोमांच गर्व, हर्ष
७—विक्रमादित्य सर्ग ३४	चन्द्रगुप्त	शक सेनापति	सेना द्वारा आक्रमण	युद्ध, प्रस्थान	हर्ष, चपलता, औत्सुक्य
८—अंगराज, पृ० १८७	पांडव-सेना	कौरव दल	सेना, शंख, सिंहनाद गर्जन	गर्जन, वाद्य बजाना, विरुदावली गाना	मद, आवेग हर्ष
९—जौहर (१९ वीं चिनगारी)	राजपूत सेना	यवन दल	गर्जन, तर्जन, आक्रमण	बल, विक्रम और शक्ति का परिचय	हर्ष, धृति श्रम

ग्रन्थ का सन्दर्भ	आश्रय	आलम्बन	उद्दीपन	अनुभाव	संचारी
१०—जयद्रथ वध (प्रथम सर्ग)	अभिमन्यु	कौरव-सेना	चक्रव्यूह रचना रिपु सेना	शौर्य-प्रदर्शन	चपलता, हर्ष, आवेग, उत्सुकता
११—सिद्ध-सिद्धराज राज (द्वि० सर्ग)	सिद्धराज	जगदेव	युद्ध लड़ना,	हाँक मारना धराशायी होना	उग्रता, अमर्ष
१२—तुमुल (१२वाँ सर्ग)	लक्ष्मण	मेघनाद	बल प्रदर्शन, ललकारना	बाण छोड़ना शक्ति-प्रदर्शन	उग्रता, अमर्ष
१३—रश्मिरथी पृ० १६२	कर्णार्जुन	कर्णार्जुन	गर्जन, बाणवर्षा, रक्तरंजित शरीर		युद्ध करना
१४—मौर्य-विजय	हिन्दू सेना	ग्रीक दल	भयंकर युद्ध	रणकौशल दिखाना	हर्ष, आवेग
१५—सिद्धार्थ पृ० ५८	सिद्धार्थ (दयावीर)	घायल हंस	व्यथा	पक्षी को गोद में लेना, गले लगाना, चूमना	विषाद
१६—सिद्धराज पृ० ४५-४६	सिद्धराज (दयावीर)	मूर्च्छित जगदेव	अचेत होना	दया, उपचार की आज्ञा आदि	तर्क
१७—साकेत पृ० ३८५	भरत (दयावीर)	आहत हनुमान	दारुण आर्त्त-नाद, मूर्च्छित होना	रुदन करना	विषाद
१८—अंगराज ८।६-१०	कर्ण (दानवीर)	भिक्षुकगण	दीनदशा	प्रिय वाणी, दया दृष्टि	हर्ष, गर्व
१६—हल्दीघाटी पृ० १८२	भामाशाह	असहाय राणा प्रताप	विपत्तिग्रस्त जीवन	आँसू गिराना, गद्गद होना	हर्ष, आवेग
२०—तक्षशिला ४।५०	युवराज (धर्मवीर)	प्रजा	सुख-शांति की स्थापना	प्रजा हित में लगे रहना	हर्ष
२१—प्रणवीर प्रताप पृ० ४४-४५	झाला-मन्ना	यवन सेना	युद्ध	रक्तात्क होना	हर्ष धृत गर्व

ग्रन्थ का सन्दर्भ	आश्रय	आलम्बन	उद्दीपन	अनुभाव	संचारी
२२–साकेत पृ० ३७१	भरत	चरण पादुकाएँ	रत्न-दीप	पूजा-निरत आत्मलीन	चिंता
२३–बुद्धचरित्र पृ० १२८	गौतम बुद्ध (धर्मवीर)	तत्त्व विचार	एकान्त, वन धार्मिक कृत्य	ध्यान,सुध बुध भूलना	विबोध
२४–साकेत-सन्त १४।६	भरत (धर्मवीर)	सत्संग	धार्मिक कृत्य संध्या, उपासना	शांति स्थिरता	धृति, मति विबोध
२५–दैत्यवंश १२।३८	बलिराज (दानवीर)	बाल ब्राह्मण		दान के प्रति उत्साह	हर्ष, गर्व
२६–दैत्यवंश १।४६	प्रह्लाद (धर्मवीर)	पीड़ित मुनि वृन्द	हाहाकार	सत्याग्रह, उत्साह का प्रदर्शन	उग्रता, गर्व

मुक्तक काव्यों में वीर रस—

ऊपर के उदाहरणों के अतिरिक्त मुक्तक काव्यों में भी उत्साह की सुन्दर व्यंजना मिलती है। भगवानदीन 'दीन' का वीर पंचरत्न, वियोगी हरि की वीर सतसई, अनूप शर्मा की 'स्वतंत्रता का आवाहन' और 'पानीपत', सुभद्राकुमारी की 'झाँसी की रानी', मैथिलीशरण गुप्त के 'स्वर्गीय संगीत' में उत्साह की व्यंजना अत्यन्त प्रभावोत्पादक है। इसके अतिरिक्त त्रिशूल, सेवकेन्द्र, अम्बिकेश, केशव तथा रामचन्द्र शुक्ल 'सरस' की फुटकर कविताओं में वीरत्व के भावों का सुन्दर प्रकाशन पाया जाता है। इन प्रसंगों में वीर रस की सर्वांगपूर्ण व्यंजना तो नहीं है, किन्तु हर्ष, गर्व, मति, धृति, तर्क, स्मृति, उग्रता, आवेग, औत्सुक्य, रोमांच आदि भावों की व्यंजना सफल है।

ऊपर दिये हुए उदाहरणों से स्पष्ट है कि आधुनिक काल की कविता में वीर रस की परम्परा का यथेष्ट विकास हुआ है तथा उसके चारों भेदों पर काव्य-रचना मिलती है। चित्र में १६ और २५ संख्या के काव्यों में दानवीर, ४, १६,१७, १८ में दयावीर, २१,२३, २४ और २६ में धर्मवीर तथा शेष संख्याओं के काव्यों में युद्धवीर की सर्वांगपूर्ण सामग्री विद्यमान है। तालिका से स्पष्ट है कि वीररस के आश्रय, आलम्बन तथा उद्दीपन सामग्री का पर्याप्त विकास हुआ है तथा रस की पूर्ण सामग्री विद्यमान है। इससे सिद्ध है कि प्रबन्ध काव्यों में वीर रस का पूर्णोत्कर्ष पाया जाता है। मुक्तक एवं स्फुटिक रचनाओं में वीररस के केवल संचारियों का ही प्रदर्शन है।

भयानक रस

भयानक की परम्परा—

हिन्दी साहित्य में रौद्र और वीर रस की भाँति भयानक रस की परम्परा भी मिलती है। आलोच्यकाल से पूर्व जिन काव्यों में रौद्र और वीर रस मिलता है, उन्हीं में भयानक रस भी। अतएव पुनरावृत्ति से बचने के लिए यहाँ उनका नामोल्लेख करना आवश्यक नहीं समझा गया है।

आलोच्यकाल के अन्तर्गत भी जिन प्रबन्ध काव्यों में रौद्र और वीर रस मिलता है, उन्हीं में भयानक रस भी। भयानक रस का निरूपण दशरूपककार ने इस प्रकार किया है—

रौद्र शब्द के सुनने से अथवा रौद्र मूर्ति के देखने से भय स्थायी के प्रादुर्भूत होने पर भयानक रस उत्पन्न होता है। इसमें कंप, स्वेद, स्वरभंग, वैवर्ण्य आदि अनुभाव होते हैं तथा दैन्य, संभ्रम, मोह एवं त्रास आदि व्यभिचारी भाव होते हैं।[१]

वाग्भट्ट के अनुसार पिशाचादि के विकृत स्वर को सुनने एवं उसे देखने से तथा स्वजनों का नाश देखने से भयानक रस उत्पन्न होता है तथा शून्य गृह, वन आदि से उद्दीप्त होता है। हाथ काँपना, चंचल दृष्टि से देखना, हाथ मलना, कंठ और होठ सूखना, मुँह फीका पड़ना, रंग बदलना, स्वरभंग आदि इसमें अनुभाव होते हैं तथा इसके संचारी हैं—शंका, अपस्मार, मरण, त्रास, चपलता, आवेग, दैन्य, और मोह आदि। स्त्री तथा नीच पुरुषों में इसकी उत्पत्ति स्वाभाविक रूप से होती है।[२]

साहित्य दर्पण में भयानक रस की उत्पत्ति इस प्रकार बतलाई गई है—

जिससे भय की उत्पत्ति हो, वह आलम्बन तथा उसकी घोर चेष्टाएँ उद्दीपन होती हैं। इसके अनुभाव हैं—वैवर्ण्य, गद्गद् स्वर, प्रलप, स्वेद, रोमांच, कंप तथा सब ओर आँखें फाड़-फाड़ कर देखना आदि तथा इसके संचारी भाव जुगुप्सा, आवेग, मोह, त्रास, ग्लानि, दैन्य, शंका, अपस्मार, भ्रान्ति एवं मरण आदि होते हैं। स्त्री, बालक एवं नीच नायक इसके आश्रय होते हैं।

उपर्युक्त आचार्यों के मतों में आलम्बन के विषय में कोई बड़ा मतभेद नहीं है। भयानक रूप या विकट स्वर से इसकी उत्पत्ति है। वाग्भट्ट ने स्वजनों

१—दशरूपक ४।८०।

२—वाग्भट्ट : काव्यानुशासन, अध्याय ५।

के नाश को भी आलम्बन माना है। दशरूपककार ने उद्दीपनों का उल्लेख नहीं किया है। वाग्भट्ट ने शून्य गृह, अरण्य आदि को तथा साहित्यदर्पणकार ने आलम्बन की घोर चेष्टाओं को आलम्बन बताया है। वाग्भट्ट ने बाह्य वस्तुओं को उद्दीपन रूप में ग्रहण किया है तथा साहित्यदर्पणकार ने आलम्बन गत बातों को। यही दोनों का अन्तर है। अनुभावों और संचारियों में कम और अधिक के सिवाय कोई अन्तर नहीं है। साहित्यदर्पण के अनुभाव और संचारियों की संख्या सबसे अधिक है।

नीचे आलोच्यकाल के काव्यों से भयानक रस के उदाहरण तथा उनकी सामग्री का विश्लेषण किया जाता है :—

भयानक रस

ग्रन्थ सन्दर्भ	आश्रय	आलम्बन	उद्दीपन	अनुभाव	संचारी
१—दैत्यवंश ७।१	देवसेना के वीर	भूतादि के दृश्य	असहाय दशा	आतंकित होना	त्रास, दैन्य
२—नूरजहाँ पृ० २६	अनारकली	अकबर	खटका, तलवार दिखाना	मूर्च्छित होना भू-पात	त्रास, अपस्मार
३—विक्रमादित्य पृ० ५७	ध्रुवदेवी	शक सेना	राजा का बंदी होना	भयभीत होना	शंका, दैन्य
४—अंगराज २१।१३७	सेना	कर्ण का, वज्र बाण	अग्नि वर्षा	हाहाकार, धैर्यनाश	त्रास
५—हल्दीघाटी पृ० १६६	राणा के बच्ची-बच्चे	यवन-दल	अरण्यवास, भूख की पीड़ा	चिल्लाना, रोना विलापकरना	दैन्य
६—जोहर पृ० ५५	यवन सिपाही	गोरा-बादल	शस्त्रादि संचालन	भू-पात, कंप	त्रास, आवेग
७—कृष्णायन पृ० ६२	ग्वाल-बाल	अरिष्टासुर	भयंकर रूप	व्याकुलता, पलायन,मरण	त्रास, अपस्मार
८—रावण महाकाव्य १३।३१	राक्षसवृन्द	राम का भयंकर युद्ध	रावण का सिर कटना	पलायन, घबड़ाना	त्रास, आवेग
९—आर्यावर्त पृ० २३	यवन सैनिक	पृथ्वीराज	रौद्र मूर्ति	कंप, पलायन, हाहाकार	त्रास, भ्रांति

ग्रन्थ सन्दर्भ	आश्रय	आलम्बन	उद्दीपन	अनुभाव	संचारी
१०—रश्मि-रथी पृ० १२०-२१	पांडव सेना	कर्ण	काल रूप	कंप, कोलाहल, व्यग्रता	त्रास आवेग
११—सिद्ध-राज पृ० ४४	सैनिक	सिद्धराज	प्रचंड नाद	भयभीत होना, जड़ीभूत होना	अपस्मार जड़ता, त्रास
१२—जयद्रथ वध पृ० ६७	जयद्रथ	अर्जुन	रौद्र मूर्ति	भय से व्याकुल होना, प्रलाप	त्रास, दैन्य, मरण
१३—कुणाल पृ० ११०-११	रानी तिष्य-रक्षिता	अशोक	नग्न असि	मूर्छित, पतित, गद्गद् स्वर	अपस्मार, मरण, त्रास
१४—तुमुल पृ० ५८	मेघनाद की सेना	लक्ष्मण	भयंकर वाण वर्षा	स्वरभंग, आतंक चिल्लाना	त्रास, दैन्य
१५—विषपान पृ० ३४	देव दानव	कालकूट	विषाक्त लहरें	पलायन भागना, स्तंभ	भ्रान्ति, मोह
१६—मौर्य विजय २।३६	यूनानी सैनिक	चन्द्रगुप्त	भयंकर युद्ध	अस्तव्यस्त होना भागना, पीठ दिखाना	भ्रांति, त्रास
१७—कुरुक्षेत्र पृ० ७६	नर-नारी	महाभारत	महानाश	भय, आतंक, उदासी	मरण

विवेचन—

साहित्यदर्पणकार ने 'स्त्री नीच प्राकृतिः' द्वारा भयानक रस के आश्रय स्त्री एवं नीच पुरुष बताए हैं, किन्तु दैत्यवंशकार ने दैत्यों के द्वारा देवताओं की पराजय का वर्णन कर देवताओं में भय की दशा का वर्णन किया है। यह व्यतिक्रम नये युग के प्रभाव के कारण हैं। वस्तुतः दैत्यवंश के कवि ने देवताओं से अधिक दैत्यों के उत्कर्ष का चित्रण किया है, जिसके फलस्वरूप भय की स्थिति देवताओं में दिखाई गई है। दैत्यों का प्रभुत्व स्थापित हो जाने पर इन्द्र अमरावती तक को छोड़कर भागने को विवश होते हैं।

ऊपर दिये हुए काव्यों के प्रसंगों में भयानक रस को अविकल सामग्री उपलब्ध होती है। प्रबन्ध काव्यों के अन्तर्गत शत-प्रतिशत अंश में रस का पूर्णोत्कर्ष हुआ है। आश्रय के रूप में स्त्री, बालक, नीच पुरुष एवं ऊंच पुरुष सभी आ गए हैं। चित्र में दो, तीन और तेरह संख्या के उदाहरणों में स्त्रियों को,

संख्या पाँच और सात के उदाहरणों में बालकों को, शेष काव्यों में सेना के वीर सिपाहियों को तथा दैत्यवंश में देवताओं को भय के आश्रय के रूप में चित्रित किया गया है।

तालिका से स्पष्ट है कि विभाव एवं अनुभावों का वर्णन परम्परानुगत है। संचारियों में त्रास, दैन्य, अपस्मार, शंका, आवेग, भ्रान्ति, जड़ता, मरण आदि सभी की मार्मिक व्यंजना हुई है।

इससे सिद्ध है कि आलोच्यकाल के प्रबन्ध काव्यों में भयानक रस का पूर्णोत्कर्ष हुआ है। इस दिशा में जो स्वतंत्र विकास हुआ है, उसका प्रयोगों के अध्याय में अन्यत्र उल्लेख किया जायगा।

वीभत्स रस

वीभत्स की परम्परा—

इस रस की कोई स्वतंत्र परम्परा नहीं है। रौद्र, वीर एवं भयानकादि रसों की भाँति काव्यों में वीभत्स रस प्रचुरता से नहीं आया है। प्रायः युद्ध वर्णन के प्रसंगों में ही इसकी अभिव्यक्ति हुई है। जिन प्रबन्ध काव्यों में रौद्र, वीर, भयानक रस मिलते हैं, उन्हीं में यत्र-तत्र वीभत्स रस के भी स्थल दिखाई पड़ जाते हैं।

आलोच्यकाल के निम्नांकित प्रबन्ध काव्यों में वीभत्स रस के प्रसंग आए हैं :—

महाकाव्य—

दैत्यवंश, कृष्णायन, विक्रमादित्य, हल्दीघाटी, जौहर, अंगराज, आर्यावर्त।

खंडकाव्य—

जयद्रथ-वध, कुरुक्षेत्र, रश्मिरथी।

वीभत्स रस—

दशरूपककार ने जुगुप्सामूलक अपवित्र, कृमि एवं दुर्गन्ध युक्त वस्तुओं से इसका उत्पन्न होना बताया है। रुधिर, अँतड़ी, चर्बी, मांस, मज्जादि से यह उद्दीप्त होता है। वैराग्य के कारण नारी के जघन, स्तनादि में घृणा प्रकट करना, नाक-मुँह सिकोड़ना आदि इसमें अनुभाव होते हैं तथा आवेग, व्याधि, शंका आदि इसमें संचारी हैं।[1]

१—दशरूपक ४।७३

वाग्भट्ट ने अप्रिय एवं उत्कट व्रण, जिनमें दुर्गन्ध युक्त कृमि, कीटादि हों, उनके देखने-सुनने से इसकी उत्पत्ति बताई तथा अंग-संकोच, हृदय, मुख एवं नासिका को सिकोड़ना, ढंकना, थूकना आदि को अनुभाव कहा है। अपस्मार, मोह, व्याधि आदि इसके संचारी हैं[१]। केशव मिश्र लक्षण का इसी में अन्तर्भाव हो जाता है[२]।

साहित्यदर्पणकार ने जुगुप्सा को स्थायी भाव, दुर्गन्ध, मांस, रुधिर, मेद आदि को आलम्बन, इनमें कृमि-कीटादि पड़ने को उद्दीपन बताया है। थूकना, मुँह बिगाड़ना, आँख मूँदना आदि इसके अनुभाव होते हैं तथा मोह, अपस्मार, आवेग, व्याधि तथा मरण आदि इसके संचारी हैं।[३]

उपर्युक्त लक्षणों में प्रायः समानता है। वीभत्स रस के अंगों के पृथक्-पृथक् वर्णन में थोड़ा-बहुत अन्तर है। साहित्यदर्पण के लक्षण में सभी का अन्तर्भाव हो जाता है। दशरूपककार ने नारी के सुन्दर अंगों में घृणा करने को वीभत्स के अन्तर्गत माना है, शान्त के अन्तर्गत नहीं, क्योंकि उनके अनुसार शान्त रस से नहीं, वीभत्स से वैराग्य उत्पन्न होता है। शेष अंगों के वर्णन में पूर्ण समानता है।

नीचे इसी मानदंड से आलोच्यकालीन काव्यों के आधार पर वीभत्स रस की परम्परा का विवेचन किया जाता है :—

वीभत्स रस

ग्रन्थ सन्दर्भ	आलम्बन	उद्दीपन	अनुभाव	संचारी
१—दैत्यवंश ६।२	मृत वीरों के शव	रुधिर मांस, आँतें चरबी और मुंड धारण	द्रष्टा का मुँह-नाक सिकोड़ना	आवेग, मोह
२—हल्दीघाटी पृ० १५८-५९	रणभूमि की लाशें	विष्टा, मल, खोपड़ी, मांस रुधिर, सड़ी-गली अस्थियाँ, दुर्गन्ध	,,	अपस्मार मरण

१—काव्यानुशासन, अध्याय ५।
२—अलंकार शेखर, २०।२४
३—साहित्यदर्पण ३।२३९-४२

ग्रन्थ सन्दर्भ	आलम्बन	उद्दीपन	अनुभाव	संचारी
३—जौहर पृ ११०	शरीर की बोटियाँ	रुधिर, मुंड आदि	द्रष्टा का मुँह-नाक सिकोड़ना	मरण
४—विक्रमादित्य पृ० १८३	लाशें	साँस रुकना, नाड़ी छूटना, लोथे पटना	,,	मोह
५—कृष्णायन पृ० ७४२	दुःशासन का शव	हृदय को चीरना, रक्त पान, रक्त में सन जाना	,,	आवेग
६—कृष्णायन पृ० ७५९	शव-समूह	मुंडों के ढेर, शोणित, चर्बी अस्थियों के अम्बार, अंगभग क्षत-विक्षत शरीर आदि	,,	मोह अपस्मार
७—अंगराज २१।२७१-७५	रणभूमि पर लाशों के ढेर	टूटे-फूटे कुंभ-स्थल, रक्त-स्राव, खंडित ललाट, वक्ष आदि	,,	ग्लानि, निर्वेद
८—जयद्रथ-वध पृ० ८६	योद्धाओं की लाशें	शरीर की बोटियाँ, फूटी आँखें, घायल, क्षत-विक्षत शव, रुंड-मुंड, रक्त-कीच	,,	मोह अपस्मार
९—आर्यावर्त पृ० ११	रण-क्षेत्र के शव	मांस, दुर्गन्ध, घायल हाथी, घोड़े और पैदल	,,	आवेग, ग्लानि
१०—कुरुक्षेत्र पृ० ७४	लाशों के ढेर	सड़ती हुई विषाक्त गंध, विदीर्ण अंग	,,	निर्वेद, ग्लानि
११—रश्मिरथी पृ० १६१-६२	युद्धभूमि पर लोथों का दृश्य	लहू से सने शरीर, हाथी और घोड़ों के शवों के ढेर	,,	उद्वेग, ग्लानि

विवेचन—

बीभत्स रस की अभिव्यक्ति अधिकतर प्रबन्ध काव्यों में ही पाई जाती है। आधुनिक काल के उपर्युक्त काव्यों में बीभत्स की सम्पूर्ण सामग्री विद्यमान है। ये प्रसंग प्रायः युद्ध-भूमि से सम्बन्धित हैं। हल्दीघाटी, कृष्णायन, अंगराज, दैत्यवंश एवं जयद्रथ वध के बीभत्स रस के प्रसंगों में विभाग पक्ष का वर्णन अत्यन्त सजीव है।

हास्य तथा बीभत्स में अन्य रसों की भाँति आश्रय नहीं होता है। इन रसों में आश्रय का स्थान स्वयं श्रोता या पाठक ग्रहण करता है। रस गंगाधरकार ने कहा है कि आश्रय के न होने पर भी उसका आक्षेप कर लिया जाता है[१]।

आधुनिक युग के प्रबन्ध काव्यों के ऊपर दिखाए हुए प्रसंगों में शत-प्रतिशत अंशों में बीभत्स रस का पूर्ण प्रकर्ष मिलता है। इससे सिद्ध है कि विभाव, अनुभाव एवं संचारियों से पुष्ट बीभत्स की व्यंजना का आधुनिक प्रबन्ध काव्यों में पूर्णोत्कर्ष हुआ है।

अद्भुत रस

अद्भुत की परम्परा—

अद्भुत रस की परम्परा का विकास भक्ति काव्य में अधिक हुआ है। अवतारों के अलौकिक प्रभाव, लीला एवं माया वर्णन के प्रसंगों में इसका पूर्णोत्कर्ष दिखाई पड़ता है। सूर और तुलसी के साहित्य में अद्भुत रस की प्रकृष्ट व्यंजना मिलती है।

अद्भुत रस—

दशरूपककार ने अलौकिक पदार्थों के वर्णन में अद्भुत रस की प्रतिष्ठा दिखाई है, जिसका स्थायी भाव विस्मय या आश्चर्य है। इसके अनुभाव हैं— साधुवाद, अश्रु, वेपथु, स्वेद एवं गद्‌गद् स्वर तथा हर्ष, आवेग, धृति आदि इसके संचारी हैं[२]।

वाग्भट्ट के अनुसार दिव्य दर्शन, अभीष्ट की प्राप्ति, देव, विमान, माया, इन्द्रजाल, अतिशय शल्य कर्म आदि इसके विभाव हैं, आँखें फटना, अपलक

१—काव्य प्रकाश, चतुर्थ उल्लास; श्लोक ४२ की टीका।

२—दशरूपक ४.७८-७९

दृष्टि से निहारना, रोमांच, अश्रु, स्वेद, साधुवाद, दान, विस्मय प्रकट करना, अंगुलि, भ्रमण आदि इसके अनुभाव हैं तथा हर्ष, आवेग, जड़ता आदि व्यभिचारी हैं[१]।

केशव मिश्र ने असंभव वस्तुओं के दर्शन, श्रवण से अद्भुत रस की उत्पति मानी है। नेत्र-विकार, रोमांच, स्वेद, नेत्रों से एक टक देखना, साधु-साधु की वाणी का उच्चारण करना इसके अनुभाव हैं[२]।

साहित्य दर्पणकार ने अद्भुत रस का स्थायी भाव विस्मय, देवता, गंधर्व तथा वर्ण पीत बतलाया है। अलौकिक वस्तु का वर्णन इसका आलम्बन तथा उसकी महिमा का कथन उद्दीपन है। इसके अनुभाव स्तंभ, स्वेद, रोमांच, गद्गद् स्वर, संभ्रम, नेत्रों का विकसित होना आदि हैं तथा इसके संचारो वितर्क, आवेग भ्रान्ति, हर्ष आदि होते हैं[३]।

अद्भुत रस के विषय में थोड़े-बहुत के अन्तर से सभी आचार्यों के मत समान हैं। वाग्भट्ट का विभाव पक्ष का वर्णन सबसे अधिक विशद है। अन्य आचार्यों ने विभावों का वर्णन अत्यन्त संक्षिप्त कर दिया है, अलौकिक वस्तु-वर्णन मात्र। वाग्भट्ट ने विभावों में दिव्य दर्शनादि विविध अद्भुत वस्तुओं का उल्लेख किया है। इनके अनुभाव तथा संचारियों में अन्य मतों का अन्तर्भाव हो जाता है। इससे स्पष्ट है कि वाग्भट्ट का लक्षण सबसे अधिक व्यापक एवं विशद है।

नीचे इसी मानदण्ड से आलोच्य काल के काव्यों में अद्भुत रस के समस्त अंगों का विश्लेषण प्रस्तुत किया जाता है—

अद्भुत रस

ग्रन्थ सन्दर्भ	आलम्बन	उद्दीपन	अनुभाव	संचारी
१—साकेत पृ० ३८४-८५	आकाश से तारक-सा टूटना	मायावी राक्षस-सा दीखना	चौंक पड़ना, 'हरे हरे' कहना	वितर्क आवेग
२—कृष्णायन पृ० २५	कृष्णावतार	अद्भुत चमत्कार, कालिय नाग नाथना	गद्गद् होना, अश्रु, आनन्द	हर्ष, आवेग

१—काव्यानुशासन अध्याय ५।

२—अलंकार शेखर २०।२५-२६

ग्रन्थ सन्दर्भ	आलम्बन	उद्दीपन	अनुभाव	संचारी
३—कृष्णायन पृ० ६२	कृष्णलीला	शरीर का विस्तार	रोमांच, अश्रु	वितर्क
४—कृष्णायन पृ० ६५	कृष्ण की माया	दावानल पान	आश्चर्य-प्रसन्नता, रीझना	हर्ष वितर्क
५—कृष्णायन पृ० ८२	कृष्ण की लीला	गोवर्धन-धारण	निर्निमेष देखना, सहायक होना	हर्ष
६—कृष्णायन पृ० ५८३	कृष्ण का विश्व-रूप	अनन्त बाहु, सूर्य-चन्द्र नेत्र, सर्वव्यापक	विनय, प्रार्थना, स्तुति करना	हर्ष,आवेग
७—दैत्यवंश १।४७	नृसिंह अवतार	हिरण्यकशिपु का वध, अलौकिक तेज	आनन्द बढ़ना, आश्चर्य होना	हर्ष
८—दैत्यवंश १२।४१-४३	वामन अवतार	साढ़े तीन पग में त्रिलोकी को नापना	दुन्दुभी बजाना गुणगान करना	हर्ष
९—सिद्धार्थ पृ० २८	बुद्धावतार	सम्पूर्ण पृथ्वी पर अलौकिक तेज प्रकट होना	नेत्रों का धन्य होना	हर्ष
१०—सिद्धार्थ पृ० ६३-६४	सिद्धार्थ	बुद्ध का अलौकिक तेज प्रकट होना,	रोमांच, आश्चर्य, स्तंभ, प्रणाम, स्तुति, गुणानुवाद	हर्ष, वितर्क
११—रावण महाकाव्य ३।४७-४८	रावण का तप	ब्रह्म का प्रकट होना	वर माँगना	हर्ष
१२—रावण १२।३८	रावण की सभा	देवताओं की उपस्थिति	चकित होना	वितर्क
१३—कामायनी पृ० २४-२५	विराट प्रकृति	प्रकृति में अलौकिक चमत्कार	आश्चर्य, कुतूहल	वितर्क, भ्रांति

१४—गंगावतरण ६।१४–१५	ब्रह्मा का प्रकट होना	देवताओं का सान्निध्य	नेत्र उघाड़ना, अश्रु रोमांच, प्रणाम, स्तुति	हर्ष
१५—गंगावतरण ६।३७–३९	महादेव	अलौकिक रूप	चकित होना, चारों ओर देखना	भ्रांति, हर्ष
१६—गंगावतरण ७।४०	शंकर	अलौकिक प्रभाव	कृतार्थ होना	हर्ष
१७—जयद्रथ वध पृ० ५१	वैकुण्ठ	अलौकिक दृश्य	पुलकित होना, आश्चर्य होना	हर्ष, वितर्क
१८—कुणाल पृ० ११३	कुणाल	फूटी आंखों में ज्योति का प्रकाशित होना	पुलक, गद्‌गद् होना	मोह, वितर्क
१९—विष-पान पृ० ४३	शंकर	कालकूट पीना	आश्चर्य होना जय जयकार	हर्ष, वितर्क
२०—जौहर पृ० ११५	अष्टभुजा वाली दुर्गा	अलौकिक चमत्कार	भयभीत होना, मूर्च्छित होना	जड़ता, भ्रान्ति
२१—अंगराज १।६	भगवान भास्कर	अलौकिक तेज, ज्योतिर्मय रूप	आश्चर्य, प्रणाम, स्तुति	भ्रांति
२२—राम की शक्तिपूजा	भगवती दुर्गा	ज्योतिर्मय रूप	प्रणाम, स्तुति	हर्ष

विवेचन—

आलोच्यकाल के प्रबन्ध काव्यों में अद्‌भुत रस का पूर्णोत्कर्ष पाया जाता है। विशेषतः कृष्णायन, गंगावतरण और दैत्यवंश में अनेक स्थलों पर इसकी अभिव्यक्ति हुई है। कृष्णायन के अवतरण कांड में भगवान कृष्ण की बाल लीलाओं में अद्‌भुत रस की सरस व्यंजना मिलती है। गंगावतरण में अद्‌भुत रस की व्यंजना अत्यन्त सजीव, पुष्ट एवं सर्वांगपूर्ण है। ब्रह्मा, महादेव एवं अन्य देवताओं के दिव्य दर्शन तथा अलौकिक चमत्कारों के वर्णन में तथा भागीरथी के ओजस्वी एवं अलौकिक वेग के वर्णन में अद्‌भुत रस की प्रकृष्ट व्यंजना है। कृष्णायन और गंगावतरण के कवियों ने अद्‌भुत रस को सम्पूर्ण

साधन-सामग्री की पूर्ण मनोयोग के साथ वर्णन किया है। इन काव्यों में विभावों का वर्णन अत्यन्त सजीव एवं प्रभावोत्पादक हैं।

तालिका में दिखाए हुए सभी काव्यों में निर्दिष्ट स्थलों पर अद्‌भुत रस के समस्त अवयव पाये जाते हैं। इससे सिद्ध है कि इन सन्दर्भों में रस की व्यंजना पूर्ण है। जौहर काव्य में अष्टभुजी काली का दर्शन कर बादशाह अलाउद्दीन का भयभीत होकर मूच्छित होना वर्णित है। इस प्रसंग में विस्मय के साथ भय की दशा का मिश्रण हो गया है। अतएव इसे शुद्ध अद्‌भुत रस कहने में सन्देह है। अन्यत्र अद्‌भुत रस की व्यंजना विशुद्ध एवं सफल है। इससे सिद्ध है कि प्रबन्ध काव्यों में अद्‌भुत रस की परम्परा का शत-प्रतिशत अंश में विकास हुआ है। प्रबन्ध काव्यों में क्षेत्र से बाहर अद्‌भुत रस के उदाहरण प्रायः नहीं मिलते हैं।

शान्त रस

शान्त की परम्परा—

हिन्दी-साहित्य में शान्त रस की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है तथा हर एक युग में इसने किसी-न-किसी रूप में साहित्य को बहुत गहराई तक प्रभावित किया है। इस धारा का सबसे अधिक उज्ज्वल रूप सन्त काव्य और भक्ति काव्य में दिखाई पड़ता है। कबीर, सूर एवं तुलसी के साहित्य में इसी की प्रधानता है। रीतिकाल में शृंगार का आधिक्य हो जाने से इसका रूप कुछ दब-सा गया है, किन्तु उसकी सतत प्रवहमान धारा का बिलकुल लोप कभी नहीं हुआ है। रीतिकाल के प्रायः सभी कवियों ने शृंगार के साथ-साथ ज्ञान, भक्ति, वैराग्य की ओर भी अपनी स्वाभाविक रुचि प्रदर्शित की है। इससे सिद्ध है कि आलोच्यकाल से पूर्व शान्त रस की एक समर्थ परम्परा का विकास हुआ है।

शान्त रस—

वाग्भट्ट के अनुसार वैराग्य, संसार से भय, तत्त्वज्ञान, विरक्तों की पद-वन्दना, भगवत्कृपा आदि इसके विभाव हैं। यम, नियम, अध्यात्म, शास्त्र चिंतन आदि इसके अनुभाव हैं तथा धृति, स्मृति आदि इसके व्यभिचारी हैं। इसका स्थायी भाव शम है[१]।

केशव मिश्र के अनुसार इसके विभाव हैं—सम्यक् ज्ञान का उदय, निस्पृह नायक, राग-द्वेष का परित्याग तथा श्रेष्ठ ज्ञान का प्रादुर्भाव है। पश्चात्ताप,

---

१—काव्यानुशासन, अध्याय ५।

शरीरादि सम्पूर्ण वस्तुओं के प्रति विरक्ति, विवेक, चित्त की स्थिरता, योग आदि इसके अनुभाव हैं[१]।

साहित्य दर्पणकार के अनुसार शम स्थायी भाव, अनित्यता, सम्पूर्ण पदार्थों की निस्सारता तथा परमात्म स्वरूप का चिन्तन आदि इसके आलम्बन हैं। पवित्र आश्रम, हरिक्षेत्र, तीर्थ, रमणीय वन एवं महात्माओं का सत्संग आदि इसके उद्दीपन हैं। रोमांच, भूत, दया आदि अनुभाव तथा निर्वेद, हर्ष, स्मृति, मति आदि इसके संचारी हैं।[२]

आचार्यों के उपर्युक्त मतों में प्रायः एकरूपता है। सभी ने 'शम' स्थायी भाव माना है। किन्तु आचार्य मम्मट के अनुसार स्थायीभाव निर्वेद है। 'शम' को स्थायी मान लेने पर 'निर्वेद' संचारियों में चला जाता है, जो उसका उचित स्थान है। 'निर्वेद' संचारी होने से उसको स्थायी भाव मानना अनुचित है—यही विचार कर साहित्यदर्पणकार ने शान्त रस का स्थायी 'शम' को माना है, क्योंकि 'शम' की अनुभूति में स्थायित्व होता है। किन्तु आचार्य मम्मट ने 'शम' के स्थान पर 'निर्वेद' को स्थायी कहा है। यही समीचीन है। वास्तव में यदि मनोविज्ञान की दृष्टि से विचार किया जाय तो रति के विपरीत या निर्वेद भी स्थायी भाव दशा है। विरति या वैराग्य की वृत्ति दो कारणों से उत्पन्न होती है;, तत्त्वज्ञान से अथवा कामना की अतृप्ति से। पहली दशा में यह स्थायी वृत्ति के अन्तर्गत है तथा दूसरी अवस्था में अस्थायी के। फलतः निर्वेद का भाव यदि तत्त्वज्ञान का फल है, तो स्थायी अन्यथा संचारी है। 'शम' कोई स्थायी भाव नहीं कहा जा सकता क्योंकि वह निर्वेदजन्य है। जिस प्रकार 'रति' स्थायी भाव है और 'हर्ष' उसका परिणाम है, उसी प्रकार 'निर्वेद' स्थायी भाव है तथा 'शम' उसका परिणाम है। एवं स्थायी 'निर्वेद' तत्त्वज्ञान जन्य है और व्यभिचारी 'निर्वेद' इष्टनिष्ट वियोगजन्य।[३] यही दोनों का अन्तर है। निष्कर्ष यह है कि 'शम' की अपेक्षा 'निर्वेद' को शान्त रस का स्थायी मानना अधिक मनोवैज्ञानिक है।

वीररस के अन्तर्गत दयावीर से शान्त रस भिन्न है क्योंकि पहले में अभिमान की स्थिति बनी रहती है, किन्तु दूसरे में उसका अभाव हो जाता है।

१—अलंकार शेखर २०।२७-२८

२—साहित्यदर्पण ३।२४५-४६

३—'निर्वेद स्थायि भावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रसः

काव्यप्रकाश सूत्र ४७।

आलोच्य कालीन प्रबन्ध काव्यों में शान्त रस की परम्परा का सम्यक् प्रस्तार-विस्तार पाया जाता है। इसके लिए निम्नांकित काव्य-ग्रन्थ दृष्टव्य हैं—साकेत[१] में जीवन के आदर्शों का वर्णन, कामायनी[२] में अखंड आनन्द, ज्ञान की प्राप्ति का वर्णन, सिद्धार्थ[३] में महात्मा बुद्ध के धार्मिक उपदेशों का वर्णन, दैत्य वंश[४] में वाण के उग्र तप, अरण्य-निवास पंचाग्नि सेवन का वर्णन, कृष्णायन[५] में युधिष्ठिर के धार्मिक आदर्श—शान्ति, धर्म, निर्लोभता आदि का वर्णन, साकेत-सन्त[६] में वशिष्ठ के उपदेश में आत्मा के अमरत्त्व और संसार के मिथ्यात्त्व का वर्णन, आर्यावर्त[७] में चन्द द्वारा जगत् की निस्सारता और जीवों के मृत्यु-क्रम का वर्णन, कुरुक्षेत्र[८] में युधिष्ठिर के पश्चाताप का वर्णन, रश्मिरथी[९] में धर्म की महत्ता का वर्णन, कुणाल[१०] में अशोक का काषाय-ग्रहण, जयद्रथ वध[११] में अर्जुन के प्रति कृष्ण का उपदेश, वैदेही वनवास[१२] में सीता का उपदेश, तुलसीदास[१३] में तुलसी का आत्मबोध, यशोधरा[१४] में सिद्धार्थ का गृहत्याग, संसार की नश्वरता आदि।

कृष्णायन, साकेत-सन्त, बुद्ध चरित, सिद्धार्थ और कुरुक्षेत्र में शान्त रस के अनेक प्रकरण आए हैं। कृष्णायन का गीता कांड और आरोहण कांड शान्त रस से समृद्ध है। कृष्ण और भीष्म के उपदेशों में शान्त रस की सम्यक अभिव्यंजना मिलती है। साकेत-सन्त के पाँचवें, बारहवें और चौदहवें सर्गों में

१—साकेत पृ० २१७
२—कामायनी पृ० २५४
३—सिद्धार्थ पृ० २७५
४—दैत्यवंश १७।४६-४७
५—कृष्णायन पृ० ४७८
६—साकेत सन्त ५।१६-१७
७—आर्यावर्त पृ० १०६
८—कुरुक्षेत्र-पंचम सर्ग
९—रश्मिरथी पृ० १२५-२६
१०—कुणाल पृ० १२१
११—जयद्रथ-वध ३४
१२—वैदेही-वनवास १४।८०
१३—तुलसी दास छन्द ६१
१४—यशोधरा पृ० १६।

वशिष्ठ, भरद्वाज तथा अन्य ऋषियों के उपदेशों में और भरत के स्वधर्माचरण में शान्त रस की निष्पत्ति होती है। बुद्धचरित और सिद्धार्थ काव्यों में महात्मा बुद्ध के तप, आराधन एवं उपदेशों के प्रकरणों में शान्तरस परिव्याप्त है। कुरुक्षेत्र के सभी सर्गों में आद्योपान्त शान्त रस प्रधान है। युधिष्ठिर की आत्मग्लानि, पश्चात्ताप, विरक्ति एवं प्रक्षोभ के पीछे शान्त रस का प्रोद्भास है।

प्रबन्ध काव्यों से बाहर मुक्तक एवं प्रगीत काव्यों में भी शान्त रस का उच्छल प्रवाह बहता है। पन्त जी की परिवर्तन, एकतारा, नौका विहार, तथा स्वर्णकिरण की जिज्ञासा, द्वा सुपर्णा, सविता, श्री अरविन्द दर्शन एवं स्वर्णोदय कविताओं में जिज्ञासा एवं तत्त्व दर्शन का अभिलाप है। निराला जी की जागो फिर एक बार, अधिवास, राम की शक्तिपूजा तथा तुम और मैं कविताओं में शान्त रस की व्यंजना मिलती है। निराला जी की गीतिका के गीत संख्या बारह, पच्चीस, छब्बीस, तैतालीस, इक्यासी और बयासी में कवि ने आध्यात्मिक ज्ञान के पटलों को उघाड़ने का प्रयत्न किया है। इनमें शान्त रस का पूर्ण संचार है। सियारामशरण के पाथेय की 'यात्रा,' 'आह्लाद', 'जाग्रत', 'परदेशी', तिमिर पर्व, 'भ्रमर' आदि कविताओं में, सोहनलाल द्विवेदी की 'वासव-दत्ता', प्रसाद जी की 'ले चल मुझे भुलावा देकर,' 'धर्म नीति,' 'कुरुक्षेत्र,' 'भक्ति-योग' तथा एकान्त में कविताओं में शान्त रस के सीकर छलकते हैं।

उपर्युक्त मुक्तक रचनाओं में आश्रय का स्थान कहीं-कहीं स्वयं कवि ने ले लिया है। आलम्बन के रूप में भक्ति, ज्ञान, माया, जिज्ञासा, शान्ति एवं आत्म-स्वरूप का अनुसन्धान है। चाहे इनमें शान्त रस के समस्त अवयव न हों, किन्तु निर्वेद का भाव स्फुट है।

बीसवीं शताब्दी में मानव-बुद्धि विज्ञान की ओर झुकी हुई है। विज्ञान वस्तु की भौतिक सत्ता को परम सत्य मानता है, जिससे वर्तमान काल में धार्मिक विश्वास खंडित होने लगे हैं। वैराग्य का भाव धर्म के साथ जुड़ा हुआ है। धर्म परलोक में विश्वास करता है। विज्ञान परलोक की अपेक्षा प्रत्यक्ष जनता में अधिक आस्था रखता है। आजकल धर्म के ऊपर विज्ञान का प्रभुत्व स्थापित हो गया है। वैज्ञानिक प्रभाव ने धर्म वैराग्य, श्रद्धा, विश्वास, जप, तप, ईश्वराराधन की आस्था को निर्बल कर दिया है। आलोच्यकाल की कविता पर भी इसका प्रभाव लक्षित होता है। प्रगतिवादी, प्रयोगवादी एवं राष्ट्रीय काव्य-धारा में शान्तरस का स्रोत बिलकुल सूख गया है।

निष्कर्ष यह कि आलोच्य काल के प्रबन्ध काव्यों में शान्त रस का पूर्ण परिपाक हुआ है। छायावादी काव्य में उसका नवीन विकास हुआ है और प्रगतिवादी एवं राष्ट्रीय कविताओं में शान्त रस को बिलकुल स्थान नहीं मिला है।

वात्सल्य रस

वात्सल्य की परम्परा—

हिन्दी साहित्य में वात्सल्य को कोई प्रारंभिक युग से चली आती हुई परम्परा नहीं मिलती है। केवल सूर का ही इसमें सबसे अधिक अभिनिवेश है। इस महाकवि ने कृष्ण के बालचरित को आधार बनाकर विपुल काव्य-राशि खड़ी कर दी है, जिससे हिन्दी-साहित्य में इस रस की निष्पत्ति पूर्णावस्था को पहुँच गई है। इसके पश्चात् दूसरा स्थान तुलसी का है। इनके मानस, कवितावली और गीतावली में वात्सल्य का पूर्णोत्कर्ष पाया जाता है। इन्हीं दो महाकवियों के साहित्य में इस रस का चमत्कार है। रीतिकाल के कवियों की शृंगार में प्रवृत्ति हो जाने से वात्सल्य की बिलकुल उपेक्षा हो गई है। आगे चलकर अयोध्यासिंह उपाध्याय के प्रिय प्रवास में इसकी व्यंजना अत्यन्त मधुर है। यही इसकी सूक्ष्म परम्परा है। स्वल्प कवियों ने ही इसे अपनाया है, किन्तु उनके काव्यों में इसकी अभिव्यक्ति चरम सीमा को पहुँच गई है, इस विषय में दो मत नहीं हो सकते।

वात्सल्य रस—

काव्यप्रकाशकार तथा उनके अनुयायियों ने वात्सल्य को रस नहीं माना है, भावों में स्थान दिया है[१]। साहित्यदर्पणकार ने मुनीन्द्र सम्मत वत्सल रस को स्वीकार किया है, क्योंकि इसमें उत्कट चमत्कार विद्यमान है। उत्कट चमत्कारिता ही इसके रसत्व का हेतु है।

वात्सल्य का स्थायी भाव स्नेह है। पुत्रादि के प्रति रति इसका आलम्बन तथा उसकी चेष्टाएं एवं विद्या, शौर्य, दया आदि उद्दीपन विभाव हैं। आलिंगन, अंग-स्पर्श, शिर को चूमना, निहारना, पुलक, आनन्द, अश्रु आदि इसके अनुभाव है तथा इसके संचारियों में शंका, हर्ष, गर्व आदि है[२]। सूर-तुलसी ने जिस वात्सल्य की सृष्टि की है, उसमें ये सभी शास्त्रीय लक्षण घटित होते हैं, अतएव

१—काव्यप्रकाश ४।३५

२—साहित्यदर्पण ३।२५१–५२

इसी को मानदण्ड मानकर नीचे आलोच्यकाल के काव्यों में वात्सल्य रस का विवेचन किया जाता है—

पन्त जी की 'बालापन' और 'शिशु' कविताओं में वात्सल्य भाव की मनोहर विवृति है—

कौन तुम गूढ़ गहन अज्ञात !
अहे निरुपम, नवजात ।
खेलती अधरों पर मुसकान,
पूर्व सुधि सी अम्लान,
सरल उर की सी मृदु आलाप,
अनवगत जिसका गान ।

—शिशु-पन्त

इस कविता में केवल विभावों का ही वर्णन है, अनुभाव और संचारियों का नहीं । इससे रस की पूर्ण व्यंजना नहीं हो सकी है । स्नेह की पूर्ण व्यंजना के अभाव में यह केवल भाव मात्र है ।

सुभद्रा कुमारी की 'मेरा नया बचपन' 'बालिका का परिचय', 'इसका रोना', 'राखी' और 'मातृ-मन्दिर में' कविताओं में वात्सल्य की अनूठी व्यंजना हुई है । यहाँ एक ही उदाहरण देना पर्याप्त होगा ।

मां ओ कह कर बुला रही थी, मिट्टी खाकर आई थी ।
कुछ मुँह में कुछ लिए हाथ में, मुझे दिखाने लाई थी ॥
पुलक रहे थे अंग, दृगों में कौतूहल था छलक रहा ।
मुँह पर थी आह्लाद-लालिमा, विजय-गर्व था झलक रहा ॥

इनकी 'राखी' कविता में भैया कृष्ण के लिए बहिन सुभद्रा ने राखी भेजी है । इसमें भाई के प्रति बहिन के स्नेह का भाव व्यंजित हुआ है । साहित्यदर्पणकार ने इसे भी वात्सल्य में ही रखा है, क्योंकि वात्सल्य के आलम्बन पुत्रादि में 'आदि' से भ्राता का ग्रहण है[1] ।

आलोच्य काल के प्रवन्ध काव्यों में वात्सल्य रस के प्रचुर उदाहरण मिलते हैं । इसके लिए निम्नांकित काव्य-ग्रन्थ दृष्टव्य हैं—कामायानी[2] में श्रद्धा के पुत्र, मानव का वर्णन, सिद्धार्थ[3] में कुमार सिद्धार्थ की बाल-क्रीड़ाओं का

१—साहित्यदर्पण ३।२५१
२—कामायनी पृ० २७६
३—सिद्धार्थ पृ० ३५

वर्णन, नूरजहां में[१] बालिका मेहरुन्निसा की क्रीड़ाओं का वर्णन, दैत्यवंश[२] में राजकुमारी उषा का वर्णन, कृष्णायन[३] में कृष्ण-लीलाओं का वर्णन, हल्दी-घाटी[४] में प्रताप के खेल-कूदों का वर्णन, कुणाल[५] में बालक कुणाल की अंग-छवि का वर्णन, यशोधरा[६] में में राहुल के सौन्दर्य का वर्णन, वैदेही वनवास[७] में लव-कुश की चपलताओं का वर्णन आदि।

आलोच्यकाल के प्रबन्ध काव्यों में वात्सल्य के जिन प्रसंगों का उद्‌घाटन किया गया है, उनमें इस रस के सभी अंगों का पूर्ण विन्यास है। विभाव, अनुभाव और संचारियों की योजना पूर्ण है, अतएव रसानुभूति निर्बाध रूप से होती है। कृष्णायन के अवतरण कांड में कृष्ण की बाल लीला के प्रसंगों में वात्सल्य का अजस्र स्रोत बहता है। इनमें वात्सल्य के सभी अंगों का सन्निवेश होने से रस का पूर्ण परिपाक हुआ है। सिद्धार्थ में राजकुमार सिद्धार्थ की बाल-केलिओं के वर्णन में कवि ने लोरियों की रचना की है, जिनमें माधुर्य छलकता है—

'मुझे देख राजा, मुझे देख राजा,
प्रफुल्लाब्ज-से नेत्र से देख, राजा,
मुदा मीन-सी आँख से देख राजा,
मुझे देख, राजा, मुझे देख, राजा।

इसी प्रकार नूरजहां की लड़की लैला को गोद में लेकर सर्व सुन्दरी लोरी गाती है, जिससे वात्सल्य की व्यंजना में बहुत सहायता मिलती है। कुणाल के बाल-चरित के वर्णन में कवि ने जिन लोरियों की रचना की है, उनमें वात्सल्य का पूर्ण उन्मेष है। यशोधरा के राहुल-जननी के गीतों में वात्सल्य का अविरल स्रोत छलकता है। इसी प्रकार द्वापर के नन्द, यशोदा और देवकी के प्रकरणों में पुत्र विषयक रति की व्यंजना अत्यन्त हृदयस्पर्शी है। वस्तुतः कृष्णायन, सिद्धार्थ, यशोधरा, द्वापर और मुकुल वात्सल्य के विचार से अत्यन्त समृद्ध काव्य हैं।

१—नूरजहाँ पृ० २०
२—दैत्यवंश १३।२०-२८
३—कृष्णायन पृ० २६ वही पृ० ३७, वही पृ० ४०
४—हल्दीघाट', पृ० १६८-६६
५—कुणाल पृ० १४
६—यशोधरा पृ० ४७
७—वैदेही वनवास १५।१३

यद्यपि आधुनिक युग में वात्सल्य के कवि गिने-चुने हैं, तथापि इसमें सन्देह नहीं कि आलोच्यकाल के प्रबन्ध काव्यों में इस रस की उत्कृष्ट व्यंजना मिलती है। सुभद्राकुमारी चौहान तथा सोहनलाल द्विवेदी की स्फुटिक रचनाओं में वात्सल्य की परम्परा का अच्छा विकास हुआ है।

उपसंहार

आलोच्य काल के प्रबन्ध काव्यों में रस की सामग्री प्रचुरता से विद्यमान है। इन प्रकरणों में रस की शास्त्रीय परम्परा के सभी लक्षण घटित होते हैं। शृंगार के संभोग और विप्रलंभ-उभयपक्षों का विस्तार-प्रस्तार सबसे अधिक हुआ है। प्रबन्ध, मुक्तक एवं प्रगीत काव्यों में समान रूप से शृंगार का ही प्राचुर्य है। छायावादी काव्य में विप्रलंभ, शृंगार तथा प्रगतिवादी कविता में संभोग शृंगार की अधिकता सामान्य रूप से दृष्टिगोचर होती है। शृंगार की परम्परा जितनी स्फीत एवं समृद्ध है, उतनी अन्य रसों की नहीं। इसके पश्चात् वीर, रौद्र, करुण एवं शान्त रस का स्थान है। रौद्र एवं वीर रसों की व्यंजना में बहुत कुछ नया विकास हुआ है। इसमें आश्रय, आलम्बन तथा संचारी भावों का स्वतंत्र विकास हुआ है, जिसका अध्ययन प्रयोगों में किया गया है। हास्य, अद्भुत, वात्सल्य, बीभत्स एवं भयानक रसों के उदाहरण अपेक्षाकृत कम पाये जाते हैं। प्रबन्ध काव्यों में हास्य का शिष्ट रूप प्रस्फुटित हुआ है। उसमें शास्त्रीय लक्षण भी मिलते हैं। अन्यत्र आंशिक रूप में ही परम्परा के लक्षण दिखाई पड़ते हैं। इस काल में हास्य के अन्तर्गत व्यंग्य का भी प्रवेश हो गया है जिस पर युग की द्वन्द्वात्मक कटुता का गहरा रंग है।

सभी रसों के आश्रय एवं आलम्बनों में पर्याप्त वृद्धि हुई है। इनके विकास में युग की प्रवृत्ति एवं परिस्थितियों ने बहुत सहायता की है। निष्कर्ष यह कि प्रबन्ध काव्यों में रसों के शत-प्रतिशत लक्षण मिलते हैं, अन्यत्र आंशिक रूप में ही परम्परा का निर्वाह हुआ है। प्रयोगवादी रचनाओं में रस का प्रवाह लुप्त हो गया है।

पंचम अध्याय

काव्य-रूपों की परम्परा

काव्य-रूपों की परम्परा

इस अध्याय में परम्परानुगत काव्य-रूपों का विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है। हिन्दी में काव्य के तीन रूप पाए जाते हैं—प्रवन्ध, मुक्तक तथा प्रगीत काव्य। प्रबन्ध काव्य के अन्तर्गत सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण महाकाव्य है। इसी परम्पराएँ नियत हैं, जिनका लक्षण ग्रन्थों में भी उल्लेख हुआ है। इन नियमों को यथासंभव सभी महाकाव्यकारों ने ध्यान में रखा है। हिन्दी-साहित्य में पृथ्वीराज रासो, पद्मावत, रामचरितमानस तथा रामचन्द्रिका को महाकाव्य के गौरव से मंडित किया गया है।

आलोच्यकाल में परम्पराओं के अध्ययन के लिए लिखे महाकाव्यों को आधार बनाया गया है :—

साकेत (मैथिलीशरण गुप्त), नल-नरेश (पुरोहित प्रतापनारायण), सिद्धार्थ (अनूप शर्मा), वैदेही वनवास (अयोध्यासिंह उपाध्याय), हल्दीघाटी (श्यामनारायण पाण्डेय), दैत्यवंश (हरदयालु सिंह), कृष्णायन (द्वारकाप्रसाद मिश्र), साकेत-सन्त (बलदेवप्रसाद मिश्र), विक्रमादित्य (गुरुभक्त सिंह) तथा अंगराज (आनन्दकुमार)।

महाकाव्य का लक्षण—महाकाव्य का लक्षण अनेक आचार्यों ने प्रस्तुत किया है। इनमें दंडी तथा विश्वनाथ की परिभाषाएं सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं। दोनों आचार्यों ने क्रमशः काव्यादर्श (१।१४-२०) और साहित्य दर्पण (६।३१५२५) में महाकाव्य के जिन लक्षणों का वर्णन किया है, उनमें पूर्ण समानता है। ऐसा प्रतीत होता है कि दंडी का लक्षण ही आधारभूत है, विश्वनाथ ने उसी को पल्लवित किया है। विश्वनाथ के लक्षण की यह विशेषता है कि उसमें पूर्ववर्ती आचार्यों की परिभाषाओं का समाहार हो जाता है। अतएव यहाँ इसी लक्षण का विवेचन किया जाता है।

महाकाव्य सर्गबद्ध रचना है। इसका आशय यह कि उसमें अवान्तर कथाओं को उपन्यस्त किया जाता है, जिसके लिए सर्गों की रचना की जाती है। उसका स्वरूप प्रबन्धात्मक होता है। इससे मुक्तक का परिहार हो जाता है।

महाकाव्य का नायक देवता, कुलीन क्षत्रिय, जिसमें धीरोदात्त नायक के गुण हों अथवा एक ही कुल के अनेक राजा भी हो सकते हैं। शिशुपाल-वध के नायक देवता कोटि के हैं, नैषध का नायक वीर क्षत्रिय है तथा रघुवंश में एक

ही वंश के अनेक राजा नायक हैं। साहित्य दर्पण के अनुसार नायक त्यागी, कृती, कुलीन, सुन्दर, रूप-यौवन-सम्पन्न, उत्साही, दक्ष, लोकानुरक्त तथा तेज, चातुर्य एवं शीलयुक्त होना चाहिए[1]। धीरोदात्त नायक आत्म-श्लाघा-रहित, क्षमावान्, गम्भीर, शक्तिमान्, स्थिर, विनयशील तथा दृढ़व्रती होना चाहिए[2]। इसमें सद्‌वंश' और 'कुलजाः' शब्द ध्यान देने योग्य हैं। इसका तात्पर्य आभिजात्य से है। इससे सिद्ध है कि नायक देव कोटि का हो अथवा सद्‌वंशोद्‌भव।

शृंगार, वीर तथा शान्त में से एक रस प्रधान हो, अन्य रस गौण रूप से हों। दंडी ने रस के साथ भावों को भी लिया है। देव, मुनि, गुरु, नृप एवं पुत्रादि विषयक रति को भाव कहते हैं। कान्तादि विषयक रति शृंगार के अन्तर्गत है। रस और भाव में यही अन्तर है। महाकाव्य में दोनों का उन्मेष होता है। रस और भाव की मैत्री है क्योंकि भाव के बिना रस और रस के बिना भाव की कल्पना नहीं की जा सकती।

'न भाव हीनो अस्ति रसो न भावो रस वर्जितः।
परस्परकृता सिद्धिरनयो रस भावयोः[3] ॥'

महाकाव्य की कथा में नाटक-सन्धियों की भी योजना रहती है। इनकी संख्या पाँच है—मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श तथा निवर्हण[4]। नाटक की तरह काव्यों में भी इनकी योजना उचित है।

महाकाव्य की कथा-वस्तु इतिहास-प्रसिद्ध अथवा सज्जनाश्रित होनी चाहिए। इतिहास से आशय महाभारत से है। रामायण और पुराणादि का भी इसमें अन्तर्भाव हो जाता है। कथानक का संग्रह इन्हीं ग्रन्थों की कथाओं में से होना चाहिए। इससे कल्पित कथावस्तु का परिहार हो जाता है। यदि महाकाव्य इतिहास-प्रसिद्ध ख्यातवृत्त पर आधारित होता है तो उसके साथ लोक-चित्त का आसानी से साधारणीकरण हो जाता है। इसके अतिरिक्त उससे जातीय गौरव एवं स्वाभिमान का भाव जागरित होता है। कल्पित कथानक तथा सज्जनेतर कथाओं के वर्णन से यह संभव नहीं है। अतएव उनका निषेध है।

महाकाव्य के अध्ययन से चतुर्वर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में से किसी एक फल की उपलब्धि होती है। इसमें महाकाव्य उद्देश्य आ जाता

१—साहित्य दर्पण ३।३०
२—वही ३।३१
३—वही ३।२६१ की टीका।
४—भरत-नाट्य शास्त्र, १६।३५

है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, कलाओं में विलक्षणता, कीर्ति और प्रीति की उपलब्धि से ही भारतीय दृष्टि से काव्य की सार्थकता मानी गई है[१]। इसी से भारतीय काव्य का उद्देश्य आदर्शमूलक सिद्ध होता है।

ग्रन्थ के प्रारम्भ में आशीर्वाद, नमस्कार अथवा काव्य-वस्तु का निर्देश होता है। आशीर्वाद से इष्ट जनों की शुभाशंसा का, नमस्कार से दैन्य का तथा वस्तु निर्देश से भाव है, वर्ण्य वस्तु के साक्षात् कथन का। इनमें से किसी एक से ग्रन्थ का प्रारम्भ होता है।

कहीं-कहीं खल-निन्दा और सज्जन-स्तुति का भी वर्णन पाया जाता है। एक सर्ग में एक प्रकार के ही छन्द होते हैं तथा अन्त में छन्द बदल जाता है। न अधिक छोटे तथा न अधिक बड़े कम-से-कम आठ सर्ग होते हैं। किन्तु यह नियम अनिवार्य नहीं, क्योंकि महाकाव्यों में विपरीत-क्रम भी मिलता है। राम-चरित मानस में केवल सात ही कांड हैं। किसी-किसी सर्ग में नाना कथाओं का वर्णन होता है, जैसे शिशुपाल वध का चतुर्थ सर्ग तथा किरातार्जुनीय का पंचम सर्ग। सर्ग के अन्त में आगामी कथा को सूचित किया जाता है।

दंडी ने कथावस्तु के अलंकृत और असंक्षिप्त होने का वर्णन किया है। इससे तात्पर्य यह है कि वस्तु वर्णन की शैली अलंकृत हो तथा कथा का वर्णन विस्तृत हो। संक्षिप्त वर्णन महाकाव्य की लघुता का परिचायक है। महाकाव्य के वस्तु वर्णन के विषय में (अध्याय २) में लिखा जा चुका है। आचार्य दंडी का कथन है कि वस्तुओं के वर्णन में कुछ बातों का वर्णन होने पर भी महा-काव्य को हानि नहीं होती है। इससे सिद्ध है कि छन्द, अलंकार, सर्ग एवं वस्तु-वर्णन के सम्बन्ध में कोई कठोर एवं अनिवार्य नियम नहीं है। ये केवल साधारण नियम हैं। वस्तुतस्तु महाकाव्य में काव्य-सम्पत्ति अपेक्षित है। यदि महाकाव्य की वस्तु में गुण, अलंकार एवं रस-बोध का पूर्ण सामर्थ्य है तो अन्य वस्तुओं के न्यून होने पर भी महाकाव्य को क्षति नहीं पहुँचती। महाकाव्य के लक्षणों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—महाकाव्य की आत्मा तथा उसका शरीर।

(१) **महाकाव्य की आत्मा**—इसमें महाकाव्य के आदर्श तथा रस को लिया जा सकता है, जिसमें नायक, प्रख्यात कथा एवं शृंगारादि रस प्रधान हैं।

१—धर्मार्थ काम मोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च।
प्रीतिं करोति कीर्तिं च, साधु काव्य निषेवणम्॥ भामह॥

(२) महाकाव्य का शरीर—इसमें मंगलाचरण, सर्ग-रचना, छन्द, वस्तु-वर्णन, नाटक सन्धियों का स्थान है।

उपर्युक्त कसौटी के आधार पर आलोच्यकाल के महाकाव्यों का विवेचन किया जाता है :—

सबसे पहले महाकाव्य के नायक पर विचार किया जाता है। नायक दिव्य, अदिव्य अथवा दिव्यादिव्य तीन कोटियों में विभक्त किए जा सकते हैं। दिव्य नायक देव कोटि के होते हैं, जैसे शिव, इन्द्र आदि। अदिव्य नायक मनुष्य कोटि के होते हैं, जैसे, वत्सराज, नल, पृथ्वीराज आदि। दिव्यादिव्य नायकों में अवतारों की गणना की जाती है, जैसे, राम, कृष्ण आदि। ये भी वीर, रौद्र, श्रृंगार, शान्त रस की प्रधानता से धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीर ललित और प्रशान्त चार प्रकार के होते हैं।[१] इस दृष्टि से विचार करने पर साकेत, कृष्णायन तथा सिद्धार्थ के नायक क्रमशः राम, कृष्ण तथा बुद्ध दिव्या-दिव्य (अवतार) नायक हैं। इनके चरित्रों में मानवेतर अलौकिक गुणों का विकास हुआ है। साकेत के राम निर्गुण ब्रह्म के अवतार हैं। वे भू-भार हरण के लिए धरा-धाम में प्रकट हुए हैं।[२] 'कृष्णायन के कृष्ण धर्म-संस्थापक एवं लोक-रक्षक हैं। वे सर्वगुण-सम्पन्न हैं तथा अनासक्त भाव से कार्य करते हैं। वे आर्य-नीति के पालक हैं। जन्म के साथ-ही उनकी अलौकिक शक्ति का परिचय मिल जाता है।[३] सिद्धार्थ के नायक गौतम भी अनादि, अनन्त शक्ति के साकार विग्रह हैं। समस्त उपाधियों का परित्याग कर वे भुवन-मोहन बाल रूप में माता के गर्भ से प्रकट होते हैं।[४] जन्म के पूर्व ही से प्रकृति में अलौकिक व्यापार घटित होने लगते हैं। उनके अलौकिक प्रभाव से पृथ्वी में धर्म का प्रभात छा जाता है तथा सब प्राणियों का हृदय अमृत के

१—काव्य प्रकाश ७।८२।१८।

२—हो गया निर्गुण सगुण साकार है।
ले लिया अखिलेश ने अवतार है। —साकेत

३—बिनु अवलम्ब मातु पितु जाना। सहसा प्रकट भये भगवाना॥
निमिषहिं महँ शिशु वेश दुरावा। रूप चतुर्भुज प्रभु प्रकटावा॥
—कृष्णायन

४— तज समस्त अनादि अनन्तता, अमित उच्च उपाधि-विहीन हो,
भुवन-मोहन बाल-स्वरूप से, प्रभु लसे जननी-कृत-क्रोड में।
—सिद्धार्थ, पृ० ३३

तुल्य शीतल हो जाता है। इस प्रकार इन तीनों महाकाव्यों में दिव्यादिव्य नायकों की परम्परा पूर्णरूप से प्रस्फुटित हुई है।

अदिव्य श्रेणी में धीरोदात्त, आदर्श गुण सम्पन्न पराक्रमी क्षत्रिय वीर आते हैं। 'नल-नरेश' के नायक नल, 'वैदेही वनवास' के रामचन्द्र, 'हल्दीघाटी' के वीर प्रताप, 'दैत्यवंश' के हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष, बलि, स्कन्द आदि छहों राजा, 'साकेत-सन्त' के भरत, 'विक्रमादित्य' के चन्द्रगुप्त तथा 'अंगराज' के कर्ण धीरोदात्त नायक हैं। ये सभी नायक शूर, बलवान्, गंभीर, विनीत, त्यागी, प्रियदर्शन, दक्ष, कर्म-प्रवण, तेजोयुक्त, दृढ़, उच्च कुलोत्पन्न, स्थिर तथा धार्मिक हैं। इनके चरित्र उदात्त हैं तथा उनके जीवन में मानवीय आदर्शों की रक्षा तथा निर्वाह हुआ है।

'वैदेही-वनवास' के रामचन्द्र एक श्रेष्ठ एवं कुशल राजा के रूप में चित्रित हैं। लोकाराधन उनके जीवन का मूल मंत्र है। जनहित के लिए वे महान् कष्टों को भी झेलने के लिए उद्यत रहते हैं। प्रजा में शान्ति का प्रसार करने के लिए वे सतत उद्योग करते हैं।[1]

'विक्रमादित्य' के नायक चन्द्रगुप्त आर्य संस्कृति के पुजारी, कला-प्रेमी तथा राष्ट्रोद्धारक हैं। उनमें कुछ नये गुणों का भी विकास हुआ है जो परम्परागत नायकों में नहीं पाए जाते हैं। वे राष्ट्रीय नेता के रूप में चित्रित हैं। वे भारत की बिखरी हुई शक्तियों को एकत्र कर विदेशियों को देश से बाहर निकालने में समर्थ होते हैं। शकों का विध्वंस कर वे भारत को एक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में संगठित करते हैं। वे राष्ट्र-निर्माता, शूर, नीतिज्ञ, शक्तिशाली तथा सौन्दर्य-युक्त हैं।[2] 'अंगराज' के कर्ण में भी नवयुगोचित नायक के गुणों का विकास हुआ है। प्रजाहित, सर्वोदय की भावना, सत्य, अहिंसा आदि सद्-गुणों के आधार पर ये देश का पुनर्निर्माण करने में सफल होते हैं।[3]

१—पठन कर लोकाराधन मंत्र, करूँगा मैं इसका प्रतिकार।
साध कर जन-हित साधन-सूत्र, करूँगा घर-घर शान्ति प्रसार॥
—वैदेही बनवास ३।६७

२—जननी है वही पुकार रही, बलि होने का प्रण करो अटल।
आओ हम दोनों चलें वीर, माता की लाज बचा लेवें।
हो एक जन्म भू का अखंड, शृंगार सहर्ष सजा देवें॥ -विक्रमादित्य

३—अंगराज, ३।२२-२३।

'दैत्यवंश' की रचना कालिदास-प्रणीत रघुवंश के आधार पर हुई है। इसमें दैत्यवंश के राजाओं के उदात्त चरित्रों का वर्णन है। जिनमें बलि, बाणासुर और स्कन्द प्रधान हैं। कवि ने दैत्य वंश के सभी राजाओं को धीरोदात्त नायक के रूप में चित्रित किया है। इनके विषय में सबसे बड़ी आपत्ति यह है कि ये सद्वंशोद्भूत नहीं हैं। दैत्यवंश में जन्म लेने के कारण ये प्रख्यात वंश के नायकों की श्रेणी में नहीं आते तथा नायक के लिए 'रूढ़वंश' होना परम्परया अनिवार्य है। परम्परागत काव्यों में इनके मलिन स्वभाव और दूषित आचरणों का ही सर्वत्र वर्णन मिलता है, किन्तु दैत्यवंशकार ने इन राजाओं के चरित्र को उज्ज्वल रूप में अंकित किया है। कवि-वर्णन के आधार पर ही इनको नायक के परंपरानुगत आदर्शों की श्रेणी में ग्रहण किया गया है।

कथा-वस्तु—महाकाव्य की कथा-वस्तु इतिहास-प्रसिद्ध अथवा सज्जनाश्रित होनी चाहिए। इतिहास से तात्पर्य महाभारत से है, किन्तु रामायण, पुराणादि ग्रंथों से भी कथा-वस्तु का चयन किया जा सकता है। सज्जनाश्रित से ऐसे कथानकों का ग्रहण है, जो लोक-प्रचलित श्रेष्ठ पुरुषों की कथाओं पर आधारित होते हैं, जैसे, अश्वघोष का बुद्धचरित्र अथवा जायसी का पद्मावत।

आलोच्य महाकाव्यों में नल-नरेश, कृष्णायन तथा अंगराज का कथानक महाभारत से लिया गया है।

नल-नरेश का कथानक महाभारत के वन-पर्व से लिया गया है। नल-दमयन्ती की मूल कथा के प्राचीन स्रोत महाभारत[१] और कथा सरित्सागर[२] हैं। नल-नरेश का कथानक उन्नीस सर्गों में समाप्त होता है। कवि ने इसमें महाभारत के नलोपाख्यान का अनुवाद-सा कर दिया है। इस पर आधुनिक युग का कोई प्रभाव नहीं है।

प्रबन्ध काव्य के लिए सानुबन्ध कथा की आवश्यकता होती है। इससे नल-नरेश का प्रबन्ध-कौशल सराहनीय है। इसके कथानक में पंच सन्धियों का विधान पाया जाता है। हंस से दमयन्ती के रूप-लावण्य की प्रशंसा सुनकर राजा नल के हृदय में पूर्वराग उत्पन्न हो जाता है। यहाँ से लेकर नल और दमयन्ती के विवाह होने तक 'मुख सन्धि' है। तदनन्तर कलि का कोप, नल की द्यूत-क्रीड़ा, नल और दमयन्ती का वन-गमन, नल द्वारा मैत्री का परित्याग एवं मैत्री के करुण-क्रन्दन तक 'प्रतिमुख' सन्धि है। इसके पश्चात् सुदेव ब्राह्मण

१—महाभारत, वन पर्व, अध्याय ५३-७९।

२—कथा सरित्सागर, नवम् अलंकारवती लम्बक, छठो तरंग।

चेदि नगर में पहुँच कर दमयन्ती के साथ निषध को लौटता है। यह गर्भ सन्धि है। राजा नल के शरीर से कलि का बाहर होना तथा सम्पूर्ण रहस्य के प्रकट होने तक 'अवमर्श' सन्धि है। अन्त में नल-दमयन्ती का मिलन हो जाता है। इसमें फलागम तथा कार्य के साथ 'निर्वहण' सन्धि है।

कृष्णायन के प्रथम तीन कांडों की कथा-वस्तु का मुख्य आधार भागवत का दशम् स्कन्ध और हरिवंश पुराण का विष्णु पर्व है। अन्तिम चार कांडों में वर्णित घटनाओं की योजना महाभारत पर आधारित है। असुरों के अत्याचार से पीड़ित पृथ्वी के कष्ट निवारण के लिए श्रीकृष्ण का अवतार, उनके बाल-चरित एवं अलौकिक कार्यों का वर्णन भागवत के अनुसार ही है। द्वारका कांड में कृष्ण के रुक्मिणी, सत्यभामा, सुभद्रा आदि विविध स्त्रियों के साथ विवाहों का वर्णन है। गीता कांड में भगवद्गीता का पूरा अनुवाद प्रस्तुत किया गया है। जय कांड में महाभारत के युद्ध का वर्णन है तथा अन्तिम आरोहण कांड में युधिष्ठिर के राज्याभिषेक, भीष्म के उपदेश तथा कृष्ण के स्वर्गारोहण की कथा का वर्णन है। इस महाकाव्य का प्रबन्ध-कौशल सराहनीय है। इसमें पंच संधियों का निर्वाह भी हो जाता है।

अंगराज का कथानक भी महाभारत पर आधारित है। अंगराज कर्ण के जीवन से संबंधित घटनाओं को महाभारत से चुनकर कवि ने अपनी स्वतंत्र बुद्धि के अनुसार इसमें चित्रित किया है। कर्ण क चरित्र को ऊँचा उठाने के लिए उसके विपक्षियों के चरित्र को कवि ने विकृत रूप में अंकित किया है। पाण्डवों के अग्रज युधिष्ठिर तथा कृष्ण के चरित्र को कवि ने बहुत कुछ परिवर्तित रूप में उपस्थित किया है। कर्ण की मृत्यु को अतिरंजित रूप में चित्रित किया गया है।

दैत्य वंश में अष्टादश सर्ग हैं। इस काव्य की प्रमुख कथाओं में समुद्र-मंथन, देवासुर-संग्राम, अमरावती विजय, बलि-वंचन, उषा-अनिरुद्ध-आख्यान, विरोचन और बाणासुर का स्वर्ग-गमन तथा स्कन्द का राज्य-वर्णन आदि मुख्य हैं। दैत्य वंश के छः राजाओं का वर्णन होने से कथा-क्रम का निर्वाह आसानी से हो गया है। इसमें किसी एक राजा के जीवन-वृत्त का वर्णन न होने से न तो संकलन त्रय-स्थान, काल और घटना की अन्विति हो सकी है और न नाटकीय संधियों का निर्वाह ही हो सका है।

दैत्य वंश की कथा-वस्तु का आधार प्रसिद्ध भागवत पुराण है। इस महाकाव्य के अष्टादश सर्गों में दैत्यवंश के छः प्रतापी राजाओं के इतिवृत्त का वर्णन है—हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु, विरोचन, बलि, बाणासुर और स्कन्द। दैत्यवंश से राजाओं की कथाओं को महाकाव्य का आधार बनाना परंपरागत

आदर्शों के विरुद्ध है, क्योंकि इन राजाओं के प्रति लोक-हृदय में स्वाभाविक ग्लानि का भाव प्रतिष्ठित हो चुका है। न इनके चरित्रों में धीरोदात्त नायक के गुण हैं तथा न इनका प्रख्यात वंश है। किन्तु आधुनिक युग ने निम्न, साधारण एवं असभ्य जातियों के नायकों को अधिक सहानुभूति प्रदान की है। माइकेल मधुसूदनदत्त मेघनाद वध लिखकर नये लेखकों का ध्यान इस ओर आकृष्ट कर चुके हैं। दैत्य वंशकार ने भी नई परिस्थिति से प्रेरित होकर इस महाकाव्य की रचना की है। अतएव इस पर नवयुग की आभिजात्य विरोधी प्रवृत्ति का प्रभाव स्पष्ट है, किन्तु इस महाकाव्य का कथानक परम्परागत आदर्शों की सीमा से वहिर्भूत है, इसमें कोई संशय नहीं है।

साकेत, वैदेही वनवास और साकेत-सन्त के कथानकों को रामायण से लिया गया है। वाल्मीकि और कालिदास द्वारा प्रवर्तित राम-काव्य-धारा का संस्कृत-साहित्य में अच्छा विकास हुआ है। हिन्दी-साहित्य में तुलसी और केशव ने राम-कथा को आधार बनाकर इसे चरमोत्कर्ष तक पहुँचा दिया है। आधुनिक काल में रामचरित्र चिन्तामणि, साकेत, रामचन्द्रोदय, साकेत-सन्त तथा वैदेही-वनवास इसी काव्य परंपरा के विकसित पग-चिह्न हैं। साकेत के कवि ने उर्मिला और लक्ष्मण के कथा-प्रसंग का वर्णन विस्तार से किया है। पहले ही सर्ग में लक्ष्मण और उर्मिला का प्रेमालाप कुछ अधिक विस्तार से वर्णित है। नवाँ और दसवाँ सर्ग विरहिणी उर्मिला की वियोगावस्था का वर्णन करने के हेतु दिये गये हैं। इससे कथा के विकास को अत्यधिक क्षति पहुँची है। राम-कथा की अन्य घटनाओं को एकादश और द्वादश सर्गों में एक साधारण पात्र और हनुमान के द्वारा तथा वशिष्ठ की दिव्य दृष्टि द्वारा संकेत रूप से दिखा दिया गया है। इस प्रकार साकेत की मूलकथा की पूर्ति अन्य पात्रों द्वारा करा दी गई है। इससे घटनाओं का विकास स्वाभाविक रूप में नहीं होने पाया है। इसमें संदेह नहीं कि महाकाव्य के विचार से साकेत का कथानक अत्यंत निर्बल सिद्ध हुआ है।

साकेत के नवें सर्ग से बारहवें सर्ग तक कथा-विकास की गति इतनी शिथिल हो जाती है कि सानुबन्ध-कथा-निर्वाह का नियम भंग हो जाता है। तुलसी के मानस में राम के वनवास की घटनाओं के वर्णन के कारण कथा-वस्तु में जो रोचकता और सजीवता आ गई है, साकेत के अन्तिम चार सर्गों में उसको असंतुलित ढंग से कह दिया गया है। इससे कथा-वस्तु के सम्बन्ध-निर्वाह को बहुत आघात पहुँचा है। कथा-वस्तु के विकास में पंच सन्धियों का विचार भी नहीं रखा गया है।

वैदेही-वनवास की कथा रामायण और भवभूति के उत्तर रामचरित-

नाटक पर आधारित है। रामायण के उत्तरकांड में, रघुवंश के चतुर्दश सर्ग में और उत्तर रामचरित में सीता के द्वितीय बनवास की घटनाओं का वर्णन है। हरिऔध जी ने वैदेही-बनवास की कथा के चित्रण में अपनी स्वतंत्र उद्भावनाओं का भी परिचय दिया है। वन को भेजने की परिस्थिति का पूरा ज्ञान सीता जी को प्रारम्भ में ही हो जाता है। जानकी जी राम की आज्ञा को शिरोधार्य कर लेती हैं और लोकाराधन के हेतु वन जाने को सहर्ष प्रस्तुत हो जाती हैं। कथा में यह परिवर्तन करके हरिऔध जी ने सीता एवं राम के जीवनादर्श को अत्यधिक ऊँचा उठा दिया है।

वैदेही-बनवास का कथानक घटनाओं की दृष्टि से अत्यन्त शिथिल है। लवणासुर-वध, राम का अश्वमेध, वृत्रासुर-वध, सीता का भूमि-प्रवेश आदि अनेक घटनाओं का वर्णन वाल्मीकि रामायण में आता है[1]। वैदेही-बनवास में इनका कोई उल्लेख नहीं है। कवि ने सती सीता और मर्यादा-रक्षक राम के चरित्र में आर्य-संस्कृति के महान् आदर्शों की प्रतिष्ठा की है। सीता जी के बन-वास से संबंधित घटनाओं का इतने विस्तार से वर्णन किया गया है कि अन्य कथाओं का विन्यास नहीं हो सका है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक सर्ग के अन्दर प्रकृति-वर्णन तथा विचार एवं सिद्धान्तों का निरूपण बहुत हुआ है, जिससे कथा की गतिशीलता बाधित हुई है। इन्हीं बातों से इसके लघु कथानक में मानव-जीवन की विभिन्न परिस्थितियों का समावेश नहीं हो सका है। किन्तु इसका कथानक प्रख्यात एवं परम्परानुमोदित है, इसमें कोई संदेह नहीं।

साकेत-सन्त की कथा-वस्तु चौदह सर्गों में विभाजित है। इसकी कथा का आधार रामायण है। कथा प्रख्यात है। कवि ने स्वतंत्र उदभावनाओं को भी स्थान दिया है, जिनमें सामयिकता की झलक विद्यमान है। रामायण के अनुसार राजा दशरथ राम के अभिषेक से पूर्व भरत को जान-बूझकर ननिहाल भेज देते हैं। इस काव्य में मामा के आग्रह पर भरत ननसाल को जाते हैं, जिससे दशरथ निर्दोष सिद्ध होते हैं। दूसरे भरत जी को ननसाल में ही कैकेयी के षड्-यंत्र का पता चल जाता है तथा मन्थरा को विघ्न-स्वरूप नहीं खड़ा किया जाता है। तीसरे राजा दशरथ की मृत्यु होने पर कैकेयी उनके साथ सती होने का संकल्प करती है। कवि ने प्रायश्चित द्वारा उसके चरित्र में सुधार का प्रयत्न किया है। चौथे भरत के राम से मिलने को प्रस्थान करने की सूचना कोलों द्वारा

१—देखिये वाल्मीकि रामायण, उत्तर कांड, सर्ग ६९, ६१, ८५, ६७।

पहुँचा दी जाती है, जिससे लक्ष्मण को रोष प्रकट करने का अवसर नहीं आता है। काव्य के प्रारम्भ और अन्त में भरत तथा माण्डवी के मिलन का प्रसंग रखा गया है। साकेत में भी पहले और अन्तिम सर्ग में लक्ष्मण तथा उर्मिला का संवाद रखा गया है। साकेत-सन्त के कवि ने भी इसी का अनुसरण करते हुए भरत-माण्डवी के रोचक संवाद की योजना की है। साकेत-सन्त की मूल-कथा में कवि ने सामयिक दृष्टि से नये परिवर्तन किए हैं। किन्तु इस काव्य की कथा के बीच में सिद्धान्त एवं विचारों का निरूपण इतना अधिक है कि कथा का समुचित विकास नहीं हो पाता है। कथा के नायक भरत हैं, जो राम की अनुपस्थिति में अयोध्या का राज्य सम्हालते हैं। उनके चरित्र में मानव-जीवन की विभिन्न परिस्थितियों का आकलन नहीं हो सका है। चौदहवें सर्ग में भरत की दिनचर्या वर्णित है। इसमें कथा-सूत्र विच्छिन्न है। केवल गीतों का संग्रह है। अभिप्राय यह है कि साकेत-सन्त का कथानक प्रख्यात होने पर भी महा-काव्य के लिए अल्प है।

सिद्धार्थ, हल्दीघाटी तथा विक्रमादित्य के कथानक सज्जनाश्रित कथा की कोटि में आते हैं। सिद्धार्थ अठारह सर्गों का महाकाव्य है। इसमें महात्मा बुद्ध की जीवन-कथा का वर्णन है। गौतम बुद्ध का स्थिति-काल (५६७-४८७ ई० पू०) माना जाता है। जातकों में इनके जीवन की अनेक कथाओं का वर्णन पाया जाता है। अश्वघोष का बुद्ध चरित, ऐडविन आर्नाल्ड का लाइट ऑव एशिया तथा रामचन्द्र शुक्ल के बुद्धचरित के आधार पर इस प्रबन्ध काव्य का प्रणयन हुआ है। महात्मा बुद्ध का लोक-विश्रुत चरित्र महाकाव्य की रचना के लिए सर्वथा उचित है। कवि ने बुद्ध को अवतार रूप में चित्रित किया है। उनके जन्म तथा निर्वाण के अवसर पर अलौकिक घटनाओं के वर्णन से इस तथ्य की सूचना मिलती है। बुद्धावतार एक महान् प्रयोजन की सिद्धि के लिए हुआ है। उनके प्रादुर्भाव से भूतल पर अहिंसा, सत्य, प्रेम, दया आदि धर्म के सभी अंगों का विकास होता है तथा अज्ञान, अधर्म एवं हिंसा आदि का समूल नाश हो जाता है। सिद्धार्थ का चरित्र धीरोदात्त नायक के गुणों से मंडित है। इस प्रकार सिद्धार्थ का इतिवृत्त महाकाव्य की रचना के लिए सफल सिद्ध हुआ है। हिमालय के उपकूल में अवस्थित कपिल-वस्तु के राजा शुद्धोदन की कथा से लेकर सिद्धार्थ के जन्म और यशोधरा के विवाह तक 'मुख सन्धि है।' सिद्धार्थ को वैराग्य की तीव्रता के कारण महाभिनिष्क्रमण का संकल्प होता है। यहाँ तक 'प्रतिमुख' है। इसके पश्चात् यशोधरा के विलाप से लेकर भगवान् बुद्ध के समाचार मिलने तक 'गर्भ एवं अवमर्श' संधियां हैं। अन्त में यशोधरा और ग्राम-

वासियों में भगवान् का मिलन होने में 'निर्वहण' सन्धि है। इस प्रकार सिद्धार्थ के कथानक में नाटकीय सन्धियों की योजना भी है।

हल्दीघाटी में मुगलवंश के प्रतापी सम्राट अकबर और मेवाड़ के राणा प्रताप के इतिहास-प्रसिद्ध हल्दीघाटी के युद्ध का वर्णन है। कवि ने राणा प्रताप के वीरत्वपूर्ण चरित्र का वर्णन सत्तरह सर्गों में समाप्त किया है। प्रताप के चरित्र में धीरोदात्त नायक के सभी गुण प्रस्फुटित हुए हैं। उनका चरित्र शौर्य, तेज, पराक्रम, धैर्य, उत्साह, प्रतिज्ञा-पालन, कर्त्तव्य-परायणता आदि सद्गुणों का आकर है। किन्तु हल्दीघाटी का कथानक महाकाव्य के विचार से अत्यन्त दोषपूर्ण है। इसकी कथा-वस्तु अत्यन्त क्षीण, विच्छिन्न तथा देश-काल की अन्विति से हीन है। इसके प्रारंभ में नमस्कार, प्रस्तावना, परिचय, प्रताप, चित्तोड़, झाला-मान्ना, चेतक, हल्दीघाटी, भाला आदि विषयों पर मुक्तक कविताएँ हैं। प्रारंभ की स्फुटिक रचनाओं के पश्चात् प्रथम सर्ग प्रारंभ होता है। सत्तरहवें सर्ग के उपरान्त परिशिष्ट है। सानुबन्ध कथा का अभाव संपूर्ण काव्य में दृष्टिगोचर होता है। युद्ध-वर्णन पर ध्यान केंद्रित हो जाने से अन्य घटनाओं का निर्वाह बिलकुल नहीं हुआ है। कथा-वस्तु में पंच सन्धियों का भी विचार नहीं मिलता है। राणाप्रताप के जीवन की केवल युद्ध संबंधी घटनाओं का ही वर्णन होने से कथा में व्यापकता नहीं है। इससे हल्दीघाटी का कथानक अत्यन्त त्रुटिपूर्ण है।

विक्रमादित्य की कथावस्तु चवालीस सर्गों में विभाजित है। इसके कथानक का मूल आधार 'देवीचन्द्र गुप्त' नाटक है, जिसके रचयिता छठी शताब्दी के विशाखदत्त माने जाते हैं। यद्यपि इस नाटक की मूल प्रति अप्राप्य है, तथापि इसके उद्धरण गणपतिचन्द्र कृत नाट्य दर्पण, वाणकृत हर्षचरित तथा भोज-कृत शृंगार-प्रकाश में बिखरे हुए मिलते हैं। इस कथानक की पुष्टि हिन्दू-मुसलमानों द्वारा लिखित अन्य स्रोतों से भी होती है।[१] विक्रमादित्य का कथानक प्रख्यात तथा शुद्ध ऐतिहासिक है। कथा का नायक वीर विक्रमादित्य है, जो धैर्य, उत्साह, तेज, प्रताप, स्वाभिमान आदि उदात्त गुणों से युक्त है। चन्द्रगुप्त के राज्य-शासन की सुचारुता, समृद्धि और विशालता को सिद्ध करने लिए अनेक शिलालेख[२] ताम्रपत्र और विदेशी विवरण साक्षी हैं। कवि ने इन

१—राज रामनरायन सेलेटोर, लाइफ इन द गुप्त एज, पृ० १६।

२—मथुरा का स्तम्भ-लेख इ० स० ३८०, उदयगिरि गुहा लेख, साँची का लेख, मेहरौली का स्तम्भ लेख, प्रभावती (चन्द्रगुप्त की

सभी स्रोतों की सहायता से इस महाकाव्य की कथावस्तु का विकास किया है। पंच संधियों के विचार से भी कथानक अत्यन्त सफल है। इसकी कथावस्तु में जीवन का विशाल चित्रपट अंकित है। इसके कथानक में एक दोष है। २६वें सर्ग में चन्द्रगुप्त को रानी ध्रुवदेवी तथा रामगुप्त द्वारा प्रदत्त राज्य-सिंहासन की प्राप्ति हो जाती है। इसके पश्चात् जितने भी सर्ग हैं, उनमें कोई नवीन घटना नहीं है। उन्हें केवल कलेवर-वृद्धि के लिए ही जोड़ा गया है। फलागम के पश्चात् शेष सर्गों की योजना का कोई महत्त्व नहीं रह जाता है।

रस—शास्त्रीय परम्परा के विचार से महाकाव्य में शृंगार, वीर या शान्त रस में से कोई एक रस अंगी होता है। अंग रूप से शेष रसों का उन्मेष होता रहता है। इस दृष्टि से परीक्षा करने पर साकेत, नल-नरेश, सिद्धार्थ, दैत्य वंश और विक्रमादित्य में शृंगार रस प्रधान है, हल्दीघाटी, कृष्णायन तथा अंगराज में वीर रस अंगी है तथा साकेत-संत एवं वैदेही बनवास में करुण रस का उत्कर्ष अधिक है। नीचे उपर्युक्त महाकाव्यों में रस एवं भावों का निरूपण किया जाता है।

साकेत में शृंगार रस प्रधान है। शृंगार के संयोग और विप्रलंभ-दोनों पक्षों का पूर्ण परिपाक हुआ है। प्रथम सर्ग के उर्मिला-लक्ष्मण-प्रेमालाप में संयोग शृंगार पूर्ण रूप से व्यंजित होता है। नवम् सर्ग में विप्रलंभ का उत्कर्ष है। इसमें विरह की दशाओं के अन्तर्गत अभिलाष,[१] चिन्ता, स्मृति,[२] उन्माद,[३] प्रलाप[४] एवं व्याधि[५] का पूर्ण उन्मेष है। चिन्ता, विषाद,[६] औत्सुक्य,[७] स्मरण,[८] मति, धृति,[९] भ्रम, स्वप्न,[१०] मोह,[११] निर्वेद आदि संचारी भावों की व्यंजना भी अत्यन्त मार्मिक है।

कुमारी) का दानपत्र, गुप्त राजाओं की मुद्राएँ तथा फाह्यान का यात्रा-विवरण।

१—देखिए साकेत (द्वितीयावृत्ति), पृ० ३०६।
२—वही, पृ० २०२।
३—वही, पृ० ३१६।
४—वही, पृ० ३१७।
५—वही, पृ० ३२०।
६—वही, पृ० २५५।
७—वही, पृ० ३०५।
८—वही, पृ० ३०८।
९—वही, पृ० ३२२।
१०—वही, पृ० २६६।
११—वही, पृ० २६१।

राम-वन-गमन, दशरथ-मरण एवं लक्ष्मण के मूर्च्छित होने पर करुण रस का परिपाक हुआ है। साकेत में रण-सज्जा के प्रसंग में तथा राम-रावण युद्ध में वीर रस का प्रकर्ष है। अन्तिम सर्ग में वीर, रौद्र, भयानक और अद्भुत रस के सुन्दर स्थल आए हैं। इससे सिद्ध है कि साकेत में शृंगार का प्राधान्य है और गौण रूप से अन्य रसों की स्थिति है।

नल-नरेश में शृंगार रस प्रधान है। दमयन्ती के सौन्दर्य की कथा सुन कर नल को पूर्वराग हो जाता है। दमयन्ती भी हंस से राजा नल के वीरत्व एवं सौन्दर्य का वृत्तान्त सुनकर काम-बाधा से पीड़ित हो जाती है।[१] इस सम्पूर्ण प्रसंग में विप्रलंभ शृंगार की मर्मस्पर्शी अभिव्यंजना मिलती है। नल और दमयन्ती के शृंगार-वर्णन में कवि ने परम्परागत सभी उपकरणों को प्रस्तुत किया है।[२] अन्य रस गौण रूप से आए हैं।

सिद्धार्थ में शृंगार के उभय पक्ष-संयोग और विप्रलंभ––की प्रधानता है। 'संयोग' और 'राग' नाम के सर्गों में संयोग शृंगार का पूर्ण उत्कर्ष है। सिद्धार्थ और यशोधरा के विवाह, दाम्पत्य-विहार, वसन्तोत्सव की दाम्पत्य क्रीड़ाओं में संयोग शृंगार की अतुल सामग्री प्रस्तुत की गई है। सोलहवें सर्ग में यशोधरा की विरहावस्था का वर्णन है। इस सर्ग में आदि से अन्त तक यशोधरा की वियोग-व्यथा का मर्मस्पर्शी चित्रण है। विरहिणी का क्रमशः सरोज-कली, भ्रमर तथा रोहिणी नदी से अपने दैन्य का वर्णन, हंस द्वारा पति को संदेश और सखियों द्वारा प्राणपति के लौटने का समाचार आदि प्रसंगों में विप्रलंभ की पूर्ण प्रतिष्ठा हुई है। सिद्धार्थ के दूसरे सर्ग के अकेले उषा-वर्णन के प्रसंग में सभी रसों का समावेश पाया जाता है[३]।

सिद्धार्थ के बाल-लीला वर्णन में वात्सल्य एवं बुद्ध भगवान् के धर्मोपदेश के प्रसंगों में शान्त रस का पूर्ण स्रोत छलकता है। इस प्रकार रसोत्कर्ष की दृष्टि से सिद्धार्थ अत्यन्त सफल है।

दैत्य वंश में शृंगार और वीर रस प्रधान है। लक्ष्मी-स्वयंवर और अष्टादश सर्ग के वसन्त-वर्णन के प्रसंग में संयोग शृंगार की मधुर व्यंजना पाई जाती है। स्वयंवर में लक्ष्मी जब विष्णु के कंठ में जयमाला पहनाती हैं, तब उनके सात्विक भाव उत्पन्न हो जाता है और रोमांचित हो जाने से मूक हो जाती

१––नल-नरेश, ४।३-७।

२––वही, पंद्रहवाँ सर्ग।

३––सिद्धार्थ, पृ० २०।

हैं। इस प्रसंग में विष्णु आलम्बन तथा लक्ष्मी आश्रय हैं। सखियों के विनोद, विलासादि उद्दीपन, हैं, कम्प, अवाक् होना, कृशता आदि अनुभाव हैं तथा लज्जा, हर्ष संचारी हैं। रति स्थायी सब अंगों से पुष्ट होकर संयोग शृंगार की व्यंजना कर रहा है। असुरों से हार कर इन्द्र मानसरोवर में जा छिपता है। इस संपूर्ण प्रसंग म विप्रलंभ की योजना अत्यन्त सुन्दर है। अनिरुद्ध के वियोग में उषा को काम-पीड़ा सताती है, इस प्रसंग में भी विप्रलंभ शृंगार अभिव्यंजित है। देवासुर संग्राम के संपूर्ण प्रसंग में रौद्र, वीर, भयानक एवं वीभत्स रस की अभिव्यंजना मिलती है। हास्य रस के लिए लक्ष्मी-स्वयंबर में बूढ़े ब्रह्मा एवं महादेव के रेखा-चित्र दर्शनीय हैं।

विक्रमादित्य प्रेम प्रधान काव्य है। इसमें शृंगार के अन्तर्गत संयोग एवं विप्रलंभ दोनों पक्षों का अच्छा विकास हुआ है। प्रथम सर्ग में ही विक्रमादित्य का दर्शन कर ध्रुवदेवी के हृदय में रति का स्फुरण होता है। इस प्रसंग में विक्रमादित्य आलम्बन, ध्रुवदेवी आश्रय हैं। विक्रमादित्य का अंग-सौन्दर्य उद्दीपन, एकटक देखना, तृप्त होना आदि अनुभाव तथा अवहित्था, औत्सुक्य संचारी हैं। रति स्थायी सब अंगों से पुष्ट है।

चन्द्रगुप्त के वियोग में रानी ध्रुवदेवी के विरह वर्णन में विप्रलम्भ शृंगार की व्यंजना अत्यंत मार्मिक है। आर्य-सेना और शकों के युद्ध वर्णन में वीर रस का उन्मेष होता है। अन्य रसों में हास्य, करुण एवं शान्त रस हैं।

कृष्णायन वीर रस प्रधान महाकाव्य है। इसमें वीर रस के युद्ध, दान, दया, धर्म चारों रूपों का पूर्ण उत्कर्ष पाया जाता है। कृष्ण का संपूर्ण जीवन वीर रस से ओतप्रोत है। बाल्यकाल में असुरों के संहार से लेकर महाभारत के युद्ध पर्यन्त उनके समस्त कार्यों में वीर रस का पूर्ण उन्मेष दिखाई पड़ता है। कालिय नाग पर विजय प्राप्त करने में युद्धवीर, रुक्मिणी के क्रूर व्यवहार को क्षमा करने में दयावीर, सुदामा को अतुल संपत्ति भेंट करने में दानवीर तथा शिशुपाल का वध करने में धर्मवीर का रूप प्रकट हुआ है। जय कांड में वीर रस का पूर्ण प्रकर्ष दिखाई पड़ता है। अन्य रसों में शृंगार, हास्य, करुण, अद्भुत एवं शान्त रस सभी यथास्थान आए हैं।

अंगराज वीर रस प्रधान है। इस काव्य के उत्तरार्ध में महाभारत के युद्ध की घटनाओं का प्राचुर्य है। इसमें वीर रस उत्ताल तरंगों में प्रवाहित होता है। कर्णार्जुन युद्ध के प्रसंग में इसकी प्रधानता है। इन्हीं स्थलों पर रौद्र, भयानक एवं वीभत्स का उन्मेष हुआ है। शृंगार की व्यंजना कर्ण और उसकी

पत्नी के प्रेमालाप में है। अन्तिम सर्ग में शान्त रस का उद्रेक है, जब आत्म-ग्लानि में डूबे हुए पांडव निर्वेद की अवस्था में हिमालय को प्रस्थान करते हैं।

हल्दीघाटी के नायक राजा प्रताप हैं, जिनका समग्र जीवन युद्ध रस में डूबा हुआ है। प्रारंभिक सर्ग के मृगया वर्णन में तथा अन्तिम सर्गों के राजपूत-मुगलों के युद्ध वर्णन में उत्साह की पूर्ण व्यंजना मिलती है। संपूर्ण काव्य वीर रस से ओतप्रोत है। अन्य प्रसंगों में रौद्र, भयानक एवं वीभत्स का उद्रेक पाया जाता है।

साकेत-सन्त में करुण रस का स्रोत प्रवाहित है। पहले सर्ग की कथा भरत-माण्डवी के प्रेमालाप के साथ प्रारंभ होती है। इस प्रसंग में संयोग शृंगार का अविरल स्रोत छलकता है, किन्तु फिर इसके कहीं दर्शन नहीं होते हैं। संपूर्ण काव्य में राम के वियोग में एक गहन विषाद-सा छा जाता है। चित्रकूट पर राम से भेंट करने को जाते हुए भरत की दशा के वर्णन में करुण रस की धारा प्रवाहित होती है। भरत के चित्रकूट से लौटने पर भी एक करुण विषाद छाया रहता है। वशिष्ठ के धर्मोपदेश तथा चित्रकूट पर नीति, धर्म एवं ज्ञान के निरूपण के प्रसंगों में शान्त रस की प्रतिष्ठा हुई है। वस्तुतः इस काव्य में करुण और शान्त रस ही प्रधान हैं।

वैदेही-वनवास का कथानक करुण रस प्रधान है। सीता जी के वनगमन के अवसर पर 'कातरोक्ति' प्रसंग में तथा सीता विषयक लक्ष्मण के संदेश-कथन में करुण रस का पूर्ण परिपाक हुआ है।[३] अन्य रसों में शृंगार, वात्सल्य, शान्त रस गौण रूप से आए हैं।

उपर्युक्त विवेचन से सिद्ध है कि उपर्यंकित महाकाव्यों में रस का पूर्ण संचार हुआ है। निर्दिष्ट स्थलों में रस-पोषक सामग्री प्रचुरता से मिलती है। आलम्बन, उद्दीपन, अनुभाव एवं संचारियों की योजना रसानुकूल है। साकेत-सन्त और वैदेही वनवास में सांस्कृतिक विचारों, नीति एवं धर्म के सिद्धान्तों का उन्मीलन अधिक हुआ है। अतएव इन दोनों महाकाव्यों में रस की सहायक सामग्री अपेक्षाकृत अव्यवस्थित है।

महाकाव्य का शरीर—महाकाव्य के वाह्य स्वरूप के अन्तर्गत भी अनेक परंपराएं चली आती हैं। इनमें मंगलाचरण, सर्ग रचना, छन्द और वस्तु

३—**वैदेही वनवास**, ६।५४ तथा ६।६

वर्णन का प्रमुख स्थान है। नीचे आधुनिक काव्यों में इन्हीं का विवेचन किया जाता है।

मंगलचरण—महाकाव्य के प्रारंभ में नमस्कारात्मक, आशीर्वादात्मक अथवा वस्तु निर्देशात्मक मंगल का विधान है। साकेत, नल नरेश, दैत्य वंश, हल्दीघाटी, कृष्णायन तथा अंगराज का प्रारंभ नमस्कारात्मक मंगल से होता है। कृष्णायन के मंगल में घनश्याम की वन्दना की गई है। कवि ने बन्दीगृह में उत्पन्न होने वाले कृष्ण का अभिवादन किया है। कवि स्वयं बन्दी रह चुका है तथा भारतमाता भी उन दिनों वन्दिनी थीं, जिस समय इस काव्य का प्रणयन हुआ था। भगवान् कृष्ण ने जननी तथा जन्म भूमि की मुक्ति के हेतु कारावास में जन्म लिया था। वे युगावतार थे। बन्दीगृह में उत्पन्न होनेवाला देवता ही वन्दिनी माता को संकट से छुड़ाने में समर्थ हो सकता है, क्योंकि उसको कष्टों की अनुभूति हो चुकी होती है। उसमें वीरत्व का जैसा उद्रेक होता है, वैसा और किसी में नहीं। इस दृष्टि से कृष्णायन का मंगल युग की परिस्थिति पर भी प्रकाश डालता है। यही इसमें नवीनता है[1]।

सिद्धार्थ, साकेत-सन्त तथा विक्रमादित्य के आरंभ में वस्तु निर्देशात्मक मंगलों की योजना की गई। इनमें कथा-वस्तु अथवा कथा के प्रधान पुरुष का निर्देश पाया जाता है। पहले दो महाकाव्यों में कथा-वस्तु का और तीसरे में कथा के प्रधान पुरुष का निर्देश किया गया है।

वैदेही-वनवास का आरंभ प्रकृति-वर्णन के साथ होता है। इसमें प्रभात की शोभा का चित्रण है। हरिऔध जी के प्रियप्रवास के आरंभ में भी संध्या का वर्णन है। प्रकृति-चित्रण को कथा-भूमि का पृष्ठाधार बनाकर काव्य-रचना करने की शैली आधुनिक है। वैदेही-वनवास के लगभग हर एक सर्ग के आरंभ में किसी-न-किसी प्रकार से प्राकृतिक दृश्य का चित्रण पाया जाता है। यह परंपरा से भिन्न नया विधान है।

सर्ग रचना—महाकाव्य के लिए कम-से-कम आठ सर्गों का विधान है। उपर्युक्त सभी महाकाव्यों में सर्गों की संख्या आठ से अधिक है। केवल कृष्णायन में सात सोपान हैं। रामचरितमानस में भी सात कांड हैं। मानस की तरह कृष्णायन का चित्रपट भी अत्यन्त विशाल है। यह मानव-जीवन की

१—जन्मेउ बन्दी धाम, जो जन जननी मुक्ति हित।
वन्दहुँ सोई घनश्याम, मैं बन्दी बन्दिनि तनय॥

—कृष्णायन, अवतरण कांड

विभिन्न परिस्थितियों का उद्घाटन करता है। अतएव आठ सर्गों की संख्या उपचार मात्र है। हल्दीघाटी की कथा-वस्तु सत्तरह सर्गों में विभाजित होने पर भी जीवन के केवल एक पक्ष का उद्घाटन करती है। सर्ग भी अत्यंत छोटे, नाम मात्र के हैं। अन्य काव्यों की सर्ग संख्या यथोचित है।

छन्दो-विधान—महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग में एक समान छन्दों के प्रयोग का विधान है। सर्ग के अन्त में उसे बदल दिया जाता है। कृष्णायन को छोड़ कर शेष सभी महाकाव्यों में इस नियम का निर्वाह हुआ है। कृष्णायन में आदि से अन्त तक दोहा, चौपाई तथा सोरठों के अतिरिक्त और कोई छन्द व्यवहृत नहीं हुआ है। पद्मावत और रामचरितमानस की रचना-पद्धति का अनुसरण करते हुए इसको दोहा-चौपाइयों में ही लिखा गया है। दैत्य वंश की रचना ब्रजभाषा के अनुकूल कवित्त-सवैया में हुई है। किसी-किसी सर्ग में दोहा-चौपाई की पद्धति अपनाई गई है।

वस्तु-वर्णन—इन महाकायों में परंपरा-विहित सन्ध्या, सूर्य, चन्द्र, प्रभात, वन, पर्वत, ऋतु, समुद्र, युद्ध, आक्रमण, विवाह, पुत्रोत्पत्ति, आश्रम, यज्ञ, संयोग, वियोगादि के वर्णन भी आए हैं। सिद्धार्थ, दैत्यवंश, साकेत-सन्त एवं कृष्णायन में प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण प्रचुरता से मिलता है। अंगराज के उत्तरार्द्ध में सेना, युद्ध, मंत्र, प्रस्थान आदि का वर्णन अत्यंत विस्तृत एवं प्रभाव-वर्द्धक है। खल-निन्दा और सज्जन-प्रशंसा नल-नरेश और कृष्णायन के अतिरिक्त अन्य महाकाव्यों में नहीं हैं।

विवेचन—आलोच्य काल में अनेक महाकाव्यों की रचना हुई है, किन्तु इनमें ऐसे काव्यों की संख्या अल्प ही है जिनमें महाकाव्य की प्राण-प्रतिष्ठा हो सकी है। महाकाव्य के मूल तत्व चार हैं—(१) सानुबन्ध कथा, (२) प्रख्यात नायक, (३) रस तथा (४) वस्तु-वर्णन। हिन्दी-काव्य-परम्परा में यद्यपि अनेक महाकाव्य है, तथापि रामचरितमानस के सदृश कथा-वस्तु की व्यापकता चरित्र की गरिमा, रसात्मक बोध एवं कलात्मक सौष्ठव अन्य महाकाव्यों में नहीं पाया जाता है। आधुनिक काल के महाकाव्यों में भी प्रायः यही दोष खटकता है। साकेत, साकेत-सन्त, वैदेही-वनवास, नल-नरेश और हल्दीघाटी में कथा-वस्तु की की संश्लिष्ट योजना का अभाव है। महाकाव्य की कथा-वस्तु का चित्रपट इतना विशाल होता है कि वह मानव जीवन के विभिन्न पार्श्वों को स्पर्श करता है। घटनाओं का वैविध्य महाकाव्य के कथानक को पूर्णता प्रदान करता है। तुलसी के मानस में यह गुण है कि उसमें घटनाओं की योजना संतुलित है और उनको बड़े कौशल से एक दूसरे के साथ गूँथा गया है। आलोच्य काल के

महाकाव्यों में कृष्णायन तथा सिद्धार्थ को छोड़कर शेष सभी काव्यों में कथानक संकीर्ण, घटनाएँ असंतुलित तथा संश्लिष्ट वर्णन का अभाव पाया जाता है। साकेत की कथा-वस्तु इस दृष्टि से असंगठित है, साकेत-सन्त में सिद्धान्तों एवं विचारों के ऊहापोह में कथा-वस्तु विशृंखलित हो गई है तथा प्रकृति-चित्रण कथा-वस्तु के विकास में सहायक नहीं है। वैदेही-वनवास में प्रकृति-चित्रण के आधिक्य ने मूल कथा को ही दबा दिया है। इसमें सूक्ष्मतर घटनाओं का अभाव है तथा जीवन की अनेक रूपता का दर्शन नहीं है। नल-नरेश में महाकाव्य की समस्त सामग्री जुटाई गई है, किन्तु वह परम्परा का पालन भर है। उसमें महाकाव्यत्व नहीं आ सका है। कथानक प्रसिद्ध है, नायक प्रख्यात है, रसोन्मेष भी है और वस्तु-वर्णन भी है। किन्तु सब कुछ मात्र परम्परा का निर्वाह है। काव्य-चेतना का सजग उन्मीलन कहीं पर नहीं हुआ है।

विक्रमादित्य का कथानक अपेक्षाकृत विशाल है। इसमें उद्देश्य की एकात्मता है। राष्ट्र के निर्माण तथा आर्य संस्कृति की रक्षा के लिए नायक सतत् प्रयत्नशील दिखाई पड़ता है। किन्तु इसके कथानक में घटनाओं की अन्विति नहीं है। कथानक के मार्मिक स्थलों की अवहेलना की गई है तथा असंबद्ध स्थलों का अनुचित विस्तार किया गया है। बारहवाँ सर्ग इसका उदाहरण है। उन्नीसवें सर्ग के पश्चात् कथा-वस्तु बिलकुल विकसित नहीं होती है। ग्रन्थ के विस्तार के लिए अनपेक्षित सर्गों की योजना की गई है।

हल्दीघाटी तथा अंगराज में युद्ध की घटनाओं का वर्णन विस्तार से हुआ है, अतएव मूल कथा का यथोचित विकास नहीं हुआ है। जीवन के नाना पक्षों का उद्घाटन इन काव्यों में नहीं हो पाया है। इसके अतिरिक्त इन काव्यों में मानवता के लिए कोई महान् संदेश भी नहीं है। अंगराज में कर्ण के चरित्र को ऊँचा उठाने के लिए विपक्षी पाण्डवों के आदर्श को विकृत रूप में चित्रित किया गया है। महाभारत के समय से प्रचलित युधिष्ठिर एवं कृष्ण के आदर्श चरित्र को एकदम उलट देना कहाँ तक उचित है, यह विचारणीय है। कथानक की विश्रृंखलता और उद्देश्य की अनिश्चितता के कारण ये दोनों महाकाव्य के स्तर के ग्रंथ नहीं हैं।

दैत्यवंश शरीर से महाकाव्य-सा लगता है। सर्ग-रचना, छन्द, अलंकार, वस्तु-वर्णन की दृष्टि से यह सब प्रकार संपन्न है। रस की धारा भी इसमें अजस्र प्रवाहित होती है, किन्तु इसके नायक दैत्य नरेश हैं। कवि ने अत्याचारी दैत्य राजाओं को आदर्श रूप में अंकित किया है। इसमें दैत्यों को देवता-स्थानीय बनाने का सतत् प्रयत्न दिखाई पड़ता है। इसी कारण हिरण्याक्ष-वध, प्रह्लाद का

स्वधर्म पालन तथा समुद्र-मंथन की घटनाओं को नया रंग दिया गया है। यह सब प्रचलित प्राचीन आदर्शों से वहिर्भूत है। इस महाकाव्य में किसी महान् संदेश की स्थापना भी नहीं हो सकी है। अतः यह महाकाव्य के स्तर को नहीं पहुँचता है।

सिद्धार्थ में सानुबन्ध कथा है। कथा का प्रवाह समन्वित है। नायक धीरोदात्त है, जिसने अहिंसा, समता एवं सत्य के साक्षात्कार द्वारा मानवता का विकास किया है। नायक को चारों पदार्थों की प्राप्ति हो जाती है। इसका संदेश है, जीवन में सत्य, समता एवं विश्व मैत्री की स्थापना। शृंगार रस अंगी है। सर्ग रचना, छन्द, अलंकार एवं वर्णन-शैली के विचार से सिद्धार्थ एक सफल महाकाव्य है।

कृष्णायन भी एक प्रौढ़ रचना है। कवि ने कृष्ण के महान् चरित्र प्रबंध काव्य का रूप दिया है। इसका प्रबन्ध कौशल, कलात्मक सौष्ठव, रसात्मक बोध एवं वस्तु वर्णन अभूतपूर्व है। अतः यह एक महान् काव्य है।

प्रबन्ध की कलेवर-वृद्धि के भय से महाकाव्यों की यह परीक्षा संक्षिप्त रूप में की गई है। अधिक विस्तार में जाना अभीष्ट भी नहीं है।

(२) खण्ड-काव्य—

आलोच्यकाल में खंड काव्यों की संख्या भी प्रचुर है। जयद्रथ वध, पंचवटी, सिद्धराज, वन-वैभव, वक-संहारादि (मैथिलीशरण गुप्त), मौर्य विजय, नकुल, (सियाराम शरण), कुणाल, विषपान वासवदत्ता (सोहनलाल द्विवेदी), अभिमन्यु वध (रामचन्द्र शुक्ल 'सरस'), तुलसीदास (निराला), जौहर (सुधीन्द्र), चित्तोड़ की चिता (रामकुमार वर्मा), तुमुल, जौहर (श्यामनारायण पांडेय), प्रणवीर प्रताप, तपस्वी तिलक, (गोकुलचन्द्र शर्मा)।

वर्गीकरण—परम्पराओं के विचार से महाकाव्य और खण्डकाव्य के स्वरूप में कोई अन्तर नहीं है। खण्डकाव्य महाकाव्य का ही लघु रूप होता है, जिसमें जीवन के किसी एक पक्ष की घटनाओं का वर्णन होता है। सुविधा के विचार से खण्डकाव्य की परम्पराओं को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है—(१) चरित नायक, (२) सानुबन्ध कथा, (३) रस और (४) वस्तु-वर्णन।

१—देखिए, साहित्य दर्पण, षष्ठ परिच्छेद, श्लोक ३२६
'खण्ड काव्यंभवेत्काव्यस्यैकदेशानुसारिच'—अर्थात् खण्डकाव्य में महाकाव्य के किसी एक अंश का वर्णन होता है।

खण्ड-काव्य की कथा-वस्तु का आधार चरित नायक है। उसी के जीवन की कथा को चित्रित किया जाता है। मैथिलीशरण के जयद्रथ-वध, पंच-वटी, सिद्धराज, वन-वैभव, वक-संहार आदि इस दृष्टि से अत्यन्त सफल हैं। 'जयद्रथ-वध' के अर्जुन, 'पंचवटी' में लक्ष्मण, 'प्रणवीर प्रताप' के प्रताप और 'सिद्धराज के सिद्धराज तीनों ऐतिहासिक चरित नायक हैं। इनके चरित्रों में ओज, बल, शील एवं शक्ति का चरम विकास हुआ है। आत्म-संयम, प्रतीज्ञा-पालन और कर्तव्य-परायणता के सौन्दर्य से इनका चरित्र विभूषित है। मौर्य-विजय के चन्द्र-गुप्त, 'नकुल' के नकुल, 'कुणाल' के कुणाल, 'अभिमन्यु-वध' के अभिमन्यु'तुमुल', के लक्ष्मण, 'प्रणवीर प्रताप' के प्रताप सभी उदात्त नायक हैं। इनके चरित्र पाठकों के हृदय में स्फूर्ति, साहस एवं सेवा की भावना को सजग करते हैं। निराला के तुलसीदास भी आदर्श नायक हैं, जो लोकोत्तर चारित्रिक सौन्दर्य को लेकर अवतीर्ण हुए हैं।

अनुबन्ध-सहित कथा का होना खण्डकाव्य की मुख्य आवश्यकता है। कथा के समुचित विकास के लिए पात्रों की योजना करनी पड़ती है। इसमें एक ही छन्द हो सकता है और विविध छन्द भी हो सकते हैं। सानुबन्ध कथा के निर्वाह की दृष्टि से जयद्रथ वध, पंचवटी, सिद्धराज, कुणाल, नकुल, प्रणवीर प्रताप, मौर्य-विजय, अभिमन्यु-वध सुन्दर हैं। पंचवटी में संवादों की योजना से मनोरंजकता आ गई है।

खण्डकाव्य में शृंगार, वीर, करुण में से किसी एक रस की पूर्ण व्यंजना होनी चाहिए। जयद्रथ-वध, अभिमन्यु वध, मौर्य-विजय, प्रणवीर प्रताप, तुमुल और जौहर में वीर रस की व्यंजना हुई है। कुणाल में शृंगार और करुण प्रधान हैं। शेष काव्यों में भावों के छींटे ही उड़ते हैं, पूर्ण रस परिपाक नहीं होता है। तुलसीदास रस-परिपाक की दृष्टि से निर्बल काव्य है, किन्तु तुमुल, सिद्धराज, अभिमन्यु-वध, जयद्रथ-वध आदि काव्यों में वीर रस की पूर्ण अभि-व्यक्ति हुई है। पंचवटी, सिद्धराज, अभिमन्यु-वध, जयद्रथ-वध, मौर्य विजय, नकुल, जौहर और तुमुल वस्तु-योजना की दृष्टि से सफल खण्डकाव्य हैं।

आधुनिक युग के खंडकाव्यों में परम्पराओं के निर्वाह के साथ विकास भी हुआ है। यह नया विकास कल्पना प्रसूत कथानकों की सृष्टि, नाटकीय संवादों की योजना एवं भावों की मनोरम अभिव्यक्ति के रूप में दिखाई पड़ता है।

(२) मुक्तक काव्य—

मुक्तक काव्य-रूप के अध्ययन के लिए निम्नांकित पुस्तकों को चुना गया है :—

माधवी, मानवी, संचिता, ज्योतिष्मती, कादम्बिनी (गोपालशरण सिंह), प्रेम शतक, प्रेम पथिक, प्रेमांजलि (वियोगी हरि) वीर क्षत्राणी, वीर बालक, नवीन वीन (लाला भगवान दीन)' वीर सतसई (वियोगी हरि), चौखे चौपदे, पद्य प्रसून (हरिऔध), मातृभूमि, भारत भारती, स्वर्गीय संगीत (मैथिलीशरण), झरना, आँसू (प्रसाद), नये पत्ते (निराला)।

वर्गीकरण—मुक्तक काव्यों को विषय-वस्तु के विचार से निम्नांकित पाँच भागों में बाँटा जा सकता है—(१) भक्ति और प्रेम, (२) वीरता एवं उत्साह (३) नीति एवं शिक्षा, (४) व्यंग्य एवं हास्य और (५) प्रकृति-वर्णन।

आलोच्यकाल की प्रवृत्ति यद्यपि गीति-काव्य की ओर विशेष उन्मुख है, तो भी मुक्त काव्य-रचना कम नहीं हुई है। रीतिकालीन समस्त परम्परा आधुनिक युग के मुक्तकों में मिलती हैं। कुछ नए प्रयोग भी हुए हैं जो यथास्थान दिखाए जायंगे।

भक्ति और प्रेम-विषयक मुक्त रचनाएँ ठाकुर गोपालशरण सिंह के काव्य-संग्रहों में प्रचुरता से मिलती हैं। माधवी, मानवी, संचिता ज्योतिष्मती, कादम्बिनी आदि ऐसी ही रचनाएँ हैं। संचिता की पहली कविता ही में प्रेम की महिमा वर्णित है। जब हृदय में प्रेम अधिष्ठित हो जाता है, तब उदारता, का आविर्भाव होता है और हृदय में से ईर्ष्या, द्वेष, कपट, कामादि विकास सब निकल भागते हैं तथा जीवन में निरुपम आनन्द-संगीत गूँजने लगता है। कवि के भक्ति संबंधी उद्‌गार, चित-चोर, प्रार्थना, अन्तिम प्रार्थना, हृदयोद्‌गार, प्रकाश, खेल, (संचिता) तथा तुम और मैं, हृदयेश, अटल संबंध, लालसा, निवेदन, आत्म समर्पण, याचना (ज्योतिष्मती) आदि कविताओं में प्रकट हुए हैं। वियोगी हरि की प्रेम-शतक, प्रेम, पथिक और प्रेमाञ्जलि रचनाओं में प्रेम का स्रोत वैसा ही उद्वेलित होता है जैसा मध्यकाल के भक्त कवियों की वाणी में।

वीरता एवं शौर्य के भावों की व्यंजना लाला भगवानदीन के वीर बालक, वीर क्षत्राणी आदि मुक्तकों में अत्यंत प्रभाववर्द्धक हैं। वीर सतसई (वियोगी हरि) तो वीर भावों की व्यंजना के लिए आधुनिक युग को अन्यतम रचना है। इसमें वीरत्व की व्यंजना सत्यव्रती में भी की गई है। धर्म के सरोवर में जो सत्य का कमल प्रस्फुटित हुआ है, उसमे सत्यवीर हरिश्चन्द्र के पुण्य-पराग का सौरभ दिग्-दिगन्त को सुगन्धित कर रहा है। वर्तमान काल में वही हरिश्चन्द्र गान्धी-रूप से प्रकट हुआ है। इसी प्रकार भीष्म, अभिमन्यु, प्रताप, शिवाजी, छत्रसाल, दुर्गावती, लक्ष्मीबाई आदि वीर-वीरांगनाओं की प्रशस्ति में

वीर भावों की सशक्त व्यंजना हुई हैं। हरिऔध की 'कर्मवीर' कविता भी इसका अच्छा उदाहरण है। रसिकेन्द्र की 'मनहर-वीर ज्योति' में युद्धवीर के जीवन के विविध पक्षों का अत्यंत ओजस्वी वर्णन है। इसमें ऐतिहासिक वीरों के शौर्य-वर्णन के साथ-साथ वर्तमान काल के वीरत्व के आदर्श भी उपस्थित किए गए हैं। इसके लिए सर्वत्र घनाक्षरी छन्द व्यवहृत हुआ है जो वीरत्व की व्यंजना के लिए परंपरा से चला आता है।

नीति एवं शिक्षा के विषय आधुनिक युग की प्रवृत्ति के अनुकूल नहीं हैं। फिर भी मैथिलीशरण के 'स्वर्गीय संगीत, हरिऔध के 'चौपदे,' नाथूराम शंकर' के दोहे तथा स्फुटिक रचनाएँ और रामनरेश त्रिपाठी की अनेक फुटकर कविताओं में इस विषय का वर्णन पाया जाता है।

अन्योक्ति, व्यंग्य, उक्ति-वैचित्र्य एवं अलंकारों का चमत्कार 'शंकर,' 'रत्नाकर', 'हरिऔध', जगदम्बा प्रसाद 'हितैषी' की 'कल्लोलिनी और नवोदिता' और 'सनेही' की फुटकल कविताओं में मिलता है। परन्तु अब वह परंपरा उपेक्षित-सी है। केवल व्यंग्य अवश्य मिलता है, अन्योक्ति, उक्ति-वैचित्र्य एवं अलंकारों का उपयोग अब परंपरागत पद्धति पर नहीं होता है। व्यंग्य ने भी नया रूप ले लिया है। पूँजीपति, साम्राज्यवादी, सामन्तवादी मनोवृत्ति के पोषकों पर आजकल जो व्यंग्यपूर्ण कविताएँ लिखी जाती हैं, उनमें राजनीतिक वर्गीय चेतना का ही प्रकाशन होता है। निराला, (नए पत्ते), अंचल, बच्चन, नरेन्द्र, अज्ञेय, भारती आदि कवियों की व्यंग्योक्तियाँ परंपरानुगत शैली कविताओं से बिलकुल भिन्न हैं। इनके व्यंग्य का स्वरूप भी बदला हुआ है।

शुद्ध 'प्रकृति' विषय को लेकर मुक्तकों की रचना तो अल्प है। गोपाल शरण सिंह, अनूप शर्मा, गुरुभक्त सिंह आदि थोड़े से कवियों ने ही मुक्तक के रूप में प्रकृति-वर्णन की ओर रुचि प्रदर्शित की है। छायावादी कवियों में पन्त ने इस ओर विशेष रुचि रखी है। इनकी बालक, झरना, प्रथम रश्मि, नौका-विहार, सान्ध्य तारा, छाया, चाँदनी, हिमाद्रि आदि रचनाओं में प्रकृति का चित्रण शुद्ध रूप में पाया जाता है। अन्य कवियों में इस प्रकार के वर्णन का अभाव है।

रीतिकाल के अनेक कवियों ने मुक्तक रूप में रीति-ग्रंथों की रचना की थी। यह परिपाटी आधुनिक काल में समाप्त हो गई है, क्योंकि काव्यालोचन के लिए अब गद्य का माध्यम स्वीकृत हो चुका है।

सतसई काव्य-परंपरा—

सतसई-साहित्य की एक सुदीर्घ परंपरा है। साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा यह लोक-जीवन के अधिक निकट है। इसमें व्यावहारिक जीवन की सुख-दुःख, विरह-मिलन एवं हर्ष-विषाद की छोटी-छोटी घटनाओं का वर्णन किया जाता है। सतसई काव्यों में प्रेम, भक्ति धर्म, नीति, आचार आदि विषयों का अत्यंत सजीव तथा मार्मिक वर्णन पाया जाता है। इनमें मानव-जीवन की सबसे अधिक प्रभावपूर्ण शृंगारिक क्रीड़ाओं तथा नायक-नायिकाओं की विलास-कथाओं का स्वच्छन्दता से वर्णन किया गया है।

सप्तशती और शतक लिखने की परंपरा स्रोत संस्कृत-साहित्य में मिलता है। प्राकृत में हाल की 'गाथा सप्तशती' के अनुकरण पर शृंगार रस की अनेक रचनाएँ प्रकाशित हुईं। आर्या सप्तशती और अमरुक शतक इसी के परिणाम हैं। गाथा सप्तशती की छाया प्रायः सभी सतसई-काव्यों पर दिखाई पड़ती है। हिन्दी में बिहारी की सतसई भी इससे प्रभावित है।

सतसई साहित्य मुक्तक काव्य-रूप है। यह लोक-जीवन के सत्य को उद्‌घाटित करने में सबसे अधिक सशक्त है। ग्राम्य जीवन की संस्कृति, जीवन-चर्या और भाषा का सतसई साहित्य से निकटतम संबंध है।

हिन्दी के सतसईकारों ने संस्कृत-शैली का ही अनुकरण किया है। इनमें दोहे को बहुत अधिक महत्त्व मिला है। अड़तालीस मात्रा के इस लघु छन्द में बड़े-से-बड़े भाव को सफलतापूर्वक व्यंजित किया जा सकता है। बिहारी के दोहों में रस-व्यंजना का पूर्ण उत्कर्ष दिखाई पड़ता है। दोहे का महत्त्व बिहारी से पहले रहीम के समय में ही स्थापित हो चुका था।[1]

हिन्दी सतसई-साहित्य की परंपरा में तुलसी सतसई, रहीम सतसई, बिहारी सतसई, मतिराम सतसई, वृन्द सतसई, शृंगार सतसई (भूपति), चन्दन सतसई (सन्दल), भाषा सप्तशती (नवल सिंह कायस्थ), राम सतसई (रामसहाय), सुकवि सतसई (पं० अम्बिकादत्त व्यास), विक्रम सतसई (बैताल कवि) आदि प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

सतसई लिखने की परंपरा आधुनिक काल में भी जीवित है। इस क्षेत्र में वियोगी हरि की 'वीर सतसई' ब्रजभाषा' मुक्तक-रूप का श्रेष्ठतम उदाहरण

१—'दीरघ दोहा अरथ के, आखर थोरे आहिं।
ज्यों रहीम नट-कुंडली, सिमिटि कूदि चलि जाहिं॥'
—रहीम

है। व्रजभाषा में वीर भावों की सफल व्यंजना का यह अभिनव प्रयास है। 'हरिऔध सतसई' सूर्यमल्ल की 'वीर सतसई,' जगन सिंह सेंगर की किसान सतसई' और रामेश्वर 'करुण की' करुण सतसई' इसके अन्य उत्कृष्ट पग-चिह्न हैं। इस प्रकार सतसई-परम्परा हिन्दी-साहित्य में अत्यन्त समृद्ध रूप में मिलती है। इसमें विभिन्न युगों का भारतीय जीवन एवं लोक-रुचि का प्रतिविम्ब झलकता है।

शैली की दृष्टि से मुक्तक काव्य रचनाओं में कवित्त सवैया का प्रयोग परंपरानुगत है। आधुनिक कवियों में गोपालशरण सिंह, अनूपशर्मा, रत्नाकर, वियोगी हरि, रसिकेन्द्र आदि कवियों ने अपनी मुक्तक रचनाओं में कवित्त-शैली का उपयोग किया है। हरिऔध, शंकर, सनेही एवं हितैषी के सवैया प्रसिद्ध हैं।

संख्यापरक मुक्तकों की रचना में पंचक, अष्टक, दशक, शतक आदि स्फुट काव्य आधुनिक युग में भी लिखे गए हैं। नाथूराम शंकर, जगन्नाथ दास 'रत्नाकर,' दुलारेलाल आदि ने अनेक संख्यापरक काव्यों की रचना की है।

इससे स्पष्ट है कि आधुनिक काल में मुक्तक काव्य-परंपरा अक्षुण्ण है।

केवल रीति-ग्रंथों को काव्य-वद्ध करने की प्रथा समाप्त हो गई है। किन्तु वर्तमान हिन्दी-साहित्य में मुक्तक काव्य परंपरा उत्तरोत्तर क्षीण होती जा रही है। छायावाद, प्रगतिवाद के कवियों ने परंपरागत मुक्तक काव्यों की ओर बिलकुल रुचि नहीं दिखाई है। गीतिकाव्य को प्रधानता मिल जाने से कवित्त-सवैया की शैली लुप्तप्राय हो गई है। प्रगतिवादी-प्रयोगवादी रचनाओं में परंपरानुगत मुक्तक शैली पूर्णरूप से वहिष्कृत है। जिन मुक्तककारों का ऊपर निर्देश हुआ है, वे वाद-क्षेत्र के बाहर के कवि हैं। मुक्तकों के ये कवि विशेषतः प्रवन्ध काव्य के ही कवि हैं। केवल मुक्तककारों की संख्या अत्यंत विरल है। रीतिकाल में इस परंपरा का जैसा स्वस्थ विकास हुआ था, उसको देखते हुए वर्तमान काल में मुक्तक काव्य की प्रगति नगण्य है। वस्तु तथा शैली दोनों ही दृष्टियों से यह परंपरा वर्तमान हिंदी काव्य में लुप्त-सी हो गई है।

(४) प्रगीत काव्य—

वाद्य-यंत्र पर गाई जाने योग्य रचना को गीति काव्य कहते हैं[1]। महादेवी जी के अनुसार सुख-दुःख की भावावेशमयी अवस्था विशेषकर गिने-चुने

१—देखिए, ऐंसाइक्लोपेडिया ब्रिटेनिका, जिल्द १४।

शब्दों में स्वर साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है[1]।

प्राचीन परम्परा—आलोच्य काल से पूर्व गीत-परम्परा तीन रूपों में प्रचलित थी (१) प्रेम प्रधान सन्त काव्य की परम्परा, (२) भक्ति-प्रधान सगुण काव्य परम्परा और (३) वीर गीत काव्य परम्परा।

सन्त काव्य परम्परा में प्रेम-भावना की प्रधानता है। सन्त कवियों की रहस्यवादी काव्य-परम्परा में परोक्ष-सत्ता के प्रति प्रेम प्रकट किया गया है।

सगुण-भक्ति की परम्परा का विकास दो दिशाओं में हुआ है—कृष्ण तथा राम भक्ति। इसका प्रारम्भ विद्यापति के गीतों से होता है।

वीर गीतों की परम्परा हिन्दी-साहित्य के प्रारंभिक युग में बड़े वेग के साथ चली, किन्तु भक्ति युग में जाकर समाप्त हो गई।

संत कवियों ने निर्गुण-प्रेम की जिस गीत परम्परा का प्रवर्तन किया था, वह यद्यपि स्वस्थ, सुन्दर एवं लोकप्रिय थी, तो भी सगुण भक्ति काव्य की परम्परा के सामने वह भी न ठहर सकी, जिससे उनका अन्त हो गया। सगुणोपासक भक्त कवियों की रामाश्रयी गीति-परम्परा में केवल तुलसीदास का ही नाम आता है। इसके पश्चात् वह लुप्त हो जाती है। कृष्ण-भक्ति-परम्परा सबसे अधिक स्वस्थ, सुन्दर, एवं प्राणवान् थी। इसमें प्रेम, भक्ति, सौन्दर्य, वात्सल्य एवं आत्माभिव्यंजन का बाहुल्य है। हिन्दी-साहित्य में यही परम्परा सबसे अधिक प्राचीन है। विद्यापति इसके आदि कवि हैं। इसके बाद अष्टछाप, तुलसी, मीराबाई, रसखान, नागरीदास, भारतेन्दु, सत्यनारायण, वियोगी हरि के नाम मुख्य हैं। आलोच्यकाल में आते-आते यह परम्परा अंतिम साँस लेने लगती है। वियोगहरि के बाद कोई भी उल्लेखनीय कवि इस परम्परा में नहीं दिखाई पड़ता है। प्राचीन काल के भक्त कवियों की गीत-पद्धति में दास्य भाव के अंतर्गत कार्पण्य, दैन्य एवं विनय के भावों की अभिव्यक्ति प्रचुर मात्रा में दिखाई पड़ती है। इसमें स्तोत्र, प्रार्थना, आत्म-निवेदन, दैन्य-प्रकाशन, उपालंभ आदि की रचनाएँ विशिष्ट स्थान रखती हैं। सूर के विनय के पद, तुलसी की विनय पत्रिका, मीरा के भक्ति के पद, तथा नागरीदास, हित हरिवंश आदि भक्त कवियों के पद सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं। भक्ति के पदों की यह परम्परा भारतेन्दु युग तक आती है। इसके पश्चात् राष्ट्रीयता के युग में यह धारा इतनी क्षीण हो जाती है कि सत्यनारायण कविरत्न वियोगी हरि के पश्चात् लुप्तप्राय हो जाती है। प्रेमशतक, प्रेम पथिक और प्रेमांजलि में वियोगी हरि की इस प्रकार की रचनाएँ मिलती हैं। इसके पश्चात् यह धारा राष्ट्रीयता के आन्दोलन में

१—देखिए, महादेवी का विवेचनात्मक गद्य, पृ० १४१।

लुप्त हो जाती है।

आलोच्यकाल में प्रगीत काव्य की परंपरा—

रहस्यवादी प्रगीतकाव्य के अतिरिक्त प्राचीन काल की शेष सभी परंपराएं आधुनिक काल में अपना अस्तित्व खो बैठी हैं। अस्तु, यहाँ केवल रहस्यवादी गीति-काव्य की प्रवृत्तियों का विचार किया जाता है। इस परंपरा की निम्नांकित विशेषताएं हैं:—

(१) सर्वव्यापक सत्ता के प्रति आत्माभिव्यंजन।
(२) विरह-मिलन के संकेत।
(३) अलौकिक सत्ता के प्रति मानवीय संबंधों की स्थापना।
(४) शृंगार एवं शान्त रस की प्रधानता।
(५) दार्शनिक सिद्धान्तों का निरूपण।
(६) प्रियतम के गुण एवं सौंदर्य का वर्णन।
(७) सहज, सरल भाषा में भावों का प्रकाशन।
(८) प्रतीकात्मक प्रयोग।

(१) आलोच्यकाल के रहस्यवादी प्रगीत मुक्तकों में ये सभी प्रवृत्तियाँ मिलती हैं। छायावादी-रहस्यवादी कवियों ने अलौकिक सत्ता में विश्वास प्रकट किया है तथा उसे लक्ष्य कर अपने हृदय की भावनाओं को प्रकाशित किया है। कबीर आदि संत कवियों की वाणी में भावों का माधुर्य अधिक है, प्रसादादि नये कवियों में भावों का सौन्दर्य प्रचुर है।

(२) रहस्यवादी काव्य में आकुल अन्तर के सुख-दुःख विरह-मिलन के उद्‌गारों की मार्मिक व्यंजना है। नये युग के गीतकारों में भी हास-अश्रु, सुख-दुःख, नैराश्य, वेदना, विषाद एवं विरह के भावों की विवृति का प्राचुर्य है। महादेवी के गीत करुणा, विषाद, एवं विरहोद्‌गारों से ओतप्रोत हैं। हरिकृष्ण प्रेमी और रामकुमार के गीतों में विरह-मिलन के भावों का तीव्र स्वर है। प्रसाद की 'लहर' के गीतों में विरहिणी आत्मा की चिर व्यथा, पीड़ा एवं वेदना का ही चित्रण है। शाश्वत मिलन की आतुर प्रतीक्षा में आकुल हृदय की पुकार 'आँसू' के गीतों में साकार है।

(३) रहस्यवादी कवि उस अलौकिक सत्ता के साथ विविध मानवीय संबंधों को जोड़ते आए हैं। कबीर ने उसके साथ पिता, माता, स्वामी एवं पति का संबंध जोड़कर अपने को बालक, बन्दा, बहुरिया के रूप में रखा है। नए युग के कवियों ने भी अव्यक्त प्रिय के साथ मां, सहचरि, प्राण, देवि, देव आराध्य, प्रिय आदि विविध सम्बन्धों की स्थापना की है।

(४) प्रगीत काव्य में शृंगार और शान्त रस का प्राचुर्य है। अलौकिक प्रिय को पति तथा अपने को पत्नी के रूप में मानकर दाम्पत्य संबंध की शृंगारात्मक अभिव्यजना की गई है। नये युग के कवियों ने भी अलौकिक प्रिय को आलम्बन मानकर उसकी प्रतीक्षा में मिलन-विरह के ही गीत गाए हैं। प्रसाद के झरना, आंसू, लहर और महादेवी की 'नीरजा' के गीतों में यह प्रवृत्ति अत्यधिक है। प्रेमी और रामकुमार वर्मा के गीतों में भी शृंगारिक व्यंजना का माधुर्य है। दार्शनिक भावों के प्रतिपादन के प्रसगों में शान्त रस प्रधान है।

(५) आध्यात्मिक तत्व निरूपण करने की जैसी प्रवृत्ति प्राचीन काल के संत कवियों में थी, नये कवियों में भी प्रचलित है। पहले के कवियों ने अपने काव्य में कर्ता, ब्रह्म, माया, जीव, जगत् और अद्वैत तत्व का विविध प्रकार से वर्णन किया है। तत्व ज्ञान के निरूपण में उन्होंने शास्त्रीय परंपरा का ही अवलम्बन किया है। सांख्य, योग, वेदान्त एवं वैष्णव ग्रन्थों से उन्होंने तत्व-ज्ञान की प्रेरणा ली है। आधुनिक कवियों ने भी इन्हीं शास्त्रों के आधार पर पुनर्जन्म, कर्मवाद, आनन्दवाद, साम्य-दर्शन आदि बातों पर दार्शनिक विचार प्रकट किए हैं। प्रसाद, पन्त, निराला और महादेवी के गीतों में विविध दार्शनिक वादों की प्रतिच्छाया दिखाई पड़ती है। महादेवी के काव्य में सांख्य, योग एव अद्वैत दर्शन के सिद्धान्त काव्यात्मक भंगिमाओं के साथ अभिव्यक्त हुए हैं। उनके गीतों में उपनिषद-प्रतिपाद्य तत्वज्ञान की छाया विद्यमान है। प्रसाद के काव्य में भी उपनिषद्, शैवागम एवं अद्वैत दर्शन के मार्मिक तत्व का निरूपण पाया जाता है। कामायनी के अन्तिम (रहस्य, दर्शन, आनन्द) सर्गों में दार्शनिक तत्व को मंजुल काव्य-वाणी में प्रस्तुत किया है। पन्त की स्वर्ण धूलि, स्वर्ण किरण, उत्तरा आदि कृतियों में दार्शनिक तत्व ज्ञान विविध रचनाओं में प्रतिफलित हुआ है। निराला के काव्य में दार्शनिक तत्व-चिन्तन का प्राचुर्य है। 'तुम और मैं', 'जागो फिर एक बार' पर विशिष्टाद्वैत और अद्वैत-दर्शन का प्रभाव है। 'राम की शक्ति-पूजा' कविता में योग की विविध प्रक्रियाओं का निरूपण है।

(६) अव्यक्त प्रिय के शील, शक्ति, गुण एवं सौन्दर्य का चित्रण भी रहस्यवादी काव्य की एक विशेषता है। सन्त कवियों ने प्रिय के सौन्दर्य को सृष्टि के कण-कण में परिव्याप्त देखा है। आधुनिक कवियों ने भी शाश्वत सौन्दर्य चित्रण किया है। इन कवियों ने प्रकृति के अनन्त सौन्दर्य में अव्यक्त प्रिय की छवि का ही दर्शन किया है। उस अलौकिक सौन्दर्य का चित्रण करने में जिज्ञासा, कुतूहल, प्रेम एवं उत्फुल्लता के भावों की व्यंजना की है। महादेवी

ने भावावेश में अपने प्रिय को निर्मम, निष्ठुर, अकरुण आदि शब्दों से भी संबोधित किया है।

(७) सन्त काव्य में भाषा का कोई स्थिर रूप नहीं है। ये कवि स्थान-स्थान का भ्रमण करते थे जिससे उनकी भाषा में विभिन्न प्रदेशों के शब्द आ गए हैं। उनकी भाषा अधिकतर अपरिमार्जित तथा अव्यवस्थित है, पर उसमें सरलता, सरसता एवं प्रासादिकता का गुण विद्यमान है। अपने मार्मिक भावों को व्यक्त करने के लिए उन्हें लोक-भाषा का सहज, सरल, प्रसन्न एवं चलता रूप ग्रहण करना पड़ा है। उनके पास भावों की विभूति प्रचुर थी, पर उसको व्यक्त करने को भाषा-शिल्प नहीं था। आधुनिक युग के रहस्यवादी कवियों की भाषा स्वच्छ, सुन्दर, प्रांजल एवं सशक्त है। खड़ी बोली को काव्योपयुक्त बनाने का श्रेय इन्हीं को है। इनकी भाषा में मधुरता, प्रांजलता, व्यंजकता, लाक्षणिकता, ध्वन्यात्मकता का अपूर्व मिश्रण है। सन्त कवियों ने अपने भावों को लोक भाषा में प्रकट किया है, इसके विपरीत आधुनिक युग के रहस्यवादी कवियों ने साहित्यिक भाषा को अपनाया है।

(८) रहस्यवादी कवियों की एक विशेष प्रवृत्ति है, प्रतीकात्मक भाषा का प्रयोग 'नैया बिच नदिया डूबी जाय' आदि पद इसी शैली के व्यंजक हैं। ये कवि रूपक, अन्योक्ति, विरोधाभास, उक्ति-वैचित्र्य का सहारा लेकर भाषा में चमत्कार लाने का प्रयत्न करते थे। नये युग के छायावादी-रहस्यवादी काव्य में भी ये सभी प्रवृत्तियाँ जीवित हैं। छायावादी चित्र भाषा शैली या प्रतीक पद्धति के अंतर्गत प्रस्तुत प्रसंग के स्थान पर अप्रस्तुत वस्तु की योजना करके काव्यात्मक चमत्कार उत्पन्न किया जाता है। महादेवी और प्रसाद के काव्य में इसका बाहुल्य है।

(९) प्रगीत काव्य का महत्त्व उसके गेय होने में है। भक्ति युग के गीति काव्य में इस पर इतना ध्यान दिया गया है कि गेय पदों की रचना विविध राग-रागिनियों में की गई है। इसका कारण यह है कि कवि संगीत का उच्च कोटि का ज्ञान रखते थे। सूर तो एक कुशल गायक थे। सन्त कवियों ने गेय पदों में ही काव्य-रचना की है। आधुनिक प्रगीत काव्य में भी संगीत की विशेषता प्रधान है। पन्त, प्रसाद, निराला, महादेवी के काव्य में प्रगीत तत्त्व प्रचुर मात्रा में मिलता है।

इस प्रकार छायावाद-रहस्यवाद युग के प्रगीत मुक्तक परंपरानुगत गीत काव्य में भले ही एकरूपता न हो, किन्तु सैद्धान्तिक विचारों की एकता है। अनुभूति के स्तरों में भेद हो सकता है, अभिव्यक्ति में भी अन्तर हो सकता है, किन्तु आदर्श एवं मान्यताओं में पूर्ण समानता है।

इसके अनन्तर प्रगतिवादी काव्य में यह नये रूप में प्रकट होता है, जिसका परंपरानुगत प्रगीत काव्य से कोई साम्य नहीं।

प्रगतिवादी गीति-काव्य के दो स्वर प्रधान हैं—काम-वासना का उद्दाम स्वर और विद्रोह-भावना का तीव्र स्वर।

प्रगतिवादी कवियों में बच्चन, नरेन्द्र, अंचल, गिरिजाकुमार, भगवतीचरण, भारती, अज्ञेय आदि कवियों के गीतों में यौन-वर्जनाओं का स्वर प्रधान है। इनके गीतों में स्थूल, मांसल एवं शरीरी सौन्दर्य के उन्मुक्त भोग की चपल लालसा है। ये काम-वासना पर किसी प्रकार का नियन्त्रण नहीं चाहते। स्थूल सौन्दर्य के उपभोग की इच्छा इनके जीवन का श्रेय है। अंचल की अपराजिता, बच्चन की मधु कलश, मधुशाला, नरेन्द्र की प्रभात फेरी की अनेक कविताओं में यही उद्दाम वासना विविध रूपों में प्रकट हुई है। अज्ञेय की 'सावन-मेघ', 'ओ पिया पानी बरसा,' 'हरी घास पर क्षण भर' और भारती के 'गुनाहों का गीत' में यौन-वर्जनाओं का प्रकाशन और गोपाल सिंह नैपाली, हंसकुमार, सुमन, आरसी प्रसाद सिंह के गीतों में स्थूल प्रेम की सजग अभिव्यक्ति है। रमानाथ, क्षेम, गिरिधर, श्रीमती शान्ति, गिरिजाकुमार, शमशेर आदि की प्रगीत रचनाओं में भी वासनामूलक प्रेम अभिव्यक्ति है।

वर्तमान प्रगीत काव्य का दूसरा प्रधान स्वर है, आर्थिक वैषम्य-जन्य विद्रोह की भावना का स्वर। इस प्रकार की रचनाओं में नैराश्य, वेदना, क्रान्ति एवं विरोध की तीव्र अभिव्यक्ति है। अंचल, नरेन्द्र, सुमन, केसरी, दिनकर, उदयशंकर भट्ट, भगवतीचरण आदि कवियों के गीतों में विद्रोह के भावों का विविध रूपों में प्रकाशन है।

सन् १९३८ के 'रूपाभ' के संपादकीय लेख में पन्त जी ने युग की परिस्थितियों के परिवर्तन एवं प्रगतिशील कविता का प्रतिपादन करते हुए लिखा था—'इस युग की वास्तविकता ने जैसा उग्र रूप धारण कर लिया है, इससे प्राचीन विश्वासों में प्रतिष्ठित हमारे भाव और कल्पना की मूल हिल गए हैं। श्रद्धा अवकाश में पलने वाली संस्कृति का वातावरण आन्दोलित हो उठा है और काव्य की स्वप्न-जड़ित आत्म जीवन की कठोर आवश्यकता के उस नग्न रूप से सहम गई है। अतएव इस युग की कविता सपनों में नहीं पल सकती। उसकी जड़ों को अपनी पोषण-सामग्री धारण करने के लिए कठोर धरती का आश्रय लेना पड़ रहा है।'

युग की इन परिस्थितियों ने परवर्ती प्रगीत-काव्य की धारा को सर्वथा नूतन मोड़ दे दिया है। प्रगतिवादी गीतों में सन्तों की साधना, भक्तों की भावना,

छायावादियों की कल्पना का स्थान यौन-वासना और मुक्त भोग की कामना ने ले लिया है। छायावादी कवियों की भावनाओं की अलौकिकता तथा अनुभवों की अतीन्द्रियता का स्थान प्रत्यक्ष भौतिकता एवं यथार्थता ने ग्रहण कर लिया है। ये कवि अपने विरह-मिलन एवं सुख-दुःख की अनुभूतियों को स्थूल इन्द्रियों के माध्यम से ही अभिव्यक्ति देते हैं। इससे इन कवियों की भाषा, अनुभूति, वेदना, क्षोभ, हर्ष, अवसाद सर्व साधारण के प्रति निकट आ गए हैं। छायावादी कवियों की अनुभूति एवं अभिव्यक्ति से इनके गीतों में स्पष्ट भिन्नता दिखाई पड़ती है। इनके गीतों में इन्द्रिय-जन्य आकुलता, आक्रोश, क्षोभ, निराशा, उग्रता, क्रान्ति एवं जीवन की उद्दाम वासनाओं का स्वर अधिक मुखर हो गया है।

छायावादी कवियों के प्रेम का लक्ष्य अज्ञात है, इनका सुज्ञात। ये कवि अपने प्रेम को दिव्य, अलौकिक एवं आध्यात्मिक बताने का कभी दावा नहीं करते। छायावादी कवियों की प्रेम-भावना में प्लेटोनिक और वैष्णवी भावनाओं का संमिश्रण है। परन्तु इन कवियों के प्रेम का आधार स्थूल, शारीरिक एवं मांसल सौन्दर्य है, ये यौवन और वासना के कवि हैं। इस दृष्टि से प्रगतिशील कवि यथार्थ के निकट है।

छायावादी गीति-काव्य की मुख्य प्रवृत्तियाँ हैं, वैयक्तिकता की भावना, कल्पनाशीलता, आध्यात्मिकता, वेदना एवं नैराश्य की अभिव्यक्ति। प्रगतिवादी काव्य में प्रेम, सौन्दर्य, विक्षोभ, विरोध एवं उत्क्रान्ति के भावों की विवृत्ति है। छायावादी कवियों में अनुभूति की अपेक्षा कल्पना का वेग अधिक है, सन्त कवियों की सी सहजानुभूति एवं उदात्तता नहीं। रंगीन कल्पनाओं का सौंदर्य है, अनुभूति की गहराई नहीं। प्रगतिशील कवियों के गीतों में न अनुभूति है और न कल्पना। इनमें यौन-वासनाओं का नग्न प्रकाशन है।

काव्य का प्राणपद धर्म है, विशुद्ध काव्यानुभूति। वह अनुभूति जो भीतर से उत्पन्न हो, जिसमें सचाई हो, गहराई हो एवं जो सहज ज्ञान पर आधारित हो। यह निश्छल अनुभूति ही काव्य का सर्वस्व है। शैली और शिल्प का स्थान गौण है। काव्य में वस्तु का स्थान प्रधान है, शिल्प का गौण। श्रेष्ठ कविता केवल अनुभूति ही नहीं है, उसे स्वतः प्रेरित, मूल्यवान और उदात्त भी होना चाहिए।

इससे सिद्ध है कि सन्त काव्य आत्मानुभूतिपरक है। छायावादी काव्य में कल्पना प्रधान है और प्रगतिवादी गीतों में काम-वासना। प्रयोगवादी रचनाओं में गीति तत्व का ह्रास होता जा रहा है। अतएव नई परंपरा भी प्रयोगों के भँवर-जाल में पड़कर खो गई है।

षष्ठ अध्याय

काव्य-शैली का परम्परा

काव्य-शैली की परम्परा

अलंकार परंपरा—

काव्य के साथ साथ ही अलंकारों की स्थिति है। अतएव अलंकार तथा काव्य चिर सहचर हैं। इनका अन्योन्य संबन्ध है। काव्य में अलंकारों का प्राधान्य इसी से सिद्ध है कि काव्य शास्त्र चिरकाल से अलंकार शास्त्र के नाम से विख्यात है। प्राचीन अलंकारिकों ने काव्य में अलंकारों का महत्त्व निश्चित रूप से स्वीकार किया है। काव्य के आधार शब्द-अर्थ हैं। अलंकारों से शब्द तथा अर्थ में चमत्कार-चारुता उत्पन्न होती है। कोई शब्दालंकारों को प्रधान मानते हैं तथा कोई अर्थालंकारों को। अतएव काव्य में शब्दालंकार एवं अर्थालंकार दोनों का महत्त्व है। भामह ने काव्य के मूल में अतिशयोक्ति की सत्ता को स्वीकार किया है। जो वचन लोक सीमा का अतिक्रमण कर जाय, उसे ही अतिशयोक्ति अलंकार कहते हैं। यह अतिशयोक्ति ही वक्रोक्ति है। इसी के कारण अर्थ चमत्कृत हो उठता है। कवि को इसी में यत्न करना चाहिये। कोई अलंकार नहीं जो इससे रहित हो[1]। सूर्यास्त हो गया, चन्द्रमा चमक रहा है, पक्षिवृन्द निवास स्थान की ओर जा रहे हैं—यह भी क्या कोई काव्य है? इसे तो वार्ता कहते हैं[2]।

अलंकारों से काव्य में सौन्दर्य उत्पन्न होता है। प्रतिभावान् कवि सदैव अलंकारों में विविध प्रकार की उद्‌भावनाएँ करते रहते हैं। अतः इनका पूर्णरूप से कौन वर्णन कर सकता है[3]।

पूर्वाचार्यों ने अलंकारों को काव्य का अनिवार्य गुण बतलाया है। यदि अलंकार न हों तो काव्य की उपादेयता नष्ट हो जाती है। अतएव प्राचीन संस्कृत काव्य में अलंकारों का सौन्दर्य अपना विशेष स्थान रखता है; कवियों ने शब्दार्थ के सौन्दर्य के निर्माण के लिए बहुत परिश्रम किया है। उन्होंने सौन्दर्य के लिए काव्य का निर्माण किया है तथा अलंकारों में ही वे काव्य के सौंदर्य का

१—सैषा सर्वत्र वक्रोक्तिरनयार्थो विभाव्यते।
यत्नोऽस्यां कविना कार्यः कोऽलंकारोऽनया विना॥ २।८५
भामह-काव्यालंकार

२—देखिए, भामह-काव्यालंकार, २।८७

३—दण्डी काव्यादर्श, २।१

अन्वेषण करते थे[१] । दोष रहित एवं गुण सहित रचना को सभी ने काव्य स्वीकार किया है । गुण एवं अलंकार की युगवत् आवश्यकता पर उद्भट ने सबका ध्यान आकर्षित किया है । उनकी दृष्टि में गुण एवं अलंकार समान रूप से ही चारुत्व के हेतु हैं । इनमें केवल विषय अथवा आश्रय का ही भेद है । गुण संघटना (रचना, रीति) के आश्रित हैं तो अलंकार शब्दार्थ के । उद्भटादि आचार्यों ने गुण और अलंकार के साम्य का ही प्रतिपादन किया है । उन्होंने इनमें केवल विषय भेद का ही अंतर माना है[२] । लौकिक शौर्यादि गुणों और हारादि अलंकारों में निस्न्देह यह भेद है कि गुण समवाय संबन्ध से रहते हैं और अलंकार संयोग संबन्ध से । पर काव्यगत ओजस आदि गुणों और अनुप्रासोपमादि अलंकारों में कोई भेद नहीं है । वे काव्य में समवाय सम्बन्ध से ही रहते हैं । लौकिक गुणालंकार के सदृश काव्यगत गुणालंकार में भी भेद समझना भेड़ चाल है[३] । परन्तु आचार्य मम्मट ने इसका प्रतिवाद किया है । वे काव्य में गुणों की नियत स्थिति स्वीकार करते हैं तथा अलंकारों की अनियत । उन्होंने स्पष्ट कहा है कि गुणों की रस के साथ अचल स्थिति है तथा मनुष्य के शरीर में प्रधान आत्मा के जैसे शूरता आदि गुण होते हैं वैसे ही काव्य में प्रधान रस के उत्कर्ष को बढ़ाने वाले धर्म गुण हैं । किन्तु अलंकारों की यह स्थिति नहीं है[४] । अलंकार रस के साक्षात् धर्म नहीं हैं । वे रस का उपकार करते हैं अवश्य, किन्तु शब्द तथा अर्थ के माध्यम द्वारा वे रस का सदैव उत्कर्ष नहीं बढ़ाते हैं । कभी-कभी रस का बिलकुल उपकार नहीं करते हैं । अनुप्रास एवं उपमादि अलंकार गले के हार के सदृश शरीर की शोभा ही बढ़ाते हैं, आत्मा की नहीं । जिस प्रकार हारादि आभूषणों के द्वारा कंठ की शोभा बढ़ने से आत्मा का सौन्दर्य भी उत्कर्ष को प्राप्त होता है, उसी प्रकार शब्द और अर्थ के द्वारा अलंकारों से भी प्रधान अंगी रस का उपकार होता है । यदि नहीं है तो वे काव्य मे केवल उक्ति-वैचित्र्य मात्र प्रदर्शित करते हैं । कभी-कभी अलंकार विद्यमान रस का बिलकुल उपकार नहीं करते हैं[५] ।

इस प्रकार मम्मट पहले आचार्य हैं, जिन्होंने काव्य में अलंकारों की

१—सौन्दर्यमलंकारः १। १। २, काव्यालंकार सूत्र वृत्ति, वामन ।

२—अलंकार सर्वस्व, पृ० ६

३—काव्य प्रकाश (वामन), षष्ठ संस्करण, पृ० ४७०

४—वही, अष्टमोल्लास, सूत्र ८७ ।

५—वही, सूत्र ८८ ।

स्थिति को वास्तविक रूप में निर्धारित किया है। इससे सिद्ध होता है। अलंकार अंगी रस का कहीं उपकार करते हैं और कहीं नहीं करते हैं। काव्य के लिये रस काम्य हैं। गुण रस के धर्म हैं, किन्तु अलंकार नहीं। रस एवं गुण के बिना काव्य का गौरव नष्ट हो जाता है, किन्तु स्फुट अलंकारों के अभाव में काव्यत्व की कोई हानि नहीं होती है।

हिन्दी साहित्य में रीतिकाल के अन्तर्गत प्रचुर लक्षण ग्रंथों का निर्माण हुआ है। आचार्य दंडी के अभिमत को स्वीकार करते हुये हिन्दी के आचार्य केशव ने अलंकारों के प्रति विशेष आग्रह प्रदर्शित किया है। यदि कविता में छन्द रस, वर्ण आदि सब लक्षण हैं तो भी क्या हुआ? कविता की शोभा अलंकारों से ही होती है[1]।

रीतिकाल में लक्ष्य और लक्षण ग्रंथ प्रचुर परिमाण में लिखे गये। दोनों में ही अलंकारों की प्रधानता है। लक्षण ग्रंथ में अलंकारों का निरूपण ही मुख्य विषय है तथा इस युग की कविता में भी अलंकारों का ही विशेष आग्रह है। रीतिकालीन कविता में आलंकारिक रूढ़ियाँ एवं परम्पराएँ प्रधान रूप से दृष्टिगोचर होती हैं। अप्रस्तुतों की योजना करने में नयी-नयी उद्भावनाओं का प्रयास अत्यन्त क्षीण है। अनुप्रास, यमक, श्लेष, वक्रोक्ति आदि शब्दालंकारों के प्रयोग में कवि इतने दत्तचित्त हैं कि इसके पीछे भावों की क्षत्ति की ओर ध्यान नहीं देते[2]।

अर्थालंकारों के क्षेत्र में भी इस युग के कवियों ने परम्परागत उपमानों से ही काम लिया है। नये अप्रस्तुत एवं प्रतीकों का अन्वेषण करने की ओर ध्यान बिलकुल नहीं गया है जिससे इस काल की संपूर्ण कविता में सर्वत्र रूढ़िबद्ध, घिसे-पिटे पुराने अप्रस्तुतों का ही बाहुल्य है। यह सामन्त युग था। अतएव कवियों ने एक ओर तो आश्रयदाता राजा-महाराजा का स्तुतिगान किया है और दूसरी ओर नायक-नायिकाओं की शोभा एवं रूप का वर्णन। सादृश्यमूलक

१—जदपि सुजाति सुलच्छिनी, सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषन बिनु न बिराजई, कविता बनिता मित्त। कवि प्रिया ५।१

२—चालो सुनि चंद्रमुखी चित में सुचैन भरि,
तित बन बागन घनेरे अलि घूम रहे।
कहैं पद्माकर मयूर मंजु नाचत है,
चाय सों चकोरनि चकोर चूमि चूमि रहे।

अलंकारों में उपमा सबसे प्रधान है। निदान इस युग की कविता में सादृश्य तथा साधर्म्य को लेकर परम्परानुगत उपमानों का ही सर्वत्र प्रयोग हुआ है।

स्त्री के अंग सौन्दर्य के वर्णन में कुछ अप्रस्तुत रूढ़ि-बद्ध हो गए हैं, जिनका विवरण दूसरे अध्याय में दिया जा चुका है।

प्रधानतः अलंकार दो श्रेणियों में विभक्त है, शब्दालंकार तथा अर्थालंकार। यों तो शब्द एवं अर्थ के आश्रित अलंकारों की संख्या, उनके भेद तथा उपभेदों के साथ विशाल है, यहां केवल शब्द एवं अर्थगत अलंकारों की परम्परा का अध्ययन करना है। शब्दाश्रित अलंकारों में अनुप्रास, यमक एवं श्लेष की एक सुदीर्घ परम्परा है, जिसका स्वरूप वीरगाथा काल के काव्य से लेकर आधुनिक काल तक निरन्तर चला आ रहा है। रीतिकालीन कविता में इसका चरमोत्कर्ष हुआ है। वक्रोक्ति को काव्य का प्राण बताकर कुन्तक ने इसको स्थापना की थी। 'वैदग्ध्यभंगी भणिति' ही वक्रोक्ति है जिससे शब्दार्थमय काव्य की शोभा होती है[1]। इसके स्वरूप को स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं कि प्रसिद्ध कथन से भिन्न प्रकार की विचित्र वर्णन शैली ही वक्रोक्ति है। 'वैदग्ध्य अर्थात् चातुर्यपूर्ण काव्य निर्माण का कौशल, उसको एक विचित्र भंगिमा के साथ कथन करना। इस प्रकार विचित्र प्रकार की वर्णन शैली ही वक्रोक्ति कहलाती है[2]। 'कुन्तक ने वक्रोक्ति का व्यापार वर्ण, पद, शब्द, पर्याय, उपचार, विशेषण, वृत्ति, क्रिया, प्रत्यय, वाक्य, प्रकरण, प्रबन्ध आदि तक में प्रतिपादित किया है। आगे चलकर आनन्दवर्द्धन ने ध्वनि को उत्तम काव्य का श्रेय प्रदान किया है जिसकी काव्य में एक स्थायी परम्परा दिखाई पड़ती है। वक्रोक्ति अलंकार रूप में तो जीवित है, किन्तु उस रूप में उसकी कोई परम्परा नहीं है। आधुनिक कविता में विशेषतः छायावादी काव्य में एक अनूठी भंगिमा अवश्य मिलती है, परन्तु उसका स्वरूप वक्रोक्ति से भिन्न है। इस प्रकार शब्दगत अलंकारों में अनुप्रास, यमक और श्लेष की एक समृद्ध परम्परा है, जो आधुनिक काव्य में भी जीवित है। अर्थाश्रित अलंकारों में औपम्यगर्भ उपमादि की विशाल परम्परा है। अतिशयोक्ति भी इसी

कदम अनार आम अगर अशोक-थोक,
ललनि समेत लोने लोने लगि भूमि रहे।
फूलि रहे फलि रहे फबि रहे फैलि रहे,
झंपि रहे झलि रहे झुकी रहे झूमि रहे ॥—पद्माकर

१—वक्रोक्ति काव्य जीवितम् १।१०

२—वही, पृ० ५१

के अन्तर्गत है। अन्योक्ति (अप्रस्तुत प्रशंसा) अलंकार की भी एक सुन्दर परम्परा है। यहाँ इन्हीं का विवेचन किया जाता है—

आधुनिक काव्य में शब्दालंकारों का अभाव नहीं है। छायावाद के कवियों ने ध्वनि साम्य और नादात्मक सौन्दर्य की ओर विशेष रुचि प्रदर्शित की है। अतएव उनके काव्य में अनुप्रास अनायास ही आ गया है।

अनुप्रास—

(१) छिल छिलकर छाले फोड़े, मल मल कर मृदुल चरण से,
घुल घुल कर वह रह जाते, आँसू करुणा के कण से।

—प्रसाद

(२) कण कण कर कंकण, प्रिय
किण किडारव किंकिणी,
रणन रणन नूपुर, उर लाज
लौट रंकिणी।

—निराला

(३) क—पावस ऋतु थी, पर्वत प्रदेश, पल पल परिवर्तित प्रकृति वेश

—पन्त

ख—शत शत फेनोच्छ्वसित स्फीत फूत्कार भयंकर

—पन्त

(४) मधुर मधुर मेरे दीपक जल
युग युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल
प्रियतम का पथ आलोकित कर

—महादेवी

(५) आ रहे होगी उड़ाती नील अंचल
लोल लहरों का प्रशान्त प्रसार

—सुमन

यमक

(१) वह गायक नायक सिन्धु कहीं,
चुप हो छिप जाना चाहेगा।

—बच्चन

(२) स्पन्दन में चिर निस्पन्द बसा
क्रन्दन में आहत विश्व हँसा।

—महादेवी

(३) लख अलक्षित चरण तुम्हारे चिह्न निरन्तर

—पन्त

(४) रंगीले गीले फूलों से—

—पन्त

(५) कुंठित गति, लुंठित संस्कृति को
अपना पथ निर्माण चाहिए।

—उदयशंकर भट्ट

(६) मैं तरुण भानुसा अरुण भूमि पर
उतरा रुद्र विषाण लिये।

—दिनकर

(७) मानव को दानव के मुँह से
ला रहे खींच बाहर बढ़ बढ़

—सोहनलाल द्विवेदी

(८) छपी सी पी सी मृदु मुसकान।

—पन्त

श्लेश

(१) मेरा अनुराग फैलने दो
नभ के अभिनव कलरव में

—प्रसाद

(२) अश्विनि के ऊपर सुभव्य भाव भरिणी
कृत्तिका सी, वामियों के ऊपर चढ़ी हुई।

—मैथिलीशरण

(३) सैकत शैया पर दुग्ध धवल
तन्वंगी, गंगा, ग्रीष्म विरल

—पन्त

(४) तुम सुमन नोंचते सुनते
करते जानी अनजानी

—प्रसाद

(५) तू शैलराट् हुंकार भरे
फट जाय कुहा, भागे प्रमाद

—दिनकर

यद्यपि आधुनिक युग के कवि अलंकारों का आग्रह नहीं रखते हैं तथापि

उनके काव्य में स्वाभाविकता से आये हुए अलंकारों की छटा दर्शनीय है। छाया-वाद के कवि स्वर साम्य और ध्वनि-सौन्दर्य के बहुत प्रेमी हैं। अतएव उनके काव्य में अनुप्रासादि शब्दालंकारों का बाहुल्य है। पन्त और निराला में नाद सौन्दर्य की प्रवृत्ति विशेष रूप से लक्षित होती है, क्योंकि दोनों के काव्य में संगीतात्मक स्वर ध्वनियों का योग है। अनुप्रास में यह सौन्दर्य अनुगत है।

उपमादि अलंकार अर्थ के आश्रित हैं। इनमें साम्य का आधार है। हिन्दी काव्य में साम्य तीन प्रकार का पाया जाता है—

(१) सादृश्य—रूप या आकार का साम्य

(२) साधर्म्य—गुण, धर्म या क्रिया का साम्य

(३) शब्द साम्य—इसमें केवल नाम का साम्य होता है। दो भिन्न वस्तुओं का एक नाम होना। जैसे अर्क (सूर्य, तरु), कनक (सोना, धतूरा) आदि।

यदि ध्यान से देखा जाय तो पहले दोनों प्रकार के साम्य के मूल में प्रभाव-साम्य अवश्य ही छिपा हुआ होगा। श्रेष्ठ कवियों का ध्यान सदैव उपमान में निहित प्रभाव साम्य पर ही रहता है। वे प्रस्तुत के अनुकूल ऐसे अप्रस्तुत की योजना करते हैं कि जो दोनों में समन्वित सौन्दर्य, दीप्ति, कान्ति, कोमलता, कठोरता, विरूपता, मलिनता, खिन्नता, प्रचंडता, भीषणता आदि भावों को उद्‌बुद्ध करते हैं[1]। तीसरे शब्द-साम्य के अन्दर यह बात नहीं है। यह तो मात्र शब्दों की खिलवाड़ है। श्लेष के आधार पर द्विरर्थक शब्दों की योजना द्वारा शब्द क्रीड़ा का चमत्कार दिखाया जाता है। श्लिष्ट शब्दों के साम्य में हृदय को स्पर्श करने की शक्ति नहीं होती है। होता है केवल कुतूहल, उक्ति, वैचित्र्य मात्र।

कवि के अप्रस्तुत विधान में प्रतिभा ही कारण है। जो कवि जितना ही अधिक कल्पनाशील होगा, वह उतना ही सुन्दर अप्रस्तुत योजना कर सकता है। अब तक सिद्ध कवियों ने जितने अप्रस्तुतों का विधान कर दिया है, उनकी एक विशाल परम्परा बन चुकी है। यद्यपि नए-नए कवि अपनी प्रतिभा की शक्ति से नए-नए अप्रस्तुत ढूंढ़ लाते हैं तथापि हर एक कवि में यह शक्ति नहीं है। साधारण और असाधारण सभी कवि परम्परागत अप्रस्तुतों का ही उपयोग करते हैं। असाधारण कवि नए-नए अप्रस्तुतों की भी उद्‌भावना करते रहते हैं।

१—रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी-साहित्य का इतिहास, (संशोधित और प्रवर्द्धित संस्करण) पृ० ८०८।

यहाँ आधुनिक हिन्दी कविता में अप्रस्तुतों की परम्परा का अध्ययन किया जाता है।

प्रातः की सुन्दर वेला है। उर्मिला साकेत के राजप्रासाद में अकेली खड़ी है। कवि उसका छवि-चित्र अंकित करता है—

(१) अरुण पट पहने हुए आह्लाद में।
कौन यह बाला खड़ी प्रासाद में?
प्रकट मूर्तिमती उषा ही तो नहीं?
कान्ति की किरणें उजेला कर रही।
यह सजीव सुवर्ण की प्रतिमा नई
आप विधि के हाथ से ढाली गई।
कनक लतिका भी कमल सी कोमला,
धन्य है उस कल्प-शिल्पी की कला।

इसमें भ्रान्तिमान, रूपक, उपमा और अतिशयोक्ति आदि अलंकारों की संसृष्टि है। मूर्तिमती उषा, कान्ति की किरणें, कनक लतिका में रूपक है। उर्मिला के शरीर की कान्ति देखकर उषा का भ्रम हो जाता है अतः भ्रान्तिमान् है। कमल सी कोमला में उपमा है। अंतिम पंक्ति में उपमान 'कला' द्वारा उपमेय 'बाला' निगीर्ण हो गया है। इसलिये रूपकातिशयोक्ति है। सभी अलंकार परस्पर निरपेक्ष रूप से आए हैं। उनका अस्तित्व पृथक्-पृथक् लक्षित होता है, अतएव संसृष्टि है।

इस प्रसंग में उर्मिला बाला के लिए 'उषा' 'सुवर्ण की प्रतिमा', 'कनक लतिका' और 'कमल' आदि सभी अप्रस्तुत परम्परानुगत हैं।

इसी प्रसंग में आगे चलकर कवि कहता है—

(२) लोल कुंडल मंडलाकृति गोल हैं,
घन-पटल से केश, कान्त कपोल हैं।
देखती है जब जिधर यह सुन्दरी
दमकती है दामिनी सी द्युति भरी।

यहाँ केश के लिए घन-पटल और दृष्टि के लिए दामिनी की द्युति कह कर प्राचीन परिपाटी का ही अनुसरण किया गया है।

(३) देख ये कपोत-कंठ
बाहु-वल्ली कर-सरोज
उन्नत उरोज पीन-क्षीण कटि

नितम्ब भार-चरण सुकुमार
गति मन्द मन्द,
छूट जाता है धैर्य ऋषि मुनियों का,
देव भोगियों की तो बात ही निराली है।

—अनामिका, निराला

इसमें स्त्री का वर्णन परम्परागत शैली के आधार पर है।

(४) वीर युवक जयसिंह का चित्रांकन है। कविवर मैथिलीशरण गुप्त सिद्धराज के विषय में कहते हैं—

पीन वृष-स्कन्ध, क्षीण सिंह-कटि, साहसी
दीर्घ हस्ति हस्त, मानो पशुता के गुण्य की
देव-साधना का यह पुण्य नर क्षेत्र था।

इस पद्य में वृष स्कन्ध, सिंह के सदृश कटि की क्षीणता, हाथों की सूँड़ के सदृश दीर्घता आदि परम्पराभुक्त उपमान हैं।

(५) वैदेही वनवास के षोडश सर्ग के 'जय जय जयति लोक ललाम-नवल नीरद श्याम' शीर्षक पद में राम की अलौकिक शोभा का वर्णन है। इसमें राम की देह के लिए नीरद, भ्रू के लिए धनुष, नेत्रों के लिए कमल, कपोल के लिए गुलाब, वचन के लिए मधुर रस, दन्त पंक्ति के लिए मुक्तावलि आदि उपमान प्रयुक्त हुए हैं। ये सब परम्परा-विहित हैं—

'वदन है अरविन्द सुन्दर इन्दु सी है कान्ति।
मृदु हँसी है बरसती रहती सुधा वसु-याम॥

मुख के लिए अरविन्द, मुख-कान्ति के लिए चंद्रिका, मृदुल हँसी के लिए सुधा के उपमान प्रसिद्ध हैं। इसी प्रसंग में कवि ने राम को विशाल वक्षस्थल, आजानु बाहु, कन्दर्प के समान कमनीय कह कर प्रसिद्ध उपमानों को ही ग्रहण किया है।

(६) 'रावण महाकाव्य' में कैकसी की मनोहरता का वर्णन करते हुए कवि ने व्रजभाषा के प्रांजल छन्दों में पुराने अप्रस्तुतों का उपयोग किया है। कैकसी तपस्या करने को उद्यत हो रही है, अतएव वह अपनी सुन्दरता को धरोहर के रूप में रखने जा रही है।

चंद को दीन्ही प्रभा मुख की, अरविन्दनि को तन-कोमलताई।
मंजुलता तिमि नैनन की, मृग खंजनि मीननि दीन्ह्यौ गहाई॥
मंडलता त्यों कपोलनि की, तहँ आरसी ने कछुहू कछु पाई।
ग्रीव की रंच मनोहरता, बड़े भागिनि कंबु के हाथ में आई॥

श्रीफल लीन्ह्यौं उरोज प्रभा, करि कुंभनि सौं घट फोरत ही रहे।
बाँहन मैं त्यों सनाल सरोज, निछावरि ह्वै तिन तोरत ही रहे॥
लंक की क्षमता को छवि को, वर तंतु मृनाल के छोरत ही रहे।
जंघनि की कमनीयता को, कदली, गज-सुंड निहोरत ही रहे॥

इन दोनों छन्दों में प्रतीप अलंकार विवक्षित है। यहाँ मुख के उपमान चन्द्र, तन की कोमलता के उपमान, अरविन्द, नेत्रों के उपमान मृग, खंजन और मीन, कपोल के आरसी, ग्रीव के कंबु, उरोज के श्रीफल, कटि के कुंभ और घट, बाहुओं के सरोज-नाल, कटि के मृणाल तंतु तथा जंघाओं के कदली और गज सुंड आदि प्रसिद्ध उपमानों की न्यूनता दिखाई गई है। प्रतीप में प्रसिद्ध उपमान का निरादर भी किया जाता है। इसमें प्रतीप अलंकार है तथा शरीर के अंगों के सभी उपमान परम्परानुगत हैं।

श्रद्धा के सौन्दर्य का चित्र कितना लोकोत्तर है—

घिर रहे थे घुँघराले बाल, अंस अवलंबित मुख के पास,
नील घन शावक से सुकुमार, सुधा भरने को विधु के पास।

—कामायनी

श्रद्धा के घुँघराले बालों का नील घन से सादृश्य दिखाया गया है तथा मुख का विधु से। इसमें उपमा से पुष्ट हेतूत्प्रेक्षा है। अप्रस्तुत विधान परम्परा-भुक्त है।

(६) यशोधरा को आगे करके चन्द्रमुखी सुन्दरियाँ स्वयंबर भूमि को ले जा रही हैं—उनकी शोभा सती, शची, शारदा और लक्ष्मी के सदृश है। ये सभी अप्रस्तुत प्राचीन परिपाटी के अनुकूल है। यशोधरा की शोभा के वर्णन में कवि ने परम्परानुगत अप्रस्तुतों का ही प्रयोग किया है।

निशेश को, तारक को, पयोद को
स्व वक्त्र की, लोचन की, कचौघ की,
चली हराती रुचि से यशोधरा,
सलज्ज, नम्रा, सुपभावगाहिनी।

—सिद्धार्थ

इस पद्य में यथा संख्य और प्रतीप का सुन्दर विन्यास है। वक्त्र के लिए निशेश, लोचनों के लिए तारक, और कचौघ के लिए पयोद के उपमान रूढ़ हैं।

(८) प्रियातमा के भोले सौन्दर्य पर मुग्ध होकर पंत का कवि उसका छवि चित्र अंकित करता है—

बाल रजनी सी अलक थी डोलती,
भ्रमित हो शशि के वदन के बीच में

यहाँ अलक के लिए रजनी तथा वदन के लिए शशि के उपमान चिर प्रसिद्ध है।

(६) प्रयोगवादी काव्य धारा में भी यत्रतत्र परम्परानुगत अलंकार-पुष्प बहते हुए दिखाई पड़ जाते हैं। धर्मवीर भारती 'गुनाह के गीत' में गाने लगता है :—

मृणालों सी मुलायम बाँह ने सीखी नहीं उलझन,
सुहागन लाज में लिपटा शरद की धूप जैसा तन,

यहाँ प्रेयसी की बाहों के लिए मुलायम मृणाल तथा तन की कान्ति के लिए शरद का प्रकाश ऐसे ही उपमान हैं।

(१०) 'सरकाती पट,
खिसकाती लट
शरमाती झट
वह नमित दृष्टि से देख उरोजों के युग घट।'
—ग्राम्या

ग्राम युवती के इस चित्र में पन्त जी ने उरोजों को 'युग घट' बतलाया है।

(११) 'तुम दुबली-पतली दीपक की लौ सी सुन्दर' 'रूप शिखा' कविता में नरेन्द्र जी प्रेयसी के लिए कहते हैं—

नलकी में झलका अंगारक (मंगल नक्षत्र)
बूँदों में गुरु-उशना तारक (वृहस्पति, शुक्र)
शीतल शशि-ज्वाला की लपटों से
वसन, दमकती द्युति चम्पक

तुम रत्न-दीप की रूप-शिखा, तन स्वर्ण प्रभा, कुसुमित अम्बर। इसमें नायिका का छवि-चित्र उतारने के लिए जो उपमान प्रयुक्त हुए हैं, वे सब परंपरानुगत हैं। नारी को 'रत्न-दीप', 'रूप-शिखा' एवं 'स्वर्ण-प्रभा' कहना चिर प्रसिद्ध है।

आलोच्य काल के प्रबन्ध काव्यों में उपमानों की परंपरा प्रचुरता से मिलती है। साकेत के प्रथम सर्ग का अयोध्या नगरी तथा उर्मिला का वर्णन, सिद्धार्थ में राजा शुद्धोदन,[१] कुमार सिद्धार्थ[२] तथा शुद्धान्त की नारियों का वर्णन,[३] नल-नरेश में राजा नल और भैमी के सौन्दर्य का वर्णन, दैत्य वंश

१—सिद्धार्थ, पृ० ८।
२—वही, पृ० ३३,३४।
३—वही, अवरोध सर्ग।

में लक्ष्मी, उषा, जल में स्नान करती हुईं स्त्रियों तथा बाल ब्रह्मचारी वामन की शोभा का वर्णन, कृष्णायन में मधुपुरी को जाते हुए श्रीकृष्ण के शुभागमन का प्रकृति-चित्रण, कृष्ण के वियोग में वृन्दावन का हृस्य-वर्णन एवं राधा-माधव का शृंगार-वर्णन, अंगराज में अधिरथ-सुत,[1] महेन्द्राचल पर स्थित परशुराम[2] तथा हस्तिनापुर में नर-नारियों के बीच श्रीकृष्ण की शोभा का वर्णन,[3] कामायनी में श्रद्धा तथा इड़ा का सौन्दर्य-वर्णन कुणाल में राजा अशोक तथा कुमार के सौन्दर्य का वर्णन,[4] कुरुक्षेत्र में शर-शैया पर पड़े हुए भीष्म का चित्रांकन[5] शत प्रतिशत परंपरानुगत है। इन प्रसंगों में आए हुए उपमानों की परंपरा वही है, जो काव्यों में चिरकाल से चली आती है।

प्रसाद के आंसू, पन्त की ग्रन्थि और भावी पत्नी के प्रति, निराला की 'वहू,' पंचवटी-प्रसंग तथा 'तुम और मैं', महादेवी वर्मा की 'ओ विभावरी तथा वसन्त-रजनी की अप्रस्तुत-योजना में पचास प्रतिशत पुराने उपमान नये रूप में व्यवहृत हुए हैं।

शशि मुख पर घूंघट डाले, अंचल में दीप छिपाए,
जीवन की गो-धुली में, कौतूहल से तुम आए। —आंसू

यहां प्रथम पंक्ति में मुख और नेत्रों के लिए क्रमशः 'शशि और दीप' को उपमान के रूप में लाया गया है। ये दोनों उपमान रूढ़ हैं। दूसरी पंक्ति में जीवन को 'गो-धूली' तथा प्रिय को 'कौतूहल' कहा गया है। ये दोनों सूक्ष्म उपमान हैं, जिन पर नये युग का संस्कार है।

प्रिये प्राणों की प्राण!
न जाने किस गृह में अनजान
छिपी हो तुम स्वर्गीय विधान।
नवल-कलिकाओं की सी बाण,
बाल-रति-सी अनुपम, असमान—
न जाने, कौन, कहां अनजान,
प्रिये प्राणों की प्राण। —भावी पत्नी के प्रति

१—अंगराज, २।१५-१८।
२—वही, ४।१०-१८।
३—वही, ११।३६-४१।
४—कुणाल, तारुण्य और अशोक सर्ग।
५—कुरुक्षेत्र, प्रथम संस्करण, पृ० ३८।

यहां कवि ने अपनी प्रियतमा को 'प्राणों की प्राण 'स्वर्गीय विधान, कलिका तथा बाल-रति के उपमानों से विभूषित किया है। ये सभी उपमान प्रसिद्ध हैं। केवल रंग नया है।

तुम चित्रकार घन-पटल श्याम, मैं तड़ित्तूलिका-रचना।
तुम रण-तांडव उन्माद नृत्य, मैं युवति मधुर-नूपुर-ध्वनि।
तुम नाद-वेद ओंकार-सार, मैं कवि-शृंगार-शिरोमणि॥
तुम यश हो मैं हूं प्राप्ति।
तुम कुन्द-इन्दु-अरविन्द शुभ्र, तो मैं हूं निर्मल व्याप्ति॥

—निराला

इसमें भक्त और भगवान् के संबंध का काव्यात्मक वर्णन है। परंपरा में भक्तों की वाणी में इस प्रकार के संबंधों का वर्णन अनेक प्रकार से हुआ है। तुलसी की विनय-पत्रिका से यहां एक पद दिया जाता है।

तू दयाल, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुंज-हारी॥

अन्तर केवल यही है कि निराला की अप्रस्तुत-योजना में नया रंग है।

स्त्री के उपमानों में कुछ नया विकास भी हुआ है। इस दिशा में छायावादी काव्य-प्रवृत्ति ने रीतिकालीन परंपरा को आगे विकसित किया है। कुणाल में रानी तिष्यरक्षिता के सौन्दर्य का चित्र इस प्रकार खींचा गया है—

कुन्दन सी, कंचन, चंपक सी, विद्युत की नूतन रेखा-सी,
श्रावण-घन के नीलांचल के तट के विघुभ्र अवलेखा-सी।

यहां तक तो उपमानों की योजना परंपराश्रित है, किन्तु इससे आगे कुछ नये ढंग के उपमानों का विधान है—

रागारुण-रंजित ऊषा सी, मृदु मधुर मिलन की सन्ध्या सी,
माधवी, मालती, शेफाली, वेला सी, रजनी गंधा-सी।

उपमान तो ये सभी प्रसिद्ध हैं, किन्तु इनको नारी-सौन्दर्य के लिए इस प्रकार लाया गया है कि नया रंग आ गया है।

पन्त जी की अप्रस्तुत-योजना भी अत्यन्त मधुर है—

तारिका-सी तुम दिव्याकार, चन्द्रिका की झंकार।
प्रेम-पंखों में उड़ अनिवार, अप्सरी-सी लघु-भार,
स्वर्ग से उतरी क्या सोद्गार, प्रणय-हंसिनि सुकुमार?
हृदय-सर में करने अभिसार, रजत-रनि, स्वर्ण-विहार।

—गुंजन

रेखांकित पदों की अप्रस्तुत-योजना में अनूठी सुकुमारता है, जिसे उपमानों के क्षेत्र में नूतन विकास कहा जा सकता है। इन उपमानों से वस्तु के आन्तरिक सौंदर्य का परिचय मिलता है। कवि ने नारी का जो छवि-चित्र अंकित किया है, उसमें सूक्ष्म सौन्दर्य का विधान है। वस्तु के वाह्य सौन्दर्य की अपेक्षा पन्त जी, अन्तः सौन्दर्य को अधिक महत्त्व देते हैं। गुंजन की रूप तारा तुम पूर्ण प्रकाम, 'अप्सरा' 'भावी पत्नी के प्रति 'तथा पल्लव की नारी-सौन्दर्य-विषयक प्रारंभिक कविताओं में इसी प्रकार की सुकुमार कल्पनाओं की सृष्टि है।

अन्योक्ति

(१) इस सोते संसार बीच, जगकर सजकर रजनी वाले।
कहाँ वेचने ले जाती हो, ये गजरे तारों वाले ?।

—रामकुमार

(२) मधुर-मधुर मेरे दीपक जल।
युग-युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल,
प्रियतम का पथ आलोकित कर

—महादेवी

(३) सिखा दो ना, हे मधुप कुमारि।
मुझे भी अपने मीठे गान,
कुसुम के चुने कटोरों से
करा दो ना कुछ-कुछ मधुपान।

—पन्त

प्रथम खंड में अप्रस्तुत 'रजनी वाला' को संवोधित कर कवि ने प्रस्तुत अव्यक्त सत्ता के निरुपम सौन्दर्य की ओर संकेत किया है। दूसरे में अप्रस्तुत दीपक के द्वारा प्रस्तुत हृदय की साधना की ओर इंगित किया गया है। तीसरे में अप्रस्तुत मधुप कुमारी तथा उसके मधुर गानों से प्रस्तुत प्रकृति के सौन्दर्य एवं माधुर्य का वोध अभिप्रेत है।

निराला की 'ठूंठ' 'उद्‌वोधन' 'खंडहर के प्रति', रामकुमार वर्मा की 'कलियो यह अवगुंठन खोलो', 'अरे निर्जन वन के निर्मल निर्झर', प्रसाद की 'लहर', पन्त की 'खद्योत', 'निर्झरी', 'लोगी मोल', 'मधुकरी', वच्चन की 'मधुशाला', एक भारतीय आत्मा की 'कैदी और कोकिला' 'एक फूल की चाह', कलिका से, अज्ञेय की 'नदी के द्वीप' आदि कविताएँ इसी श्रेणी में आती हैं। अलंकार वही है, किन्तु वस्तु एवं भाव में नया रंग है।

रूपकातिशयोक्ति—

अप्रस्तुत में प्रस्तुत के पूर्ण रूप से निगीर्ण हो जाने पर यह अलंकार होता है, अर्थात् उपमान के द्वारा ही उपमेय का बोध कराया जाता है।

(१) बांधा था विधु को किसने इन काली जंजीरों से,
मणि वाले फणियों का मुख क्यों भरा हुआ हीरों से !

इसमें विधु, काली जंजीर, फणिधर और हीरों के उपमेय क्रमशः मुख, केश, चोटी (वेणी) तथा अमूल्य मणियों से हैं। यहाँ अप्रस्तुत में प्रस्तुत का पूर्ण अध्यवसान हो गया है। अतएव रूपकातिशयोक्ति है।

(२) कमल पर जो चारु खंजन थे प्रथम
पंख फड़काना नहीं थे जानते
चपल चोखी चोट कर अब पंख की
ये विकल करने लगे हैं भ्रमर को।

—ग्रन्थि, पन्त

इसमें कमल, खंजन, चोट, भ्रमर क्रमशः मुख, नेत्र, कटाक्ष-पात एवं प्रेमी के उपमान हैं। यहाँ रूपकातिशयोक्ति है तथा अप्रस्तुत योजना भी परंपरानुगत है।

समासोक्ति—

प्रस्तुत के वर्णन से अप्रस्तुत की प्रतीति होने पर यह अलंकार होता है।

(१) विजन वन वल्लरी पर
सोती थी सुहाग भरी-स्नेह-स्वप्न-मग्न
अमल कोमल तनु तरुण-जुही की कली
दृग बन्द किए, शिथिल-पत्रांक में,
वासन्ती निशा थी।

—निराला

इसमें प्रस्तुत 'जुही की कली' के द्वारा सुहागिन स्त्री का भाव लक्षित होता है।

(२) उठ-उठ री लघु लोल लहर
करुणा की नव अंगराई सी,
मलयानिल की परछाई सी,
इस सूखे तट पर छिटक छहर।

—प्रसाद

यहाँ लहर से किसी नवोढ़ा नायिका की ओर संकेत है।

(३) नवोढ़ा-बाल-लहर
अचानक उपकूलों के
प्रसूनों के ढिंग रुक कर
सरकती है सत्वर।

—पन्त

यहाँ प्रस्तुत लहर से अप्रस्तुत नायिका के प्रिय से मिलने का भाव व्यंजित होता है।

विरोधाभास

इसमें जाति, गुण, क्रिया आदि में विरोध भासित होता है, वस्तुतः विरोध नहीं होता है।

(१) जलते नभ में दीप असंख्यक,
स्नेह-हीन नित कितने दीपक,
जलमय सागर का उर जलता
विद्युत ले घिरता है बादल।
विहंस विहंस मेरे दीपक जल।

—महादेवी

यहां स्नेह-हीन (तेल रहित) दीपक जलना, जलमय सागर के हृदय का जलना आदि में विरोध भासित होता है, किन्तु वस्तुतः विरोध नहीं है क्योंकि तपः साधना का भाव अभिप्रेत है। अतएव विरोध का परिहार हो जाता है।

(२) तुम मांस हीन, तुम रक्त हीन,
तुम अस्थि शेष ! तुम अस्थि हीन
तुम शुद्ध बुद्ध आत्मा केवल
हे चिर पुराण, हे चिर नवीन।

—पन्त

यहाँ 'अस्थि शेष' 'अस्थि-हीन' तथा 'चिर पुराण' और 'चिर नवीन' में विरोधाभास है। पूज्य बापू की ओर निर्देश है।

(३) शीतल ज्वाला जलती है, ईंधन होता दृग जल का

—प्रसाद

'शीतल ज्वाला' और 'दृग जल के ईंधन' में गुण का गुण से विरोध है, किन्तु प्रेम के पक्ष में इस विरोध का निराकरण हो जाता है। शीतल ज्वाला से विरह वेदना प्रकट होती है जो दुःखद और सुखद होती है।

उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि आधुनिक काव्य में अर्थालंकारों की परंपरा जीवित है। प्राचीन परिपाटी का अप्रस्तुत विधान तो है ही, कवियों ने कुछ नए अप्रस्तुतों की भी उद्भावनाएं की हैं।

बीती विभावरी जागरी।
अम्बर पनघट में डुबो रही—
तारा घट ऊषा–नागरी।
खग कुल कुल कुल सा बोल रहा
किसलय का अंचल डोल रहा,
लो यह लतिका भी भर लाई
मधु मुकुल नवल रस-गागरी।
अधरों में राग अमन्द पिये—
अलकों में मलयज वन्द किये,
तू अबतक सोई है आली
आंखों में भरे विहाग री।

—प्रसाद

इसमें ऊषा का वर्णन प्रस्तुत है तथा सुप्त नायिका का उद्बोधन अप्रस्तुत है। अतएव समासोक्ति है। साथ ही कवि ने अम्बर को पनघट, तारों को घट, ऊषा को नागरी, मुकुल को गागर, कहकर उपमेय और उपमान में अभेदारोप किया है। अतएव सांग रूपक है। बीती विभावरी, मधु मुकुल में अनुप्रास है। खग-कुल कुल कुल में यमक है। अधरों में अमन्द राग (मद्य) पीना, अबतक सोते रहने में हेतु है। अतः काव्य लिंग है क्योंकि इसमें हेतु प्रदर्शित किया जाता है। किन्तु अंगी रूपक अलंकार है। अन्य अलंकार अंग रूप से है। अतएव इस गीत में अनुप्रास, यमक, समासोक्ति, काव्यलिंग मुख्य रूपक अलंकार का उपकार करते हैं, जिनसे इनका संकर है।

परंपरानुगत अन्तर्कथाओं को लेकर भी अप्रस्तुत-योजना की गई है—

(१) पटक रवि को बलि-सा पाताल
एक ही वामन-पग में
लपकता है तमिस्र तत्काल
धुएं का विश्व विशाल!

—पन्त

इस पद्य में वामन द्वारा विशाल भूलोक को नाप कर बलि-बंध को कथा के आधार पर अप्रस्तुत-योजना की गई है।

(२) दमयन्ती सी कुमुद कला के
रजत-करों में फिर अभिराम
स्वर्ण-हंस से हम मृदु ध्वनि कर
कहते प्रिय संदेश ललाम।

—पन्त

इसमें दमयन्ती के द्वारा पकड़ने पर हंस के नल विषयक आख्यान की ओर संकेत है।

(३) वही कविता
विष्णु-पद से जो निकल
और ब्रह्मा के कमंडल से उबल—

—धर्मवीर

इसमें गंगा की उत्पत्ति की पौराणिक कथा अप्रस्तुत के रूप में गृहीत है।

विवेचन

आलोच्य कालीन कविता में अलंकारों की परंपरा अधिकतर प्रबंध काव्यों में ही पाई जाती है। शब्दालंकारों में अनुप्रास, यमक, श्लेष के उदाहरण ही अधिकतर मिलते हैं। अर्थालंकारों में सादृश्य मूलक, विरोध मूलक, न्याय मूलक सभी प्रकार के अलंकारों का प्रयोग हुआ है। साकेत, वैदेही वनवास, दैत्य वंश, रावण महाकाव्य, नल-नरेश, सिद्धार्थ, अंगराज और कृष्णायन में अलंकारों की परंपरा का शत-प्रतिशत अंश में निर्वाह हुआ है। साम्यमूलक अलंकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, दृष्टान्त, अर्थान्तर न्यास, स्मरण, सन्देह, भ्रान्तिमान, प्रतीप, व्यतिरेक आदि अलंकारों का प्रयोग हुआ है। विरोध मूलक अलंकारों में विषम, विरोधाभास का प्रयोग अधिक मिलता है। इनके अतिरिक्त अन्योक्ति, समासोक्ति, सहोक्ति, पर्यायोक्त, यथासंख्य, मीलित आदि अलंकार भी प्रयुक्त हुए हैं। प्राचीन अन्तकंथाओं के आधार पर भी रूपक-सृष्टि की गई है।

छायावादी मुक्तक काव्यों में अलंकारों की परंपरा का समुचित विकास हुआ है। इन कवियों में पन्त, प्रसाद, निराला और महादेवी ने सौन्दर्य की सूक्ष्म अभिव्यक्ति की ओर अधिक ध्यान दिया है, वाह्य सौन्दर्य की ओर कम। पन्त और प्रसाद की रचनाओं में अप्रस्तुत-योजना अत्यंत सुकुमार एवं प्रभावाभिव्यंजक है। इन्होंने अधिकतर प्राकृतिक क्षेत्र से उपमानों का चयन किया है। इसी से इनका कल्पना-विधान अत्यंत रुचिकर तथा मधुर है।

सब मिलाकर छायावादी कविता में विरोधाभास, अन्योक्ति, रूपका-

तिशयोक्ति, दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास, भ्रान्तिमान, सन्देह स्मरण, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का प्रयोग प्रचुरता से हुआ है। लक्षणा के आश्रित विरोधमूलक अलंकारों का प्रयोग इन कवियों को अधिक प्रिय है। इनके काव्य में परंपरागत उपमानों को भी नये रूप-रंग में प्रयुक्त किया गया है। इसमें संन्देह नहीं कि रीतिकालीन अलंकार-परंपरा को रूढ़ि जगत से निकाल कर इन कवियों ने ही मुक्त किया है तथा उसमें अभिनव चमत्कार-चारुता उत्पन्न की है। साम्यमूलक अलंकारों में सौन्दर्य के नाना पक्षों का उद्घाटन करने में इन कवियों ने अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है। पन्त के पल्लव और गुंजन, प्रसाद के आँसू और कामायनी, निराला की परिमल और अनामिका तथा महादेवी की नीरजा की कविताओं में अनूठा अलंकार-विधान दृष्टिगोचर होता है। ये कवि साधर्म्य और सादृश्य पर उतना ध्यान नहीं देते, जितना प्रभाव-साम्य पर। इसी से इनके काव्य में अप्रस्तुत-विधान अत्यंत प्रभावोत्पादक है।

प्रगतिवादी-प्रयोगवादी काव्य-रचनाओं में अलंकार-परम्परा निर्जीव-सी दिखाई पड़ती है। यद्यपि नारी-सौन्दर्य का अंकन इनकी कविताओं में बहुत हुआ है, तथापि वह परंपरा से बहिर्भूत है। अतएव उसका अध्ययन प्रयोगों में किया जायगा।

चित्र काव्य

प्राचीन काल के अनेक अलंकार आधुनिक कविता में लुप्त हो गए हैं। संस्कृत-साहित्य में सर्वतोभद्र, गो-मूत्रिका-बन्ध, तुरगबन्ध, खड्बन्ध, कमलबन्ध, चक्रबन्ध, आदि चित्रकाव्य के प्रयोगों का बाहुल्य मिलता है। भारवि, माघ, श्रीहर्ष जैसे महाकवियों ने भी इस ओर रुचि प्रदर्शित की है तथा अपने अगाध पांडित्य का परिचय दिया है। भारवि ने किरातार्जुनीय के पंचदश सर्ग में विभिन्न शैलियों के चित्रकाव्य के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। उन्होंने एक ही अक्षर वाला भी एक श्लोक लिखा है, जिसमें 'न' के अतिरिक्त दूसरा वर्ण ही नहीं है।[१]

हिन्दी-काव्य-परंपरा में भी चित्रकाव्य के प्रयोग मिलते हैं। सिद्ध, नाथ एवं सन्त कवियों ने क्लिष्ट, अप्रचलित एवं कूट पदों के प्रयोग बहुत किये हैं। रीतिकाल के कवियों में केशव चित्रकाव्य की ओर भी रुचि रखते थे। उन्होंने प्रहेलिका, अन्तर्लापिका, बहिर्लापिका, समस्या पूर्ति पर भी रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। उन्होंने एकाक्षर, दो अक्षर, तीन अक्षर के छन्द, मात्रा-रहित वर्णों के छन्द,

---

१—किरातार्जुनीय, १५।१४।

निरोष्ठ वर्णों के छन्द तथा गूढ़ोत्तर छन्दों के भी प्रयोग किये हैं। रीतिकाल के कवि काव्य संबंधी चमत्कारों के प्रेमी थे। भारतेन्दु जी ने पद-गुप्त, मात्रा-च्युतक, अक्षर-च्युतक, विन्दुमती, प्रहेलिका, अन्तर्लापिका, वहिर्लापिका, प्रश्नोत्तर एवं समस्या पूर्ति के चमत्कार अनेक कविताओं में प्रदर्शित किये हैं।[१] उनके समय तक यह परंपरा जीवित दिखाई पड़ती है। वस्तुतः काव्य के चमत्कार-पूर्ण प्रयोग सामन्त युग में अधिक प्रचलित थे। दरबारी कविता में इनको अत्यधिक आश्रय मिला था। राष्ट्रीयता के युग में आते आते इनका प्रचार एक साथ घट जाता है। निदान आलोच्यकाल में चित्रकाव्य की परंपरा का अन्त हो गया है। आधुनिक युग में कविता का मानदंड बदल गया है। अब वह बौद्धिक विकास की वस्तु न होकर जीवन-सापेक्ष हो गई है। चित्रकाव्य में बौद्धिक विलास ही अधिक है। अतः वर्तमान काल में काव्य के प्रतिमान बदल जाने से उसका अन्त होना स्वाभाविक ही है।

प्रतीक-परंपरा

आलोच्यकाल से पूर्व हिन्दी काव्य में प्रतीकों की एक स्वतंत्र परंपरा का विकास हुआ है। कवियों की वाणी जब भावों को समग्र रूप से व्यक्त करने में असमर्थ हो जाती है, तब वह प्रतीकों का आश्रय लेती है। इसी से भिन्न-भिन्न प्रकार के भावों को प्रकट करने के लिए असंख्यक प्रतीकों का सृजन हुआ है। इनमें से बहुत से प्रतीक साधारण व्यवहार में प्रचलित हो जाने से अपना महत्त्व खो बैठते हैं और कुछ प्रतीकों का प्रभाव कहीं अधिक बढ़ जाता है 'फूल' और 'कांटा' साधारण व्यवहार के प्रतीक हैं, जिनसे सुख और दुःख के भावों की अभिव्यक्ति होती है, किन्तु नित्य-प्रति के प्रयोग से इनका प्रतीकत्व नष्ट हो गया है। भिन्न-भिन्न युगों के कवियों ने भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रतीकों का सृजन किया है। हिन्दी साहित्य में सांकेतिक प्रतीकों का प्रयोग सबसे पहले सिद्ध और नाथ योगियों ने किया। कबीर ने इन परंपरागत प्रतीकों को अविकल रूप में अपनाया है। नाथ और सिद्ध कवियों ने अधिकतर अपने प्रतीकों को हठयोग प्रदीपिका आदि तंत्र शास्त्र के ग्रंथों से ग्रहण किया है। कबीर ज्ञानी सन्त थे। अतएव अपने आध्यात्मिक अनुभवों को वे प्रतीकों के माध्यम से प्रकट किया करते थे—शून्य सहज, निरंजन, लौ, सुरति, निरति, नाद, विन्दु आदि ऐसे ही प्रतीक हैं, जिनसे आध्यात्मिक भावों की अभिव्यक्ति होती है[२]। कबीर के

१—देखिये, भारतेन्दु ग्रंथावली, दूसरा खंड, पृ० ७४ , ७४३, ८७६ और ८१०।

२—देखिए, हजारीप्रसाद द्विवेदी कबीर। पृ० ७१।

अनेक प्रतीक दाम्पत्य एवं वात्सल्य के भावों को प्रकट करते हैं।

हरि मोरा पीव मैं हरि की बहुरिया,
राम बड़े मैं छुटक लहुरिया।
हरि जननी मैं बालक तेरा
काहे न अवगुन बकसहु मेरा ॥

इसमें पिय, बहुरिया दाम्पत्य जीवन से और जननी, बालक वात्सल्य जीवन से संबंध रखते हैं। कबीर के साहित्य में सांकेतिक, पारिभाषिक, संख्यामूलक, रूपकात्मक और उलटबासियों पर आधारित बहुत से प्रतीक मिलते हैं।

सूफी कवियों में जायसी की प्रतीक-योजना अत्यंत हृदयग्राही है। जायसी से संपूर्ण पद्मावत को प्रतीकात्मक पद्धति पर रचा है। जायसी रहस्य-वादी कवि थे, अतएव उनके प्रतीकों से आध्यात्मिक भावों की व्यंजना होती है। ये प्रतीक दो भागों में विभाजित किए जा सकते हैं—आध्यात्मिक और साहित्यिक। आध्यात्मिक प्रतीकों में रहस्यात्मक संकेत पाए जाते हैं तथा उनके काव्यात्मक प्रतीक परंपरागत और रूढ़ हैं।

नवों खंड नव पौंरी, औ तहं वज्र किवार।
चारि बसेरे सो चढ़ै, सत सों उतरे पार।

ये चार बसेरे प्रतीकात्मक हैं। आचार्य रामचन्द शुक्ल के अनुसार—

(१) शरीअत — कर्मकांड का प्रतीक है।
(२) तरीकत — उपासना कांड का प्रतीक है।
(३) मारिफत — ज्ञानकांड का प्रतीक है।
(४) हकीकत — सिद्धावस्था का प्रतीक है।

जायसी के साहित्यिक प्रतीक चिर प्रचलित हैं, किन्तु उनमें प्रयोगात्मक दीप्ति आ गई है—'भंवर छपान हंस परगटे'। यहाँ भँवर श्यामता का तथा हंस श्वेतता का प्रतीक है। नागमती की वृद्धावस्था की ओर संकेत है। चन्द्र-बली पांडेय ने सूफी कवियों के प्रतीकों के विषय में लिखा है 'प्रतीक ही सूफी साहित्य के राजा हैं। उनकी अनुमति के बिना सूफियों के क्षेत्र में पदार्पण करना एक सामान्य अपराध है। प्रतीकों के महत्व को समझ लेने पर तसव्वुफ एक सरल चीज है[१]।'

कृष्ण भक्त कवियों में सूर ने भी आध्यात्मिक एवं काव्यात्मक दोनों प्रकार के प्रतीकों का प्रयोग किया है। उनका भ्रमर गीत और मुरली-माधुरी

१—देखिए, तसव्वुफ अथवा सूफीमत, पृ० ६७।

तोड़ दिए जब सब अवगुंठ,
रहा एक केवल सुख लुंठन—

—गीतिका, निराला

(४) पथ की रज में हैं अंकित, तेरे पद-चिह्न अपरिचित,
मैं क्यों न इसे अंजन कर, आंखों में आज बसाऊं।

—महादेवी

(५) वह बोल उठी कोकिल अधीर।
मेरे बसन्त के भीतर भी
दिख पड़ी शिशिर की क्या लकीर ?

—रामकुमार

(६) निकल रही है उर से आह,
ताक रहे सब तेरी राह,
चातक खड़ा चोंच खोले है, संपुट खोले सीप खड़ी।
मैं अपना घट लिए खड़ा हूं, अपनी-अपनी हमें पड़ी।

—मैथिलीशरण

(७) शमित करो विष की प्रचंडता, शमित करो यह दाह,
जन्मो जन्मो अमृत। देवता, देख रहे हैं राह।

—अमृत-मन्थन, दिनकर

(८) शक्ति लग आहत पड़ा है आज भारत
रो रहा है राम सत्यों का प्रदर्शक।
भूल मत संजीवनी है आज जनता,
रावणों का ध्वंस ही है आज प्रेरक।

—सेतुबन्ध, रांगेयराघव

उपर्युक्त उदाहरणों में आए हुए प्रतीकों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—प्रकृति मूलक प्रतीक तथा यथार्थता मूलक प्रतीक।

प्रकृतिमूलक प्रतीक—

पहले खंड में 'चातक' और 'घन' के प्रतीकों में प्रेमी और प्रेमास्पदका भाव-संबंध व्यंजित हुआ है। दूसरे में दो पक्षी हैं, जीव और ईश्वर तथा पीपल का फल सांसारिक भोग का प्रतीक है। तीसरे में दाम्पत्य जीवन का प्रतीकात्मक चित्रण है। इसमें जीवात्मा की परमात्मा के लिए पुकार है। चौथे में प्रेमी और प्रिय का रागात्मक संबंध व्यंजित हुआ है। प्रिय के चरणों की धूल को आंखों में

भांजने से उसे असीम सुख का अनुभव होता है। 'पथ की रज' माधुर्य का प्रतीक है। यहां अलौकिक प्रिय की ओर लक्ष्य है। पांचवें में 'कोकिल' प्रिय की स्मृति का प्रतीक है, बसन्त जीवन का और शिशिर विरह का। इन प्रतीकों में रहस्यमय मिलन की व्यंजना है। छठें गीत में चातक, सीप एवं घट उपलक्षण हैं, जिनसे प्रेमी और प्रिय के संबंध की मधुर व्यंजना हो रही है।

यथार्थता मूलक प्रतीक—

सातवें खंड में विष और अमृत दुःख और सुख के प्रतीक हैं। अथवा विष है, सन्तप्त जीवन और अमृत है, अमर जीवन। देवता यहां जन-शक्ति का प्रतीक है। आठवें में पीड़ित भारत से आहत लक्ष्मण की ओर संकेत है, राम सत्य के प्रतीक हैं और रावण प्रतीक है, शोषक वर्ग का।

छायावादी-रहस्यवादी काव्य के प्रतीक प्राकृतिक जगत से संगृहीत हैं और प्रगतिवादी-प्रयोगवादी काव्य के यथार्थ जीवन से। पहले वर्ग के प्रतीकों से सुख-दुःख, विरह-मिलन, हर्ष-विषाद के भावों की व्यंजना होती है तथा दूसरे वर्ग के प्रतीकों से त्रास, उत्पीड़न एवं शोषण के भावों की। पहले वर्ग के प्रतीक जीवन के मधुर, कोमल पक्ष को चित्रित करते हैं तथा दूसरे जीवन की कटु, तिक्त एवं कठोर परिस्थितियों का चित्रण करते हैं।

जयशंकर 'प्रसाद' की झरना कविताओं में अलौकिक प्रिय के साथ जिस प्रेम की प्रतीकात्मक व्यंजना है, उसमें परंपरागत प्रतीकों का ही आधिक्य है। पन्त की स्वर्ण किरण, स्वर्ण धूलि की वैदिक ऋचाओं पर आधृत उषा, भूषण, सविता, द्वा सुपर्णा, ज्योति वृषभ, अग्नि, काल, अश्व, इन्द्र, वरुण, सोम नामी शीर्षक रचनाओं में प्रतीकों का प्राचुर्य है। हिन्दी-काव्य परंपरा में ये प्रतीक सीधे रूप से तो नहीं आए हैं, किन्तु वैदिक युग के इन प्रतीकों में भारतीय परम्परा का ही स्वारस्य है। पन्त जी ने ही सबसे पहले हिन्दी-काव्य में वैदिक-प्रतीकों की अवतारणा की है। 'स्वर्ण-धूलि' के अन्त में 'मानसी' का रूपक प्रतीकात्मक है। यह पुरुष-नारी रूपक है। इसमें 'पिक' मिलन और भोग का एवं 'पपीहा' विरह और त्याग का प्रतीक है।

निराला जी की गीतिका के अनेक रहस्यमय गीतों की प्रतीक-योजना परंपरानुगत हैं। 'तुम और मैं' कविता में उपास्य-उपासक के मधुर भाव-संबंध को उनके प्रतीकों के द्वारा व्यक्त किया गया है। महादेवी के विरह-गीतों में जिस माधुर्य-भाव की व्यंजना है, उसकी अभिव्यक्ति विविध प्रतीकों के माध्यम से हुई है। उनके रहस्यमय गीतों में अनेक दाम्पत्य जीवन के मनोहर चित्र हैं, जिनमें

सन्त कवियों को सी मृदुलता, मोहकता एवं व्यंजकता है। इनमें संबंधमूलक और रूपकात्मक प्रतीक-योजना के साथ साथ अन्योक्ति पद्धति का बाहुल्य है। वस्तुतः महादेवी ही आधुनिक युग की रहस्यवादी कवयित्री हैं जिनके रहस्यात्मक प्रतीक अपनी व्यंजकता और प्राणवत्ता में निरुपम हैं।

छायावादी-रहस्यवादी काव्य में मेघ, चातक, दीपक, पतंग, बिन्दु, समुद्र, शशि, अतिथि, कसौटी, फणि, हीरा, वेणु, अन्धकार, रत्न, वीणा, उषा, ज्योत्स्ना, वसन्त, पूषण, सुमन, चकवी, चकोर, भ्रमर, पिक, मृगतृष्णा, नौका, बन्दी, विष, अमृत आदि आदि परंपरागत प्रतीकों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार कामदेव प्रेम का, रति सौन्दर्य को, सूर्य तेज का, चन्द्रमा शीतलता का, उषा सौन्दर्य का प्रतीक है। कमल से कोमलता, कुमुदिनी से हास, समुद्र से प्राचुर्य, विस्तार, गंभीरता, आकाश से सूक्ष्मता, व्यापकता, पृथ्वी से क्षमा, अग्नि से तेज, वीणा से वाणी व विद्या, हंस से नीर-क्षीर विवेक, चातक से शुद्ध प्रेमी, सर्प से क्रूरता या कुटिलता का भाव व्यंजित होता है। कमल, कुमुद, कल्पवृक्ष, कल्पलता, कामधेनु, स्वर्ग, नरक, मेघ, दीपक, पतंग, पिक, भ्रमर, हाथी, सिंह, देव, दैत्य, चन्दन, गंगा, पारस, चिन्तामणि, आदि आदि अनेक प्रतीक हैं जो प्रतिदिन के व्यवहार में आते-आते साधारण महत्व के हो गए हैं।

प्रगतिवादी काव्य में भी अतीत की परंपरा के प्रतीकों के यत्रतत्र दर्शन मिल जाते हैं। यद्यपि इस धारा के कवि अपनी कविता को परंपरा से सर्वथा विच्छिन्न रखने का आग्रह लेकर चले हैं, फिर भी अनजाने में ही सही, परंपरागत प्रतीकों को लाने का मोह वे संवरण नहीं कर सके हैं।

प्रयोगवादी कवियों में नरेशकुमार, धर्मवीर और भवानीप्रसाद की कविताओं में प्राचीन प्रतीकों के प्रयोग मिलते हैं। नरेन्द्रकुमार की किरन धेनुएं, उषस, जनगरवा-चरैवेति, अश्व की वल्गा आदि कविताओं में परंपरागत प्रतीक-विधान की ओर प्रवृत्ति लक्षित होती है। भवानीप्रसाद की 'कमल के फूल' और 'प्रलय' शीर्षक कविताओं में और धर्मवीर की 'कविता की मौत' प्राचीन युग के प्रतीकों की सुध दिलाती हैं। प्रतीक प्राचीन हैं, पर वे नूतन अर्थ की अभिव्यक्ति करते हैं। नई कविता ने पुराने प्रतीकों को लिया है अवश्य, पर उनमें नूतन भाव की प्रतिष्ठा की है। 'कछुआ' भारतीय परंपरा का बहुत प्राचीन प्रतीक है। इससे आत्म-संयम इन्द्रिय-निग्रह का बोध होता है[1] किन्तु प्रभाकर माचवे ने

१—यदा संहरते चायं कूर्मो अंगनीव सर्वशः
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्यप्रज्ञाप्रतिष्ठिता ॥ गीता २।५८

'भारतीय संस्कृति' के लिए 'कछुए' का प्रतीक ग्रहण किया है, जिससे उपहास, निन्दा एवं क्षुद्रता की अभिव्यक्ति होती है। जिस प्रकार कछुआ बाह्य संस्पर्श से क्षुब्ध होकर अपने अंगों को समेट कर तुरन्त गुड़मुड़ी हो जाता है, उसी प्रकार नई रोशनी का किंचित् स्पर्श पाकर ही प्राचीन संस्कृति के पृष्ठ-पोषक छुईमुई की तरह सहम जाते हैं। कछुए की पीठ जिस प्रकार कड़ी, दृढ़ और चिकनी होती है, उसी प्रकार भारतीय संस्कृति भी है, जिस पर कोई दूसरा रंग नहीं चढ़ सकता है। इस प्रकार प्रयोगवादी कवियों ने पुराने प्रतीकों को नए अर्थ में ग्रहण किया है, जिससे उनमें नई प्राण-प्रतिष्ठा हुई है।

बच्चन की 'जो बीत गई' और आरसीप्रसाद की 'लघुता की इच्छा' शीर्षक कविताओं में परंपरागत प्रतीकों का ही प्रयोग है।

प्रगतिशील काव्य में कुबेर, इन्द्र, दधीचि, रुद्र, एकलव्य, अर्जुन, द्रौपदी, दुःशासन, दुर्ग, सखी आदि प्रतीक क्रमशः पूंजीपति उन्मद शक्ति, त्याग, प्रलय, अछूत, सवर्ण (सामन्तीय वर्ग का प्रतिनिधि), पीड़ित नारी, अत्याचार, बन्दी जीवन और स्नेह (सहानुभूति) आदि अर्थों की अभिव्यक्ति करते हैं।

निष्कर्ष यह है कि छायावादी-रहस्यवादी काव्य में परंपरागत प्रतीकों का जितना प्रयोग हुआ है, उतना प्रगतिवादी प्रयोगवादी काव्य में नहीं। वर्तमान कविता में प्रतीकात्मक शैली की मुख्यता होते हुए भी परंपरानुगत प्रतीकों का अभाव हो गया है। आजकल के कवि नए प्रतीकों को अभिनव अर्थों में लाने के प्रयोग कर रहे हैं तथा प्राचीन प्रतीकों के प्रति अरुचि दिखाई पड़ती है। फलतः नई कविता में पुराने प्रतीकों का ह्रास हो गया है।

छन्दों की परम्परा

छन्द का महत्व—

छन्द काव्य का अमर संगीत है। इसके लय-सौन्दर्य पर मनुष्य तो क्या पशु-पक्षी, जीव-जन्तु भी मुग्ध हो जाते हैं। इसीलिए कविता में छन्दो-विधान अनादि काल से चला आ रहा है। समस्त वैदिक एवं लौकिक काव्य में छन्द का आधिपत्य दृष्टिगोचर होता है। भारतीय परम्परा में महान् से महान् और साधारण से साधारण कवियों तक ने कविता की रचना करने के लिए छन्द का आश्रय लिया है। महाकाव्यों का सृजन ऊर्जस्वित छन्दों-विधान के आधार पर ही हुआ है। साहित्य की बात छोड़िए, धर्म शास्त्र, दर्शन-ग्रंथ, व्याकरण, कोश, अलंकार, कथा-साहित्य, इतिहास, पुराण, ज्योतिष, आयुर्वेद, अर्थ शास्त्र एवं तंत्र साहित्य आदि सभी विषयों को छन्दोबद्ध शैली में ही उपन्यस्त किया गया

है। छन्दोग्य उपनिषद् के एक रूपक से छन्द की महत्ता पर पूर्ण प्रकाश पड़ता है—'देवताओं ने मृत्यु के भय से अपने आपको (अपनी कृतियों को) छन्दों से ढाँप लिया। मृत्यु से आच्छादन करने के कारण ही छन्दों को 'छन्द' (छद् आच्छादने) कहते हैं[1]। छन्द की इसी प्रकार की एक अन्य व्युत्पत्ति मिलती है—'अपमृत्युं वारयितुमाच्छादयतीति छन्दः' (सायण) अर्थात् कलाकर और उसकी कृति को छन्द अपमृत्यु से बचा लेते हैं[2]।

हिन्दी-साहित्य के अन्दर भी छन्द और काव्य का अटूट संबंध है। प्रारंभिक युग से लेकर अर्वाचीन काल तक के सभी श्रेष्ठ कवियों ने छन्दोवद्ध काव्य-रचना का आदर्श उपस्थापित किया है। सूर, तुलसी, विहारी, केशव, घनानन्द, पद्माकर, भारतेन्दु आदि सभी उच्च कोटि के कवियों ने छन्दोमयी भाषा में ही अपने भावों को प्रकाशित किया है। प्रबन्ध हो अथवा मुक्तक किंवा गीति-काव्य हर एक रूप में छन्दो-विधान अवश्य है।

इससे स्पष्ट है कि काव्य और छन्द का घनिष्ठ संबंध है। छन्द के बिना काव्य को मृत्यु का भय है। छन्द काव्य को स्थिर जीवन तथा अमरत्व प्रदान करता है। इससे कव्य सुबोध, सुगम एवं रोचक हो जाता है। छन्द की सहायता से पाठ को हृदयंगम करना भी आसान होता है। छन्दोवद्ध साहित्य का मूल पाठ भी गद्य की अपेक्षा अधिक शुद्ध होता है।

प्राचीन हिन्दी काव्य में पाए जाने वाले छन्दों की परम्परा का वर्गीकरण नीचे प्रस्तुत किया जाता है—

(१) मात्रिक छन्द
- क—सम,
- ख—अर्ध सम, और
- ग—विषम।

(२) वर्ण-वृत्त
- क—गणाश्रित
- ख—वर्णाश्रित

(३) अन्त्यानुप्रास (तुक)

(४) गीति-तत्व

(५) पाद-योजना।

१—देखिये, छान्दोग्य उपनिषद्, १।४।२।

२—देखिये, ऋग्वेद १।१।१ सायण भाष्य।

(१) मात्रिक छन्द—

हिन्दी काव्य के प्रारंभिक युग से ही मात्रिक छन्दों का अधिक प्रयोग हुआ है। मात्रिक छन्दों की परम्परा प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य की देन है। रीतिकाल को छोड़कर हिन्दी-साहित्य के हर एक युग में मात्रिक छन्दों का ही सर्वाधिक प्रयोग हुआ है। वीर गाथाकाल का वीर छन्द मात्रिक है। यह ३१ मात्रा का छन्द है। ८, ८, १५ पर यति होता है और अन्त में गुरु-लघु पड़ते हैं। जगनिक का 'आल्ह' छन्द सबसे अधिक लोकप्रिय है।

SS SS || S|| S SS |S | SS S|
मुर्चा लोटो तब नाहर को, आगे बढ़े पियोरा राय। ३१ मात्राएँ
S SS||S ||S S ||S|S |SS |S
नौ से हाथिन के हलका मां, इकले घिरे कनौजी राय॥ ३१ मात्राएँ

दोहा, सोरठा, चौपाई, बरवै, कुंडलिया, रोला, छप्पय, तोमर, पादाकुलक, पद्धरि, रूपमाला, भूलना, हरिगीतिका, चतुष्पदी (चवपैया), त्रिभंगी, तंत्री आदि चिर प्रचलित मात्रिक छन्द हैं। हिन्दी-काव्य-परम्परा में उपर्युक्त मात्रिक छन्दों का ही बाहुल्य है। तुलसीदास की चौपाई, बिहारी के दोहे, रहीम के बरवै, चन्द और नाभादास के छप्पय, दीनदयाल गिरि और गिरधर की कुंडलिया विशेष प्रसिद्ध हैं।

हिन्दी में सम मात्रिक छन्द सबसे अधिक प्रयुक्त हुए हैं। हिन्दी के विशेष प्रसिद्ध अर्ध सम मात्रिक छन्द हैं, दोहा, सोरठा, बरवै, उल्लाल, आदि।

मिश्रित एवं अनियमित छन्दों की गणना विषम मात्रिक छन्दों में होती है। हिन्दी में विषम पादी छन्द दो प्रकार के हैं—संयुक्त छन्द और प्रवर्द्धित पादी छन्द। संयुक्त पादी विषम छन्द दो या अधिक छन्दों के संयोग से बने होते हैं तथा प्रवर्द्धित पादी विषम-छन्दों में चार से अधिक पाद होते हैं। नियमतः छन्द के चार पाद होते हैं, किन्तु यदि अनियमित रूप से किसी छन्द के पाँच, छः, आठ, बारह या इससे भी अधिक पाद रखे जायें तो उसकी भी गणना प्रवर्धित पादी विषम छन्द में होगी। कबीर, सूर तुलसी के पद अधिकतर इसी श्रेणी के अन्तर्गत हैं। हिन्दी काव्य-परम्परा में कुंडलियाँ, छप्पय, आदि संयुक्त पादी विषम छन्द है और सूर, तुलसी, मीरा, कबीर आदि के पदों की गणना प्रवर्धित पादी विषम छन्दों में की जा सकती हैं।

आलोच्यकाल की कविता में भी मात्रिक छन्दों का ही बाहुल्य है। पल्लव की भूमिका में कविवर पन्त ने मात्रिक छन्दों की उपयुक्तता तथा वर्णिक वृत्तों की अयुक्तता का इस प्रकार उल्लेख किया है 'हिन्दी का संगीत केवल मात्रिक

छन्दों में ही अपने स्वाभाविक विकास तथा स्वास्थ्य की संपूर्णता प्राप्त कर सकता है, उन्हीं के द्वारा उसमें सौन्दर्य की रक्षा की जा सकती है[1], छायावाद एवं प्रगतिवादी काव्य में मात्रिक छन्दों का ही विकास हुआ है, वर्णिक वृत्तों का नहीं।

मात्रिक छन्द हिन्दी-कविता की निजी विशेषता है। आधुनिक कवियों ने मात्रिक छन्दों को नई-नई लयों में विकसित किया है। बारह मात्रा के पाद से लेकर बत्तीस मात्रा तक के पाद के छन्दों का प्रयोग आधुनिक कविता में पाया जाता है। इनमें भी बारह मात्रा का तोमर, सोलह मात्रा का पादाकुलक (पद्धरि, अरिल्ल आदि), चौबीस मात्रा का रोला, अट्ठाईस मात्रा के यौगिक जाति के विधाता, सार आदि, तीस मात्रा के महा तैथिक जाति के ताटंक, लावनी आदि, इकत्तीस मात्रा के अश्वावतारी जाति के वीर छन्द, बत्तीस मात्रा के लाक्षणिक जाति के विविध मात्रिक छन्दों के प्रयोग प्रचुरता से मिलते हैं।

क—सम मात्रिका छन्द—

आधुनिक हिन्दी-काव्य में सम मात्रिक छन्दों का प्रयोग सबसे अधिक हुआ है। इस श्रेणी के अन्तर्गत पादाकुलक, अरिल्ल, सखी, पद्धरि, पीयूष वर्ष, राधिका, रोला, रूपमाला, हरिगीतिका, सार, ताटंक, वीर, लावनी आदि मुख्य हैं। इनमें भी रोला, हरिगीतिका, सखी, वीर, ताटंक, लावनी आदि छन्दों का प्रयोग अधिक हुआ है। सियारामशरण के 'नकुल तथा' निराला की 'राम की शक्ति-पूजा' में रोला है। रत्नाकर जी का गंगावतरण भी रोला में लिखा गया है। मैथिलीशरण गुप्त ने हरिगीतिका के प्रयोग में अच्छी सफलता प्राप्त की है। उनका जयद्रथवध इसी छन्द में लिखा गया है। प्रसाद के आँसू' काव्य में विधाता छन्द है, सुभद्रा कुमारी की सुप्रसिद्ध 'झांसी की रानी' कविता में ताटंक छन्द प्रयुक्त हुआ है। रामनरेश त्रिपाठी के 'पथिक' काव्य में सार छन्द है। यमुना के प्रति' (निराला) की रचना में वीर छन्द है तथा बत्तीस मात्राओं के छन्दों का प्रयोग दिनकर की 'हिमालय के प्रति', 'हाहाकार', 'कस्मै देवाय' आदि कविताओं में मिलता है। ताटंक, वीर, लावनी आदि छन्दों का आधुनिक कविता में अधिक प्रचार है।

मैथिलीशरण, रामनरेश, प्रसाद, पन्त, दिनकर, नवीन, भगवतीचरण, गोपालशरण सिंह, उदयशंकर, हरिकृष्ण, मिलिन्द, अंचल, नरेन्द्र, सोहनलाल

१—देखिए, सुमित्रानन्दन पन्त, पल्लव-भूमिका, पृ० २२, २३।

द्विवेदी आदि कवियों ने सम मात्रिक छन्दों के प्रयोग में अधिक रुचि दिखलाई है।

ख—अर्ध सम मात्रिक छन्द[1]

हिन्दी काव्य परम्परा में दोहा, सोरठा आदि इस श्रेणी के छन्द हैं। आधुनिक काल के कवियों ने इस परम्परा को और अधिक विकसित किया है। पन्त और निराला ने चरणों की संख्या बढ़ाकर इसके और भी नये-नये भेद किए हैं। 'पल्लव' (सुमित्रानन्दन) और उद्बोधन (निराला) कविताएँ इसके नवीन उदाहरण हैं।

> 'गरज गरज घन अन्धकार में गा अपने संगीत, (२७ मात्राएँ)
> बन्धु, वे बाधा-बन्ध-विहीन, (१६ मात्राएँ)
> आँखों में नव जीवन की तू अंजन लगा पुनीत (२७ मात्राएँ)
> बिखर झर जाने दे प्राचीन।—निराला, उद्बोधन (१६ मात्राएँ)

इस कविता के सम चरणों में १६, १६ और विषम चरणों में २७, २७ मात्राएँ हैं। यह अर्धसम मात्रिक छन्द का नया भेद है।

ग—विषम (मात्रिक) छन्द—

अनियमित छन्दों को इसी श्रेणी में रखा जाता है। इसके तीन रूप पाये जाते हैं—पहले वे हैं, जिनके चारों पादों में परस्पर असमानता होती है। दूसरे वे हैं जिनके चरणों की संख्या अनियमित होती हैं, ५,६,८ आदि। तीसरे वे हैं, जिनके कुछ चरण समान होते हैं और कुछ असमान। पन्त की पल्लव, उच्छवास, आँसू आदि कविताएँ पहली श्रेणी में, महादेवी के गीत, बच्चन और भगवतीचरण की कविताएँ दूसरी श्रेणी में तथा पन्त का 'मौन निमत्रंण', 'परिवर्तन', प्रसाद के झरना की 'असन्तोष', 'पी कहाँ', 'आशालता' आदि कविताएँ तीसरी श्रेणी में जाती हैं।

इससे स्पष्ट है कि आलोच्यकालीन कविता में मात्रिक छन्दों की परंपरा विविध रूपों में प्रस्फुटित हुई है। इसमें सम, अर्ध सम और विषम छन्दों की पर्याप्त काव्य-राशि का सृजन हुआ है। आधुनिक कवियों ने भिन्न-भिन्न जातियों के मेल से नए-नए छन्दों का निर्माण किया है। इसके अतिरिक्त नई-

---

१—इसके चारों पाद एक समान नहीं होते। पहला-तीसरा और दूसरा-चौथा आपस में मिलते हैं। 'विषम-विषम, सम सम चरण तुल्य अर्ध सम छन्द'। 'भानु'।

नई रंगत के छन्द भी बनाए हैं जो मात्रिक छन्दों में नए विकास के परिचायक है।

मात्रिक छन्दों के विषय में डा० पुत्तूलाल शुक्ल का भी यही मत है आधुनिक युग में हिन्दी काव्य मात्रिक छन्दों से जितना समृद्ध और संपन्न हो गया है, उतना पूर्ववर्ती कालों में कभी नहीं रहा। इसका कारण यह है कि प्राचीन हिन्दी में प्रयुक्त अधिकांश छन्दों का प्रयोग तो खड़ी बोली में हुआ ही है, साथ ही साथ आधुनिक कवियों ने प्राचीन प्रचलित लयों के आधार पर विविध प्रकार के नवीन छन्दों का भी निर्माण किया है। इस नवीनता और प्राचीनता की समृद्धि के योग से छन्द-समूह इतना विशाल हो गया है कि आज निखिल आर्य-भाषाओं में हिन्दी भाषा मात्रिक छन्दों में सर्वाधिक समृद्ध है[1]।

आधुनिक कवियों में मैथिलीशरण जी हरिगीतिका के लिए, हरिऔध जी चौपदों के लिए, ठा० गोपालशरण सिंह कवित्त के लिए, पन्त जी पीयूष वर्ष (ग्रन्थि) के लिए तथा दिनकर जी बत्तीस मात्रा के लावनी छन्द के लिए विशेष प्रसिद्ध हैं।

२—वर्ण वृत्त—

हिन्दी-काव्य-परंपरा में वर्ण वृत्तों के दो रूप मिलते हैं, गणाश्रित और वर्णाश्रित। वर्णाश्रित छन्दों में हिन्दी को निजी परंपरा का रूप दृष्टिगोचर होता है जिसका संस्कृत के वर्ण वृत्तों से कोई संबंध नहीं है। कवित्त, सवैया, घनाक्षरी आदि इसी प्रकार के छन्द हैं जिनका हिन्दी काव्य क्षेत्र में अपने ढंग पर विकास हुआ है, सर्वथा स्वतंत्र रूप में। संस्कृत साहित्य में ये छन्द नहीं मिलते हैं। इस परंपरा का रीतिकाल में चरमोत्कर्ष दिखाई पड़ता है। गणाश्रित वर्णिक वृत्तों में वे छन्द हैं जो संस्कृत से सीधे आए है। इनमें द्रुतविलम्बित, मन्दा-क्रान्ता, मालिनी, वंशस्थ, शिखरिणी, शार्दूल विक्रीड़ित, वसन्त तिलक, त्रोटक, भुजंग प्रभात आदि छन्दों के नाम आते हैं। प्राचीन परंपरा में तुलसी और केशव ने संस्कृत के वर्ण वृत्तों का यत्रतत्र प्रयोग किया है, किन्तु उसकी कोई पुष्ट परंपरा विकसित नहीं हुई है। द्विवेदी युग में वर्णवृत्तों की प्रवृत्ति बड़े उत्साह एवं वेग से प्रारंभ होनी है। इस काल में खड़ी बोली को संस्कृत के छन्दों में ढालने का एक आन्दोलन सा चल पड़ता है। अयोध्या सिंह उपाध्याय, रामचरित उपाध्याय, नाथूरामशंकर आदि अनेक कवियों ने इस दिशा में बहुत अच्छी

१—आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द-योजना, पृ० १६२।

सफलता दिखलाई है। इस प्रकार वर्ण वृत्तों की नई परंपरा का प्रारंभ द्विवेदी युग से होता है।

आलोच्यकाल में वर्णवृत्तों की ओर कवियों की बहुत कम प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है, फिर भी प्रबन्ध काव्यों में इस परंपरा का रूप स्फुट है। प्रियप्रवास (अयोध्यासिंह उपाध्याय), साकेत (मैथिलीशरण गुप्त), सिद्धार्थ, वर्द्धमान (अनूप शर्मा), अंगराज (आनन्दकुमार), मधुपुरी (गयाप्रसाद) आदि प्रबन्ध काव्यों में संस्कृत के वर्णवृत्तों की परंपरा पूर्णरूप से सुरक्षित है।

इस क्षेत्र में कुछ कवियों ने नये प्रयोग भी किए हैं। चार सगण के तोटक छन्द की प्रत्येक पंक्ति में १२ अक्षर होते हैं तथा चार पाद होते हैं, किन्तु नीचे के छन्द में चार के स्थान पर छः पाद है—

कुछ काम करो, कुछ काम करो
जग में रह के कुछ नाम करो।
यह जन्म हुआ किस अर्थ अहो?
समझो जिसमें यह व्यर्थ न हो।
कुछ तो उपयुक्त करो तन को।
नर हो न निराश करो मन को॥—मैथिलीशरण

यह प्रवर्धितपादी वर्ण वृत्त है जिसके पाद नियत संख्या से अधिक हैं।

वर्णाश्रित छन्दों में अक्षरों की गणना का विचार होता है इनमें कवित्त, सवैया की परंपरा हिन्दी-साहित्य के मध्यकाल से स्थापित हो जाती है। तुलसी, केशव, रसखान, घनानन्द, पद्माकर, वैताल आदि—विशेषतः पुराने दरबारी कवियों और चारणों की कविता में इस शैली का पूर्णोत्कर्ष पाया जाता है। वर्णाश्रित दंडक छन्द के अनेक भेद हैं, जिसके प्रत्येक पाद में २३ अक्षर से ३३ अक्षर तक होते हैं। दंडक दो प्रकार के हैं—(१) साधारण और (२) मुक्तक। साधारण दंडकों में अक्षरों के गुरु-लघु क्रम के नियमों का पालन किया जाता है, परन्तु मुक्तक दंडक में इस क्रम का निर्वाह नहीं होता। मुक्तक दंडकों को प्रायः कवित्त कहा जाता है। हिन्दी काव्य-परंपरा में इन्हीं का प्रयोग अधिक पाया जाता है। इनमें भी मनहरण,[१] रूप घनाक्षरी[२] और देव घनाक्षरी[३] मुख्य हैं।

१—इसके प्रत्येक पाद में ३१ वर्ण होते हैं, जिनमें अन्तिम वर्ण गुरु होता।

२—इसके प्रत्येक पाद में ३२ वर्ण होते हैं, अन्त का वर्ण लघु होता है।

३—इसके प्रत्येक पाद में ३३ वर्ण हैं, अन्तिम तीन वर्ण प्रायः लघु होते हैं। 'भानु'।

आलोच्य काल के कवियों में कवित्त और सवैया के प्रयोग के लिए शंकर, हरिऔध, मैथिलीशरण, गोपालशरण सिंह, हितैषी, रत्नाकर, रामचन्द्र शुक्ल 'सरस,' सत्यनारायण, हरदयालु सिंह (दैत्य वंश, रावण महाकाव्य) आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

उपर्युक्त अध्ययन से कुछ निश्चित परिणाम निकाले जा सकते हैं— आधुनिक काल में वर्ण-वृत्तों की दो शैलियां प्रचलित हैं (१) हिन्दी की स्वतः विकसित कवित्त-सवैया की शैली और (२) संस्कृत के वर्ण-वृत्तों की शैली। दोनों ही शैलियों का विकास अधिकतर प्रबन्ध काव्यों में हुआ है, किन्तु कवित्त-सवैया का प्रयोग अधिकतर ब्रजभाषा के काव्य-ग्रंथों में तथा संस्कृत के छन्दों का व्यवहार प्रायः खड़ी बोली के काव्यों में हुआ है। स्फुटिक रचनाओं में भी कवित्त-सवैया की शैली का प्रयोग हुआ है, किन्तु संस्कृत के वर्ण-वृत्तों का नहीं। इसके अतिरिक्त सबसे प्रधान बात यह है कि वर्तमान काल के कवियों की प्रवृत्ति सामान्यतः मात्रिक छन्दों की ओर है। इस कारण वर्णिक वृत्तों की उपेक्षा हो गई है। मात्रिक छन्दों का प्रयोग प्रायः शत-प्रतिशत कवियों में पाया जाता है जबकि वर्ण वृत्तों का व्यवहार गिने चुने कवियों ने ही किया है। छायावादी, प्रगतिवादी एवं प्रयोगवादी कविता में वर्ण वृत्त बहिष्कृत हो गए हैं।

३—अन्त्यानुप्रास[1] (तुक)—

हिन्दी-काव्य-परंपरा में प्रारंभिक युग से ही तुक का एकच्छत्र राज्य चला आता है। साधारण कवियों से लेकर महा कवियों तक ने इसको अपने काव्य में स्थान दिया है। इस कारण छन्द के साथ तुक का विचार भी आवश्यक हो जाता है।

अंत्यानुप्रास या तुक छन्द की दृष्टि से अनावश्यक होते हुए भी माधुर्य और स्वारस्य का घटक अवश्य है। इसी कारण सभी पुराने कवियों की वाणी

१—तुक का छन्द या ध्वनि-संतुलन से कोई सीधा संबंध नहीं। वस्तुतः यह साहित्य-शास्त्र का विषय है, छन्दः शास्त्र का नहीं। संस्कृत के छन्दों में इसका प्रयोग नहीं मिलता है। प्राकृत और अपभ्रंश काव्य में इसका प्रयोग चल पड़ा था। अपभ्रंशों के अनुकरण से ही यह हिन्दी में आया है। हिन्दी के प्रारंभिक युग से ही तुक का प्रयोग होता चला आ रहा है। साहित्य-शास्त्र में 'अन्त्यानुप्रास' के नाम से इस पर विचार हुआ है।—लेखक।

में यह निरपवाद रूप से मिलता है। इससे कविता में नाद-सौन्दर्य की वृद्धि होती है तथा श्रुति-मधुरता आ जाती है। हिन्दी-कविता की यह एक विशिष्ट परंपरा है जिसने काव्य को सुदीर्घ काल तक अपनी स्वर-तंत्री से झंकृत किया है अतएव हिन्दी-काव्य में छन्द और तुक का घनिष्ठ संबंध पाया जाता है।

तुक का आधार ध्वनि-साम्य है। इससे संगीत का माधुर्य उत्पन्न हो जाता है, शब्दों में सुसंगति आ जाती है तथा लय का साम्य स्थिर हो जाता है तथा इसके फलस्वरूप कविता में राग का माधुर्य गूंज उठता है। तुक का संगीत अद्‌भुत आकर्षण-शक्ति रखता है, जिसे सुनकर कानों को सुख होता है। हृदय उद्वेलित होता है तथा प्राणों में ओज स्पन्दित हो उठता है। इससे शब्द सुसंगठित हो जाते हैं, अर्थ में सरसता आ जाती है और भाव ऊर्जस्वित हो उठता है। इसी कारण सामान्य कवियों से लेकर मूर्धन्य कवियों तक ने इसका लाभ उठाया है और लोक-गीतों—दादरा, कजली, आल्हा, ढोला, होली, रसिया आदि से लेकर सूरसागर और रामचरितमानस तक में अन्त्यानुप्रास का एकाधिपत्य दृष्टिगोचर होता है।

हिन्दी-कविता में तुक कई प्रकार से व्यवहृत हुआ है—(१) सर्वान्त्य, (२) विषमान्त्य और (३) अनियत। जहाँ सभी पादों में एक सा ही तुक चलता है- उसे सर्वान्त्य, जहाँ पहले और तीसरे पाद का तुक मिलता है, उसे विषमान्त्य, जैसे सोरठा तथा उनसे भिन्न प्रकार के तुक को अनियत कह सकते हैं। यह आधुनिक युग की कविता में ही पाया जाता है।

दास कवि ने तुक को उत्तम, मध्यम और अधम भेदों में विभाजित किया है[१]। इनमें भी प्रत्येक के अवान्तर भेद दिखाए हैं। उत्तम तुक के समसरि (जिसके चारो पादों के तुक सम हों), विषम सरि (जिसके एक सम और तीन विषम तुक हों) और कष्ट सरि (जिसके किसी पद का तुक कष्ट से मेल रखता हो) भेद होते हैं। अधम तुक में कहीं अमिल-सुमिल, कहीं आदि मत्त अमिल और कहीं अन्त मत्त अमिल तुक होते हैं। वीप्सा में एक ही तुक की पादान्त में दो बार आवृत्ति होती है (जैसे घनु-घनु, छनु-छनु,-तनु-तनु और वनु-वनु)। पाद के अन्त में केवल स्वर-साम्य पर ही रखा हुआ तुक अधम माना जाता है (जैसे द्वै, वै, ह्वै, च्वै आदि)। अर्थ-हीन तुक भी अधम कोटि के होते हैं।

तुक के प्रयोग में कवियों ने बहुत स्वच्छन्दता से काम लिया है। इसकी रक्षा के लिए शब्दों के तत्सम रूपों को विकृत कर डाला है, मनमाने रूप गढ़

१—देखिए—दास कवि कृत—काव्य निर्णय—तुक वर्णन अध्याय।

डाले तथा निरर्थक तुकों के प्रयोग भी कर डाले हैं। तुक का निर्वाह करने के लिए गंभीर का गभीरनि लोग का लोइ, लुट्त का लुट्ट्त, चरण का चर्ण, दशरथ का दसरत्थ, देश का देसु, मित्र का मित्त, आदि परिवर्तन कर डाले हैं।

मैथिलीशरण गुप्त ने तुकों के प्रयोग में सबसे अधिक रुचि प्रदर्शित की उनके साकेत, यशोधरा आदि काव्यों के छोटे से छोटे छन्दों में भी तुक का निर्वाह हुआ है। चार और छः मात्राओं तक के तुक तो प्रायः मिलते ही हैं, गुप्त जी ने दस मात्राओं के तुक भी रखे हैं।

तुले धुले से खुले खड्ग चमचमा रहे थे।
तप्त सादियों के तुरंग तमतमा रहे थे॥

इतने लम्बे तुकों के प्रयोग बहुत कम कवियों ने ही किए हैं, किन्तु आजकल की कविता में अनियत तुकों के प्रयोग बहुत मिलते हैं। पन्त, प्रसाद, निराला आदि छायावादी कवियों ने तुकों के क्षेत्र में पर्याप्त नवीन प्रयोग किए हैं। कहीं कहीं १, २, ४ पंक्तियों के तुक मिलते हैं। तीसरी पंक्ति भिन्न तुकान्त है और कहीं १, ३ तथा २, ४ पादों में तुकों का क्रम रखा है। तुकों में ध्वनि-योजना के द्वारा नाद-सौन्दर्य भी उत्पन्न किया गया है।

यह कैसा जीवन का गान
अलि, कोमल कलमल टलमल !
अरी, शैल बाले नादान
यह अविरल कलमल छलछल !

—पन्त

बच्चन की मधुशाला में छः छः चरणों के बन्ध हैं, जिनमें १,२,४ के तुक समान हैं, फिर छठी पंक्ति के साथ अन्तस का तुक मिलता है। इस प्रकार एक शब्द के अतिरिक्त पूरे पाद की आवृत्ति हो जाती है।

दिनकर, अंचल, बच्चन, नरेंद्र, नवीन, भगवतीचरण, सुभद्राकुमारी आदि कवियों ने ऐसी अनेक कविताओं की रचना की है, जिनमें अन्तरा की बार बार आवृत्ति द्वारा कविता में सौन्दर्य उत्पन्न किया गया है। यह नई प्रवृत्ति आधुनिक युग की नई परम्परा के रूप में चल पड़ी है। पुरानी कविता में यह रूप पदों के अतिरिक्त और कहीं नहीं मिलता है।

निष्कर्ष यह है कि काव्य के प्रबन्ध, मुक्तक एवं प्रगीत—सभी भेदों में अन्त्यानुप्रास की योजना पाई जाती है। छायावादी कवियों ने तुकों के नये-नये प्रयोग किये हैं। इसके द्वारा नाद-सौन्दर्य एवं संगीत की सृष्टि की है। प्रगति-

वादी कवि भी इसके प्रति सजग हैं, किन्तु प्रयोगवादी काव्य में तुक का विधान छूटता जा रहा है।

(४) गीत—

संगीतमय छन्दो-विधान हिन्दी-कविता की एक अन्यतम विशेषता है। हिन्दी-काव्य का एक विशाल अंश पद-शैली में निर्मित है जिसमें गेय-तत्व प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। इसके सृजन में विविध राग-रागिनियों का उपयोग हुआ है। विद्यापति, अष्टछाप के कवि, तुलसी, मीराबाई, नागरीदास, भारतेंदु आदि अनेक कवियों के काव्य में गीति-तत्व का पूर्ण माधुर्य है।

भक्त कवियों ने जिस गीत-काव्य की सर्जना की है, उसमें मात्रिक छन्दों का प्राचुर्य है। कबीर, सूर, तुलसो, मीरा आदि ने अपने पदों में एक पाद पादाकुलक, चौपाई या शृंगार का टेक के रूप में रखकर पीछे रूपमाला, सार, विधाता, सरसी, हरिगीतिका, रोला आदि के अनेक पाद रखकर गीतियों की रचना की है।

'हरि बिनु मीत नहीं कोउ तेरे।
सुनि मन कहौं पुकारि तो सों हौं, भजि गोपालहि मेरे॥
या संसार विषय विष सागर, रहत सदा सब घेरे।
'सूर' स्याम जिनु अन्तकाल में, कोउ न आवत नेरे॥'

इसमें एक पाद पादाकुलक का रखकर पीछे तीन पाद 'सार' छन्द के हैं[1]।

"मैया मैं नहीं माखन खायो।"

यह पद भी सप्तपादी सार है। इसके प्रारम्भ में एक पाद पादाकुलक का रखा गया है।

"सन्तो राह दोउ हम दीठा।"

हिन्दू तुरक हटा नहीं माने, स्वाद सबन को मीठा॥ 'इत्यादि यह प्रसिद्ध पद नवपादी सार है।

भक्त कवियों ने अपने पदों को विविध राग-रागिनयों में बिठाया है—असावरी, भैरवी, कलिंगड़ा आदि।

छायावादी काव्य में संगीत का तत्व प्रचुरता से मिलता है। इस क्षेत्र

१—पादाकुलक का पाद सोलह मात्रा का होता है। चारो चौकल पादाकुलका। सार छन्द के हर एक पाद में २८ मात्राएँ होती हैं। यति १६, १२ पर होता है।
तथा अंत में दो गुरु होने चाहिए। 'भानु'।

में पन्त, प्रसाद, निराला, महादेवी के नाम विशेषतः उल्लेखनीय हैं। प्रसाद के नाटकीय गीतों में गीत-तत्व प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। पन्त की पल्लव और गुंजन की कविताओं में संगीत का अनुपम माधुर्य विद्यमान है। उनके 'तप रे मधुर-मधुर मन' गति में अनूठा गीत-सौन्दर्य है। इसी प्रकार—

'तुम आती हो
नव अंगों का
शाश्वत मधु विभव लुटाती हो।

इस गीत में लयान्विति का सौन्दर्य कितना मोहक है। निराला के अनामिका और गीतिका के गीतों में गीत-विन्यास दर्शनीय है। ये गीत धम्मार, रूपक, झपताल, चौताल, तीन ताल, दादरा आदि अनेक राग-रागिनियों में बंधे हुए हैं। सात मात्राओं की ताल में उनका एक 'रूपक' गीतिका से प्रस्तुत किया जाता है—

जग का एक देखा तार
कंठ अगणित, देह सप्तक
मधुर स्वर झंकार। —निराला

इस गीत में सात-सात मात्राओं के विभाजन का कम है। गायक इसे अन्य भेदों में भी गा सकता है।

महादेवी की गीत-सृष्टि मनोरम है। उन्होंने गीतों को स्वर-ताल की अपेक्षा विभिन्न लयों में बाँधने का प्रयास किया है।

इससे स्पष्ट है कि छायावादी कवियों के गीतों में स्वर, ताल, और लय का पूर्ण सामंजस्य है। इन कवियों ने प्राचीन शैली के रागों में खड़ी बोली की शब्दावली को ढालने का स्तुत्य प्रयत्न किया है।

छायावादी काव्य-भूमि से बाहर हरिऔध, मैथिलीशरण, गुरुभक्त सिंह, सोहनलाल द्विवेदी, उदयशंकर, हरिकृष्ण 'प्रेमी', बच्चन, अंचल, नरेंद्र, आरसी प्रसाद सिंह, गोपाल सिंह नैपाली सुमित्राकुमारी, तारा पांडेय, आदि-आदि की कविताओं में गीत-तत्व का मनोहर विधान पाया जाता है।

शुद्ध गीति-तत्व के अतिरिक्त कुछ भिन्न शैली के गीतों की सृष्ठि भी मिलती है। इनमें उर्दू की तर्ज़ से प्रभावित गजल गीति, अंग्रेजी तर्ज़ से प्रभावित प्रगीत, तथा लोक-ध्वनियों से प्रभावित ग्राम-गीतों की रचना विशिष्ट स्थान रखती है। ये तीनों गीत-शैलियाँ नवीन परम्परा के अन्तर्गत है, जिनकी सृष्टि नवीन युग की देन है। यह परम्परा स्वस्थ, प्राणवान एवं विकासोन्मुख है। वर्तमान काल के अधिकांश कवि गीतों की सृष्टि की ओर अधिक सचेष्ट हैं।

(५) पाद-योजना—

छन्द के पाद या चरण में अनेक छोटी-बड़ी ध्वनियों को संतुलित किया जाता है। जिस प्रकार पाद (पैर) से मनुष्य का शरीर गतिशील रहता है, बल्कि शरीर का ढांचा ही इसके आधार पर खड़ा है, उसी प्रकार छन्द का आधार पाद ही है। पाद ही वस्तुतः छन्द की योनि है, जिससे छन्द का छन्दत्व निर्धारित होता है। समान छन्द का लक्षण उसके एक-पाद से ही निर्धारित होता है। पाद के लक्षण की भिन्नता से ही छन्द की भिन्नता हो जाती है। पाद ही वह सांचा है जिसमें संपूर्ण छन्द का शरीर ढलता है, ध्वनियों का संतुलन होता है और मात्राओं का काल निर्धारित होता है।

साधारणतः छन्द के चार पाद होते हैं। कहीं-कहीं दो, तीन, पांच, छः या इससे भी अधिक पाद हो सकते हैं। किसी छंद का आकार कितना ही छोटा-बड़ा हो, उसका आधारभूत घटक पाद ही है।

समस्त हिन्दी-कविता में छन्द-निर्माण के हेतु पाद की लघुतम इकाई नियत रूप से पाई जाती है। इस कारण हिन्दी-कविता की छन्द परम्परा में पाद का स्थान महत्वपूर्ण है।

आधुनिक काल की कविता में यद्यपि अनेक प्रकार के छन्दों के प्रयोग चल पड़े हैं, तो भी पाद-व्यवस्था अवश्य रहती है। परम्परानुगत मात्रिक एवं वर्णिक छन्दों में तो पाद-योजना अवश्य होती है। उसके विषय में तो कहना क्या? मुक्त छन्द या फ्री वर्स में भी इसका विधान होता है। मुक्त छन्द में पाद-योजना लय की अनुगामिनी होती है। इसके पाद अनमिल होते हैं जिनके वर्ण, मात्रा, एवं छुटाई-बड़ाई के क्रम में कोई साम्य का आधार नहीं ढूंढ़ा जा सकता। किन्तु पाद-व्यवस्था अवश्य रहती है। विषम छन्द के पादों में कहीं एक शब्द होता है, कहीं दो, किसी पाद में दस, पंद्रह या और भी अधिक शब्द होते हैं। इसमें अक्षर, या मात्रा काल का विचार भी नहीं होता। एक मात्र लय का आधार होता है। इसकी पाद-व्यवस्था सबसे अधिक निराली होती है—

मौन सन्ध्या का दिये टीका
रात
काली
आ गयी
सामने ऊपर, उठाये हाथ-सा
पथ बढ़ गया।'

—शमशेर

स्पष्ट है कि हर एक पाद का क्रम अनमिल है। पहले पाद में नौ अक्षर और सोलह मात्राएँ, दूसरे में दो अक्षर और तीन मात्राएँ, तीसरे में दो अक्षर और चार मात्राएँ चौथे में तीन अक्षर और पांच मात्राएँ, पाँचवे में बारह अक्षर और उन्नीस मात्राएँ तथा अन्तिम पाद में छः अक्षर और सात मात्राएँ हैं। स्पष्ट है कि यह विषम छन्द है, क्योंकि इसके पाद परस्पर बे-मेल हैं। किन्तु किसी न किसी प्रकार की पाद-व्यवस्था तो है ही, जिसके कारण काव्य संज्ञा निश्चित होती है।

निष्कर्ष यह है कि आलोच्य कालीन कविता में हिन्दी-काव्य की छन्द-परंपरा के सभी तत्व पाये जाते हैं—मात्रिक छन्द, वर्ण वृत्त, अन्त्यानुप्रास, गीति-तत्व और पाद-योजना आदि सभी परंपरानुगत गुण विद्यमान हैं। प्रबंध काव्यों में विशेष रूप से छन्द-परंपरा का पालन हुआ है, किन्तु अन्य काव्य रूपों में छन्द की परिपाटी लुप्त हो चली है। छायावादी, प्रगतिवादी काव्य में सम, अर्घ सम, विषम सभी प्रकार के छन्द प्रयुक्त हुए हैं किन्तु आजकल यह परंपरा शिथिल होती जा रही है। प्रयोगवादी काव्य में परंपरागत छन्दो-विधान का आमूल परित्याग हो गया है। इधर मुक्त छन्दों के बाहुल्य से विषम छन्दों का प्रचार बहुत अधिक बढ़ गया है। वर्तमान कविता में छन्दों के नये प्रयोगों की बाढ़ ने परंपरानुगत मात्रिक, वर्णिक सभी प्रकार के छन्दों को पूर्ण-रूप से बहिष्कृत कर दिया है। नई कविता में मात्रा, वर्ण, गीत, तुक की परंपरा तो सर्वथा विलुप्त हो गई है। हां, ध्वनि के आधार पर लय का विवेक कुछ बना हुआ है। इसमें पाद-व्यवस्था को छोड़कर परंपरा का कोई अन्य तत्व नहीं पाया जाता।

छन्द और भाव का सम्बन्ध—

कुशल कवि छन्दोयोजना में रस (भाव) और वस्तु की अनुकूलता का विचार रखते हैं। जिस प्रकार गुण एवं अलंकार रसोत्पत्ति में सहायता करते हैं, उसी प्रकार उचित छन्द के विन्यास से रसोत्पत्ति में सुगमता होती है। कारण यह है कि छन्द की शब्द-योजना, पदशैया, गति एवं लयान्विति से रस एवं भाव का गहरा संबंध है। हिन्दी-काव्य परंपरा में छप्पय, घनाक्षरी और आल्ह छन्द का प्रयोग वीर, भयानक और रौद्र रस के लिए हुआ है। नीति और उपदेश के लिए दोहा एवं कुंडलिया का प्रयोग हुआ है।

आचार्य क्षेमेन्द्र कहते हैं कि वाणी जिनके वश में है और सब छन्दों पर जिनका समानाधिकार है, वे हर एक विषय के लिए उपयुक्त छन्द चुन सकते हैं,

उनके लिए कोई प्रतिबन्ध नहीं है। फिर भी कवि को अभ्यास से जिस छन्द में विशेष प्रगल्भता प्राप्त हो जाय, उसे चाहिए कि वह अपने प्रबंध में उसी छन्द का विशेष प्रयोग करे[१]।

रीति ग्रंथकारों ने शब्द-दोष के अन्तर्गत 'हतवृत्तता' नामक दोष का उल्लेख किया है। जो जो छन्द रस के स्वभाव से विपरीत पड़ता हो, उस छन्द का प्रयोग उस रस के लिए करना ही 'इतवृत्तत्व' दोष है। इससे सिद्ध है कि छन्द और रस का घनिष्ठ संबंध है। भाव एवं वस्तु के अनुकूल छन्द का प्रयोग करने से श्रेष्ठ काव्य की उत्पत्ति होती है। महाकवियों का काव्य इसमें प्रमाण है। इस प्रकार शान्त रस के उपदेश में अनुष्टुप, नीति के वर्णन में वंशस्थ वीर और रौद्र रस में वसन्त तिलक, सर्गान्त में मालिनी, औदार्य के वर्णन में हरिणी, आक्षेप, क्रोध या धिक्कार के भावों में पृथ्वी छन्द, वर्षा, प्रवास तथा अन्य प्रकार की विपत्ति के वर्णन में मन्दाक्रान्ता, राजाओं के शौर्यादि की प्रशंसा में शार्दूलविक्रीड़ित तथा मुक्तक सूक्तियों के वर्णन में दोधक, त्रोटक छन्दों का प्रयोग उचित है[२]।

आधुनिक हिन्दी कविता में नीति और शिक्षा के वर्णन में दोहा एवं चौपदों का प्रयोग हुआ है। हरिऔध जी की सतसई तथा उनके चौपदों में इसका सफलता से प्रयोग हुआ है। करुण रस के लिए मालिनी, पीयूष वर्षण, रूपमाला, सखी, प्लवंगम, हरिगीतिका आदि छन्दों को चुना गया है। इसका विशद विचार पन्त जी की पल्लव की भूमिका में पाया जाता है[३]। वे बालोपयोगी कविताओं के लिए पंद्रह मात्रा के चौपई छन्द तथा १६ मात्राओं के अरिल्ल छन्दों को अत्यंत उपयुक्त ठहराते हैं। वीर और ताटंक छन्दों का उपयोग वीर रस की कविताओं में पाया जाता है। सुभद्राकुमारी की प्रसिद्ध 'झांसी की रानी' कविता में ताटंक छन्द प्रयुक्त हुआ है। युद्ध वर्णन के प्रसंगों में ३१ एवं ३२ मात्राओं के, वीर तथा लावनी छन्दों का सफलता से प्रयोग हुआ है। 'हल्दी घाटी' एवं 'विक्रमादित्य' जैसे वीर रस प्रधान प्रबन्ध काव्यों में इन्हीं छन्दों का प्रचुरता से प्रयोग है।

वीर रस को उद्दीप्त करने के लिए दिनकर, श्यामनारायण पांडेय, अनूप शर्मा, आनन्दकुमार आदि कवियों ने अपने काव्यों में कवित्त और घनाक्षरी का

१—देखिये, आचार्य क्षेमेन्द्र, सुवृत्त तिलक, विन्यास ३।

२—वही।

३—सुमित्रानंदन पंत, पल्लव भूमिका, पांचवां संस्करण, पृ० ३१।

प्रयोग किया है। व्रजभाषा के काव्यों में जगन्नाथ दास 'रत्नकर', रामचन्द्र शुक्ल 'सरस', वियोगीहरि, हरदयालु सिंह आदि कवियों ने कवित्त और सवैया को अत्यंत सफलतापूर्वक प्रयुक्त किया है।

निष्कर्ष—

आलोच्यकालीन कविता के छन्द संबंधी अध्ययन से यह पता चलता है कि व्रजभाषा की रचनाओं तथा प्रवन्ध काव्यों में पुराने छन्दों की परंपरा शत प्रतिशत अंश में प्रचलित है। छायावादी-रहस्यवादी एवं राष्ट्रीय काव्य धाराओं में भी छन्द की मर्यादा का पालन हुआ है, किन्तु परंपरानुगत वर्ण वृत्तों को छोड़कर उनको मात्रिक 'छन्दों में ढालने का प्रयास निरन्तर पाया जाता है। प्रगतिशील काव्य में भी मात्रा, लय, तुक, गीत एवं पाद-योजना का आधार मिलता है। किन्तु प्रयोगवादी कविता में छन्द शास्त्र के सभी नियम बहिष्कृत हो गए हैं। संक्षेप में प्रवन्ध के रचनाकारों ने परंपरानुगत छन्दों का या छन्द के नियमों का अवश्य ही पालन किया है, मुक्तक एवं नई कविता में पुराने छन्दों का पूर्ण बहिष्कार हो गया है।

कवि-समय-परंपरा

कवि-प्रसिद्धियों का वर्णन संस्कृत की कवि-शिक्षा की पुस्तकों में प्रायः सर्वत्र मिलता है। काव्यालंकार सूत्र, काव्य कल्पलता वृत्ति[1] अलंकार शेखर,[2] कवि कल्पलता[3] तथा काव्य मीमांसा में थोड़े-बहुत अंतर से कवि-संप्रदायों का वर्णन एक समान ही है। राजशेखर ने काव्य-मीमांसा के अध्याय चौदह, पंद्रह तथा सोलह में कवि-समयोंका अधिक विस्तार से वर्णन किया है। अन्यत्र इसका वर्णन प्रथा पालन के लिए हुआ है। कवि-समयों को तीन भागों में बांटा जाता है—(१) असत का वर्णन, (२) सत का अनुल्लेख और (३) नियम।

(१) असत् का वर्णन

काव्य में ऐसी बातों का वर्णन पाया जाता है, जिनका अस्तित्व नहीं है, यथा-नदियों में कमल, कुमुदादि का वर्णन, सभी जलाशयों में हंस, सारसादि पक्षियों का निवास, सभी पर्वतों पर सुवर्ण, रत्न आदि खानों का वर्णन। नदियों

१—देखिए, काव्य कल्पलता वृत्ति, द्वितीय प्रतान, पृ० ३०–३१।
२—देखिए, केशव मिश्र, अलंकार शेखर, पृ० ५५–५६।
३—देखिए, कवि कल्पलता, १।३।४५-४७।

में कमल तथा कुमुद नहीं होते, सभी जलाशयों में हंस नहीं होते और न सभी पर्वतों में सुवर्ण और रत्न की खाने ही होती हैं किन्तु कवि-समयानुसार उनका वर्णन आवश्यक होता है। रात्रि में चकवा-चकवी का पृथक् होना, चकोर का चन्द्रिका पान करना, यश और हास्य का शुक्ल रंग, अयश और पाप का कृष्ण रंग, क्रोध और प्रेम को लाल वर्णन करना, तथा कृष्ण और नील, कृष्ण और हरित, कृष्ण और श्याम, पीत और रक्त एवं शुक्ल तथा गौर को एक समान वर्णन करना। इसी प्रकार अन्धकार को मुष्टि ग्राह्य और सूची-भेद्य (सूई से छेदने योग्य) कथन करना, एवं चन्द्रिका को घड़े में भरना आदि।

(२) सत् का वर्णन न करना

कुछ वस्तुओं का अस्तित्व होने पर भी कवियों द्वारा उनका वर्णन नहीं किया जाता है, यथा—वसन्त में मालती का वर्णन न करना, चन्दन के वृक्ष पर पुष्प और फलों का वर्णन न करना, अशोक के फलों का वर्णन न करना, मकरादि का समुद्र में ही वर्णन करना, कृष्णपक्ष में चांदनी का वर्णन न करना, शुक्ल पक्ष में अन्धकार का वर्णन न करना।

(३) नियम

कुछ बातें ऐसी हैं जो शास्त्र एवं व्यवहार में स्वीकृत होने पर भी कवियों द्वारा नियमित कर दी गई हैं यथा—हिमालय पर ही भोज पत्र, मलय गिरि में ही चन्दन का वर्णन, छत्र, जल, पुष्प, वस्त्रादि को शुक्ल वर्णन करना, केश, काक, सर्प, समुद्र एवं बादल को काला वर्णन करना, रत्न, बन्धुक, बिम्बाफल, कमल और सूर्य को लाल वर्णन करना, केवल वसन्त में ही कोयल के शब्द का वर्णन करना, केवल वर्षा में ही मोर के नाच-गान का वर्णन करना आदि। सामान्यतया कविजन उपर्युक्त बातों का इसी प्रकार वर्णन करते हैं। कुछविशेष नियमों का वर्णन किया जाता है, यथा—सम्पत्ति और कमला, नाग और सर्प, दैत्य और असुर, को एक समान वर्णन करना। इनमें परस्पर भेद होते हुए भी कवियों ने इनका अभेद रूप से वर्णन किया है। इसी प्रकार चन्द्रमा में खरगोश और मृग को एक समान वर्णन करना, कामदेव की ध्वज में मीन और मकर को एक-सा वर्णन करना, प्राचीनकाल से शिव के मस्तक पर स्थित होने पर भी चन्द्रमा को बाल चन्द्र कहना, मनुष्यों के शृङ्गार का वर्णन मस्तक से तथा देवताओं के शृङ्गार का वर्णन चरणों से आरंभ करना आदि विशेष नियमों में स्थान रखते हैं।

सहित्य दर्पण तथा अलंकार शेखर में सुन्दरियों के पदाघात से अशोक

में पुष्प खिलने, कुल्ला करने से वकुल (मौलसिरी) के खिलने का भी वर्णन है। इसी प्रकार स्त्रियों के स्पर्श से प्रियंगु, देखने से तिलक वृक्ष, आलिगन से कुरवक, नृत्य करने से कर्णिकार के प्रफुल्लित होने का भी उल्लेख मिलता है।

कवि समयों के विषय में डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'हिन्दी साहित्य' की भूमिका में विस्तृत विचार किया है किन्तु कवि प्रसिद्धियों की उत्पत्ति का मूल कारण आज भी अनुसंधान का विषय है। राजशेखर ने कहा है कि प्राचीन काल के विद्वानों ने सहस्र शाखा वाले वेदों का अवगाहन करके, विविध देश और द्वीपों का परिभ्रमण करके जो कुछ निश्चित किया है, वह अयथार्थ कैसे हो सकता है ? देश-काल के परिवर्तन से यदि आज उन परंपराओं में कुछ भेद हो गया है, तो भी उन्हें अस्वीकार नहीं किया जा सकता। कारण यह है कि देश काल और शास्त्र अनन्त हैं। यदि किसी देश या काल-विशेष में वे बातें नहीं मिलती हैं तो इससे उन्हें असत्य नहीं कहा जा सकता। तात्पर्य यह कि असीमित ज्ञान को सीमित देश-काल की परिधि में नहीं बांधा जा सकता।

आलोच्य काल के काव्यों में जब कवि-प्रसिद्धियों की खोज करते हैं तो बहुधा निराश होना पड़ता है। मुक्तक और प्रगीत काव्य में तो परम्परागत रूप में इनका वर्णन प्रायः मिलता ही नहीं है, कहीं कहीं प्रबन्ध काव्यों में ही इनका उल्लेख पाया जाता है।

मलयाचल पर चन्दन के वृक्षों का वर्णन,[१] शिव के मस्तक पर चन्द्रमा का निवास,[२] चकवा-चकवी के रात्रि में पृथक् पृथक् हो जाने का वर्णन,[३] वर्षा काल में मोरों के नृत्य-गान का वर्णन,[४] चकोर का चन्द्रिका पान करना,[५] हास्य और यश का श्वेत रंग,[६] अयश और पाप का कृष्ण रंग, केवल वसन्त में ही कोयल का कूकना आदि आदि बातों का उल्लेख काव्यों में यत्रतत्र पाया जाता है।

कीर्ति के श्वेत रंग का वर्णन—

(१) कीर्ति राका-रजनी को देख।
विपुल पुलकित है लोक-चकोर ॥ वैदेही बनवास ३।२१

१—गंगावतरण, ७। १०।

२—वही, ७। १६।

३—सिद्धार्थ, पृ० ५४।

४—वही, पृ० १०५।

५—रावण महाकाव्य ७। २३।

६—वैदेही बनवास १२। ६१।

(२) उड़ते उनके कलित कीर्ति के केतु हैं।

—वैदेही बनवास १५।६९

इसी प्रकार शुक्ल पक्ष के वर्णन में अन्धकार का तथा कृष्ण पक्ष के वर्णन में चांदनी का वर्णन नहीं पाया जाता है। चन्दन के वृक्ष पर पुष्पों का वर्णन तथा अशोक के फलों का वर्णन भी नहीं मिलता है।

आधुनिक हिन्दी-कविता में कवि-संप्रदाय की थोड़ी सी ही बातों का वर्णन मिलता है, अधिकांश बातों का उल्लेख नहीं किया गया है। सुन्दरियों के पदाघात से अशोक तथा मुख-मदिरा के सींचने से बकुल के विकसित होने का उल्लेख संस्कृत-काव्य के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं है। आधुनिक युग के कवियों को तो कवि-संप्रदाय की बहुत सी बातों का ज्ञान भी नहीं है। फिर कवि-समयों का विकास पौराणिक युग की देन है, आधुनिक युग में वैज्ञानिक शोधों के प्रकाश में कवि-संप्रदाय की बहुत सी बातें असत्य सिद्ध हो चुकी हैं। हंसों के क्षीर-नीर-विवेक तथा मानसरोवर पर निवास की बात तथ्यहीन है। आजकल हंस हैं भी कहाँ ? उनका मोती भक्षण करना तो और भी संदेहजनक है। इस प्रकार आधुनिक काव्य में कवि-समयों की उपेक्षा हो गई है अथवा प्रकारान्तर से उनकी वैज्ञानिक व्याख्या कर दी जाती है। निष्कर्ष यह कि आधुनिक-हिन्दी-कविता में केवल प्रबन्ध काव्यों में ही यत्रतत्र कवि-संप्रदायों की बातों का उल्लेख हुआ है। अन्य काव्य रूपों में यह परम्परा लुप्तप्राय है।

द्वितीय खण्ड
आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रयोग

सप्तम् अध्याय

वस्तु-उपादानों में प्रयोग

आधुनिक हिन्दी-काव्य में प्रयोग

प्रयोग के प्रेरक स्रोत—

आलोच्यकाल प्रयोगों की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध है। यों तो श्रेष्ठ कवियों की रचनाओं में प्रयोग सर्वत्र मिलते हैं क्योंकि अनुकरण तथा पुनरावृत्ति किसी को भी रुचिकर नहीं होती, किन्तु आधुनिक युग (१९२०-५०) में काव्य के नूतन प्रयोगों की ओर कवियों का एक सचेष्ट प्रयत्न दिखाई पड़ता है। छायावाद युग के प्रारंभ से ही काव्य क्षेत्र में एक नवीन क्रान्ति का आरंभ होता है। इस युग का काव्य द्विवेदी युग की प्रतिक्रिया का फल था। इस कारण छायावादी कवियों में एक नवीन स्वच्छन्दतावादी लहर उत्पन्न हुई जिसके फल-स्वरूप नूतन काव्य के निर्माण के लिए कवि पाश्चात्य साहित्य की रोमांचक प्रवृत्तियों का अध्ययन करने लगे। कुछ कवि बंगला साहित्य की ओर भी झुके। भाव, भाषा और कल्पना की दिशा में नूतन प्रयोग होने लगे। परम्परानुगत रीतिकालीन काव्य शैली के विषय में पल्लव की भूमिका में कविवर पन्त ने लिखा है—

'भाव और भाषा का ऐसा शुक-प्रयोग, राग और छन्दों की ऐसी एक-स्वर रिमझिम, उपमा तथा उत्प्रेक्षाओं की ऐसी दादुरावृत्ति, अनुप्रास एवं तुकों की ऐसी अश्रान्त उपल-वृष्टि क्या संसार के और किसी साहित्य में मिल सकती है? घन की घहर, भेकी की भहर, झिल्ली की झहर, बिजली की बहर, मोर की कहर, समस्त संगीत तुक की एक ही नहर में बहा दिया गया और बेचारे औप-क्रामन की बेटी उपमा को तो बाँध ही दिया। आँख की उपमा? खंजन, मृग, कंज, मीन इत्यादि, होठों की? किसलय, प्रवाल, लाल लाल इत्यादि, और इन धुरन्धर साहित्याचार्यों की? शुक, दादुर, ग्रामोफोन इत्यादि[1]।"

इससे स्पष्ट है कि काव्य के नूतन प्रयोगों का आग्रह कवियों के हृदय को आलोड़ित कर रहा था।

आलोच्यकाल विशिष्ट वादों का युग है। हर एक कवि किसी न किसी वाद-विशेष से प्रभावित है। काव्य के नये प्रयोगों का अध्ययन करने से पहले उनके प्रेरक-स्रोतों का अध्ययन कर लेना समीचीन होगा। अतएव यहाँ प्रयोगों की पृष्ठ भूमि पर संक्षेप में विचार किया जाता है।

१—पल्लव की भूमिका, सुमित्रानन्दन पन्त, पृ० ८।

५—साम्यवाद

यह एक राजनीतिक दर्शन है, जिसके प्रवर्तक हैं, कार्ल माम्र्स-मार्क्स के दर्शन ने एक नई दृष्टि दी है, जिसका आधार भौतिक जगत है। वस्तु जगत् की समग्र उन्नति का आधार सम्पत्ति है। मानव-समाज की संपूर्ण प्रगति इसी के आश्रित है। सम्पत्ति पर पूंजीपतियों का अधिकार है। वे उसके द्वारा निर्धनों का शोषण करते हैं। इससे समाज चिरकाल से दो वर्गों में बंटा हुआ है, पूंजीपति वर्ग तथा श्रमिक वर्ग। पहले शोषक हैं, दूसरे शोषित। मार्क्स का दर्शन पूंजीपति वर्ग का अन्त कर आर्थिक साम्य की स्थापना करना चाहता है। इसके लिए संघर्ष अपेक्षित है। यह दर्शन पूर्णतः वैज्ञानिक है तथा समाज के वैज्ञानिक विकास में विश्वास करता है। यह प्राचीन रूढ़ि एवं परम्पराओं में विश्वास नहीं करता। प्राचीन समाज-व्यवस्था सामन्तवादी रही है, जो सभी अनाचारों की मूल है। इसे ईश्वर, धर्म तथा आदर्शवाद में किंचित् आस्था नहीं, क्योंकि ये पूंजीवादी युग की देन हैं। साम्यवाद इनको सामाजिक प्रगति के लिये बाधक तत्व समझता है। इसी प्रकार वह भाव जगत् को भ्रान्तिपूर्ण मानता है, अतएव श्रद्धा, विश्वास, भावना आदि बातें उसके लिए हेय हैं।

हिन्दी के प्रगतिवादी कवियों पर मार्क्स के दार्शनिक सिद्धान्तो का सबसे अधिक प्रभाव है।

प्रगतिवादी कवि वस्तु के यथार्थ चित्रण को प्रधानता देते हैं। रस, रीति, वृत्ति, छन्द, अलंकार एवं साधारणीकरण को उन्होंने काव्य से सर्वथा बहिष्कृत कर दिया है। वस्तु के यथातथ्य वर्णन से उन्हें प्रेम है। सामाजिक वस्तु वाद और यथार्थ वर्णन ही उनके काव्य में मुख्य तत्व हैं। इस यथार्थवाद के विषय में डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत उल्लेखनीय है। साहित्य में यथार्थवाद शब्द का प्रयोग नये सिरे से होने लगा है। यह अंग्रेजी साहित्य के 'रियलिज्म' शब्द के तौल पर गढ़ लिया गया है। यथार्थवाद का मूल सिद्धान्त है, वस्तु को उसके यथार्थ रूप में चित्रित करना। न तो उसे कल्पना के द्वारा विचित्र रंगों से अनुरंजित करना और न किसी धार्मिक या नैतिक आदर्श के लिए उसे काट-छांट कर उपस्थित करना। यूरोपियन साहित्य में रियलिज्म का व्यवहार रोमेंटीसिज्म और आइडियलिज्म के विरुद्ध अर्थ में हुआ। यथार्थवाद के विरोधी लेखकों ने इस दृष्टि से लिखे हुए उपन्यासों और काव्यों को 'फोटोग्रेफिक चित्रण' कहा है।[१]

हिन्दी साहित्य, पृ० ४२७।

प्रगतिवादी काव्यधारा के साथ एक दार्शनिक चिन्तन जुड़ा हुआ है। उसने सामाजिक विकास, अर्थ-व्यवस्था, रीति-नीति, समाज-सम्बन्ध, धर्म एवं ईश्वर संबंधी विचारों को एक नये आलोक में देखा है।

(६) मनोविश्लेषण—

मनोविश्लेषण-पद्धति से चिकित्सा करते समय रोगी के अचेतन मन (अनकांशस माइन्ड) में पड़ी हुई दमित इच्छाओं को चेतना के स्तर पर लाने के लिए एक विशेष प्रकार की प्रक्रिया से काम लिया जाता है, जिसे सहज संबंध (फ्री ऐसोसियेशन) कहते हैं। इसमें रोगी से कुछ प्रश्न किए जाते हैं तथा उसे स्वतंत्रतापूर्वक उत्तर देने के लिए प्रेरित किया जाता है। जिस शब्द के उत्तर में उसके मन की ग्रन्थि का संबंध जुड़ा रहता है, उसका उत्तर देने में उसको विलम्ब हो जाता है तथा मार्मिक शब्द (नोडल आइडियाज) का उत्तर भी असम्बद्ध होता है। इससे मनोविश्लेषणकर्ता को रोगी के मन की ग्रंथि का पता लग जाता है और उसके अन्तर्द्वन्द्व को समझने में सहायता मिल जाती है। यही विधि सहज संबंध या मुक्त आसंग (फ्री ऐसोसियेशन) के नाम से प्रसिद्ध है।

यौन-भावना—

प्रसिद्ध मनोविज्ञानवेत्ता फ्रायड के मत से यौन-वासना ही मूल वृत्ति है जो प्रत्येक मनुष्य के समस्त आचरण को प्रभावित करती है। प्रत्येक चेष्टा, कार्य एवं व्यापार में यही काम-वृत्ति प्रकाशित होती है। शैशव से वृद्धावस्था तक यही मनुष्य के समस्त आचरण को प्रभावित करती है तथा यह भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट होती है। शृंगारिक चेष्टाएं, विलास-क्रीड़ाएं और हास-परिहास इसी के अवान्तर रूप हैं।

भारतीय आचार्यों ने भी रीति भाव को विशेष महत्व प्रदान किया है किन्तु वह रस की दृष्टि से है, इसके विपरीत योरुप के मनोवैज्ञानिकों ने मानवीय व्यवहार की दृष्टि से इसका अध्ययन किया है। मैग्डूगल ने विविध प्राणियों पर प्रयोग करके तथा फ्रायड ने रोगियों के मानसिक भावों का अध्ययन करके यह निष्कर्ष निकाला है तथा काम-वृत्ति के दमन को हानिकारक बतलाया है। धार्मिक कृत्य, कविता, संगीत एवं अन्य कलाओं के द्वारा इसका शोध हो सकता है। वर्तमान युग की प्रयोगवादी काव्यधारा पर फ्रायड के मनोवैज्ञानिक अनुसन्धानों का सबसे अधिक प्रभाव है।

प्रयोगवाद—

योरुप की अतिवस्तुवाद (सुर-रियलिज्म), प्रकृतवाद (नेचूरलिज्म) आदि

काव्य-प्रवृत्तियां फ्रायड के मनोविश्लेषण विज्ञान से अत्यधिक प्रभावित हैं। डी० एन० लारेंस, टी० एस० ईलियट, बर्ट्रेन्ड रसेल, एजरापाउंड आदि अनेक कवियों ने मनोविश्लेषण के सिद्धान्त को दृष्टिबिन्दु में रखकर काव्य-रचनाएँ की हैं। हिन्दी में अज्ञेय स्कूल के कवियों पर इसका अत्यधिक प्रभाव है। सन् १९४२ से तार-सप्तक के प्रकाशन के साथ प्रयोगवादी कवियों का काव्य-क्षेत्र में आगमन होता है। इसके पश्चात् सन् १९५२ में दूसरे सप्तक तक प्रयोगवादी काव्य प्रवृत्ति के विषय में विविध आलोचकों ने अपने अपने विचार प्रकट किए हैं। उनका विवेचन करने की यहां आवश्यकता नहीं। इतना निश्चित है कि इस काव्य-प्रवृत्ति के रचनाकार फ्रायड के यौनवाद तथा मनोविश्लेषण से अत्यधिक प्रभावित है। यद्यपि प्रयोगवाद के प्रवर्तक अज्ञेय जी ने प्रयोग का कोई 'वाद' नहीं स्वीकार किया है, फिर भी 'वाद' का लेबिल इनके मत्थे मढ़ गया है। वस्तुतः सिद्धान्त रूप से प्रयोग काव्य के साधन मात्र हैं, साध्य नहीं। इनकवियों का दावा है कि काव्य का सत्य आज भी अन्वेषण का विषय है तथा काव्य के नवीन प्रयोग उसी को प्राप्त करने के साधन हैं। आधुनिक युग के व्यस्त मानव की उलझी हुई संवेदनाओं को कविता में चित्रित करने के लिए ये कवि विभिन्न उपायों से काम लेते हैं। प्रयोगवादी कवि काव्य-वस्तु, रूप, शिल्प एवं शैली के क्षेत्र में अभिनव प्रयोग करने के पक्ष में हैं क्योंकि काव्य के सत्य को प्रकट करने के लिए पुराने साधन अपूर्ण हैं।

प्रपद्यवाद—

यह वर्तमान युग की एक सर्वथा नवीन काव्य-प्रवृत्ति है, जिसे इसके प्रवर्तकों के नाम पर 'नकेनवाद' भी कहा गया है। इस धारा के कवि नवीन प्रयोगों को काव्य का साध्य मानते हैं तथा पूर्ववर्ती काव्य-परम्पराओं को निष्प्राण समझते हैं। प्रपद्यवाद का सर्वतंत्र स्वतंत्र दर्शन है, क्योंकि उसे किसी शास्त्र या परम्परा की मान्यता में विश्वास नहीं है। सतत् प्रयोग करते जाना ही इसका लक्ष्य है। छन्द, अलंकार, भाव एवं विचारों से कविता नहीं लिखी जाती, वह शब्दों से लिखी जाती है, ऐसा मानकर प्रपद्यवादी कवि शब्द संकेतों के द्वारा ऐन्द्रिय संवेदनों को आघात देता है। प्रपद्यवाद काव्य की पूर्वकालीन सम्पूर्ण परम्पराओं का विरोध करता है तथा नवीन प्रयोगों को काव्य का सत्य समझता है। प्रेषणीयता एवं साधारणीकरण को वह काव्य के लिए आवश्यक नहीं समझता। संक्षेप में प्रपद्यवाद का अपना एक दर्शन है, जिसके अनुसार उसने स्वतंत्र काव्य-मार्ग का अवलम्बन किया है। इसके लिए उसने सहज संबंध (फ्री

एसोशियेशन) को प्रणाली को स्वीकार किया है।[१]

नवीन वस्तु तथा उपादान—

आलोच्य काल के प्रयोग अधिकतर काव्य के रूप एवं शैली के क्षेत्र में ही हुए हैं। प्रबन्ध, मुक्तक तथा प्रगीत काव्य के रूपों के अन्तर्गत तो नाना परिवर्तन हुए ही हैं, इससे भी अधिक छन्द, अलंकार, प्रतीक एवं भाषा के क्षेत्र में अनेक प्रकार के प्रयोगों का सूत्रपात हुआ है। इसी प्रकार भाव-व्यंजना में भी नवोन्मेष के दर्शन होते हैं तथा काव्य-वस्तु की दिशा में भी नये विषयों एवं उपादानों का उद्घाटन हुआ है। इस अध्याय में काव्य के नवीन विषय एवं उपादानों का अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है। ये विषय सर्वथा नूतन हैं, क्योंकि ये किसी प्राचीन परंपरा से संबद्ध नहीं हैं। ये आधुनिक युग की नवीन परिस्थिति प्रवृत्ति एवं काव्योन्मेष के प्रतिफल हैं।

आलोच्य काल के नवीन विषय एवं उपादानों को निम्नांकित भागों में बांटा जा सकता है—(१) प्रकृति, (२) राष्ट्र, (३) राजनीति, (४ विज्ञान तथा (५) अन्तर्राष्ट्रीय विषय। सबसे पहले प्रकृति चित्रण का अध्ययन किया जाता है।

प्रकृति—

आधुनिक युग में अंगरेजी साहित्य के प्रभाव से कवियों ने प्रकृति के अभिनव रूपों का तथा उसकी अन्तश्छवियों का स्वच्छन्दता से निरीक्षण किया है। वर्ड्सवर्थ, शैली, कीट्स, टेनीसन आदि अंगरेजी स्वच्छन्दतावादी कवियों का हिन्दी के प्रसाद, पन्त, निराला आदि पर यथेष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है। अंगरेजी काव्य के अध्ययन से इन कवियों ने प्रकृति के अनन्त दृश्यों में सूक्ष्म सौन्दर्य का दर्शन किया है जिसके फलस्वरूप काव्य के विषयों का यथेष्ट विस्तार हुआ है। पन्त, प्रसाद, निराला, महादेवी, रामकुमार वर्मा आदि छायावादी कवियों ने प्रकृति के छाया-चित्रों की ओर विशेष अनुराग दिखाया है। यह प्रवृत्ति अनेक रूपों में प्रकट हुई है।

पहले रूप में छायावादी कवि प्रकृति को उल्लासपूर्ण रूप में देखता है। प्रकृति उसके लिए जीवित-जाग्रत सहचर है, जिसका प्राण नव चेतना से स्पन्दित है। वह प्रकृति में आशा और आह्लाद का स्वर सुनता है—

गाता खग प्रातः उठकर—
सुन्दर सुखमय जग-जीवन !

१—देखिए, अवन्तिका वर्ष ८ अंक १, प्रपद्यवाद की दार्शनिक पृष्ठभूमि प्रो० केसरीकुमार सिंह पृ० २५१।

गाता खग सन्ध्या-तट पर—
मंगल मधुमय जग-जीवन !

—पन्त

पन्त जी की गुंजन की 'खिलती मधु की नव कलियां,' 'कलरव किसको नहीं सुहाता,' 'लाई हूं फूलों का हास,' 'जीवन का उल्लास' कविताओं मेंप्रकृति को उल्लासमय रूप में चित्रित किया गया है।

दूसरे रूप में प्रकृति को विषाद-मग्न दिखाया गया है–

सकुच सजल खिलती शेफाली,
अलस मौलश्री डाली डाली,
बुनते नव प्रवाल कुंजों में–
रजत-श्याम तारों सी जाली,
शिथिल मधु-पवन, गिन-गिन मधुकण,
हर सिंगार झरते हैं झर झर !
आज नयन आते क्यों भर भर !

—महादेवी

'आंसू' और 'नीरजा' की कविताओं में प्रकृति का यही रूप चित्रित है। 'यमुना के प्रति' कविता में निराला का कवि अतीत के गौरव गान सुनता है तथा सुखमय जीवन की स्मृतियों को सामने लाकर वर्तमान की दुरवस्था का चित्र खींचता है—

यमुने तेरी इन लहरों में
किन अधरों की आकुल तान
पथिक प्रिया सी जगा रही है
उस अतीत के नीरव गान !

—निराला

तीसरे रूप में मानवीय क्रिया-व्यापारों का आरोप करके प्रकृति को उद्धत और स्वेच्छाचारी मानव के रूप में भी दिखाया गया है—परिमल की 'बादल राग' कविताओं में बादल के स्वच्छन्द आचरण का वर्णन है—

ऐ निर्वन्ध !
अन्धतम अगम अनर्गल-बादल !
ऐ स्वच्छन्द—
मंद-चंचल-समीर-रथ पर उच्छृंखल !
ऐ उद्दाम !

अपार कामनाओं के प्राण,
बाधा रहित विराट !
ऐ विप्लव के प्लावन !
सावन-घोर गगन के ऐ सम्राट !

—निराला

चौथे रूप में चेतन धर्म का आरोप कर प्रकृति में यौन-वासना का उद्घाटन किया गया है। निराला की 'जुही की कली' कविता इसका उदाहरण है। इसमें कली और मलयानिल में मानवी धर्मों का आरोप कर नारी और पुरुष में संभोग का वर्णन किया गया है।

निर्दय उस नायक ने
निपट निठुराई की
कि झोकों झड़ियों से
सुन्दर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली
मसल दिए गोरे कपोल गोल।

—निराला-जुही की कली

निराला की 'सन्ध्या-सुन्दरी', 'शेफालिका,' 'प्रथम प्रभात,' महादेव की 'वसन्त-रजनी,' 'ओ विभावरी' कविताओं में प्रकृति को सचेतन रूप में ग्रहण कर शृंगारिक भावों की अभिव्यक्ति की गई है।

इससे स्पष्ट है कि सम्पूर्ण छायावादी काव्य में प्रकृति सचेतन है तथा उसमें मानवीय व्यापारों का आरोप करके नाना प्रकार के भावों की व्यंजना की गई है। प्रकृति के नाना रूपों की ओर ध्यान देने से काव्य क्षेत्र में विषयों का विपुल विस्तार हुआ है। पन्त जी नें मौन-निमंत्रण, शिशु, अन्धकार, छाया, बादल, चांदनी, खद्योत, सौर मंडल, रश्मि, विहग बाला के प्रति, साान्ध्य तारा, शुक्र, सन्ध्या, वीचि-विलास, हिलोरों का गीत, पवन गीत, निर्झर, प्रभात, अप्सरा, तितलियों का गीत, मधुकरी, गुंजन, कलरव, सृष्टि, स्वर्ण किरण आदि विषयों पर काव्य-रचना की है। निराला जी ने युमना के प्रति, भ्रमर गीत, वासन्ती, तरंगों के प्रति, जलद के प्रति वसन्त समीर, सन्ध्या-सुन्दरी, कण, बादल-राग, वन-वेला, खुला आसमान, ठूंठ, प्रकाश, नर्गिस आदि नवीन विषयों को काव्य का उपादान बनाया है। प्रसाद जी ने लहर, नीरद, मलयानिल, झरना, पावस, प्रभात, वसन्त, किरण, रजनीगन्धा, सरोज कोकिल, खंजन आदि विषयों से काव्य-क्षेत्र को समृद्ध किया है।

ये सभी विषय नवीन हैं। प्राचीन काव्य-परंपरा से इनका कोई संबंध

नहीं जुड़ता है, क्योंकि ये सभी विषय स्वच्छन्दतावादी काव्य-प्रवृत्ति की देन हैं। इनकी पृष्ठभूमि में एक स्वतंत्र काव्योन्मेष का आधार है, जिसका संबंध आधुनिक युग के नवोत्थान से है, परंपरा से नहीं।

राष्ट्र—राष्ट्रीय—सांस्कृतिक विषयों पर रचित काव्यों में निम्नांकित पुस्तकें महत्वपूर्ण हैं :—

महाकाव्य—जन नायक, महा मानव, आर्यावर्त, जगदा लोक।

खंड काव्य—पथिक, मिलन, स्वप्न, मौर्य-विजय, बापू, गांधी गौरव, तपस्वी तिलक।

मुक्तक काव्य—हिम किरीटिनी, रेणुका, हुंकार, भैरवी, झांसी की रानी।

प्रगीत काव्य—पूजा गीत, खादी के गीत, ग्राम्या, युगवाणी, स्वर्ण धूलि, स्वर्ण किरण, उत्तरा, अन्य फुटकल रचनाएं।

आलोच्य काल में राष्ट्रीय काव्य-धारा का यथेष्ट विकास हुआ है, जिसकी उपलब्धियां कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। इस धारा को विकसित करने में हिन्दी के समर्थ कवियों का सहयोग रहा है। मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, सोहन लाल द्विवेदी, मोहनलाल महतो 'वियोगी', रामधारी सिंह 'दिनकर', रामनरेश त्रिपाठी, सियाराम शरण, सुभद्राकुमारी चौहान आदि इस काव्य-धारा के प्रमुख कवि हैं।

राष्ट्रीय-सांस्कृतिक विषयों का विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है (क) जन्म भूमि, (ख) राष्ट्र वीर, (ग) निम्न (अछूत) वर्ग, (घ) संस्कृति, (ङ) विप्लव गान तथा (च) दुःखवाद।

मातृ-भूमि—

आलोच्यकाल में मातृ-भूमि (भारत माता) का विविध कवियों ने वर्णन किया है। जन्म भूमि, पितृ-भूमि, स्वदेश हर एक मनुष्य को प्राणों से भी अधिक प्रिय होता है।

'जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है
वह नर नहीं नर-पशु निरा है और मृतक समान है।

इस काल में स्वदेश पर बहुत सी कविताएं लिखी गई हैं। इनमें मातृ-भूमि को दो रूपों में चित्रित किया गया है—एक है उसका भव्य, मंगलमय रूप और दूसरा है, करुणोत्पादक मलिन रूप। पहले रूप में कवियों ने मातृभूमि को माता या देवता के रूप में चित्रित किया है तथा प्रेम से उसका स्तवन किया

है। मातृभूमि के मंगलमय रूप का चित्रण गुप्त जी ने अनेक कविताओं में किया है[1]। मैथिलीशरण गुप्त की 'स्वदेश', गोपालशरण सिंह की 'भारत भूमि' और मातृ भूमि', पन्त का 'राष्ट्र गान', 'ज्योति भारत' 'जन भारत', उदयशंकर भट्ट की 'प्रार्थना'[2] तथा मौर्य विजय[3] और साकेत[4] में स्वदेश के गौरवमय स्वरूप का चित्रण है। इन कविताओं में मातृभूमि को देवी या देवता के रूप में कल्पित कर उसके प्रति आभार प्रदर्शित किया गया है।

भारत-माता का दूसरा रूप अत्यंत करुणापूर्ण है। पन्त जी ने 'भारत माता' कविता में इस दूसरे रूप का मार्मिक चित्र उतारा है। भारत माता बन्दिनी है। वह परदेशियों के पद-तल में लुंठित है, उसका मन कुंठित है। शरदेन्दु हासिनी माता राहु-ग्रस्त है, अतएव उसका स्मित मौन है तथा उसके अधरों पर क्रन्दन-ध्वनि है।

सोहनलाल द्विवेदी ने उसे भिखारिणी के रूप में चित्रित किया है[5]। गोपाल सिंह नैपाली ने 'भारत माता' का दोनों रूपों में चित्र उतारा है[6]।

१—नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुन्दर हैं
सूर्य-चन्द्र युग मुकुट मेखला रत्नाकर हैं।
नदियां प्रेम-प्रवाह, फूल-तारे मंडन हैं,
करते अभिषेक पयोद हैं, बलिहारी इस देश की।
हे मातृभूमि, तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की॥

—मैथिलीशरण गुप्त

२—देखिए, एकला चलो रे, पृ० ३३।

३—मौर्य विजय, प्रथम सर्ग, छन्द, १-२।

४—साकेत, पंचम सर्ग पृ० ११६।

५—है फटा अंचल लहरता
बन दरिद्र-ध्वजा फहरता।
रत्न आभरणे बनी तुम,
आज पंथ भिखारिणी।

—पूजागीत

६—जय हे भारत माता,
जंजीरों की झनन-झनन सुन नव युग दौड़ा आता,
प्राची के झिलमिल आंगन में मुक्ति दिवस मुसकाता।

—नैपाली

'एक भारतीय आत्मा' की 'अमर राष्ट्र' कविता में प्राणोत्सर्ग की ध्वनि गूंजती है।

राष्ट्र-वीर—

राष्ट्र वीरों में महात्मा गांधी का नाम प्रमुख है। जन नायक (रघुवीर शरण मित्र) में गांधी जी के चरित्र को महाकाव्य का रूप दिया गया है। यह बापू की जीवनी के आधार पर रचित एक विशाल प्रबन्ध काव्य है, जिसमें आन्दोलन, सत्याग्रह, विदेशी शासक, अत्याचार, नेता, देश-सेवक और सत्याग्रही वीरों पर प्रचुर परिमाण में लिखा गया है। राष्ट्र-पिता गांधी के अतिरिक्त पटेल, सुभाष बाबू, राज गोपालाचार्य, मौलाना आज़ाद तथा जवाहर लाल आदि अनेक नेताओं के जीवन की प्रासंगिक घटनाएं वर्णित है[1]।

इसमें सत्याग्रह की घटनाओं के रोमांचक वर्णन आए हैं। सत्याग्रहियों के सिर पर लाठी, डंडे, संगीन और दुनालियों की मारें पड़ती हैं, बच्चों को बूट की ठोकरों से हटाया जाता है तथा महिलाओं पर लोमहर्षक अत्याचार होता है। नमक कानून तोड़ने के लिए जाते हुए जलूस में आबाल वृद्ध नारी सभी हैं। आगे आगे तिरंगा झंडा लहराता चलता है, मानों आकाश को चूमना चाहता है[2]।

महादेव देसाई के बलिदान का वर्णन अत्यंत मर्मस्पर्शी है। अनासक्ति का पाठ पढ़ाने वाले बापू देसाई के शव के पास बैठकर घंटों रोते हैं। विधवा पत्नी का रुदन, नन्हें-नन्हें शिशुओं का क्रन्दन सुनकर कारागृह की दीवारें भी रोती हैं। आगा खां का भवन स्तब्ध है। देसाई का बलिदान अमर है[3]। इसमें महात्मा गांधी को सत्य, अहिंसा एवं राष्ट्र प्रेम की प्रतिमूर्ति के रूप में चित्रित किया गया है। देश के लिए सर्वस्व अर्पण करने के कारण गांधी जी राष्ट्र-वीरों में अग्रगण्य हैं।

वस्तुतः जन नायक चरित काव्य है, महाकाव्य नहीं क्योंकि चरित काव्य का उद्देश्य चरित्र एवं जीवनी का वर्णन करना होता है। इसके विपरीत महाकाव्य में कवित्व पर बल दिया जाता है, जिसका उद्देश्य होता है, रसोन्मेष। प्रस्तुत काव्य में महात्मा गांधी के जीवन चरित का ही वर्णन है, अतएव यह

१—देखिए, जन नायक, पृ० २६१।
२—वही, पृ० २७७।
३—देखिए, जन नायक, पृ० ४०७।

महाकाव्य से अधिक चरित काव्य है। कथानक और वस्तु वर्णन की दृष्टि से यह सर्वथा नवीन प्रयोग है।

मोहनलाल महतो 'वियोगी' के आर्यावर्त का कथानक राष्ट्रीय-सांस्कृतिक है। इसमें रानी संयोगिता और कवि-पत्नी दोनों राष्ट्रीय वीरांगनाओं के रूप में चित्रित हैं। दोनों देवियाँ पृथ्वीराज की पराजय का बदला लेने के लिए जनाह्वान करती हैं। पृथ्वीराज की पराजय आर्यावर्त की पराजय हो जाती है। पहले रानी पृथ्वीराज की पादुका लेकर सती होना चाहती है, किन्तु व्यक्ति धर्म से राष्ट्र-धर्म को अधिक बड़ा समझकर वह सती होने से विरत हो जाती है। वह अपने व्यक्तित्व के प्रभाव से सम्पूर्ण देश को एक झंडे के नीचे सुसंगठित कर देती है[१]। जब तक वह अनार्यों से स्वराष्ट्र को मुक्त नहीं कर लेती, तब तक चैन नहीं लेती[२]। इसमें राष्ट्र के सम्मान की रक्षा के हेतु रानी, कवि चन्द और उसकी पत्नी के शौर्य का वर्णन है। इन्होंने स्वदेश के लिए जो कष्ट उठाया है, वह सब अपूर्व है। 'गांधी-गौरव' में राष्ट्र-नायक महात्मा गांधी का जीवन-चरित वर्णित है जिसमें उनके जीवन की प्रमुख घटनाओं के वर्णन पर अधिक ध्यान रखा गया है। इसमें महात्मा जी को सत्य के पुजारी, सेवा के सिपाही तथा स्वतंत्रता के उपासक के रूप में चित्रित किया गया है।

'जिसने सिखाया स्वाभिमान-सुमंत्र सारे देश को,
बन कर नमूना है दिखाया पूर्वजों के वेश को।
जिसकी गिरा गौरवमयी से प्रकट ओज स्फूर्ति है,
संसार में अद्भुत अहिंसा, सत्य की जो मूर्ति है।

—गान्धी गौरव

तपस्वी तिलक में लोकमान्य तिलक के जीवन की प्रमुख घटनाओं का वर्णन है। तिलक के आविर्भाव से पूर्व भारत-भूमि पूर्णतः विदेशी शत्रुओं से आक्रान्त थी। अंगरेजी शासन ने भारतीय लोगों के स्वाभिमान को कुचल डाला था। उस समय देश को ऐसे राष्ट्रीय नेता की आवश्यकता थी, जो देश में क्रान्ति उत्पन्न कर जनता में राष्ट्रीय अभिमान जगा दे। इसी के लिए लोकमान्य तिलक का जन्म हुआ था।

क्रान्ति युग की योजना थी हो गई अनिवार्य,
भेजना भगवान को था एक बस आचार्य।

१—आर्यावर्त, पृ० ७२-७३।
२—वही, पृ० १०४।

बीज बोकर वीरता के फूंक दे जो जान,
राष्ट्र के कर में गहा दे स्वाभिमान कृपाण।
—तपस्वी तिलक

रामनरेश त्रिपाठी के पथिक, मिलन और स्वप्न के नायक भी राष्ट्र वीर हैं। वे देश-सेवा का कठोर व्रत धारण करने वाले और राष्ट्रोद्धार के हेतु सर्वस्व त्याग करने वाले वीर हैं। पथिक का नायक देश को अत्याचारी क्रूर राजा के शासन से मुक्त कर जन तंत्र स्थापित करने में सफल होता है। इससे समस्त राष्ट्र में हर्ष और आनन्द छा जाता है[१] स्वप्न के बसन्त और सुमना भी प्राणों को हथेली पर लेकर देश-सेवा में जुट जाते हैं। उनके उत्कट परिश्रम, साहस और शौर्य से राष्ट्र का संकट टल जाता है[२]।

राष्ट्र-नायक गांधी के जीवन-चरित्र का वर्णन ठाकुरप्रसाद सिंह के 'महा मानव', गोपालशरण सिंह के जगदालोक और सियारामशरण गुप्त के 'बापू' में भी पाया जाता है। महामानव में गांधी जी के जीवन के संघर्ष एवं घटनाओं का ही आधिक्य है। इसके वस्तु वर्णन में सत्य, अहिंसा, समानाधिकार, शोषण के प्रति विद्वेष, जन-जागरण विशेष रूप से उल्लेखनीय है। जगदालोक में गांधी जी को विश्व की महान् विभूति के रूप में चित्रित किया गया है। 'बापू' में गांधी जी के महान् आदर्श का चित्रण है। उनके आदर्श चरित्र में नवीन और पुरातन एक हो गए हैं—

विश्व-महावंश-पाल,
धन्य तुम धन्य हे धरा के लाल।
छल छद्म के अबोध
वीत राग वीत क्रोध
तुम में पुरातन है नूतन में
नूतन चिरन्तन में[३]।

सुभद्रा कुमारी ने 'झाँसी की रानी' में रानी लक्ष्मीबाई को राष्ट्रीय वीरांगना के रूप में चित्रित किया है। इनके अतिरिक्त अनेक फुटकल कविताओं में देश-भक्त, सत्याग्रह वीर, बलिदान वीर एवं वीरांगनाओं का वर्णन हुआ है।

१—पथिक, ५।३०।
२—स्वप्न, ४।१२।
३—बापू, पृ० २८।

निम्न वर्ग—

साधारण जनता का स्थान भी राष्ट्रीय विषयों में ही आता है। इस वर्ग में देश के शोषित, पीड़ित, पद्दलित, अछूत जन हैं, जिनका सम्बन्ध किसान मजदूर एवं निम्न वर्ग से है। आधुनिक कविता में इनको भी स्थान मिला है। पन्त जी की 'ग्राम्या 'में ग्राम्य-जीवन के सामान्य से सामान्य चित्र अंकित हैं। 'गांव के लड़के', 'चरखा का गीत', 'चमार', 'कहार', 'धोबियों' का उत्सव', 'मजदूरिनी', युगवाणी में 'दो लड़के', 'नारी', 'मध्य वर्ग', 'कृषक', 'श्रम जीव', 'मानव-पशु' आदि ऐसे ही विषय हैं। निराला जी की 'वह तोड़ती पत्थर', 'विधवा', 'भिक्षुक', 'दीन' प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। गोपालशरण सिंह की 'अनाथ', विधवा', 'घोड़ों का नाच', 'स्वयंसेविको', मैथिलीशरण गुप्त की 'किसान', सियाराम शरण गुप्त की 'एक फूल की चाह' तथा 'दैनिकी' की कविताएँ, माखनलाल चतुर्वेदी की 'कैदी और कोकिला', 'सिपाही', 'सिपाहिनी', दिनकर की 'हाहाकार', 'जनतंत्र का जन्म', हिमालय', तथा सोहनलाल द्विवेदी की 'भैरवी' में व्यथित-पीड़ित मानवता का ही स्वर गूंजता है।

'बंगाल का अकाल' भी कवियों का अति प्रसिद्ध विषय रह चुका है। दुर्भिक्ष-पीड़ित बंगाल की त्रस्त एवं उत्पीड़ित जनता के दुःख एवं दैन्य को अनेक कवियों ने काव्य में रूपायित किया है। उदयशंकर भट्ट की 'बंगाल', रामकुमार वर्मा की 'कंकाल', और महादेवी जी की कई रचनाओं में बंगाल की पीड़ित जनता का स्वर मुखर है। इससे सिद्ध है कि आधुनिक कवियों ने नवीन परि-स्थितियों से प्रेरित होकर साधारण मानवता को भी काव्य का विषय बनाया है। यह परम्परा से विरुद्ध नई काव्य-प्रवृत्ति है। आधुनिक युग ने राष्ट्र के महत्व के लिए राजा से अधिक जनता को आदर दिया है। इसी भावना से प्रेरित होकर आधुनिक कवि अपनी रचनाओं में जन-जीवन के विविध पक्षों का उद्-घाटन करते हैं। अंगरेजी शासन में साधारण जनता पीड़ित एवं उपेक्षित थी। उसी के दुःख-दैन्य के करुण-मलिन चित्र इन काव्यों में अंकित हैं। साधारण जनता को काव्य में अंकित करने की प्रवृत्ति इतनी बढ़ी है कि प्रबन्ध, मुक्तक एवं प्रगीत काव्य सभी में इसका चित्रण पाया जाता है।

संस्कृति

राष्ट्रीय संस्कृति का स्वर अनेक कवियों की वाणी में मुखरित हुआ है। पन्त जी की स्वर्ण धूलि, स्वर्ण किरण और उत्तरा में नवीन संस्कृति के आलोक में जीवन-निर्माण के चित्र अंकित हैं। उत्तरा की 'युग छाया' में उषा नव संस्कृति का द्वार खोलते हुए दिखाई गई है—

ज्ञात मर्त्य की मुझे विवशता,
जन्म ले रही नव मानवता,
स्वप्न द्वार फिर खोल उषा ने
स्वर्ण-विभा बरसाई।

—युग छाया-पन्त

नई संस्कृति का 'नव मानव' लोक पुरुष के रूप में अभिवन्दित हुआ है।

लो गूंज रहा अम्बर में रव—
मैं लोक-पुरुष, मैं युग-मानव,
मैं ही सोया भू पर नीरव
मेरे ही भू-रज के अवयव !

—नवमानव—पन्त

इस लोक-पुरुष के अवयव पृथ्वी की मिट्टी से गढ़े गए हैं। वस्तुतः यह धरती पुत्र है। नवीन संस्कृति का निर्माण गांधीवाद के आधार पर होगा, अतएव खादी के फूल में पन्त का कवि कहता है—

देख रहा हूं शुभ्र चांदनी का सा निर्झर
गांधी-युग अवतरित हो रहा इस धरती पर।

—खादी के फूल, पंत

नई संस्कृति के आधार-तत्व होंगे—सत्य, अहिंसा, समता, राष्ट्रीयता, एवं जाति और धर्म सम्बन्धी भेद-भावों का अन्त।

निराला की तुलसीदास, सोहनलाल द्विवेदी की वासवदत्ता, उदयशंकर भट्ट की तक्षशिला, दिनकर की रेणुका और हुंकार, मैथिलीशरण गुप्त के साकेत, सिद्धराज, हरिऔध का वैदेही वनवास, सियारामशरण गुप्त के पाथेय, दूर्वादल और बापू आदि रचनाओं में राष्ट्रीय संस्कृति के विविध पक्षों का उद्घाटन हुआ है।

विप्लव गान—

राष्ट्रीय विषयों के अन्तर्गत विक्षुब्ध कवियों ने 'विप्लव गान' भी लिखे हैं। युगपथ में पन्त का कवि 'द्रुत झरो जगत के शीर्ण पत्र के बाद' गा कोकिल बरसा पावक कण, गाता है, जिसमें नूतन मानवता के विकास की आकांक्षा सजग है। युग वाणी में उन्होंने 'युग-नृत्य' की रचना की है, जिसमें निखिल विश्व के बन्धनों की निवृत्ति के लिए अभयंकर के नृत्य का आह्वान किया है। उदयशंकर भट्ट 'अमृत और विष' में त्रस्त, विपण एवं दारिद्रय-पीड़ित मानवता के उद्धार

के हेतु मानव को आंधी और तूफानों से लड़ने को प्रेरणा देते हैं। 'आज उठ अंगार से शृङ्गार कर मेरी जवानी' का प्रलय-गीत विक्षुब्ध-हृदय का मार्मिक उद्गार है। बालकृष्ण शर्मा भी प्रलय को निमंत्रण देते हैं, जिससे मुमूर्ष मानवता का नव निर्माण संभव हो सके। 'कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल-पुथल मच जावे' में कवि को प्रलय की उत्क्रान्ति के लिए प्रेरित किया गया है। 'एक भारतीय आत्मा' 'हिम किरीटिनी' की 'विद्रोह' कविता में क्रान्ति की आग भड़काने का निमंत्रण देते हैं। वे विद्रोह की अग्नि में आत्मार्पण करने के लिए उद्यत हैं। इलाचन्द्र जोशी 'नृत्य' कविता में 'नाचो नाचो महाकाल ! तुम खर मध्याह्न गगन में' शंकर का तांडव देखना चाहते हैं, क्योंकि आर्त, विपन्न, त्रस्त, पीड़ित, विताड़ित, क्षुधित मानवता में नए प्राण, नई चेतना का संचार करने के लिए महारुद्र की प्रलंयकरी नृत्यलीला ही अमोघ वरदान है। 'हिमालय के प्रति' कविता में दिनकर जी भारत की दयनीय दशा पर विक्षुब्ध होकर शंकर के प्रलय-नृत्य की याचना करते हैं। प्रमाद में आकंठ-मग्न तथा परतंत्रता से पीड़ित देश में 'नव युग की शंख ध्वनि' जगाने में शंकर का प्रलंयकर नृत्य ही समर्थ है।

नरेन्द्र का कवि भारत को रुद्र रूप में परिवर्तित कर डालना चाहता है। क्षण में प्रलय का दृश्य दिखाने वाले महादेव को कवि ने 'भारत के अधिनायक' के रूप में चित्रित किया है, जिनके तनिक पार्श्व-परिवर्तन में भयंकर भूकम्प का निवास है, जिनके रोओं में भू-लोक को विध्वस्त करने की शक्ति है तथा जिनकी श्वासों में दिग्दिगन्त, भूतल एवं सातों सागरों का कम्पन है। वे ही देश का त्राण करने में समर्थ हैं।

प्रकाश-पिंड को लक्ष्य कर 'आह्वान' गीत में अंचल का कवि महाक्रान्ति की तैयारी में संलग्न है। दारिद्र एवं नैराश्य के अन्धकार से आच्छन्न जगत को नवयुग के प्रकाश की आवश्यकता है। कोटि-कोटि मिट्टी के पुतलों में स्नेह (तेल) की कमी नहीं है, बाती पड़ चुकी है, अब आवश्यक है, मात्र चिनगारी के कण की। विध्वंस के बाद ही नव निर्माण की वेला आती है। आरसीप्रसादसिंह ने भी 'कलापी' में 'प्रलय-संगीत' का तराना छेड़ा है। सियाराम शरण के 'शंख नाद' में भी यही अनुगूंज है।

आलोच्यकाल में विप्लव गानों की एक स्वतंत्र परंपरा का विकास हुआ है। इस काव्य-प्रवृत्ति में राष्ट्रीय विक्षोभ का उद्दाम स्वर है क्योंकि परतंत्रता से प्रताड़ित जनता के पुनरुद्धार का निदान महाक्रान्ति में ही ढूंढ़ा जा सकता है। यह दलित भारत के विध्वंस का राग है, जिसकी पीठिका पर ही नव संस्कृति का निर्माण हो सकता है।

दुःखवाद—

राष्ट्रीय विषयों में विप्लव गानों से भिन्न एक और स्वर है। इसमें अवसाद और नैराश्य के विगलित हृदय का करुण चीत्कार है। यह दुःखवाद परतंत्रता-जनित है। फलतः स्वप्न, आँसू (प्रसाद), विषाद, दुःख, नियति, मरण-दृश्य, सन्ताप, अनुताप, उच्छ्वास (पन्त) उपालंभ, भाग्य का फेर, सुख-दुःख, अनाथ, आंसू, व्यथा, दुखमय संसार (गोपालशरण सिंह), आँसू, वेदना-गीत, मरण-त्योहार, लाचार (माखनलाल चतुर्वेदी), नर-किंवा पशु, आश्वासन, एक फूल की चाह, दयनीय, भ्रान्ति-मोचन (सियारामशरण गुप्त) आदि आदि नूतन विषयों का विविध अर्थ भूमियों पर होते हुए काव्य-क्षेत्र में प्रसार हुआ है।

विवेचन—राष्ट्रीय काव्य-परम्परा आधुनिक युग की एक जीवन्त परम्परा है। इस परंपरा का विकास आधुनिक युग में ही हुआ है। इस धारा के कवियों की वाणी में राष्ट्र के प्रति उत्कट प्रेम पद-पद पर झलकता है। इस प्रवृत्ति के कवियों ने प्रचुर काव्य-राशि दी है, जिसमें जन नायक, आर्यावर्त और महामानव जैसे तीन विशाल प्रबन्ध काव्य हैं तथा पथिक, मिलन, स्वप्न, गांधी गौरव, बापू, तक्षशिला जैसे उत्कृष्ट खंड काव्य हैं और मुक्तक एवं प्रगीत काव्य की प्रचुर सामग्री विद्यमान है। इस परंपरा के प्रायः सभी कवि जीवित हैं तथा उनसे अभी बहुत कुछ काव्य-राशि प्राप्त करने की आशा है।

राष्ट्रीय काव्य-प्रवृत्ति सर्वथा आधुनिक युग की देन है। प्राचीन काव्य-परम्परा से इसका किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि आधुनिक युग की नई परिस्थितियों के आघात-प्रत्याघातों से इसका जन्म हुआ है। इस परंपरा के कवियों की काव्य-चेतना में अद्भुत स्फूर्ति, ओज एवं पौरुष दिखाई पड़ता है जिसमें नवयुवकों के हृदयों को स्पन्दित करने की शक्ति है। राष्ट्रीय विषयों की सफलता इसी से प्रकट है, कि इसकी एक स्वतंत्र परंपरा का विकास हुआ है। निष्कर्ष यह कि राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्य धारा एक नूतन काव्य-विकास है, जिसकी उपलब्धियां महत्वपूर्ण हैं तथा यह काव्य-प्रवृत्ति अभी गतिशील है।

राष्ट्रीय काव्य-धारा आलोच्यकाल की मूल काव्य-प्रवृत्ति है, जिसका अन्य काव्य-प्रवृत्तियों पर किसी न किसी रूप में प्रभाव अवश्य पड़ा है। कारण यह है कि सत्याग्रह-आन्दोलन इसी काल में अपने उग्र रूप में चल रहा था। देश की राजनीतिक परिस्थिति विक्षुब्ध थी। राष्ट्रीय कविता में यह विक्षोभ अनेक रूपों में फूट पड़ा है। एक भारतीय आत्मा सुभद्राकुमारी चौहान और नवीन जी के काव्य में इसने क्रान्ति का रूप धारण किया है, महादेवी और सियाराम शरण के गीतों में यह विषाद-अवसाद के रूप में दिखाई पड़ता है, मैथिलीशरण

गुप्त, अयोध्या सिंह उपाध्याय, पन्त, निराला एवं प्रसाद जी के काव्य में यह सांस्कृतिक गौरव के रूप परिलक्षित होता है। दिनकर और उदयशंकर भट्ट के काव्य में इसका रूप ऊर्जस्वित है तथा गोपालशरण सिंह, सोहनलाल द्विवेदी की रचनाओं में इसका सहज-सरल रूप दृष्टिगोचर होता है।

यह काव्य-प्रवृत्ति अत्यंत प्राणवान् रही है। तथा अन्य सभी काव्य-प्रवृत्तियों पर इसका व्यापक प्रभाव हैं, किन्तु स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् इसमें शैथिल्य आ गया है। राष्ट्रीय काव्य-धारा में जिन विषयों को स्थान मिला है, उनमें नवीनता का ओज है और है परतंत्र भारत की मुक्ति का स्वर। इसी से इसमें सहज आकर्षण है।

(३) राजनीति—

उत्तर छायावाद युग में सन् १९३५ के लगभग प्रचलित काव्य-धारा में एक नया मोड़ आया, जिसने छायावादी काव्य-वस्तु, रूप-प्रकार, भाव-व्यंजना एवं शैलीगत संस्कारों को काव्य-क्षेत्र से एक साथ अपदस्थ कर दिया। यह प्रगतिवाद के नाम से विख्यात है। प्रगतिवाद ने काव्य को जो राजनीतिक विषय एवं उपादान भेंट किए, उनका वर्गीकरण नीचे दिया जाता है—

(क) सिद्धान्त-निरूपण
(ख) पूंजीवादी वर्ग से संबंधित विषय
(ग) श्रमिक वर्ग से संबंधित विषय
(घ) यौन वासना संबंधी विषय
(ङ) वैज्ञानिक विषय
(च) अन्तरराष्ट्रीय विषय।

क—सिद्धान्त निरूपण

वस्तु का सैद्धान्तिक निरूपण भी काव्य-वस्तु से संबंधित है। प्रगतिवादी काव्य को मूलतः दो भागों में बांटा जा सकता है—सिद्धान्त पक्ष और व्यवहार पक्ष। प्रारंभिक रचनाओं में मार्क्सवाद के सिद्धान्त पक्ष पर भी विचार किया गया है। पन्त जी की युगवाणी, नव दृष्टि, साम्राज्यवाद, मार्क्स के प्रति, मूल्यांकन, खोलो, भूत-दर्शन, समाजवाद-गांधीवाद, संकीर्ण भौतिकवादियों के प्रति, दृष्टिकोण (राम इकबाल सिंह), अपने कवि से '(शिवमंगल सिंह सुमन), साम्राज्यवाद (रांगेय राघव), अपने कवि से (भारत भूषण), स्वतंत्रता दिवस पर, भारत की आरती (शमशेर बहादुर सिंह) और कविता की मौत (धर्मवीर भारती) कविताओं में मार्क्सवादी विचारधारा का ही प्रकाशन हुआ है। मार्क्सवाद में

भौतिक तत्व को प्रधानता दी गई है। राष्ट्र, वर्ग आदर्श, धर्म, रीति, नीति, दर्शन आदि सब छलना है। सामूहिक जीवन ही अन्तिम ध्येय है।[१] इतिहास से सिद्ध है कि मानव-जीवन परिवर्तन शील है, परिवर्तन शाश्वत है।[२] भूमि श्रमिक जनों की है। किसान उसका स्वामी है।[३]

जिन कविताओं में मार्क्स-दर्शन का निरूपण हुआ है, उनमें से कवित्व तो चला गया है, प्रचार का स्वर प्रधान हो गया है। इसके अतिरिक्त ऐसी कविताओं से भावोन्मेष में भी सहायता नहीं मिलती। कोरा बुद्धिवाद का प्रदर्शन है।

ख—पूंजीवादी वर्ग से सम्बंधित विषय—

इस श्रेणी में शोषक वर्ग आता है, जो शताब्दियों से निरीह जनता का रक्त-शोषण करते आए हैं। इनमें साम्राज्यवाद, सामन्तवाद, पूंजीवाद के पोषक प्रधान स्थान रखते हैं। समाज के पीड़क, शोषक, अत्याचारी, आततायी, महाजन, पूंजीपति आदि को कटु-तिक्त वाणों का विषय बनाया गया है। आधुनिक युग के सभ्य राष्ट्र अशक्तों का रक्त-शोषण करते हैं तथा बलवान् निर्बलों को हड़प जाते हैं। वर्तमान युग की सभ्यता पर दिनकर जी ने कितना कठोर व्यंग्य किया है[४]।

१—कहता भौतिक वाद, वस्तु जग का कर तत्वान्वेषण,
भौतिक भव ही एक मात्र मानव का अन्तर दर्पण।
राष्ट्र वर्ग आदर्श धर्म गत रीति नीति औ दर्शन
स्वर्ण पाश हैं मुक्ति योजना सामूहिक जन जीवन।

—भूत दर्शन, पन्त

२—परिवर्तन ही जग जीवन का नियम चिरंतन, दुर्जय,
साक्षी है इतिहास, युगों का प्रत्यावर्तन अभिनय।

—साम्राज्यवाद, पन्त

३—यह किसान कमकर की भूमि है।
पावन बलिदानों की भूमि है।
भव के अरमानों की भूमि है।
मानव इतिहास को संवारती।

—शमशेर

४—दलित हुए निर्बल सबलों से, मिटे राष्ट्र उजड़े दरिद्र जन,
आह सभ्यता आज कर रही, असहायों का शोणित-शोषण।

पूंजीवादी समाज के प्रति जो भाव प्रकट हुए हैं, उनमें क्रोध, जुगुप्सा एवं प्रतिशोध की अभिव्यक्ति प्रधान है। मुक्तिबोध का कवि पूंजीपतियों की प्रत्येक क्रिया एवं चेष्टा को घृणास्पद समझता है[1]।

'जनाह्वान' कविता में अज्ञेय जी ने पूंजीपति को 'क्रूर आततायी' के रूप में देखा है। वह उसके गौरव को क्षार क्षार कर डालना चाहता है तथा उसके ध्वस्त-गौरव के पथ से होकर अपना विजय-रथ ले जाना चाहता है[2]।

कहीं-कहीं वस्तु को प्रतीकात्मक रूप में भी उपस्थित किया गया है। 'मसूरी' उच्च वर्ग के लोगों के क्रीड़ा-विलास का स्थान है। प्रगतिशील कवि मसूरी को रानी के रूप में देखता है जिसकी सेवा में हास-विलास और आमोद-प्रमोद करने के लिए हर समय वार-नारियां उपस्थित रहती हैं। दूसरी ओर क्षुधार्त भूखे-नंगे सर्वहारा वर्ग के लोग करुण-क्रन्दन किया करते हैं। किन्तु वर्ग-भेद अधिक दिनों नहीं ठहर सकता क्योंकि शोषित वर्ग जागरूक हो चुका है[3]।

पूंजीवादी साम्राज्य के नाश के लिए और ऊंच-नीच के विधान को

१—तेरे रक्त में भी सत्य का अवरोध
तेरे रक्त से भी घृणा आती तीव्र
तुझको देख मितली उमड़ आती शीघ्र
तेरे हास में भी रोग-कृमि हैं उग्र
तेरा नाश तुझ पर क्रुद्ध, तुझ पर व्यग्र।

—मुक्ति बोध

२—ठहर, ठहर आततायी। जरा सुन ले
मेरे क्रुद्ध वीर्य की पुकार आज सुन जा
रागातीत, दर्पस्फीत, अतल, अतुलनीय,
मेरी अवहेलना की टक्कर सहार ले—
क्षण भर स्थिर खड़ा रह ले—
मेरे दृढ़ पौरुष की एक चोट सह ले।, —अज्ञेय

३—हां मैंने अपनी आंखों देखा है विभेद यह, यह विरोध
जो साधारण घटना है अपनी पूंजीवाद प्रणाली की,
जो है तेरा आधार-स्तंभ, जिसका विनाश दो दिन ही की
है बात। यातना ने जिसकी विश्व को दिया है नया बोध।

—भारत भूषण

मिटाने के लिए समाजवाद का जयघोष अनेक कविताओं में सुनाई पड़ता है। इनमें आशा, विश्वास, अभिलाष एवं नई चेतना की उमंग है[१]। पूंजीवाद का अन्त करने के लिए प्रगतिशील कवियों ने प्रलय-गान भी गाए हैं। इनमें पूंजी-वादी वर्ग के प्रति क्रोध, अमर्ष, घृणा, प्रतिशोध एवं क्रान्ति का स्वर प्रधान है। युग-पथ में पन्त के कवि ने 'द्रुत झरो जगत के शीर्ण पत्र' के पश्चात्—

'गा कोकिल बरसा पावक कण।
नष्ट भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन।'

गीत गाया। उदयशंकर भट्ट, नवीन, नरेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी, दिनकर, अंचल, सुमन और रांगेय राघव के क्रान्ति-गीतों में समाज के नव-निर्माण का उद्-घोष है।

ऊपर के उदाहरणों से स्पष्ट है कि पूंजीवादी वर्ग को काव्य का आलम्बन बनाकर प्रगतिवादी कवियों ने उनकी क्रूरता, अत्याचार, शोषण एवं उत्पीड़न का ऐसा सफल चित्रण किया है कि जिससे उग्र भावों की व्यंजना होती है। किन्तु कहीं-कहीं भावावेश में औचित्य का विचार भी छूट गया है। इससे वर्ण्य-विषय में अभद्र तथा अशोभनीय बातें भी आ गई हैं, जिनमें काव्य-मर्यादा का उल्लंघन पाया जाता है। 'जनाह्वान' कविता इसका उदाहरण है[२]। इसमें आततायी का जो शब्द-चित्र खींचा गया है, वह व्रीड़ा-जनक है। कहीं कहीं आलम्बन का चित्रण अत्यंत भद्दा और अनगढ़ है[३]।

१—साम्राज्य पूंजी का अत होवे
ऊंच नीचे का विधान नत होवे
साधिकार जनता उन्नत होवे
जो समाजवाद जय पुकारती।

—शमशेर

२—और वह दृढ़ पैर मेरा है
गुरु, स्थिर, स्थाणु-सा गड़ा हुआ।
तेरी प्राण-पीठिका पै लिंग-सा खड़ा हुआ। —अज्ञेय

३—सरग था ऊपर
नीचे पताल था
अपच के मारे बहुत बुरा हाल था
दिल-दिमाग भुस का, जहर का खाल था। —नागार्जुन

मुक्तिबोध की 'पूंजीवादी समाज के प्रति 'कविता की वस्तु-व्यंजना वीभत्स, अरुचिकर तथा अकाव्योचित है। उससे किसी एक भाव की व्यंजना भी नहीं होती एक ही बन्ध में घृणा, क्रोध, वीरत्व, उग्रता आदि विविध भावों की व्यंजना मिलती है। आलम्बन का ऐसा चित्रण काव्य का दोष है।

ग—श्रमिक वर्ग से संबंधित विषय—

इस श्रेणी की कविताओं का विवेचना राष्ट्रीय विषयों के अन्तर्गत हो चुका है। त्रस्त एवं उत्पीड़ित मानवता के प्रति राष्ट्रीय एवं प्रगतिवादी दोनों वर्ग के कवियों ने पूर्ण सहानुभूति प्रकट की है। दोनों के प्रति प्रेम एवं सहानुभूति प्रकाशित करने में कोई अन्तर नहीं है। अन्तर केवल दृष्टिकोण का है। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही हिन्दी-कविता में मानवतावादी प्रवृत्ति का विकास हुआ है। कुछ पाश्चात्य देशों के वैज्ञानिक प्रभाव से, कुछ रोमेंटिक साहित्य के अध्ययन से, तथा कुछ भारतीय राष्ट्रीय-सांस्कृतिक आन्दोलनों के प्रभाव से आलोच्यकाल की हिन्दी-कविता में मानवतावाद की प्रतिष्ठा हुई है। १९२० ई० राष्ट्रीय आन्दोलन ने उग्र रूप धारण किया, जिसके कारण सर्व साधारण में स्वातंत्र्य एवं संगठन की भावना उत्पन्न हुई। राष्ट्रीयतावाद ने जन-तंत्रवाद का मंजु घोष सुनाया, जिससे किसान-मजदूरों में जागरण हुआ। कांग्रेस ने अछूत एवं दलित वर्ग को पूर्ण सहानुभूति से देखा तथा उनकी दशा को सुधारने के लिए विविध कार्य-क्रम बनाए। आर्य-समाज ने दलित वर्ग के लोगों का उद्धार करने में पूर्ण सहयोग किया। इसी प्रकार ब्रह्म समाज, राम कृष्ण मिशन, सर्वेंट्स आव इंडिया सोसाइटी ने मानवतावाद की प्रतिष्ठा करने में कुछ उठा न रखा। फलस्वरूप हिन्दी-साहित्य में भी इसका प्रभाव लक्षित हुआ। मनुष्य को मनुष्य के रूप में आदर देने की प्रवृत्ति का विकास उत्तरोत्तर होने लगा, जिससे दलित, शोषित, पीड़ित, तिरस्कृत एवं अछूतों को काव्य के विषयों में स्थान मिला। मानवीय आदर्श से प्रेरित होकर 'मानव' कविता में (सन् १९३५) पन्त जी लिखते हैं—

'मानव का मानव पर प्रत्यय,
परिचय मानवता का विकास,
विज्ञान, ज्ञान का अन्वेषण,
सब एक, एक सब में प्रकाश।

—पन्त

मानवतावादी काव्य-प्रवृत्ति ने कवियों के मानव में अवसाद और असंतोष को जन्म दिया। दासता एवं पारतंत्र्य की जंजीरों में जकड़े हुए मानव-समाज

को देखकर कवियों के हृदय में दो प्रकार की प्रतिक्रियाएँ हुईं। कुछ कवि पीड़ित वर्ग के दुःख एवं विषाद से अभिभूत होकर करुण भावों की व्यंजना करने लगे तथा कुछ भीषण दारिद्र्य, शोषण एवं नैराश्य के आवर्त में डूबे हुए मानव-समाज के उद्धार के हेतु, क्रान्ति और विप्लव के गीत गाने लगे। कुछ कवियों ने दोनों प्रकार के भावों को अभिव्यक्ति दी है। मैथिलीशरण गुप्त, हरिऔध, रामनरेश त्रिपाठी, सोहनलाल द्विवेदी, सियारामशरण गुप्त तथा माखनलाल चतुर्वेदी पहले वर्ग में स्थान रखते हैं। मानवतावाद के अन्तर्गत राष्ट्रीयतावाद से प्रेरित होकर दलित वर्ग के प्रति इनकी संवेदना प्रकट हुई है। भगवतीचरण, नरेंद्र, अंचल, इलाचन्द्र, सुमन, रांगेय राघव, तार सप्तक एवं दूसरे सप्तक के कवि दूसरे वर्ग के हैं। ये मार्क्सवाद से प्रेरित होकर सर्वहारा के प्रति सहानुभूति प्रकाशित करते हैं। इनके भावों में क्रोध, औद्धत्य एवं पौरुष की व्यंजना अत्यंत सशक्त है। नवीन, दिनकर, पन्त, निराला, उदयशंकर भट्ट को तीसरी श्रेणी में रखा जा सकता है। यद्यपि ऐसी कोई विभाजक रेखा नहीं है कि अमुक-अमुक कवि विशुद्ध रूप से अमुक-अमुक वर्ग में ही आते हैं उससे बाहर उन्होंने कुछ नहीं कहा है, तथापि उनके अधिकांश भावोद्गारों से ऐसा ही प्रकट होता है। इसके अतिरिक्त भाव-प्रवृत्तियों में मिश्रण होना स्वाभाविक है, विशेषतः जब कि कुछ समय तक छायावाद-प्रगतिवाद की दोनों प्रवृत्तियां साथ-साथ चली हों। पन्त और निराला मूलतः छायावादी कवि थे, किन्तु आगे चल कर प्रगतिवादी काव्य धारा को भी इन्होंने ही अग्रसर किया है। युगवाणी की 'समाजवाद-गांधीवाद' कविता में पन्त जी गांधीवाद और मार्क्सवाद में समन्वय करते हैं।[१] निराला जी एक ओर तुलसीदास और राम की शक्ति पूजा में आस्था रखते हैं और दूसरी ओर 'कुक्कुर मुत्ता' तथा 'नये पत्ते' में मार्क्सवादी विचार-धारा का अवलम्ब लेते हैं। इसी प्रकार दिनकर के कुरुक्षेत्र में गांधीवाद और मार्क्सवाद की समन्वित विचार-धारा ही परिलक्षित होती है। सुतरां किसी कवि को कठोरता में किसी कठघरे में नहीं रखा जा सकता। अस्तु, श्रम जीवियों से संबंधित प्रगतिवादी कविताओं में नाना अर्थभूमियों को लेकर काव्य-वस्तु का प्रचुरता से विस्तार हुआ है।

युगवाणी के प्रकाशन से पूर्व सन् १९३४ में लाहौर से करुण सतसई

१—मनुष्यत्व का तत्व सिखाता निश्चय हमको गांधीवाद।
सामूहिक जीवन-विकास की साम्य-योजना है अविवाद।
—पन्त

प्रकाशित हुई, जिसके रचयिता रामेश्वर 'करुण' हैं। इनके ब्रजभाषा के दोहों में पीड़ित-शोषित वर्ग के प्रति हार्दिक संवेदना है। कवि के हृदय पर साम्यवाद का प्रभाव है तथा संपत्ति पर से वैयक्तिक अधिकार हटा कर समाज के पुनर्निर्माण की आकांक्षा है[१]। करुण जी के कृषक, श्रमिक, विषमता, महाजन, रूढ़ि-राक्षसी, द्विजाति-अनन्यता, वर्ण व्यवस्थापक, गौरांग, साधु, बेकार, करुण-क्रन्दन, अप्रिय सत्य दोहों में साम्यवादी सिद्धान्त के अनुकूल श्रमिकों के प्रति संवेदना प्रकाशित की गई है।

नवीन, सुभद्राकुमारी, एक भारतीय आत्मा, की कविताओं में भी प्रगतिवादी काव्य-वस्तु का चित्रण है, पर वे राष्ट्रीयता के आवरण से आच्छादित है[२]। 'भैंसा गाड़ी' कविता में भगवतीचरण जी ने पीड़ितों के गृह-आवासों का ऐसा सजीव वर्णन किया है कि सम्पूर्ण चित्र आँखों के आगे आ जाता है[३]।

निराला जी की 'तोड़ती पत्थर,' 'दीन,' 'विधवा,' 'भिक्षुक', 'कुक्कुरमुत्ता' और 'नये पत्ते' की रचनाएं, पन्त की 'ग्राम्या' और 'युगवाणी,' दिनकर की 'हाहाकार,' 'कस्मै देवाय,' 'नई दिल्ली,' भगवतीचरण वर्मा की 'भैंसागाड़ी

१—जब लौं श्रम अरु उपज को, होत न साम्य विभाग।
बुझै बुझाए किमि कहो, यह अशान्ति की आग॥
है न भयो ह्वै है नहीं, साम्यवाद सम आन।
जग की व्याधि अगाध को, साँचो सही निदान॥ (करुण)

२—लपक चाटते जूठे पत्ते
जिस दिन मैंने देखा नर को
उस दिन सोचा क्यों न लगा दूँ
आग आज इस दुनिया भर को।—जूठे पत्ते (नवीन)

३—उस ओर क्षितिज के कुछ आगे
कुछ पाँच कोस की दूरी पर
भू की छाती पर फोड़ों से
हैं उठे हुए कुछ कच्चे घर
पशु बन कर नर पिस रहे जहाँ
नारियाँ जन रही हैं गुलाम
पैदा होना फिर मर जाना
यह है लोगों का एक काम।

(भगवतीचरण वर्मा)

ग्रौर ट्राम,' नरेंद्र की कृषक, विधवा, माचवे की 'निम्न मध्य वर्ग,' रामविलास की 'कार्य क्षेत्र,' 'सिलहार', 'हड्डियों का ताप', 'किसान कवि ग्रौर उसका पुत्र', उदयशंकर भट्ट की 'रिफ्यूजी' तथा रांगेयराघव की 'पिघलते पत्थर' की कविताग्रों में साम्यवाद से प्रेरित उग्र एवं करुण भावों का प्रकाशन है।

प्रगतिवादी काव्य-वस्तु में किसान ग्रौर मजदूरों के जीवन को ग्रत्यंत सहृदयता से चित्रित किया गया है। इन कविताग्रों में कहीं तो सामाजिक विषमताग्रों का चित्रण है, कहीं ग्रार्थिक ग्रसंगतियों का वर्णन है, कहीं सामाजिक ग्रव्यवस्थाग्रों को विध्वस्त करने की हुंकार है, कहीं दैन्य-पीड़ित शोषित जनों के जीवन का ग्रंकन है तथा कहीं वर्तमान व्यवस्था के पुनर्निर्माण का उद्घोष है। भगवतीचरण वर्मा, ग्रंचल, नरेंद्र, सुमन, नागार्जुन, रामविलास शर्मा, त्रिलोचन, शमशेर, माचवे, रांगेय राघव, केदार, गजानन, गिरिजाकुमार, महेन्द्र भटनागर एवं ग्रज्ञेय ने साम्यवाद से प्रभावित होकर सर्वहारा वर्ग के जीवन का चित्रण विविध विषयों के माध्यम द्वारा किया है जिससे काव्य के विषय एवं उपादानों का प्रचुर विस्तार हुग्रा है।

(४) वैज्ञानिक विषय—

विज्ञान की संस्कृति से विरोध रखते हुए भी ग्राधुनिक कवि विज्ञान के प्रभाव से बच नहीं सके हैं। उनके काव्य में यत्रतत्र वस्तु-वर्णन में वैज्ञानिक सिद्धान्त एवं विचारों की छाप ग्रवश्य मिलती है। प्रगतिवादी काव्य-धारा के शत-प्रतिशत कवियों पर विज्ञानवाद का प्रभाव है। नीचे इसी का विवेचन किया जाता है।

ग्रणुवाद—

विज्ञान के ग्राधुनिकतम सिद्धान्त के ग्रनुसार प्रत्येक ग्रणु में ग्रनेक परमाणु होते हैं। इसके केन्द्र में ग्रनेक धनात्मक परमाणु (प्रोटॉंस) होते हैं जिसके चारों ग्रोर ग्रनेक ऋणात्मक परमाणु (इलैक्ट्रॉंस) परिक्रमा करते रहते हैं। इन परमाणुग्रों में निरंतर गतिशीलता रहती है तथा ये कभी स्थिर नहीं रह सकते हैं। ये परस्पर ग्राकर्षण एवं प्रतिकर्षण (एट्रक्शन एंड रिपल्शन) से स्थिर रहते हैं। जब तक यह कार्य संयत दशा में होता रहता है, तब तक सृष्टि भी ठीक चलती रहती है, किन्तु जब इनमें विक्षोभ उत्पन्न हो जाता है, तभी सृष्टि में विध्वंस की लीला प्रारम्भ हो जाती है। प्रसाद जी इस सिद्धान्त से परिचित हैं[१]।

१—तांडव में थी तीव्र प्रगति, परमाणु विकल थे।
नियति विकर्षणमयी, त्रास से सब व्याकुल थे॥—कामायनी

विज्ञान बतलाता है कि अणु की शक्ति अपरिमेय है। 'मेधावी' का कवि इस सिद्धान्त से प्रभावित है। वह कहता है—जिस प्रकार वृक्ष की शाखाओं का महान् विस्तार लघु बीज में छिपा हुआ है, उसी प्रकार ग्रह, उपग्रह का यह अनन्त प्रसार अणु में निहित है। अणु आपस में मिलकर चैतन्य की सृष्टि करते हैं। मृत्यु उन्हें विघटित कर ध्वंस की लीला रचती है। जीवन-मरण का यह कार्य सृष्टि में प्रतिक्षण चलता रहता है। प्रकृति कभी विराम नहीं लेती। उसकी सृजन और ध्वंस की क्रिया निरन्तर चलती रहती है। परिवर्तन सृष्टि का नियम है वही जीवन है, स्थिरता ही प्रलय है[1]।

पदार्थ की अनश्वरता—

विज्ञान का सिद्धान्त है कि पदार्थ का कभी नाश नहीं होता। उसका केवल रूप परिवर्तित होता है। अवश्य ही एक स्थिति से दूसरी स्थिति में परिवर्तित होकर पदार्थ का रूप बदल जाता है। इसे 'थ्योरी आफ कनवर्टीबिलिटी' कहते हैं। प्रसाद जी इस वैज्ञानिक सिद्धान्त से परिचित हैं[2]।

विकासवाद का सिद्धान्त—

इसका संबंध प्रधानतः डार्विन के साथ जोड़ा जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रकृति सतत परिवर्तनशील है तथा वह निरन्तर विकासोन्मुख है। दर्शन के क्षेत्र में हीगेल की मान्यता के अनुसार मानवीय सभ्यता का विकास क्रम-क्रम से हुआ है। यह मत विकासवादी सिद्धान्त के अनुकूल है। इस विकास के दो पक्ष हैं–(१) भौतिक सृष्टि के जड़ तत्वों का विकास तथा (२) चेतन प्राणियों का विकास। डार्विन से पहले लेमर्क ने इस सिद्धान्त को तीन चरणों में प्रतिपादित किया था।

१–भौतिक परिस्थिति प्राणी को तद्नुकूल ढलने के लिए विवश करती है।

२–परिस्थिति की अनुकूलता के हेतु प्राणी अपने शरीर के अंग-विशेषों से आयास करता है।

१—इस एक बीज में छिपी हुई, शाखाओं की विस्तृति अपार
इस एक विमुग्ध अणु में मुखरित ग्रह उपग्रह का गुंजित प्रसार।
—मेधावी

२—नीचे जल था ऊपर हिम था, एक तरल था एक सघन,
एक तत्व की ही प्रधानता, कहो उसे जड़ या चेतन ॥—कामायनी

३—प्राणी के अंग-विशेष के आयास से उसमें इतना विकास हो जाता है कि उसकी सन्तति में उपार्जित गुण प्रकट हो जाता है। उदाहरण के लिए साँप के पैर क्यों नहीं होते? साँप का विकास रेंगने वाले जीव से हुआ है। कुछ रेंगने वाले जीवों ने जल में रहना छोड़ दिया तथा वे ऐसी दलदली भूमि पर आ गए, जहाँ घास होती थी। यहाँ उन्हें अदृष्ट रहने की आवश्यकता पड़ती थी। इस परिस्थिति की विवशता ने उसके पैरों को व्यर्थ बना दिया क्योंकि उस परिस्थिति में पैर बाधक थे। इस प्रकार क्रम-क्रम से हर एक पीढ़ी की सन्तति के पैर इतने छोटे होते चले गए कि कालान्तर में उनका अस्तित्व ही जाता रहा[१]।

इस सिद्धान्त का एक आवश्यक परिणाम यह था कि प्रत्येक परिस्थिति में योग्यतम जीवित रहते हैं। योग्यता के लिए हर एक प्राणी और पदार्थ को परिस्थिति के अनुकूल होना पड़ता है। परिस्थिति के अनुकूल होने के लिए आत्म-रक्षा तथा शत्रुओं के विनाश की आवश्यकता होती है। परिस्थिति-विशेष में जो योग्यतम सिद्ध होते हैं, वे ही आत्म-रक्षा करने में समर्थ होते हैं। संक्षेप में यही विकासवाद का सिद्धान्त है। इससे स्पष्ट है कि इस सिद्धान्त के अनुसार सृष्टि विकासोन्मुख है। इस मान्यता का आलोच्यकाल के कवियों पर प्रभाव लक्षित होता है।

मेधावी का कवि कहता है कि सृष्टि के प्रारंभकाल में मनुष्य पाशविक जीव थे। उनमें बर्बरता का प्राबल्य था। उस समय सबमें जिघांसा की प्रवृत्ति बहुत प्रबल थी। वे अहेर करते थे, यूथ बनाते थे, उदर-पूर्ति के हेतु संघर्ष करते थे तथा एक दूसरे से आगे बढ़ने की होड़ करते थे। वे पूर्णतः अविकसित जीव थे। उनमें सभ्यता नाम को भी नहीं थी। उनका जीवन प्रकृति के अधीन था। प्राकृतिक शक्तियों को देखकर वे भय खाते थे। भय और आतंक से पीड़ित होकर वे हर एक पदार्थ में किसी-न-किसी देवता की भावना कर लेते थे तथा आत्म-रक्षा के लिए उनकी स्तुति करते थे। धीरे-धीरे मनुष्य की बुद्धि में ज्ञान का उन्मेष हुआ। ज्यों-ज्यों ज्ञान का विकास होता गया मनुष्य प्रकृति पर विजय प्राप्त करता चला गया। अब वह इतना विकसित हो चुका है कि उसने प्रकृति

१—देखिए, गार्डनर मर्फी, हिस्टोरीकल इंट्रोडक्शन टू माडर्न साइकालाजी, द थ्योरी आव इवल्यूशन, पृ० ११३।

को अपने अधीन कर लिया है। उसने जगत् के अज्ञात रहस्यों को ढूँढ़ लिया है। अब वह नक्षत्र-लोक की सैर करने को व्यग्र है। आज प्रकृति पर उसका निर्बाध शासन है, भूमि उसकी दासी है। अब वह नाना सुखों की खोज में संलग्न है। उसके जीवन में गति है, श्रम उसका जीवन है। उसके नेत्र और कान प्रत्येक दिशा में खुले हुए हैं तथा वह विकास की ओर द्रुत गति से बढ़ता जा रहा है। वह भूमि और प्रकृति से संपूर्ण सुख संचित कर आत्मसात कर लेना चाहता है।[१]

मेधावी के चौथे सर्ग में सृष्टि के अखंड परिवर्तन का नृत्य वर्णित है।[२] प्रसाद, पन्त और निराला भी 'विकासवाद' के सिद्धान्त से प्रभावित हुए हैं। 'योग्यतम व्यक्ति ही जीवित रहते हैं' का सिद्धान्त कामायनी की श्रद्धा के मुख से भी सुनाई पड़ता है।[३]

इड़ा भी इस नियम से परिचित है कि जो स्पर्द्धा में उत्तम ठहरते हैं, वे ही जीवित रहते हैं। वे ही सृष्टि के कल्याण-साधन में योग दे सकते हैं[४]। 'जागो फिर एक बार' गीत में निराला जी ने 'योग्य जन जीता है' की उक्ति को पाश्चात्य सिद्धान्त नहीं, गीता का कथन बतलाया है। इस प्रकार उन्होंने विकासवाद के नियम का भारतीयकरण किया है। पन्त की 'ज्योत्स्ना' के झींगुर के गीत में वही सिद्धान्त सुनाई पड़ता है[५]। वस्तुतः 'झींगुर' आधुनिक विज्ञानवादी युग के मनुष्य का प्रतीक है।

१—देखिए, रांगेय राघव, मेधावी, पृ० ७६-७७।

२—ओ परिवर्तन सर्वात्म रूप
तेरा नर्तन जग का विकास
तेरे पग पग चालन में उठ
है क्रान्ति उमड़ती बार बार।—मेधावी

३—और यह क्या तुम सुनते नहीं
विधाता का मंगल वरदान
'शक्तिशाली हो, विजयी बनो'।
विश्व में गूँज रहा यह गान।—कामायनी

४—देखिए, कामायनी, पृ० १६२।

५—जो हैं समर्थ जो शक्तिमान जीने का है अधिकार उसे
उसकी लाठी का बैल विश्व पूजता सभ्य संसार उसे।
—ज्योत्सना

तार सप्तक में मुक्तिबोध की 'हे महान्', नेमिचन्द्र की 'जिन्दगी की राह', भारत भूषण की 'जीवन-धारा', रामविलास शर्मा की 'कवि', 'कलियुग' दूसरे सप्तक में नरेश कुमार मेहता की समय देवता आदि कविताओं में वस्तु-वर्णन पर वैज्ञानिक प्रभाव स्पष्ट है।

उपर्युक्त प्रसंग में छायावादी कवियों की कविताओं का भी उल्लेख किया गया है, क्योंकि आधुनिक युग की वैज्ञानिक प्रवृत्ति ने सभी कवियों को प्रभावित किया है। फलतः पन्त, प्रसाद, निराला आदि कवियों ने एक ओर वैज्ञानिक संस्कृति को हानिप्रद भी बतलाया है तथा दूसरी ओर काव्य-रचना में वे वैज्ञानिक सिद्धान्तों से प्रभावित भी हुए हैं। प्रगतिवादी-प्रयोगवादी कवियों ने तो स्पष्टतः विज्ञानवाद का आश्रय लिया है।

ऊपर दिए हुए उदाहरणों से प्रकट होता है कि वैज्ञानिक सिद्धान्त से प्रभावित कविताओं में तर्क एवं बुद्धिवाद की प्रधानता है। परंपरानुगत कविता में वस्तु-वर्णन अथवा सिद्धान्त का प्रतिपादन भी रस-सापेक्ष हुआ करता था। भक्तिकाल एवं रीतिकाल की कविता इसका प्रमाण है। किन्तु आलोच्यकाल में वैज्ञानिक आधार पर जहाँ वस्तु-वर्णन अथवा सिद्धान्त का निरूपण पाया जाता है, वहाँ कवित्व के दर्शन नहीं हैं। वह किसी प्रकार के भाव-बोध में सहायता नहीं करता। फलतः ऐसे वर्णन तथ्य-निरूपण मात्र हैं। वे विचारोत्तेजक अवश्य हैं, किन्तु उनमें भावोद्बोधन की सामर्थ्य नहीं।

निष्कर्ष यह कि वैज्ञानिक विषयों पर आधारित कविताओं में बुद्धि-पक्ष प्रधान हो गया है, जिससे वे हृदय को स्पर्श न करके सीधे बुद्धि से टकराती हैं। वर्तमान युग के प्रगतिवादी-प्रयोगवादी कवि अपने काव्य में भावात्मकता से अधिक बौद्धिकता को प्रश्रय देते हैं।

५—अन्तरराष्ट्रीय विषय

मार्क्सवाद से प्रभावित कवि रूस देश को अत्यधिक महत्व देते हैं, क्योंकि यही देश साम्यवाद की जन्मभूमि है। इसी देश ने सबसे पहले समाजवादी राज्य-प्रणाली का सूत्रपात किया है। इस दृष्टि से विश्व में रूस देश का गौरव सबसे बढ़कर है। इस भावना से प्रेरित होकर जो कविताएँ लिखी गई हैं, उनमें रूस की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशस्ति है। इसके अतिरिक्त लाल सेना, लाल निशान, मार्क्स तथा मास्को की प्रशस्ति को भी काव्य का विषय बनाया गया है।

नरेन्द्र शर्मा रूस के आदर्श से बहुत अधिक प्रभावित हैं। आपने 'अन्त में यह महायुद्ध', 'रूस के मैदान', 'चीन और हिन्दुस्तान' आदि कविताओं में अन्तरराष्ट्रीय विषयों पर रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। साम्यवादी विचारों की जन्म-

भूमि रूस है, अतएव कवि को उसी ओर से साम्यवाद का सूर्य उगता हुआ दिखाई पड़ता है, जिसे साम्राज्यवाद का सूर्य निगलने में असमर्थ हैं। कवि को विश्वास है कि रूस के मैदानों में ही संसार की समस्याओं का निपटारा हो सकता है[१]।

प्रभाकर माचवे ने लाल सेना के विजयोल्लास में स्वर मिलाते हुए एक 'सानेट' लिखा है, जिसमें सोवियत की विजयिनी लाल सेना की प्रशस्ति का वर्णन है। कवि को विश्वास है कि लाल सेना की अग्नि-वर्षा को देखकर शत्रु अवश्य परास्त हो जायगा।[२] 'जागते रहो' कविता में भारत भूषण ने क्षितिज के ऊपर लाल तारे को उदित 'देखकर सर्वहारा की विजय का विश्वास कर लिया है कवि को साम्यवादी प्रगति में पूर्ण विश्वास है।[३] केदार को गेहूं की ऊँची बालों में नोकीले भाले ताने हुए लाल फौज के अगणित सिपाही दिखाई पड़ते हैं।[४] रामविलास शर्मा की 'जल्लाद की मौत' कविता में रूसी वीरों की प्रशस्ति

१—सांस रोक सदियाँ तकती हैं, इन रूसी मैदानों को,
देखें, कौन उजाड़ सकेगा, सदियों के अरमानों को।
पेट काट कर महल बना था, दुनिया के मज़दूरों का,
लाल फौज जिसकी रखवाली, रूस देश मजदूरों का।
चाहे अपने लोहू से हो, चाहे झंडों के नीचे।
लाल हमें करना दुनियाँ को, लाल सितारे के नीचे।
आज रूस के मैदानों पर दुनिया का वारान्यारा
पर उगते सूरज को कैसे, निगल सकेगा अँधियारा।

२—व्योम में सगर्व जा रहा सगर्व सैन्य लाल
पितृ देश के अनन्य भक्त वीर नौजवान,
पंखहीन ये विहंगराज, सैकड़ों विमान,
शत्रु देश अग्नि-वृष्टि, हो परास्त, हो विहाल!—माचवे

३—लो क्षितिज के पास
वह उठा तारा, अरे! वह लाल तारा, नयन का तारा हमारे
सर्वहारा का सहारा
विजय का विश्वास।'—भारत भूषण

४—लाखों की अगणित संख्या में
ऊँचा गेहूँ डटा खड़ा है।
ताकत से मुट्ठी बाँधे हैं,

का गान है। शिवमंगल सिंह 'सुमन' की 'चली जा रही है, बढ़ी लाल सेना' प्रगतिशील काव्य की विशिष्ट रचनाओं में स्थान रखती है। 'मास्को अब भी दूर है' कविता में 'सुमन' ने मास्को का गौरव-गान किया है।

ऊपर के उदाहरणों से स्पष्ट है कि प्रगतिवादी कवियों ने अन्तर्राष्ट्रीय विषयों पर भी काव्य-रचना की है। ये कविताएँ अधिकतर रूस और चीन की प्रगति से संबंधित हैं, क्योंकि इन्हीं देशों में साम्यवाद की आदर्श-व्यवस्था मिलती है। इसमें सन्देह नहीं कि ये विषय सर्वथा नूतन हैं तथा इनके आगमन से काव्य-क्षेत्र की अत्यधिक समृद्धि हुई है। किन्तु अपरिचित होने के कारण इन विषयों के साथ भारतीय लोक-हृदय का साधारणीकरण नहीं हो सकता। एक वर्ग विशेष के कवियों के मनोराज्य में ही इनकी भाव-तरंगें उठती हैं, साधारण जनों के हृदय को स्पर्श करने में ये असमर्थ ही हैं। फिर भी प्रगतिवादी कवियों का प्रयत्न स्तुत्य है कि उन्होंने सर्वप्रथम अन्तर्राष्ट्रीय विषयों को काव्य में स्थान दिया है।

सारांश—

छायावाद युग से पहले हिन्दी-काव्य-परंपरा में काव्य के विषय अधिकतर देवता रहे हैं उच्च वर्ग के मनुष्यों पर भी थोड़ी सी काव्य-रचना पाई जाती है, परन्तु साधारण जन कवियों की श्रद्धा या प्रेम के अधिकारी कभी नहीं बने। प्रेमाख्यानक सूफी कवियों ने यद्यपि लोक-वृत्तों के आधार पर कविता की है, तो भी उनके काव्यों में प्रधान पात्र के रूप में राजा को ही चुना गया है। वीर गाथा काल में सामन्त वर्ग के प्रतापी वीर पुरुषों पर काव्य-रचना होती थी। इससे स्पष्ट है कि हिन्दी की संपूर्ण काव्य परंपरा में निराकार-साकार ब्रह्म अथवा उच्च वर्ग के मनुष्यों के सिवाय किसी अन्य वर्ग को काव्य के विषय रूप में कभी नहीं ग्रहण किया गया है। प्रकृति के नाना रूप एवं दृश्यों को भावों के उद्दीपन के रूप में तो चित्रित किया गया है किन्तु काव्य का आलम्बन बनने का अधिकार नहीं दिया गया है।

छायावाद युग के आरंभ से काव्य की प्रवृत्ति में एक नया मोड़ आता है। नयी प्रवृत्ति तथा परिस्थितियों के अनुरोध से छायावादी कवियों में प्रकृति के प्रति एक नया अनुराग उत्पन्न होता है। वे प्रकृति के मनोमुग्धकारी नाना

नोकीले भाले ताने हैं
हिम्मतवाली लाल फौज-सा
मर मिटने को झूम रहा है। —केदार

रम्य रूपों की ओर आकृष्ट होते हैं तथा उनको काव्य के उपादानों के रूप में ग्रहण करने लगते हैं। पन्त जी में प्रकृति-प्रेम सबसे अधिक है। अन्य छायावादी कवियों ने भी इस ओर विशेष रुचि प्रदर्शित की है। इससे स्पष्ट है कि छाया-वादी काव्य के विषयों में प्रकृति का अनन्त प्रसार समाया हुआ है।

राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धारा के कवियों ने मातृभूमि के विविध रूपों को काव्य का आलम्बन बनाया है। इनके अन्तर्गत राष्ट्र-नायक, देश-भक्त, सत्याग्रही वीरों से लेकर दीन, दलित एवं अछूतों का भी स्थान है। राष्ट्र वीरों एवं साधा-रण जनों को इस काव्य-प्रवृत्ति के द्वारा पहली बार काव्य में स्थान मिला है। छायावादी विषयों की भाँति राष्ट्रीय विषय भी भावों को उद्दीप्त करने में अत्यंत सफल सिद्ध हुए हैं। इनसे श्रद्धा, उत्साह, रति आदि भावों का उन्मेष होता है।

काव्य-वस्तु की परिधि का प्रगतिवादी काव्य में जितना विस्तार हुआ है, उतना अन्यत्र नहीं। इसमें व्यष्टि समष्टि जीवन के सभी पदार्थों का समावेश हो गया है। इस काव्य-धारा में पदार्थ-अपदार्थ, सुन्दर-असुन्दर, रूप-कुरूप, घृणित-कुत्सित सभी वस्तुओं को कवियों ने निस्संकोच अपनाया है। चूड़ी का टुकड़ा, खंडहर, चाय की प्याली, सिलहार, हड्डियों का ताप, चार का गजर, प्रलय, भैंसा गाड़ी, दर्द, चुम्बन आदि ऐसे क्षुद्र विषय हैं, जो पहले पहल कविता के उपादानों के रूप में गृहीत हुए हैं। कहीं-कहीं अत्यन्त विरूप, घृणित एवं कुत्सित पदार्थों का भी वर्णन आता है।

काव्य का अपना क्षेत्र है। उसमें रमणीय एवं सुन्दर वस्तुओं का आदर है। परंपरा ने जिन वस्तुओं को आदर दिया है, उनके प्रति लोक-हृदय का आसानी से साधारणीकरण हो जाता है। अतएव वे विषय सहृदय जनों के प्रिय हो जाते हैं तथा उनके साथ तादात्म्य हो जाने से हृदय प्रफुल्लित होता है। तुच्छ, अपदार्थ एवं अन्तर्राष्ट्रीय विषय हृदय को स्पर्श नहीं कर सकते, क्योंकि उनमें सहृदय के चित्त को आकर्षित करने की योग्यता नहीं होती। यह कहना व्यर्थ है कि कवि-प्रतिभा साधारण-से साधारण विषय को चमत्कृत कर सकती है। कला के द्वारा शैलीगत चमत्कार दिखाया जा सकता है, किन्तु वर्ण्य विषय को सरस नहीं किया जा सकता है। सामान्य वस्तु के आधार पर सामान्य काव्य की ही सृष्टि हो सकती है। महान् काव्य की रचना के लिए आलम्बन भी महत्वपूर्ण होना चाहिए। नरेन्द्रकुमार की 'समय देवता' एक प्रसिद्ध रचना है, जिसमें पृथ्वी के विभिन्न देशों के विकास की कहानी है। न जाने इसका 'समय देवता' नाम क्यों रखा गया है, जबकि इसमें पृथ्वी के नाना देशों का वर्णन है। इस कविता में रूपक के आवरण में पृथ्वी के देशों की ऐतिहासिक कथा वर्णित

है। यदि इसमें से अलंकारों की छटा को निकाल दिया जाय तो इस लम्बी कविता में भौगोलिक वर्णन के सिवाय और कुछ न रहेगा। इसी प्रकार रोड़े-ढेले, चिमनी, रिक्शा, कोयले की खानों पर रचित कविताओं से हृदय में उदात्त भावों का 'उन्मेष' नहीं हो सकता। उदात्त भावों को उद्दीप्त करने के लिए काव्य-वस्तु को प्रिय, परिचित एवं सुन्दर भी होने की आवश्यकता है। असाधारणीकृत विषय पाठक को तन्मय नहीं कर सकते।

निष्कर्ष यह कि आधुनिक काव्य, विशेषतः प्रगतिवादी काव्य के विषय रस-बोध में सहायता नहीं करते। अतिशय बौद्धिकता के कारण वे विचारोत्तेजक अवश्य हैं। धर्म और ईश्वर को अपदस्थ करके इनमें भौतिक जगत् की वस्तु-सत्ता को यथार्थ माना गया है। छायावाद युग से लेकर वर्तमान युग तक के काव्य के विषय सर्वथा नूतन हैं। प्रगतिवादी काव्य ने विषय-वस्तु का सबसे अधिक विस्तार किया है। इसके अतिरिक्त वर्तमान युग की कविता ने परंपरा से विरोध करके सामान्य-से-सामान्य विषयों को काव्य में स्थान दिया है तथा इन विषयों को साधारण जन-जीवन में से चुना गया है। इससे वर्ण्य-वस्तुओं का विस्तार अवश्य हुआ है, किन्तु सौंदर्य-बोध का स्तर गिर गया है।

अष्टम अध्याय

भाव-व्यंजना में प्रयोग

भाव-व्यंजना में प्रयोग

आलोच्यकालीन हिन्दी-कविता में एक नवोन्मेष दृष्टिगोचर होता है, जिसके फलस्वरूप रस-व्यंजना की स्वीकृत प्रणाली में भी नये प्रयोग हुए हैं। काव्य में शृंगार का रस-राजत्व स्वीकृत सिद्धान्त है, किन्तु इसकी व्याप्ति नायक-नायिकाओं के क्षेत्र में ही सीमित हो गई थी। आधुनिक कवियों ने रति के क्षेत्र में नये-नये आलम्बनों का विधान किया है तथा नये-नये संचारी भावों को भी प्रयुक्त किया है।

रति के क्षेत्र में जो नये आलम्बन मिलते हैं, उनका अध्ययन नीचे किया जाता है :—

(१) प्रकृति विषयक रति, (२) देश (राष्ट्र) विषयक रति, (३) अव्यक्त प्रिय विषयक रति और (४) अमूर्त पदार्थों के प्रति रति।

(१) प्रकृति विषयक रति—

सबसे पहले शृङ्गार के अन्तर्गत प्रकृति विषयक रति का अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है। नवीन कविता में कविजन प्रकृति के सौन्दर्य को ओर अत्यधिक आकर्षित हुए हैं। विशेषतः छायावादी कविता में प्रकृति का चित्रण विभिन्न रूपों में हुआ है। रीतिकाल में प्रकृति को केवल उद्दीपन सामग्री के रूप में ही लिया गया है, किन्तु आधुनिक काव्य में उसका आलम्बन के रूप में भी चित्रण हुआ है। मानवीकरण की अतिशय प्रवृत्ति आधुनिक कविता की अन्यतम विशेषता है। प्रकृति के कोमल, सुन्दर एवं आकर्षक रूपों को चेतन प्राणियों के समान कार्य-व्यापार में लीन दिखाया गया है।

निराला की 'जूही की कली' एक प्रसिद्ध रचना है। इसमें मानवीकरण द्वारा संभोग शृङ्गार की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। विजन-वन-वल्लरी पर दृग बन्द किए वासन्ती निशा में सोती हुई जूही की कली में प्रोषित पतिका नायिका का आरोप किया गया है। वह दूर देश को गए हुए नायक (मलयानिल) की मधुर स्मृति में मग्न है। उसने चाँदनी से धुली रातों में प्रियतम के साथ जो रंग-रेलियाँ की है, उनकी सुध आती है। उधर प्रवास से उद्विग्न प्रिय को भी कामिनी की मधुर स्मृति सताने लगती है और वह उपवन, सर, सरिता गहन-गिरि-कानन-कुंजों को पार करता हुआ उसके समीप आ पहुँचता है।

यौवन की मदिरा को पान करने से आत्म-विभोर वह नेत्रों को बन्द किए

हुए बैठी थी कि प्रियतम ने धीरे से उसके कपोल चूम लिए। इसके पश्चात् निर्दय नायक ने उसके साथ मुक्त भोग किया।

इस कविता में दोनों ओर प्रेमोदय दिखाया गया है, अतएव नायक-नायिका दोनों एक दूसरे के आलम्बन हैं। वासन्ती समीर, उपवनादि उद्दीपन हैं। कपोल चूमना, देह को झकझोरना, कपोलों को मसल देना, नायिका का नेत्र मूँद लेना, वेसुध हो जाना, चौंकना, चकित होना, हँसना, खिलना, रंग-रेलियाँ करना आदि अनुभाव हैं। औत्सुक्य, मद, हर्ष, आवेश, चपलता संचारी हैं। स्वेद, रोमांच सात्विक हैं। रति स्थायी के सभी अंगों में पुष्ट होने से संयोग शृङ्गार व्यंजित है। इसमें प्रकृति विषयक रति भाव है।

निर्दय उस नायक ने
निपट निठुराई की
कि झोंकों झड़ियों से
सुन्दर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली,
मसल दिए गोरे कपोल गोल,
चौंक पड़ी युवती—
चकित चितवन निज चारों ओर फेर,
हेर प्यारे को सेज पास,
नम्रमुखी हँसी—खिली,
खेल रंग, प्यारे संग।

—जूही की कली,—निराला

छायावादी कविता में यह प्रवृत्ति चरमोत्कर्ष को पहुँच गई है। प्रसाद की नीरद, मलयानिल, बीती विभावरी, जाग री, पन्त की छाया, चाँदनी, निर्झरी, वसन्त, सन्ध्या, मधुकरी, निराला की सन्ध्या सुन्दरी, यमुना के प्रति, महादेवी की वसन्त रजनी, रूपसि तेरा घन-केश-पाश, लय गीत मन्दिर, रामकुमार वर्मा की फूल वाली आदि कविताओं में रति की व्यंजना के लिए प्रकृति के अनन्त से आलम्बन चुने गए हैं।

परंपरागत शास्त्रीय नियम के अनुसार इस श्रेणी की कविताएँ रसाभास की कोटि में आती हैं, क्योंकि इनमें अचेतन एवं निरिन्द्रिय पदार्थों में रति-भाव प्रदर्शित किया गया है।[१] किन्तु आधुनिक युग में प्रकृति में मानवीकरण द्वारा प्रेम-व्यंजना की शैली का इतना अधिक विकास हुआ है कि प्रकृति में भी रति-

---

१—देखिए, साहित्य दर्पण, ३।२६४।

भाव की सत्ता को स्वीकार करना पड़ता है। शास्त्रीय दृष्टि से इसे 'भाव' कहना उचित होगा।

ईश्वरोन्मुख प्रेम की परंपरा तो हिन्दी-साहित्य में दीर्घकाल से चली आ रही है किन्तु देश-प्रेम आधुनिक युग की देन है। आलोच्यकालीन कविता में देशानुराग पर इतने अधिक परिमाण में रचनाएं लिखी गई हैं कि न्यूनाधिक मात्रा में सभी कवियों पर इसका प्रभाव है। किसी न किसी प्रकार से हर एक कवि ने देश विषयक प्रेम को अभिव्यक्ति दी है।

मैथिलीशरण गुप्त की 'मातृ भूमि 'प्रसिद्ध कविता है। इसमें मातृ भूमि को 'सर्वेश की सगुण मूर्ति' कल्पित कर उसके विराट सौन्दर्य पर मुग्ध होकर कवि ने हार्दिक प्रेम व्यक्त किया है।[1] यदि शास्त्रीय दृष्टि से देखें तो इसमें शृंगार रस के सभी उपकरण मिलते हैं। मातृभूमि की सगुण मूर्ति आलम्बन, प्राकृतिक दृश्य उद्दीपन, कवि का आश्रय के रूप में बलिहारी जाना अनुभाव है। 'हर्ष' संचारी है। 'प्रेम' स्थायी है। यह देश-विषयक रति-भाव का प्रयोग है।

जयशंकर प्रसाद की 'हमारा देश', 'भारतवर्ष', नवीन की 'हिन्दुस्तान हमारा है', नेपाली की 'भारत माता', पन्त की 'भारत माता', सियाराम शरण, रांगेय राघव आदि कवियों की देश विषयक रचनाएँ इसी श्रेणी के अन्तर्गत हैं। सुमित्रानन्दन पन्त की 'ग्राम श्री', 'ग्राम देवता', भी इसी कोटि में आती हैं। भारतवर्ष के ग्राम, नगर, नदी, पर्वत आदि पर रचित सभी कविताएँ इसी श्रेणी में आती हैं क्योंकि इनमें देश-विषयक रति-भाव झलकता है।

देश-प्रेम की रचनाओं ने आलम्बन का क्षेत्र भी विस्तृत किया है। देश-भक्त, बलिदानी, आत्म-त्यागी, सत्याग्रही, समाज-सेवी, नेता आदि मातृ-भूमि के सेवकों को भी आलम्बन रूप में ग्रहण किया गया है। पूज्य बापू को आलम्बन मानकर अनेक कवियों ने देश-प्रेम के उद्गार प्रकट किए हैं। काव्य में देश-विषयक रति एक परंपरा के रूप में विकसित हो चुकी है, क्योंकि इस धारा के

१—नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुन्दर है।
सूर्य-चन्द्र युग-मुकुट मेखला रत्नाकर है।
नदियाँ प्रेम-प्रवाह फूल-तारे मंडन हैं।
बन्दी विविध विहंग शेष-फन सिंहासन हैं
करते अभिषेक पयोद हैं, बलिहारी इस देश की।
हे मातृभूमि तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की॥
—मैथिलीशरण गुप्त

अनेक कवियों ने इस भाव को परिपुष्ट किया है।

(३) अव्यक्त प्रिय विषयक रति—

छायावाद युग के कवियों में अव्यक्त प्रिय विषयक रति-भाव की पूर्ण अभिव्यक्ति पाई जाती है। इस धारा के कवियों में पन्त, प्रसाद, निराला, महादेवी, रामकुमार, हरिकृष्ण प्रेमी आदि प्रधान हैं।

महादेवी का काव्य अव्यक्त प्रियतम की विरहानुभूति से सजल है। इनकी वेदना अत्यंत गूढ़ एवं मार्मिक है। उन्होंने अज्ञात प्रिय के हेतु जिस प्रेम को समर्पित किया है, उसमें विविध भावों की अनूठी व्यंजना है। इनके गीतों में अव्यक्त विषयक रति की व्यंजना पद-पद में दिखाई पड़ती है; जिसमें हर्ष, विषाद, अमर्ष, क्षोभ, दैत्य, स्वप्न, लज्जा, औत्सुक्य, उन्माद, शंका, स्मृति, व्याधि, अभिलाष, आशा, उद्वेग, नैराश्य आदि विविध भाव संचरण करते हैं।

जयशंकर प्रसाद के आँसू में, हरिकृष्ण प्रेमी की 'आँखों में', 'अनन्त के पथ पर', महादेवी के नीरजा और सान्ध्य गीत में, रामकुमार वर्मा के 'प्रिय तुम भूले मैं क्या गाऊं', 'यह तुम्हारा हास आया', निराला की 'तुम और मैं', 'सान्ध्य सुन्दरी' में, अव्यक्त विषयक रति भाव की अभिव्यक्ति हुई है। इन गीतों में अधिकतर वियोग-व्यथा का स्वर प्रधान है, क्योंकि अव्यक्त प्रिय से मिलन-सुख तो स्वप्न के सिवा कभी संभव ही नहीं है।

हिन्दी-साहित्य में अलौकिक सत्ता के प्रति प्रेम दो रूपों में व्यक्त हुआ है—निर्गुण प्रेम और सगुण प्रेम। सगुण प्रेम आधुनिक काव्य में लुप्त-सा हो गया है, परन्तु निर्गुण प्रेम की कविता प्रचुर मात्रा में मिलती है। यह कबीर आदि सन्त कवियों की प्रेम-भावना से भिन्न है। सन्त कवियों ने निर्गुण ईश्वर को पति या पत्नी, माता या पिता, स्वामी अथवा साहिब के रूप में स्वीकार किया है। इस प्रकार आलम्बन को मूर्त रूप देकर उसे काव्य का विषय बनाया है। कबीर के 'हरि मोरा पिव, मैं हरि की बहुरिया' में काव्य का आलम्बन सुनिश्चित एवं सुज्ञात है, अतः बड़ी आसानी से पाठक का उससे साधारणीकरण हो जाता है। आलोच्यकालीन कवियों ने अव्यक्त प्रिय को अज्ञात एवं अगोचर रखकर ही रति को व्यंजित किया है। यही इसकी विलक्षणता है। छायावाद युग के कवियों में इस प्रयोग ने नवीन परंपरा का रूप ग्रहण कर लिया है।

(४) अमूर्त वस्तु विषयक रति—

छायावादी काव्य को स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह कहा गया है।

कारण यह कि इस धारा के कवियों ने अमूर्त वस्तु-सौन्दर्य का उद्‌घाटन करने की ओर विशेष रुचि प्रदर्शित की है। वस्तु-जगत् के विषयों को छोड़कर ये कवि सूक्ष्म सौन्दर्य का चित्रण करने की ओर उन्मुख हुए हैं। इनकी काव्य-वस्तु में सौन्दर्य का सूक्ष्म चित्रण है।

भावात्मक विषयों के सुन्दर रंगीन चित्र प्रस्तुत करने में प्रसाद सबसे अधिक पटु हैं। निरिन्द्रिय एवं अमूर्त विषयों को चेतन धर्म से समन्वित कर उन्होंने एक-से-एक अधिक मनोरम चित्र प्रस्तुत किये हैं। 'लाज भरे सौन्दर्य' कविता कबीर को 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' के तुल्य अत्यंत अपार्थिव एवं अशरीरी विषय है। प्रसाद का कवि उस पर चेतन धर्म को आरोपित कर एक सूक्ष्म सौन्दर्य चित्र अंकित करता है—

> 'तुम कनक किरण के अन्तराल में, लुक छिप कर चलते हो क्यों ?
> नत-मस्तक गर्व वहन करते, यौवन के घन, रस कन ढरते,
> हे लाज भरे सौन्दर्य ! बता दो मौन बने रहते हो क्यों ?
> अधरों के मधुर कगारों में, कल-कल ध्वनि की गुंजारों में,
> मधु सरिता-सी यह हँसी तरल अपनी पीते रहते हो क्यों ?
> बेला विभ्रम की बीत चली—रजनी गन्धा की कली खिली—
> अब सान्ध्य मलय आकुलित, दुकूल-कलित हो यों छिपते हो क्यों ?
>
> —प्रसाद

अरूप को रूप देना असाधारण कवि-कर्म है। प्रसाद जी ने 'कामायनी' में इस कला को पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया है। चिन्ता, आशा, श्रद्धा, काम-वासना, लज्जा आदि सूक्ष्म एवं अमूर्त विषयों के प्रसाद ने अत्यंत सुन्दर चित्र अंकित किए हैं।

पन्त की 'बालापन', 'अनंग', 'मर्म व्यथा', 'अनुभूति', 'गुंजन', निराला की 'प्रेम', 'प्रकाश', 'कौन तुम शुभ्र किरण वसना', रामकुमार की 'मौन करुणा', 'यह तुम्हारा हास आया' में अमूर्त विषयों के प्रति प्रेम की अभिव्यक्ति मिलती है।

निष्कर्ष यह कि सूक्ष्म विषयों से छायावादी कवियों को विशेष प्रेम है। हृदय की कोमल वृत्तियों का चित्रांकन करने में इन्हें अद्‌भुत सफलता मिलती है। प्रेम के साथ आशा, निराशा, सुख-दुःख, चापल्य, धृति, अधृति, स्मृति, विस्मृति, उन्माद, उत्ताप, उत्सुकता आदि भाव सहज ही मिश्रित हो गए हैं। यह छायावादी काव्य की विशेषता है कि उसने अमूर्त वस्तुओं में सूक्ष्म सौन्दर्य का दर्शन किया है।

आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रेम की अभिव्यक्ति विविध रूपों में हुई है। प्रेम ने जीवन और जगत् के इतने अधिक पाश्वों को पहले कभी स्पर्श नहीं किया। इस दृष्टि से आलोच्यकाल की कविता में प्रेम की विवृत्ति अत्यंत व्यापक एवं उदात्त है।

प्रेम के जिन आलम्बनों का ऊपर उल्लेख हुआ है, वे नये युग की देन हैं। प्राचीन परंपरा से इनका कोई सहज संबंध नहीं है। यदि प्राचीन काव्य में इनकी व्यंजना मिलती भी है तो वर्तमान युग में वह बहुत कुछ परिवर्तित हो गई है। वस्तुतः प्रेम के ये नये आलम्बन हैं। वर्तमान कविता में ये नवीन परंपरा के रूप में विकसित हुए हैं। इसी से इनकी सफलता सिद्ध है।

हास्य के क्षेत्र में प्रयोग—

आधुनिक युग में हास्य रस का रूप भी परिवर्तित हुआ है। वीर गाथा काल में कायर, भक्तिकाल में ढोंगी भक्त एवं साधु, भक्तों के आराध्य देव तथा रीतिकाल में पेटू, स्वार्थी, सूम, वैद्य, खटमल एवं अत्याचार-परायण व्यक्ति हास्य रस के आलम्बन रहे हैं। किन्तु आधुनिक काल में पश्चिमी सभ्यता के सम्पर्क से, अंग्रेजी शासन की क्रूरताओं से, पूंजीपति वर्ग के शोषण से एवं सामाजिक वैषम्य से हास्य रस के आलम्बनों में भी परिवर्तन आया है। शोषण, उत्पीड़न, टैक्स, घूस, भुखमरी, महामारी, अकाल, परतंत्रता एवं स्वतंत्रता ने नए-नए आलम्बनों की सृष्टि की है।

आधुनिक कविता में हास्य रस का विकास तीन रूपों में अधिक हुआ है—(१) व्यंग्य (२) मधुर हास और (३) पैरोडी।

नीचे नये आलम्बनों सहित इन्हीं तीनों रूपों का विवेचन प्रस्तुत किया जाता है :—

(१) **व्यंग्य**—हास्य और व्यंग्य में भेद है। दोनों का अन्तर सूक्ष्म होते हुए भी अस्पष्ट नहीं है। शुद्ध हास्य में कोई प्रयोजन नहीं होता। यदि कोई प्रयोजन है तो मनोरंजन मात्र। किन्तु व्यंग्य सोद्देश्य होता है। उद्देश्य ही व्यंग्य-काव्य का प्राण है। व्यक्तिगत और समाजगत त्रुटियों का परिमार्जन व्यंग्यात्मक कविता का मुख्य उद्देश्य होता है। इसके द्वारा अत्यंत सुगमता से दोषों का परिहार हो सकता है। इसके माध्यम से बात संक्षेप से एवं सांकेतिक ढंग से कही जाती है, जो सीधे लक्ष्य तक पहुँचती है।

आधुनिक कविता में हास्य ने अधिकतर व्यंग्य का रूप धारण कर लिया है। अतएव यहाँ पहले उसी पर विचार किया जाता है।

नयी कविता में व्यंग्य के विषय भी नये हैं। इन्हें चार भागों में बाँटा जा सकता है—(क) व्यक्ति, (ख) परिवार, (ग) समाज और (४) स्वयं कवि।

(क) व्यक्ति—वर्तमान कविता में नेता, डाक्टर, वकील, ग्रेजुएट, मिनिस्टर, कवि, साहित्यिक, बाबू, क्लर्क, फैशन परस्त युवक, नये नौजवान, संवाददाता, पत्रकार, मेम, देशभक्त, समालोचक तथा वोटरों तक को हास्य एवं व्यंग्य का विषय बनाया गया है।

निराला जी हिन्दी के प्रसिद्ध व्यंग्यकार हैं। 'नये पत्ते' में 'रानी और कानी' कविता में मार्मिक व्यंग्य है। एक लड़की है कानी और कुरूप। किन्तु माँ ने प्यार से उसका नाम रखा है, रानी। रानी से कोई विवाह करने को तैयार नहीं होता। समाज में हर एक व्यक्ति सर्व सुन्दरी चाहता है। स्त्री को सर्वगुण सम्पन्न होना चाहिए, पुरुष में चाहे कोई भी गुण न हो। गुणहीन पुरुष भी सुन्दर स्त्री को पाने का अधिकार रखता है, किन्तु रूपहीन स्त्री को समाज में स्थान कहाँ? माँ चिन्तित है कि बेटी से विवाह करने को कोई तैयार नहीं। यह देखकर रानी रोने लगती है। उसके प्रति सहानुभूति दिखाने वाले तो बहुत हैं, किन्तु उससे विवाह कोई नहीं करता। कैसी विडम्बना है![1] खजोहरा, मास्को डायलाग्स, राजे ने अपनी रखवाली की, खुश खबरी, दगा की पाँचक, झींगुर डटकर बोला, महँगू महँगा रहा अन्य व्यंग्यात्मक विषय हैं, जिनसे निराला जी की तीव्र प्रतिभा-शक्ति का पता चलता है। इन कविताओं में व्यंग्य का यथार्थ रूप खिल उठा है।

आजकल मिनिस्टर होना भी बहुत बड़ा लाभ है। पार्टी और चन्दे की धूम मची रहती है। यदि किसी स्कूल या विद्यालय के लोग उनसे सहायतार्थ मिलते हैं, तो उनको निराश ही होना पड़ता है।[2] अधकचरे

१—माँ कहती थी उसको रानी,
आदर से जैसा था नाम।
लेकिन उल्टा ही रूप,
चेचक-मुँह, दाग काला, नाक चपटी,
गंजा सर, एक आँख कानी।—निराला

२—उन्हें दुनियां से क्या मतलब, मिनिस्टर के जो बन्दे हैं
कहीं वह आ गए तो पार्टी औ खूब चन्दे हैं।
किसी स्कूल विद्यालय का डेपूटेशन जो ले आओ
तो कहते हैं कि भाई आजकल व्यापार मन्दे हैं।—बेढब बनारसी

साहित्यकार,[१] बेकार ग्रेजुएट, फैशनपरस्त[२], आनरेरी मजिस्ट्रेट बेढब जी के व्यंग्य-बाणों का शिकार हुए हैं। कहीं-कहीं पर बेढब जी को अश्लीलता का विचार भी छूट गया है।[३] इसमें संदेह नहीं कि बेढब जी के व्यंग्य-विषय अत्यंत मार्मिक, सजीव और सामयिक हैं। नयी शिक्षा और नयी सभ्यता के दोषों को उन्होंने गहराई से देखा है। ये व्यंग्य इतने चुटीले हैं कि सीधे लक्ष्य पर प्रहार करते हैं।

कान्तानाथ पांडेय 'चोंच' के हास्य-व्यंग्य के आलम्बन लीडर, फैशन-परस्त युवक[४] एवं चन्दा खा जाने वाले लोग[५] ही हैं। उनकी 'खरी खोटी' पुस्तक में इसी प्रकार के विषयों का बाहुल्य है। चोंच जी के व्यंग्य स्वाभाविकता लिए हुए हैं। इनमें बेढब जी का सा चुटीलापन नहीं है। गोपालप्रसाद व्यास भी हास्य रस के प्रसिद्ध कवि हैं। 'अजी सुनो' उनका प्रसिद्ध काव्य-संग्रह है। इसके व्यंग्य साधारण कोटि के होते हैं। कहीं-कहीं पर उनमें वीभत्स बातों का भी वर्णन मिलता है।[६] रमई काका की 'धोखा' कविता में आधुनिक सभ्यता और

१—पढ़ के दर्जा तीन तक वे बन गए साहित्यकार
और मम्मट से वह अपने को समझते कम नहीं।—बेढब बनारसी

२—नजाकत औरतों सी, बाल लम्बे, साफ मूँछे हैं
नए फैशन के लोगों की अजब सूरत जनानी है

× × ×

जनेऊ इनकी नेकटाई है पाउडर इनका टीका है
नये बाबू को ह्विस्की आजकल गंगा का पानी है।—बेढब बनारसी

३—नयी तालीम का बेढब यही निकला नतीजा है
चचा के सामने लेडी लिए लेटा भतीजा है।—बेढब बनारसी

४—मूँछ की गायब निशानी खूब है
कमर की पतली कमानी खूब है।
वाह मिस्टर मुलमुले भंडारकर
आपकी सूरत जनानी खूब है।—चोंच

५—चन्दा औ पद ग्रहण की, जब लग मन में खान
पटवारी औ पन्त हैं दोनों एक समान।—चोंच

६—वे आठ बजे पर उठते हैं
उठते ही चाय माँगते हैं
फिर लेकर के अखबार
लैट्रिन में सीधे घुस जाते हैं।

फैशनपरस्ती पर चुटीला व्यंग्य है। इनकी भाषा अवधी है। वंशीधर शुक्ल ने भी आधुनिक फैशन पर व्यंग्य कसे हैं। ये अवधी में लिखते हैं।[१] श्रीनारायण चतुर्वेदी भी प्रसिद्ध व्यंग्य-कवि हैं। इन्होंने अधिकतर साहित्यिक व्यंग्य लिखे हैं। उनकी 'करेला लोचनी' प्रसिद्ध कविता है।[२] 'छेड़छाड़' इनका प्रसिद्ध काव्य-संग्रह है। अज्ञेय जी की 'जनाह्वान', 'जयतु हे कंटक चिरन्तन', नागार्जुन की 'बड़ा साहब', 'सौदा', 'प्रेत का बयान', 'मास्टर', 'छायावादी कवि', भवानी प्रसाद की 'गीत फरोश' कविताओं में व्यंग्य का पुट अत्यंत तीखा और तिलमिला देने वाला है।

(२) परिवार—

पति-पत्नी, देवर-भाभी और साले को व्यंग्य का आलम्बन बनाकर गोपालप्रसाद व्यास ने अनेक कविताओं की रचना की है। 'अजी सुनो' में पत्नी के विषय में अनेक कविताएँ लिखी गई हैं। पत्नीवाद पर हास्य रस पूर्ण इतनी कविताएँ शायद् किसी कवि ने नहीं लिखी है। एक ही विषय के ऊपर आधारित होने से व्यास जी की कविताओं में पुनरावृत्ति का शैथिल्य आ गया है। बहुत कुछ कृत्रिमता भी दिखाई पड़ती है। सहज हास्य बहुत कम है।[३] पत्नी से आगे अब उन्होंने 'साले' को व्यंग्य का विषय बनाया है।

अब बजी बजाती साढ़े नौ,
तब कहीं पखाने जाते हैं।—व्यास

१—कारे मुख पर पाउडर, की शोभा सरसाय।
मनौ धुवाना भीति पै, कलई दीन पोताय॥—वंशीधर शुक्ल

२—सदृश करेला आँख तुम्हारी,
वैसी कर्ई, वैसी तीखी,
वैसी नोंके प्रिये तुम्हारी
और जब कभी क्रोधित होती,
तब तुम नयन फाड़ हो देती।
नीम चढ़े तब निम्ब करेले की उपमा पूरी कर देती।
—श्रीनारायण चतुर्वेदी

३—सो तुम कहती हो—मैं स्नान,
भजन-पूजन—सब किया करूँ,
उसका खुद भी व्रत लिया करूँ।
प्रियतमे गलत सिद्धान्त,

२—समाज

पूँजीपति, परंपरा, रूढ़ि, प्राचीन संस्कृति, पंचायत, झूठी देश-भक्ति, बेकारी, बुड्ढों का विवाह, नकली नेता, सिनेमा गृह, घूस, सामाजिक कुप्रथाएँ एवं अनैतिक आचरण को व्यंग्य का विषय बनाकर अनेक रचनाएँ लिखी गई हैं। आधुनिक कवियों ने लीडर, चुनाव, चुंगी, चन्दा आदि विषयों पर बहुत कुछ लिखा है। पं० हरिशंकर शर्मा ने अपने 'चिड़ियाघर' में इस प्रकार के सामाजिक विषयों के आधार पर मनोरंजक सामग्री प्रस्तुत की है। 'चमर पंच' कविता में स्वायी पंचों की भर्त्सना की गई है।[1] अगुआ की आत्म कथा कविता में एक असफल वकील का व्यंग्य चित्र उतारा गया है। वकील साहब झूठी देश-भक्ति को ही जीविका का साधन बना लेते हैं। भोली जनता को ठगने वाले लोगों पर शर्मा जी ने मार्मिक व्यंग्य का प्रयोग किया है।[2] शर्मा जी के व्यंग्य समाज-सुधार की ओर लक्ष्य करते हैं। बेढब बनारसी के व्यंग्य सामाजिक दूषणों पर प्रहार करते हैं। उन्होंने 'बेढब की बहक' नामक काव्य-संग्रह में बेकारी, नौकरी के लिए घुड़दौड़, हाकिमों की चापलूसी, विदेशी सभ्यता एवं सरकारपरस्तों पर खूब छींटाकशी की है। बेधड़क बनारसी की 'हमारे नौजवानों की जवानी देखते जाओ,' 'दिल में मेरे यह कसाला रह गया,' रमई काका की 'बुढ़उ का बियाहु,' 'धोखा,' कुंज बिहारी पांडेय की, 'मंत्री जी की जवानी,' 'दैनिक पत्र,' 'सिनेमा-गृह,' वंशीधर शुक्ल की 'शंकर वेदना,' दिनकर जी की 'हाहाकार'

एक कहते हैं, दूजे करते हैं,
तुम स्वयं देख लो युद्ध भूमि में
सेनापति कब मरते हैं? —गोपालप्रसाद व्यास

१—रकम दूसरों की गटकते रहो,
सटासट माला सटकते रहो।
बनो धर्म के धाम संसार में,
अड़ाओ सदा टाँग उपकार में।
स्वयं मौज मारो मजे में रहो।
भजो भोर गोपाल 'शिव शिव' कहो। —हरिशंकर शर्मा।

२—मिली जो जनता रूपी गाय,
बड़ी भोली भाली है हाय।
दुहा करता हूँ मैं दिन रात,
न कपिला कभी उठाती लात। —हरिशंकर शर्मा

नयी दिल्ली, मुक्ति बोध की 'पूँजीवादी समाज के प्रति,' रांगेय राघव की 'पूँजीपति,' 'साम्राज्यवाद के प्रति,' भारतभूषण की 'अहिंसा,' माचवे की 'सानेट,' 'देशोद्धारकों से,' मैं और खाली चा की प्याली,' 'बीसवीं सदी,' रामविलास शर्मा की 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' अज्ञेय की 'जयतु हे कंटक निरंजन' कविताओं में सामाजिक एवं राजनीतिक विषयों पर व्यंग्य का प्रहार किया गया है।

४—स्वयं कवि—

अनेक कविताओं में स्वयं कवि या पात्र हास्य-व्यंग्य के आलम्बन के रूप में आया है। कान्तानाथ पांडेय चोंच की 'आत्म-विज्ञापन,'[1] हरिशंकर शर्मा की 'मगुआ की आत्म-कथा,'[2] बेढब बनारसी की 'फैशन के गुलाम,'[3] गोपालप्रसाद व्यास की 'अजी सुनो,'[4] कुंजबिहारी पांडेय की 'दैनिक पत्र'[5] कविताओं में हास्य-व्यंग्य का पात्र ही स्वयं अपने मुख से आत्म-परिचय देता है। इससे व्यंग्य में और अधिक सजीवता एवं मनोरंजकता बढ़ गई है।

(२) परिहास (आयरनी)

इसमें वक्ता जो कुछ कहता है, उसके विपरीत आशय होता है। वैपरीत्य ही इसका प्राण है। व्याज-स्तुति एवं व्याज निन्दा इसके दो रूप हैं। पं० हरिशंकर शर्मा ने अपने चिड़ियाघर में अच्छे परिहासों की योजना की है।[6] बेढब बनारसी की 'घूस' व्याज स्तुति का उदाहरण है।[7] गोपाल प्रसाद की 'पत्नी पूजक',[8] चोंच कवि की 'वन्दना',[9] वंशीधर शुक्ल की 'जय वोटर भगवान्'

१—खरी खोटी, पृ० ६१।

२—चिड़ियाघर, पृ० १३३।

३—बेढब की बहक, पृ० ३३।

४—अजी सुनो, पृ० १७१।

५—उपवन, पृ० ११।

६—नाथ ऐसा दो आशीर्वाद।
हो जावें हम भारतवासी, सब के सब बरबाद,
भारत पड़े भाड़ में चाहे, घटे न पद मर्याद।
रहे गुलामी के गड्ढे में, करें न दाद फरियाद,
जरा जरा से वाकयात पर बरसा करें फिसाद—हरिशंकर शर्मा

७—खुदा से रात दिन हम खैरियत उनकी मनाते हैं।
निडर होकर मजे से घूस लेना जो सिखाते हैं।—बेढब बनारसी

८—अजी सुनो, पृ० ८६।

९—खरी खोटी, पृ० २२।

आदि कविताओं में परिहास का सुन्दर रूप प्रस्फुटित हुआ है।

(३) मधुर हास—

यह शुद्ध हास्य है, जिसमें किसी प्रकार की तीक्ष्णता, कटुता अथवा ईर्ष्या को स्थान नहीं होता। इसमें व्यंग्य की तरह कोई प्रयोजन भी नहीं होता और परिहास की तरह स्तुति में निन्दा या निन्दा में स्तुति भी नहीं होती है। हास्य के आलम्बन के प्रति इसमें आत्मीयता और सहानुभूति का भाव रहता है। आधुनिक कविता में कहीं-कहीं इसके प्रयोग भी मिलते हैं। 'पढ़ीस' की 'हम और तुम',[१] पं० हरिशंकर शर्मा की 'जय नलदेव हरे', चोंच जी का 'निराशा का गान', बेधड़क जी की 'प्रियतम से बजट पास कराना',[२] गोपाल प्रसाद व्यास की 'कलम खो गई,[३] श्रीनारायण चतुर्वेदी की 'घन्टाघर'[४] कविताएँ मधुर हास के अच्छे उदाहरण हैं। इनमें हास्य का शिष्ट रूप दिखाई पड़ता है।

(४) पैरोडी—

आधुनिक कविता में हास्य का एक नया रूप पैरोडी में मिलता है। इसमें किसी कवि या उसकी विशिष्ट शैली की हास्य रसात्मक अनुकृति प्रस्तुत की जाती है। यह अंग्रेजी का शब्द है, जिसका हिन्दी-कविता में अनुकरण होने

१—चकल्लस, पृ० ६५।

२—बिट्टी की शादी करनी है,
लल्लू का मुंडन करना है।
जी हुआ जनेऊ कल्लू का,
उसका भी कर्जा भरना है।
यह दो हजार का खर्चा है,
इसमें न कटौती हो सकती।
हाँ, यह मकान मालिक भी तो,
देता रहता नित धरना है।
ये सारे काम जरूरी हैं,
मत चेहरा अभी उदास करो।
करती हूँ घर का बजट पेश,
प्रियतम तुम इसको पास करो। —बेधड़क बनारसी

३—अजी सुनो, पृ० १५।

४—छेड़छाड़, पृ० ११।

लगा है। इसका मूल प्रयोजन हास्य एवं प्रशंसन है, किन्तु किसी कवि की रचना-शैली की दुष्टता या हीनता की ओर भी इसमें संकेत होता है।

आधुनिक कवियों में पैरोडी लिखने की ओर विशेष प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। पं० हरिशंकर शर्मा ने सुन्दर पैरोडियाँ लिखी हैं। तुलसीदास की शैली का अनुकरण करते हुए उन्होंने सुन्दर पैरोडी लिखी है[१]। निराला जी की 'खटवा' अतुकान्त शैली की पैरोडी है। बेढब बनारसी, चोंच,[२] बेधड़क बनारसी, गोपालप्रसाद व्यास,[३] श्रीनारायण चतुर्वेदी तथा अन्य बहुत से कवि इस ओर विशेष प्रवृत्ति रखते हैं।

उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर यह सुगमता से कहा जा सकता है कि वर्तमान काल में हास्य रस के रूप, शैली एवं आलम्बनों में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गया है। पहले हास्य रस के विषय गिने-चुने ही होते थे (पेटू, स्वार्थी, सूम, वैद्य, आराध्य, देवादि) किन्तु आधुनिक काल में इनकी संख्या अपरिमिति हो गई है। व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र, शिक्षा एवं साहित्य आदि सभी क्षेत्रों से हास्य के आलम्बनों को चुना गया है। वकील, डाक्टर, लीडर, पत्रकार, छात्र, अध्यापक, क्लर्क, बाबू, साहब, नवयुवक एवं नव युवतियाँ सभी को हास्य एवं व्यंग्य का विषय बनाया गया है।

नयी कविता में हास्य व्यंग्य, परिहास, मधुर हास एवं पैरोडी आदि विविध रूपों में प्रकट हुआ है; इनमें से भी व्यंग्य के विषयों का प्राचुर्य है। इसमें सन्देह नहीं कि व्यंग्य के क्षेत्र में बहुत से प्रतिभाशील कवि आए हैं जिन्होंने अपनी उत्कृष्ट रचनाओं द्वारा हिन्दी काव्य को व्यंग्य का प्रचुर साहित्य दिया है। किन्तु सर्वत्र उत्तम व्यंग्य नहीं है। उत्तम व्यंग्य में औचित्य का विचार अवश्य होता है। उसमें घृणित, कुत्सित, एवं अश्लील बातों का वर्णन नहीं होता। आधुनिक कवियों का व्यंग्य शिष्टता के वर्ज्य तटों को स्पर्श करता है तथा उसमें मर्यादा का उल्लंघन पाया जाता है[४]। यह प्रवृत्ति अधिकतर प्रगति-

---

१—पिंजरा पोल, पृ० २८।

२—नेता ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाय।
 चन्दा सारा गहि रहै, देय रसीद उड़ाय।

३—तुलसी या संसार में, कर लीजे दो काम
 भरती हूजे फौज में, वार फंड में दाम। —व्यास

४—तार सप्तक, पूँजीवादी समाज के प्रति (मुक्ति बोध)।

वादी काव्य में अधिक दिखाई पड़ती है।

हिन्दी काव्य में मधुर हास (ह्यूमर) की कमी बहुत खटकती है। शिष्ट, सुरुचिपूर्ण एवं मर्यादित हास की आज भी आवश्यकता बनी हुई है। व्यंग्यात्मक विषयों के चुनाव में भी सामान्य रुचि, सामान्य प्रवृत्ति एवं सामान्य जीवन-बोध का विचार रखकर चलना ही काम्य है। इसके अभाव में कविता 'भदेस' दिखाई पड़ती है। कवि की प्रतिभा किसी भी विषय में व्यंग्य का प्राण डाल सकती है। कबीर की रचनाओं में व्यंग्य का खरापन है, भारतेन्दु के व्यंग्य में करुणा है, निराला के व्यंग्य में विनोद-वक्रता है। अतएव इस प्रकार के व्यंग्य काव्य को गौरव देते हैं। नाथूराम 'शंकर' के व्यंग्य सामाजिक कुप्रथाओं पर प्रहार करते हैं, शुक्ल के व्यंग्य में सरसता एवं स्वभाविकता है एवं पन्त जी के स्फुटिक व्यंग्यों में सैद्धान्तिकता का मधुर स्पर्श है। जहाँ तक व्यक्तिगत आक्षेप और सांप्रदायिक भावों से विनिर्मुक्त होकर कवियों ने अपनी रचनाओं में व्यंग्य को प्रकट किया है, वहाँ तक उनसे काव्य की शोभा की वृद्धि हुई है। किन्तु खेद है कि संकुचित दृष्टि एवं शिष्टरुचि के अभाव में वर्तमान काल के अनेक कवि अशिष्ट एवं कुरुचिपूर्ण आक्षेप और अपवादों को ही व्यंग्य के नाम पर प्रश्रय दे रहे हैं।

नये कवियों में भारतभूषण अग्रवाल, केशवचन्द्र वर्मा, जानकीवल्लभ, नागार्जुन, माचवे, भवानीप्रसाद, केदार आदि सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन में से व्यंग्यों के लिए विषय चुनकर नये समाज का ध्यान आकर्षित कर रहे हैं। इन कवियों की उपलब्धियों से आशा है कि व्यंग्य हिन्दी की महत्वपूर्ण काव्य-प्रवृत्ति के रूप में शीघ्र ही स्थान ग्रहण कर लेगा।

वीर रस के क्षेत्र में प्रयोग

आलोच्यकालीन कविता में वीर रस के व्यंजक उपकरणों में भी नये-नये प्रयोग हुए हैं। ये प्रयोग अधिकतर वीर रस के आश्रय, आलम्बन एवं व्यभिचारी भावों में दिखाई पड़ते हैं। नीचे इन्हीं का अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है।

वीर रस के आश्रय में परिवर्तन

वीर रस के आश्रय प्राचीन साहित्य में प्रायः चार प्रकार के हुआ करते थे—युद्ध-वीर, दान-वीर, दया-वीर, धर्म-वीर। आधुनिक काव्यों के अध्ययन से वीर रस के आश्रय कुछ नये वीरों का भी पता चलता है। इनको पाँच वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

(१) वीरत्व का आश्रय नारियाँ—आधुनिक काव्य में नारी को अधिक गौरव दिया गया है तथा उसके व्यक्तित्व के निर्माण में कुछ विलक्षण गुणों की प्रतिष्ठा की गई है। आर्यावर्त (मोहनलाल महतो 'वियोगी') की रानी संयोगिता को कवि ने एक वीरांगना क्षत्राणी के रूप में अंकित किया है। उसके चरित्र में आर्य भूमि एवं आर्य गौरव का प्रेम तथा स्वाभिमान कूट-कूट कर भरा है।[1] मुहम्मद गोरी के द्वारा पृथ्वीराज के परास्त हो जाने पर वह इसे आर्य जाति का पराभव समझती है तथा देश के नवयुवकों में राष्ट्रीयता की चेतना जागृत करके उन्हें युद्ध के लिए तैयार करती है। वह देशी राजाओं का सहयोग लेकर एक विशाल सेना सुसंगठित करती है तथा युद्ध-भूमि में यवनों को पराजित करके प्रतिशोध लेती है। 'झाँसी की रानी' (सुभद्राकुमारी चौहान) में लक्ष्मीबाई भी इसी श्रेणी की वीरांगना है जिसने स्वदेश और स्वाभिमान की रक्षा के लिए अंग्रेजों की सेना से लोहा लिया था। विक्रमादित्य महाकाव्य (गुरुभक्त सिंह) की 'ध्रुव देवी' ऐसी ही वीरांगना हैं, जो विदेशीय शत्रुओं को भारत से बाहर खदेड़ने के लिए युद्ध-भूमि पर उतरती हैं और शत्रु के निष्क्रमण के कार्य में सफल होती है।[2] 'जौहर' (श्यामनारायण पांडेय) काव्य की पद्मिनी भी अद्वितीय वीरांगना है जिसने मान, मर्यादा और सतीत्व की रक्षा के लिए अभूतपूर्व शौर्य एवं साहस का परिचय दिया था।[3] रामनरेश त्रिपाठी के 'मिलन' की 'विजया' और 'स्वप्न' काव्य की 'सुमना' दोनों में वीरत्व का आदर्श पूर्णरूप से प्रस्फुटित हुआ है। ये दोनों वीर-नारियाँ राष्ट्रोद्धार का व्रत धारण करती हैं और देश को अत्याचारी शासन से मुक्त करके लिए जन-आन्दोलन संगठित करती हैं। उनके कार्यों से अद्भुत पौरुष की व्यंजना होती है।

इस प्रकार स्त्री पात्रों में वीरत्व की भावना प्रतिष्ठित करके आधुनिक कवियों ने वीर रस के आश्रयों में परिवर्तन किया है। वीरत्व के आश्रय के रूप में वीर माताओं, वीर बहिनों, वीर पुत्रियों और वीर पत्नियों को भी चुना गया है। लाला भगवान दीन 'दीन' का वीर पंचरत्न इसका अच्छा उदाहरण है।

(२) वीरत्व का आश्रय दैत्य—नारियों की भाँति वीरत्व की प्रतिष्ठा कुछ ऐसे पात्रों में भी की गई है जो दैत्य-दानव-वंश में उत्पन्न हुए हैं अथवा जो जाति च्युत अधम पात्र हैं। दैत्य वंश और रावण महाकाव्य में दैत्य वंश में

१—देखिए, मोहनलाल महतो 'वियोगी,' आर्यावर्त, पृ० ६४।

२—देखिए, गुरुभक्त सिंह, विक्रमादित्य, पृ० ६१।

३—श्यामनारायण पांडेय, जौहर, पृ० ६६।

उत्पन्न होने वाले राजा-महाराजाओं में एवं अंगराज (आनन्द कुमार) में जाति से पतित अधिरथ सुत कर्ण में वीरत्व की प्रतिष्ठा की गई है तथा उन्हें काव्य के उदात्त नायक के रूप में चुना गया है। दैत्यवंशकार ने देवों की अपेक्षा दैत्यों में वीरत्व का अधिक उत्कर्ष दिखाया है। देवासुर संग्राम में दैत्यराज बलि और देवराज इन्द्र के बीच तुमुल युद्ध आरंभ होता है, जिसमें दैत्यों की सेना देवताओं की सेना को परास्त कर देती है और दैत्यों से भयभीत होकर इन्द्र मानसरोवर में जा छिपते हैं।[१] इस कथानक में देवों को आलम्बन और दैत्यों को आश्रय के रूप में चित्रित किया गया है।

(३) **वीरत्व का आश्रय देश-भक्त**—आधुनिक युग का नवीनतम भाव है राष्ट्रीयता। इन भावनाओं ने राष्ट्र, समाज एवं जन-सेवा की ओर वीरों को प्रोत्साहित किया है। पथिक, स्वप्न एवं मिलन नामक खंड काव्यों में रामनरेश त्रिपाठी ने देश एवं समाज-सेवा से प्रेरित नवयुवकों में वीर भाव की व्यंजना की है। स्वदेश-भक्ति से प्रेरित इन महाकाव्या में लोक-सेवा, समाज-सेवा एवं देश-सेवा के लिए अद्भुत उत्साह की अभिव्यक्ति पाई जाती है। सनेही जी की राष्ट्रीय कविताओं में देश के प्रति अदम्य उत्साह की व्यंजना है। उन्होंने देश की जनता को कर्तव्य-शूर होने का पाठ पढ़ाया है और राष्ट्र-गौरव के साथ जीने के लिए प्रोत्साहित किया है। 'हिम किरीटिनी' के ओजस्वी कवि माखनलाल चतुर्वेदी की कविताएँ राष्ट्रीय चेतना से पूर्ण हैं। उनकी 'एक फूल की चाह' कविता नया प्रयोग है। मातृभूमि पर बलिदान होने की भावना से उत्प्रेरित पुष्प की अभिलाषा में नवयुवकों के लिए अपूर्व 'उत्साह' व्यंजित है। उनकी 'कैदी और कोकिला' कविता में उत्साह के अन्तर्गत गर्व, अमर्ष, क्षोभ, असन्तोष एवं उग्रता की व्यंजना पाई जाती है। 'हिम किरीटिनी' का 'सिपाही' सिर पर प्रलय, नेत्र में मस्ती और मुट्ठी में आकांक्षा दबाए लक्ष्य की ओर बढ़ता चला जा रहा है। चतुर्वेदी जी की राष्ट्रीय कविताओं में राष्ट्रोद्धार के लिए रोष, क्षोभ, आक्रोश और ग्लानि के स्वर की अनुगूंज सुनाई पड़ती है। निराला जी की 'महाराज शिवा जी का पत्र,' 'आवाहन' कविताओं में शक्ति और ओज है। नवीन जी की 'विप्लव गान,' 'पराजय गीत,' 'हिन्दुस्तान हमारा है'—कविताओं में राष्ट्र के प्रति आकुल उत्साह की व्यंजना है। सुभद्राकुमारी चौहान की 'वीरों का कैसा हो वसन्त,' 'जलियानवाला बाग में वसन्त,' 'राखी' आदि कविताओं में देश की जागृत नारी का स्वाभिमान उद्दीप्त हो उठा है। उदशंकर भट्ट,

---

१—देखिए, हरदयालु सिंह, दैत्य वंश, सर्ग ६।२६-३०।

दिनकर, सुधीन्द्र आदि के काव्य में देश के प्रति उत्साह के ही विविध रूपों की अभिव्यक्ति है।

(४) **वीरत्व का आश्रय पाठक**—ह्रास के युग में अतीत के गौरव की स्मृति का जगना स्वाभाविक है। प्राचीन काल की गौरव गाथाएं तथा वीरों की कथाएँ सुनकर किसका हृदय हर्षोत्फुल्ल नहीं हो जाता ? पूर्वजों के आदर्श चरित्र कवियों को जीवनी-शक्ति प्रदान करते हैं, जिससे उत्प्रेरित होकर वे वीर रस की ओजपूर्ण कविता करने में प्रवृत्त होते हैं। भारत भारती के कवि ने अतीतकालीन गौरव से प्रेरित होकर पाठकों के हृदय में वीर भावों का उद्रेक किया है। स्वर्गीय संगीत '(मैथिलीशरण गुप्त) उत्साह के भावों से ओत-प्रोत है। इनकी पंक्ति-पंक्ति में पुरुषार्थ, प्रताप, दृढ़ता, निर्भीकता, सत्वशीलता, कर्म परायणता, दानदया, आदि के प्रति उत्साह की मधुर व्यंजना है। इन पंक्तियों को पढ़कर पाठक का हृदय उत्साह से उद्वेलित होने लगता है। निराला की 'राम की शक्ति पूजा,' 'तुलसीदास,' 'जागो फिर एक बार,' 'उद्बोधन,' 'दिल्ली,' 'खंडहर से' आदि कविताओं में भारतीय संस्कृति के प्रभा-कणों का आलोकपूर्ण समुच्चय है। इन काव्यों में सांस्कृतिक उत्साह से प्रेरित होकर कवि ने वीर भावों की प्रतीकात्मक व्यंजना की है। इनमें मानव को क्रियाशील युद्धोन्मुख सशक्त प्रेरणाओं का अत्यंत स्फूर्तिमय एवं हृदयग्राही चित्रण है।

उदयशंकर भट्ट की 'तक्षशिला' नामक कृति पौरुषपूर्ण भावों से ओतप्रोत है। तक्षशिला की पुरातन संस्कृति, वैभव और समृद्धि से प्रोत्साहित होकर कवि ने वीर भावों की ओजस्वी रचना प्रस्तुत की है। तक्षशिला के प्राचीन गौरव में से बौद्ध गाथाओं के वृत्तान्त, सांस्कृतिक गौरव, पंडितों का विद्यानुराग, विद्वानों एवं ब्रह्मचारियों की सच्चरित्रता आदि विषयों को लेकर कवि ने अत्यंत उत्कृष्ट काव्य की रचना की है। तक्षशिला के खंडहरों से उसने जीवन का संदेश पाया है, जिसे पढ़कर पाठक का हृदय उल्लास से भर जाता है।

दिनकर के 'कुरुक्षेत्र' के छठें सर्ग की रचना इस दृष्टि से अत्यंत ओजपूर्ण है। सुधीन्द्र के जौहर मोहनलाल महतो वियोगी के 'आर्यावर्त' तथा श्यामनारायण पांडेय के 'जौहर' आदि काव्यों में भी भारतीय वीर तथा वीरांगनाओं की उदात्त कथाओं के चल चित्र हैं, जिन्हें पढ़कर पाठकों का हृदय उत्साह से आप्लुत हो जाता है।

(५) **वीरत्व का आश्रय स्वयं कवि**—प्रगतिवादी काव्यधारा के कवियों को पूंजीवादी समाज से स्वाभाविक विरोध है। वे समाज की प्राचीन परंपराओं एवं प्रणालियों को ध्वस्त कर नवनिर्माण के प्रति साहस दिखलाते हैं।

इनकी कविताओं में ध्वंस, विद्रोह, तूफान, क्रान्ति एवं प्रलय का स्वर है। पूंजीवादी वर्ग के शोषक, उत्पीड़क, अन्यायी, अत्याचारी, उच्छृंखल, शासक, पीड़ित जनता, शोषण, दरिद्रता, परतंत्रता आदि विषयों को लेकर इन कवियों ने पौरुषपूर्ण उत्साह की व्यंजना की है।

दिनकर की 'हाहाकार,'[1] 'विपथगा,' 'दिल्ली,' 'भविष्य की आहट' कविताओं में दरिद्रता का आक्रोश और पीड़ा का क्रन्दन हृदय की धड़कन के साथ मुखरित हुआ है। इसमें उत्साह के अन्तर्गत अमर्ष की व्यंजना बड़ी स्फूर्तिमय है। इनकी कविताओं में उत्साह की व्यंजना अत्यंत सशक्त, प्रभावोत्पादक एवं मर्मस्पर्शी है। इनकी कविताएं एक हलचल उठाकर पाठक के हृदय को झकझोर देती हैं। इनके ओजपूर्ण भावों में वर्तमान समाज की उत्पीड़ित मानवता के लिए संवेदना का स्वर है।

भगवतीप्रसाद वाजपेयी की 'अन्तर्लक्ष्मी' कविता में कवि वैषम्य से खीझकर समाज में आग लगा देना चाहता है। इनकी 'नव हुंकार' में अन्याय और अत्याचार को ध्वस्त करने की शक्ति है। रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' की 'आह्वान' और 'शोषिता' कविताओं में तरुण कवि का भैरव नाद सुनाई पड़ता है। 'आज मरण की ओर' कविता में क्रान्ति का सुस्पष्ट स्वर है जिसमें संसार के भूखे टूटे जनों ने मिलकर ईश्वर के विरुद्ध विद्रोह की घोषणा की है। ओज और वीरता का युगपत मिश्रण अंचल के काव्य का उद्घोष है। इलाचन्द्र जोशी, आरसी प्रसाद, रांगेय राघव, सुमन, उदयशंकर भट्ट आदि कवियों की रचनाओं में क्रान्ति की व्यंजना सजीव है। इनमें वीरता, उदारता, आत्म त्याग, विजय, नव निर्माण के प्रति उत्साह का भाव व्यंजित हुआ है।

वीर रस के नये आलम्बन—

प्राचीन काव्य में वीर रस के आलम्बन शत्रु, प्रतिपक्षी वीर, विरोधी वर्ग के सैनिक आदि रहते आए हैं। आधुनिक युग में वीर रस की व्यंजना के लिए नये विषय चुने गए हैं। राष्ट्र, संस्कृति, सामाजिक जीवन आदि ऐसे ही विषय हैं। नये विषयों के आगमन से काव्यक्षेत्र में नए आलम्बनों का भी विकास हुआ है। आलोच्यकाल की कविता में अत्याचारी शासक, आततायी, राष्ट्रद्रोही,

---

१—हटो व्योम के मेघ पन्थ से, स्वर्ग लूटने हम आते हैं
'दूध' 'दूध' ओ वत्स, तुम्हारा दूध खोजने हम आते हैं।

—हाहाकार, दिनकर

पूंजीपति, शोषक, सामन्त एवं साम्राज्यवाद के पोषकों को भी वीर रस का आलम्बन चुना गया है।

वीर रस के नये संचारी—नई कविता में राष्ट्रीय, सांस्कृतिक एवं प्रगतिशील तीनों काव्य-प्रवृत्तियों में उच्च स्तर के वीर भावों की अभिव्यंजना हुई है। आलम्बन के प्रति प्रतिज्ञा, ललकार, चुनौती, हुंकार, अवज्ञा, उल्लास, तर्जन, दमन, उत्पीड़न, संघर्ष, दृढ़ता, साहस, निर्भीकता, स्वाभिमान के भावों की अभिव्यक्ति पाई जाती है। उत्साह के अन्तर्गत कुछ नवीन संचारी भावों के भी दर्शन होते हैं—विक्षोभ, क्रान्ति, असंतोष, ईर्ष्या, नैराश्य, स्पर्द्धा, विजय आदि। इनमें से कई भाव तैंतीस संचारियों में अन्तर्भुक्त हो सकते हैं, किन्तु नए आलम्बन और नए आश्रय के साथ सम्पर्कित होने के कारण इनकी व्यंजना नवीन है। आधुनिक कविता में इनकी अभिव्यंजना को सशक्त देखकर ही इनको नवीन संचारियों की कोटि में रखा गया है।

विवेचन—वीर रस का स्थायी भाव उत्साह है, जिसकी सत्ता प्राणी-मात्र में विद्यमान है। यह ऐसा व्यापक भाव है कि जीवन की किसी भी चेष्टा में व्यक्त हो सकता है। जब किसी भी कार्य में उत्साह प्रदर्शित किया जा सकता है, तब उसकी सीमा भी कैसे बाँधी जा सकती है? उत्साह का प्रदर्शन हर एक मानव-प्रवृत्ति में (ह्यूमन इन्सटिन्क्ट) में हो सकता है। शौर्य-प्रदर्शन की उल्लास-पूर्ण चेष्टा ही उत्साह है। भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, करुणा, प्रेम, क्षमा, सत्य, अहिंसा आदि हर एक भाव में उत्साह को प्रदर्शित किया जा सकता है। इसी से इसके अनेक भेद किए गए हैं। दान, दया, धर्म, युद्ध की भाँति सत्य, सेवा, त्याग, कार्य में अतिशय संलग्नता, दृढ़ता, साहसिकता का होना वीरता है। जीवन के किसी भी कार्य या व्यापार में किसी व्यक्ति की असाधारण शक्ति हो, तो वह उसका वीर कहलावेगा। इस दृष्टि से जिस व्यक्ति की मानसिक शक्ति का असाधारण विकास हुआ है, उसे बुद्धि-शूर, जिसकी वाणी में ओज है, उसे वाक्-शूर तथा जिसके कार्य में साहस है, उसे कर्म शूर कहते हैं। इसीलिए महाभारत में 'शूरा बहुविधाः प्रोक्ताः' कहा गया है।

आधुनिक युग में शौर्य एवं उत्साह प्रदर्शित करने के हेतु अनेक कार्यों का विस्तार हुआ है। प्राचीन काल में युद्ध में ही शूर-धर्म प्रकट हो सकता था। इसके पश्चात् दान, दया और धर्म भी वीर धर्म में सम्मिलित हो गए। आधुनिक युग में उत्साह के कार्यों का और भी अधिक विस्तार हो गया है। इसी से स्वातंत्र्य वीर, राष्ट्र वीर, सत्य वीर, अहिंसा वीर, प्रतिज्ञा वीर, बलिदान वीर, विजय वीर, त्याग वीर आदि विविध प्रकार के वीरत्व के आश्रयों का प्रादुर्भाव

हुआ है। राष्ट्रीय, सांस्कृतिक एवं प्रगतिशील काव्य में उत्साह की व्यंजना विविध प्रकार के वीर एवं वीरांगनाओं के द्वारा कराई गई है। वीरत्व की व्यंजना के लिए वीर नारियों एवं अधम श्रेणी के पात्रों को भी ग्रहण किया गया है। वैयक्तिक चेतना, प्रधान कविताओं में कवि ने स्वयं आश्रय का स्थान ले लिया है। कहीं-कहीं उत्साह के आश्रय के रूप में पाठकों को रखा गया है या आक्षिप्त कर लिया गया है। आलम्बन और आश्रय की विविधता के साथ नये संचारी भावों का भी विस्तार हुआ है। नवीन आलम्बन के प्रति नवीन आश्रय में ही सशक्त रूप से व्यंजित होने के कारण ये नवीन संचारो कहे जा सकते है, अन्यथा ये किसी-न-किसी रूप से तेंतीस संचारियों में आ जाते हैं।

उत्साह के ये विषय नये युग की देन हैं। प्राचीन काल में इनका कहीं स्रोत नहीं मिलता है। अतएव ये नये काव्य-प्रयोग हैं। किन्तु आलोच्यकाल में ये नये विषय इतने अधिक प्रचलित हुए हैं कि इनका नई परंपरा के रूप में विकास हुआ है। वीरत्व की नई व्यंजना के ये प्रयोग इतने अधिक सफल हुए हैं कि उत्तर छायावाद युग के सभी कवियों की रचनाओं में इनको सफल व्यंजना हुई है तथा इसकी एक सशक्त परंपरा का विकास हुआ है।

आजकल के कवियों का रस संबंधी ज्ञान बहुत कुछ उथला है, जिससे नई कविता में उत्साह के सभी अवयव स्पष्ट नहीं दिखाई पड़ते हैं। इससे रस की पूर्ण व्यंजना में बाधा पड़ती है। इसके अतिरिक्त उत्साह के साथ क्रोध का भाव मिश्रित हो गया है। अधिकांश कविताओं में यह दोष पाया जाता है, जिसमें 'उत्साह' की शुद्ध व्यंजना बहुत कम मिलती है।

निष्कर्ष यह कि आधुनिक कविता में वीरत्व की व्यंजना अत्यंत उत्कृष्ट है। इसके निर्माण में दर्जनों कवियों का योगदान है। आश्रय, आलम्बन एवं संचारियों के प्रयोग सर्वथा नवीन हैं, क्योंकि हिन्दी काव्य परंपरा में पहले कभी इनका दर्शन नहीं मिलता है। नए संचारी भावों की सशक्त व्यंजना से इस परम्परा को नवीन स्फूर्ति मिली है। इसकी सफलता का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि नवीन काव्य परम्परा के रूप में इसका विकास हुआ है। यह परंपरा अभी गतिशील है तथा नूतन विकास-पथों के अन्वेषण में तत्पर है।

करुण रस के क्षेत्र में प्रयोग—

आलोच्यकाल की कविता में करुण रस के क्षेत्र में कुछ नए परिवर्तन हुए हैं। ये परिवर्तन विशेषतः आलम्बन, आश्रय और संचारियों के क्षेत्र में हुए हैं। राष्ट्रीय एवं प्रगतिशील काव्य धारा में इनका प्रयोग अधिकता से हुआ है। करुण रस के नये आलम्बनों को चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

(१) राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक पतन से संबंधित आलम्बन।

(२) पीड़ित वर्ग से संबंधित आलम्बन

क—शोषित जन

ख—दलित मानव

ग—शरणार्थी

घ—बंगाल के अकाल से पीड़ित जनता और

ङ—नारियाँ

(३) बलिदान तथा जौहर करने वाले व्यक्ति।

(४) अव्यक्त प्रियतम।

(१) राष्ट्रीय तथा सांस्कृतिक पतन से संबंधित विषय—

प्राचीन काव्य में शोक की व्यंजना इष्ट-नाश, अनिष्ट की प्राप्ति, बन्धु-वियोग, धन-नाश, पराभव आदि तक ही सीमित थी। आलोच्यकाल में आते आते उसका क्षेत्र कहीं अधिक विस्तृत हो गया है। राष्ट्र एवं राष्ट्रीय संस्कृति की दुर्दशा पर अनेक ऐसी रचनाएं लिखी गई हैं जो सहृदय जनों को आठ-आठ आंसू रुलाती हैं। इन कविताओं में भारतमाता को आलम्बन मानकर ऐसे कारुणिक चित्र अंकित किए गए हैं कि पाठकों का हृदय शोक-विह्वल हुए बिना नहीं रहता है। राष्ट्र के नगर, ग्राम तथा नदियों को आलम्बन बनाकर शोक की अभूतपूर्व व्यंजना की गई है। भारतीय संस्कृति की दुर्दशा ने भी कवियों के हृदय को शोकाकुल किया है। देश की गौरवमय प्राचीन संस्कृति तथा महा-पुरुषों के चारित्र्य को स्मरण कर तथा आधुनिक युग की हीनता से उसकी तुलना कर शोक के मर्मस्पर्शी भावों की व्यंजना की गई है।

भारतमाता (पन्त और नैपाली), दिल्ली (निराला), तक्षशिला, पंजाब-प्रशस्ति (उदयशंकर भट्ट), हिमालय के प्रति, नई दिल्ली (दिनकर) आदि कवि-ताओं में राष्ट्र की दीन दशा का मार्मिक चित्रण पाया जाता है, जिससे शोक की मर्मस्पर्शी व्यंजना होती है। 'खंडहर के प्रति' कविता में निराला का कवि भारतीय संस्कृति के पतन पर आंसू बहाता है। 'खंडहर' प्राचीन संस्कृति का प्रतीक है। मानवीकरण द्वारा कवि ने उसे शोक के आलम्बन के रूप में चित्रित किया है। खंडहर में ध्वस्त संस्कृति का प्रभाव-साम्य भी लक्षित होता है। खंडहर संस्कृति के ध्वंस का परिचायक है। कवि स्वयं शोक का आश्रय है। निराला की 'यमुना के प्रति', 'तुलसीदास'' मैथिलीशरण गुप्त की 'किसान', सियारामशरण की 'एक फूल की चाह' 'बापू'' दिनकर की 'कस्मै देवाय' आदि कविताओं में करुण रस की हृदय स्पर्शी व्यंजना है।

(२) दलित वर्ग से सम्बन्धित विषय—

प्रगतिशील काव्य में दलित वर्ग से संबंधित प्रचुर काव्य-राशि मिलती है। त्रस्त एवं उत्पीड़ित मानवता के प्रति सभी कवियों ने सहानुभूति प्रदर्शित की है। भूदान यज्ञ से प्रभावित कवियों की रचनाओं में पीड़ित वर्ग से संबंधित अनेक विषय हैं।

किसान, मजदूर आदि श्रमिक वर्ग के लोग शोषित जन है, स्पृश्यास्पृश्य की भेद-भावना से पीड़ित लोग दलित हैं, जिसमें परिगणित एवं पिछड़ी हुई जाति के लोग भी संमिलित हैं। देश का विभाजन होने से स्थानान्तरित जनता शरणार्थियों की श्रेणी में आती है। सन् १९४२ के अकाल से पीड़ित बंगाल की जनता की राम कहानी इतिहास की एक अत्यन्त करुण एवं मार्मिक घटना है। इसे देखकर उस समय अनेक कवियों का हृदय सिहर उठा था। उस निर्मम करुण घटना ने करुण रस की व्यंजना के लिए पुष्कल काव्य-सामग्री प्रदान की थी।

नारियों की दयनीय दशा को करुणा के स्वरों में बांधकर नियति की विडम्बना का चित्र अंकित करना आधुनिक युग के कवियों का अत्यन्त प्रिय विषय है। मजदूरिनी, भिखारिन, विधवा, वेश्या, ग्राम नारी, ग्राम युवती के रूप में वह मानवता का जीवित अभिशाप है। इस प्रकार नारी को विविध करुण चित्रों में अंकित कर कवियों को शोक की मार्मिक व्यंजना करने का पर्याप्त क्षेत्र मिला है।

रामविलास शर्मा की 'हड्डी का ताप' कविता में परतंत्र देश के युवकों का चित्रण है, जिनके शरीर में रक्त नहीं, मांस नहीं, कपोलों पर आभा नहीं, हड्डियों पर मांस नहीं, जो कंकाल मात्र हैं। उदयशंकर भट्ट की 'दलित' कविता में विषाद का सजीव चित्र अंकित है[१]। निराला की 'भिक्षुक' कविता में करुण की मार्मिक अभिव्यक्ति है[२]।

१—सूखी चमड़ी थी फांकदार
छाया-नद का धूमिल कगार।
पिचका सा चेहरा म्लान रंग,
कंकाल अस्थिमय रंगभंग। —दलित, उदयशंकर भट्ट

२—मुट्ठी भर दाने को—भूख मिटाने को
मुंह फटी पुरानी झोली का फैलाता—
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।—भिक्षुक, निराला

किसान का जीवन भी करुणा भरी कहानी है। उसका एक-एक दाना साहूकार को ब्याज चुकाने में चला जाता है और फिर भी जिसके सिर पर ऋण का बोझ लदा हुआ रह जाता है। शोषित किसान का जीवन एक दारुण अभिशाप है। इसमें शोक की व्यंजना कितनी मर्मस्पर्शी है[१]।

देश के विभाजन के अवसर पर एक शरणार्थी दंपति प्राण-रक्षा के लिए कुटुम्बियों को छोड़कर भाग निकला है। एक शरणार्थी वृद्ध के साथ उसकी पुत्र-वधू भी है। श्रान्त-क्लान्त वे सिर पर बोझ लादे हुए भागे जा रहे हैं। गर्भिणी स्त्री के रोम-रोम से पीड़ा का अम्बुधि गरज रहा था। वह प्रसव-काल की पीड़ा से व्यथित थी। यह करुणोत्पादक घटना कितनी करुण, कितनी मर्मान्तिक है[२]।

'बंगाल का अकाल' भारत के इतिहास में एक करुणा पूर्ण महा नाटक है, जिसको स्मरण कर करुणा भी द्रवित हो उठती है। अकाल-पीड़ित निरीह स्त्री, पुरुष और बच्चों के कवितामय चित्रण में कितनी हृदय-द्रावकता है। इन कविताओं में करुण को व्यंजना अपनी चरमसीमा को पार कर गई है[३]। इस करुणापूर्ण घटना का चित्रण उस काल के प्रायः सभी प्रतिनिधि कवियों ने किया है।

'नारी' भी शोक का अत्यंत करुणोत्पादक आलम्बन है। विधवा का जीवन एक बहुत बड़ा अभिशाप है। निराला का 'विधवा' का चित्र करुण रस की सजीव व्यंजना है[४]। इसी कवि ने 'वह तोड़ती पत्थर' कविता में

१—देखिए, रामनरेश त्रिपाठी, स्वप्न १।११ और नरेंद्र 'किसान'।

२—देखिए, उदयशंकर भट्ट 'रिफ्यूजी'।

३—रक्त हीन, मांस हीन प्राण हीन बल हीन
पड़े फुटपाथ पर,
नरक के पिंड वह,
चिल्लाते डकराते रोते सब दिन रात
भात दाओ, अन्न दाओ, अन्न दाओ
दीन बन्धु। —बंगाल, उदयशंकर भट्ट

४—वह इष्टदेव के मंदिर की पूजा सी
वह दीप-शिखा-सी शान्त, भाव में लीन,
वह क्रूर काल-ताण्डव की स्मृति-रेखा सी,
वह टूटे तरु की छुटी लता सी दीन—
दलित भारत की विधवा है। —विधवा, निराला

मजदूरिनी का अत्यंत शोक-व्यंजक चित्रण किया है। इसमें आलम्बन के साथ शोक की उद्दीपन सामग्री बहुत है, जिससे आलम्बन की व्यंजकता कई गुना बढ़ गई है।

राष्ट्रीय एवं प्रगतिशील काव्य धारा के अनेक कवियों ने शोक की व्यंजना में विविध भावों की सृष्टि की है। किसान, मजदूर, अछूत, शोषित, पीड़ित, दलित एवं नारियों की दुर्दशा का विविध रूपों में चित्रण कर कवियों ने शोक की मार्मिक-व्यंजना की है। पन्त, निराला, भगवतीशरण, नरेंद्र, सुमन, उदयशंकर भट्ट, दिनकर, सियाराम शरण, सोहनलाल, केसरी, रामविलास, भारती, रांगेय राघव आदि कवियों ने त्रस्त एवं उत्पीड़ित मानवता के विविध चित्रों के द्वारा शोक की हृदयस्पर्शी व्यंजना की है। करुण रस की प्राचीन परंपरा में ये आलम्बन कभी नहीं गृहीत हुए हैं।

३—बलिदान तथा जौहर के विषय—

जौहर और बलिदान भी करुण रस का नवीन विषय है। इन विषयों पर भी करुणा पूर्ण एवं प्रभावोत्पादक काव्यों की सृष्टि हुई है। जन नायक (रघुवीर शरण मित्र) महाकाव्य में पूज्य बापू, महादेव देसाई आदि बलिदानों का चित्रण अत्यंत हृदय-स्पर्शी है। सतीत्व की रक्षा के लिए प्राणों को होम देने वाली पद्मिनी आदि देवियों के 'जौहर' भी करुण में मर्मस्पर्शी आलम्बन हैं। 'जौहर' विषय के आधार पर तीन प्रबन्ध काव्यों की रचना हुई है, जौहर (सुधीन्द्र), जौहर (रामकुमार वर्मा) और जौहर (श्याम नारायण पांडेय) श्याम नारायण पांडेय का जौहर करुण रस पूर्ण महाकाव्य है।

४—अव्यक्त प्रियतम—

अज्ञात प्रिय के चिर वियोग में विश्वव्यापी शोक की उद्भावना भी करुण का नया प्रयोग है। महादेवी के काव्य में करुणा की सरिता प्रिय के चिर विरह अन्तःसलिला सरस्वती की भाँति प्रवाहित होती है। उनका अव्यक्त प्रियतम विषयक चिरकालीन वियोग शोक में परिणत हो गया है। उनके शोक के उद्गार करुणा से सजल एवं विषाद से पंकिल हैं। प्रिय के वियोग में उनको संपूर्ण विश्व में पीड़ा का साम्राज्य फैला हुआ दिखाई पड़ता है।[१]

आश्रय के क्षेत्र में प्रयोग—

नई कविता में आलम्बन के क्षेत्र में जितने परिवर्तन हुए हैं, उतने आश्रय

१—पर शेष नहीं होगी यह, मेरे प्राणों की क्रीड़ा,
तुमको पीड़ा में ढूंढा, तुममें ढूंढूंगी पीड़ा।—नीहार, महादेवी

के क्षेत्र में नहीं। आश्रय के रूप में कवि स्वयं होता है अथवा पाठक हो सकता है। जिन कविताओं में कवि की वैयक्तिक चेतना उभर आई है, उनमें कवि स्वयं आश्रय के रूप में है, अन्यत्र पाठक को आक्षिप्त कर लिया गया है।

नये संचारी भाव

शोक की व्यंजना में कुछ नूतन संचारी भावों का विधान भी पाया जाता है—आशंका, उत्कंठा, उद्वेग, व्यग्रता, आक्रोश, विह्वलता, अधीरता आदि। ये संचारी भाव इसी अर्थ में नये हैं कि इनकी अभिव्यंजना नये आलम्बनों से उद्भूत हुई है।

विवेचन

शोक के साथ ही सह-अनुभूति भी प्रादुर्भूत होती है। अन्य रसों में भी यही बात है। मनुष्य किसी दुखी को देखकर दुखी होता है, सुखी को देखकर सुख का अनुभव करता है, भयभीत को देखकर भाग खड़ा होता है। आश्चर्य-मुग्ध व्यक्ति को देखकर स्वयं तद्वत् आचरण करने लगता है—यह सब सह-अनुभूति के कारण। तथ्य यह है कि सह-अनुभूति में समानुभूति छिपी रहती है। करुण में इसका प्रभाव विशेष रूप से लक्षित होता है।

सह-अनुभूति सामाजिक गुण है। इसमें पर-दुःख-कातरता, उदारता, संवेदनशीलता, त्यागशीलता आदि सद्गुणों का समावेश होता है। प्रेमी को अपने प्रिय की सभी वस्तुएँ प्रिय होती हैं। प्रेमी अपने प्रिय के साथ इतना तादात्म्य कर लेता है कि उसके वियोग में तद्वत् अनुभूति से आकुल हो उठता है। समानुभूति का भाव जड़-चेतन सभी के साथ हो सकता है। नित्य के सहचर पेड़-पौधे, जीव-जन्तु, लता-गुल्म—सभी के वियोग में दुःखानुभूति होने लगती है।

संस्कृत और हिन्दी की प्राचीन काव्य-परंपरा में करुण का स्थायी भाव शोक है, परन्तु आधुनिक कवियों ने सहानुभूति को भी करुण का आधार बना दिया है। प्राचीन कवियों ने नष्ट-नाश, बन्धु-वियोग आदि में ही करुण रस को सीमित कर दिया है। मानस में राजा दशरथ की मृत्यु होने पर रानियों का विलाप, राम का अयोध्या-त्याग, लक्ष्मण के मूर्च्छित होने पर राम के प्रलाप में करुण का परिपाक हुआ है। परन्तु सीता और लक्ष्मण सहित राम के वन-गमन के अवसर पर ग्राम-वधूटियों को उपस्थित कर जो एक लम्बा प्रसंग उठाया गया है, उसमें किस रस की अभिव्यक्ति मानी जायगी? वनवास के वेश में राज कुमार तथा राजपुत्री को देखकर ग्राम के नर-नारियों के हृदय में मधुर संवेदना जाग्रत हो उठती है। इस कथा से सहानुभूति का ही भाव प्रादुर्भूत होता है,

जिसका आश्रय ग्राम-नारियाँ हैं। क्या इसे करुण रस की व्यंजना नहीं कह सकते ?

शोक की अपेक्षा सहानुभूति का क्षेत्र अधिक व्यापक एवं विस्तृत है। शोक तो अपने परिजनों के नाश से ही समुद्भूत होता है, किन्तु सहानुभूति की परिधि में प्राणी-मात्र आ जाते हैं, जड़ एवं चेतन। शोक में सघनता है, सहानुभूति में व्यापकता। शोक का क्षेत्र इष्ट जनों तक ही सीमित है, पर सहानुभूति का प्रसार जीव मात्र एवं वस्तु मात्र तक।

आधुनिक युग के कवियों में मानवतावादी दृष्टिकोण की प्रधानता है। उनके काव्य में मानव-मात्र के प्रति सहानुभूति का प्रसार हुआ है। मानवतावाद ने पीड़ित, शोषित, उपेक्षित, लांछित, तिरस्कृत मानवता को भी करुणापूर्ण दृष्टि से देखने की प्रेरणा दी है। उत्तर छायावाद 'युग में इस प्रकार की कविता प्रचुर परिमाण में लिखी गई है। ऐसे विषय प्राचीन काल के काव्य में कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होते। कारण यह है कि पहले कवि उच्च वर्ग को ही काव्य में प्रश्रय देते थे, साधारण जनता को नहीं। केवल नये युग में ही सामान्य मानवता को साहित्य में स्थान मिला है। नये युग के कवियों ने अछूत एवं पदलित जनों के प्रति हार्दिक सहानुभूति प्रदर्शित की है। इस प्रकार नवीन परिस्थितियों में शोक के प्राचीन आलम्बनों में बहुत बड़ा परिवर्तन हो गया है। आश्रय के रूप में स्वयं कवि मानवीय भावनाओं का प्रतिनिधित्व करता है। आश्रय-आलम्बन के साथ ही संचारियों के प्रयोग में भी नवीनता आ गई है।

शोक के विषयों के ये नवीन प्रयोग आलोच्यकाल की कविता में इतने अधिक प्रचलित हुए हैं कि इनकी एक नई परम्परा चल पड़ी है। इस परंपरा के निर्माण और विकास में अनेक कवियों का योग है। इस नवीन परंपरा के निर्माण में सभी कवियों का योग दान है। इसी से इस परंपरा में वेग है, गति है और इसका भविष्य भी सुन्दर दिखाई पड़ता है।

किन्तु आधुनिक युग के कवियों की भाव-व्यंजना में एक बड़ा दोष यह है कि इनमें रस का पूर्ण परिपाक नहीं होता, क्योंकि रस के समस्त उपकरणों का योग नई परंपरा में क्वचित् ही मिलता है। कहीं मात्र आलम्बन का मर्मस्पर्शी चित्र अंकित है, कहीं मात्र अनुभावों का ही वर्णन हुआ है। इसी प्रकार कहीं केवल संचारियों का ही दर्शन मिलता है। करुण रस की व्यंजना के पूर्ण चित्र कम ही मिलते हैं।

निष्कर्ष यह कि आलोच्यकाल में करुण रस के क्षेत्र में क्रान्तिकारी प्रयोग हुए हैं। आश्रय, आलम्बन, अनुभाव, संचारी आदि सभी उपकरणों में

यह परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। यहाँ तक कि करुण रस का स्थायी भाव शोक, सहानुभूति के रूप में कहीं अधिक विस्तृत हो गया है। इससे सिद्ध है कि करुण रस की परंपरा ने सर्वथा नूतन पथ का अनुसंधान किया है। इसकी सफलता इसी से सिद्ध है कि उसमें प्रचुर काव्य-राशि का सृजन हुआ है तथा शत-प्रतिशत कवियों ने इसके निर्माण में योग दिया है। आलम्बनों के वैविध्य एवं बाहुल्य ने रस परंपरा को प्राणवन्त बनाया है।

रौद्र रस के क्षेत्र में प्रयोग

रौद्र रस के क्षेत्र में भी कुछ नये प्रयोग दृष्टिगोचर होते हैं। प्राचीन साहित्य में रौद्र की अभिव्यक्ति अधिकतर युद्ध के वर्णनों में ही दिखाई गई है, जिसमें शत्रु आलम्बन होता है। उसके भ्रू-भंग, पिसते हुए ओष्ठ, फड़कती हुई भुजाएँ, तर्जन, आत्म-प्रशंसन, शस्त्र संचालनादि क्रियाओं से उसको उद्दीप्त किया जाता है। मोह, अमर्षादि संचारी होते हैं। आधुनिक हिन्दी कविता में रौद्र की व्यंजना इससे सर्वथा भिन्न रूप में पाई जाती है, जिसका अध्ययन नीचे प्रस्तुत किया जाता है।

रौद्र रस के नये आलम्बन

सामाजिक यथार्थ साम्राज्य-विरोध और वर्ग-संघर्ष से अधिकतर नये आलम्बन चुने गए हैं। नई कविता में रौद्र रस के विषयों का अत्यधिक विस्तार हुआ है। इसमें शोषक वर्ग, शोषण, एवं पूंजीपतियों के विरुद्ध क्रोध प्रदर्शित किया गया है। इसके अतिरिक्त सामाजिक विषमता, साम्प्रदायिकता, जाति-भेद, रूढ़िवादिता, आर्थिक-वैषम्य, रंग-भेद, राष्ट्रीय परतंत्रता आदि ऐसे विषय हैं, जिनसे क्रोध की अग्नि उद्दीप्त होती है। एक ओर दासता, जड़ता, अशिक्षा, भूख, रोग, बेकारी, दरिद्रता का तांडव नृत्य है और दूसरी ओर प्रभुत्व का पद, उन्मुक्त भोग, उच्छृंखल विलास और असीम ऐश्वर्य का अक्षय भंडार है। यही तो जीवन की विडम्बना है। इस परिस्थिति की भीषणता ने वर्तमान कवियों के अन्तस्तल में क्रोध, अग्नि, विस्फोट, चिनगारी, प्रलय, क्रान्ति एवं तूफानों को जन्म दिया है। प्रगतिशील कवियों की पचास प्रतिशत कविताओं में यही अन्त-र्विरोध फूट पड़ा है, जिसने रौद्र की अभिनव व्यंजना की है।

अंचल की 'आह्वान,' 'आज मरण की ओर,' दिनकर की 'कस्मै देवाय, 'हाहाकार,' उदयशंकर भट्ट की 'आज उबलते जग-कराह में खोल रहे अरमान किसी के,' गजानन मुक्तिबोध की 'पूंजीवादी समाज के प्रति' नाश-देवता,' अज्ञेय की 'जनाह्वान,' रांगेय राघव की 'जलते दाग,' 'प्रतिशोध,' साम्राज्यवाद

के प्रति, 'नरेन्द्र की' रुद्र भारत' आदि कविताओं में रौद्र रस की नयी व्यंजना के दर्शन मिलते हैं।

प्रगतिवादी काव्य में क्रोध की सशक्त व्यंजना है। इनमें विभाव-योजना (आलम्बन और उद्दीपन) इतनी सजीव एवं प्रभावोत्पादक है कि पाठक उसी भाव में तन्मय हो जाता है। इस दृष्टि से अंचल, नरेंद्र, सुमन, दिनकर, नवीन, उदयशंकर, गजानन, रांगेयराघव आदि की वाणी में रौद्र रस को उद्दीप्त करने की पूर्ण क्षमता है। इनके वैयक्तिक उद्‌गारों में विलक्षण ओज एवं स्फूर्ति है। इन कविताओं में आश्रय का स्थान स्वयं कवि ने ले लिया है। पूंजीवादियों के अत्याचार, भोग, विलास, उच्छृंखलता, दुराचार, दमन, फटकार, दुर्वाक्य, क्रान्ति, प्रलय, आन्दोलन आदि अनुभाव हैं। विक्षुब्धता, प्रतिशोध, विजय, आदि संचारी हैं।

विवेचन

आधुनिक युग के कवियों के अन्तस् में प्राचीन युग की सामन्तीय प्रथाओं से स्वाभाविक विरोध है। नवीन परिस्थितियों ने सामान्य जनता के प्रति सहानुभूति का भाव उत्पन्न कर दिया है। शोषित और शोषणकर्ता के बीच का वैषम्य आज विद्रोह के रूप में फूट पड़ा है। प्रगितिवादी कवियों के हृदय से इसी अन्तर्विरोध के उद्‌गार फूट पड़े हैं, जिससे क्रोध की व्यंजना को नया रूप मिला है। हिन्दी के प्राचीन साहित्य में रौद्र की व्यंजना का जो स्वरूप मिलता है, उससे यह सर्वथा भिन्न है। आश्रय, आलम्बन, अनुभाव, संचारी आदि रौद्र के सभी उपकरण बिलकुल बदल गए हैं। रौद्र का यह नया रूप आधुनिक कविता का नया प्रयोग है।

रौद्र की यह नई व्यंजना वर्तमान काल के प्रगतिवादी धारा के शत-प्रतिशत कवियों में पाई जाती है। इसके फलस्वरूप प्रभूत काव्य-राशि की उत्पत्ति हुई है। नयी कविता में यह प्रयोग इतना अधिक सफल हुआ है कि इसकी एक नवीन परम्परा चल पड़ी है, जिसको अग्रसर करने में दर्जनों कवियों का योगदान है।

वीर रस की अपेक्षा रौद्र रस की भावाभिव्यक्ति अधिक सशक्त है। कारण यह है कि वीर में शुद्ध उत्साह की व्यंजना अपेक्षित है। अमर्ष का भाव आ जाने से वह रौद्र में परिणत हो जाता है। आधुनिक युग में मानसिक भावों की संकुलता एवं उलझन बढ़ गई है, जो कवियों की अभिव्यक्ति में भी प्रति-बिम्बित हो रही है। इसमें क्रोध, खीझ, क्षोभ, असन्तोष, विद्वेष, प्रतिशोध की प्रधानता है। अतः यह प्रवृत्ति रौद्र रस की व्यंजना के लिए अनुकूल है।

फलतः आधुनिक कविता में रौद्र की व्यंजना में अधिक शक्ति एवं उत्कर्ष है।

निष्कर्ष यह कि आलोच्यकालीन कविता में रौद्र रस की व्यंजना नये रूप में विकसित हुई है। इसका स्वरूप सर्वथा नवीन है। प्राचीन साहित्य में ऐसे प्रयोग कहीं भी देखने को नहीं मिलते हैं। वर्तमान काल में इसकी एक स्वतन्त्र परम्परा स्थापित हो गई है। क्रोध का वैयक्तिक स्तर को पार करके सामाजिक स्तर पर आरूढ़ होना निश्चित रूप से नया विकास है।

भाव-क्षेत्र का विस्तार

आलोच्य युग की कविता में कुछ भावों की नूतन व्यंजना दृष्टिगोचर होती है। इसी कारण इनको नूतन भाव कहना समीचीन होगा। आधुनिक युग की कविता में इनकी व्यंजना इतनी सशक्त एवं तीव्र है कि इनका स्वतन्त्र अध्ययन करना आवश्यक हो गया है।

ये नये भाव इस प्रकार हैं—देश भक्ति, विद्रोह, विक्षोभ, साम्य, सहानुभूति, आक्षेप, आत्म-प्रशंसन, प्रतिशोध, स्वातंत्र्य, प्रवंचना, नैराश्य, साहस, उत्सर्ग, विजय और स्वत्व। इनके अतिरिक्त बौद्धिकता, यौनवासना तथा ऐन्द्रिय संवेदनों की भी अभिव्यक्ति मिलती है। नीचे इन भावों को सोदाहरण स्पष्ट किया जाता है :

(१) देश-भक्ति

इसमें देश-प्रेम की भावना की अभिव्यक्ति है। राष्ट्र की रक्षा के लिए आत्मोत्सर्ग, स्वदेश-प्रेम, जन्म भूमि का स्नेह, स्वतन्त्रता, देश-भक्ति आदि विविध रूपों में राष्ट्रीयता का भाव अभिव्यंजित हुआ है। राष्ट्र एवं राष्ट्र से सम्बन्धित विषय, भाषा एवं संस्कृति आदि के संबंध में प्रचुर काव्य-राशि का निर्माण हुआ है। मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण, गोपालशरण सिंह, एक भारतीय आत्मा, सोहनलाल द्विवेदी, सुभद्राकुमारी चौहान, पन्त, प्रसाद, निराला, महादेवी, मोहनलाल महतो, 'वियोगी' आदि कवियों में राष्ट्रीयता का भाव पूर्ण रूप से अभिव्यंजित है।

'अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा। —प्रसाद

(२) विद्रोह

व्यक्ति, समाज या किसी व्यवस्था के प्रति अविश्वास हो जाने पर उसे नष्ट करने की भावना विद्रोह है। इसमें वैर; विरोध, एवं प्रतिहिंसा के भाव छिपे रहते हैं।

प्रगतिवादी काव्य में इस भाव को अभिव्यक्ति अत्यन्त ओजपूर्ण है। कवियों ने मानवता को रूढ़िवादिता, आर्थिक वैषम्य तथा पूँजीवाद के फौलादी पंजे से मुक्त करने के लिए विरोध प्रदर्शित किया है।

'जीवन का बलिदान चढ़ाने, खड़े मुंतजिर हम दीवाने।
महाध्वंस के अग्रदूत हम, आज उठे विप्लव धधकाने।।'

—अंचल

(३) विक्षोभ

रोषपूर्ण व्याकुलता का भाव-किसी अनुचित कार्य या व्यापार को देख कर अन्याय कर्ता के प्रति जो क्रोध उत्पन्न होता है, उसे विक्षोभ कहते हैं। इसमें चित्त की व्याकुलता, खलबली, भय, करुणा तथा अमर्ष का मिश्रण रहता है।

प्रगतिवादी कवियों में विक्षोभ का स्वर अत्यन्त तीव्र है। पूँजीपति, शोषक एवं सामन्त वर्ग के अत्याचारों से पीड़ित मानवता के भावों को व्यंजित करने के लिये विक्षोभ के उद्गार प्रकट हुए हैं। नवीन, दिनकर, भगवतीचरण, उदयशंकर, अंचल आदि कवियों में विक्षोभ की व्यंजना प्रखर है—

'विद्युत की इस चकाचौंध में देख दीप की लौ रोती है।
अरी हृदय को थाम महल के लिए झोंपड़ी बलि होती है।।
देख कलेजा फाड़ कृषक दे रहे हृदय-शोणित की धारें।
और उठी जाती उन पर ही वैभव की ऊँची दीवारें।।

—दिनकर

(४) साम्य

ऐसी अवस्था जिसमें सब प्रकार के सामाजिक खेद भाव मिट कर मनुष्य समान स्तर पर जीवन विताएं। वर्ग, जाति, धर्म, संप्रदाय के भेदों का समूलोच्छेद करके ही सच्चे साम्य की प्रतिष्ठा हो सकती है। पन्त निराला, अंचल, बच्चन नरेन्द्र की कविता में साम्य का भाव प्रधानता से व्यंजित हुआ है—

वर्गहीन सामाजिकता देगी सबको सम्ता साधन,
पूरित होंगे जन के भव जीवन के निखिल प्रयोजन।

—पन्त

(५) सहानुभूति

किसी दुखी, त्रस्त एवं उत्पीड़ित व्यक्ति को देखकर, उसके प्रति सहानुभूति रखने का भाव। शोक और सहानुभूति में यह अन्तर है कि शोक में इष्ट-नाश का ही भाव प्रमुख होता है, जब कि सहानुभूति में प्राणी मात्र के लिए

संवेदना हो सकती है। इसका क्षेत्र असीमित है। जड़-चेतन, स्व-पर का भेद इसमें नहीं रहता है। शोषित, पीड़ित, पद्दलित, शरणार्थी एवं अछूत आदि विषयों पर लिखी हुई कविताओं में इस भाव की सुन्दर व्यंजना हुई है—

जो गिरे हुए को उठा सके, इससे प्यारा कुछ जतन नहीं,
दे प्यार उठा पाये न जिसे, इतना गहरा कुछ पतन नहीं।

—भवानी प्रसाद

प्रगतिवादी एवं भू-दान यज्ञवादी कवियों की रचनाओं में यह भाव प्रचुरता से व्यंजित हुआ है।

(६) आक्षेप

इसमें दोषारोपण का भाव रहता है। निन्दा करना, ताना देना, कटूक्तियाँ प्रकट करना, व्यंग्य करना, इसके लक्षण हैं। प्रगतिवादी कविता में अधिकतर शोषक वर्ग के अत्याचारों के प्रति आक्षेप की व्यंजना है। भगवती चरण वर्मा की 'भैंसा गाड़ी' में 'आक्षेप' व्यंग्य है।

यह देख पेट की आग देख,
इन उसे मुखों की आग देख,
अपनी माँ के रज से पैदा,
अपनी बेशरमी से नंगे।
तू ये डांगर की टाँग देख,
फिर अपनी चिकनी माँग देख।

(७) आत्म प्रशंसा

अपने आपको श्रेष्ठ एवं गौरवपूर्ण समझने का भाव। यह दैन्य या आत्म-हीनता का विरोधी है। अपने को सम्मानित समझना, गर्व का अनुभव करना, उल्लसित होना, अपने गुणों का उत्कर्ष प्रकट करना आदि इसके लक्षण हैं।

मैं हूँ पूर्ण, अपूर्ण झेलकर,
मैं अखंड, खंडित प्रतिभापर।

—मुक्तिबोध।

(८) स्वातंत्र्य

मुक्त होने की कामना। आधुनिक कविता में इसके दो रूप हैं। पराधीन देश को विदेशी शासन से मुक्त करने की कामना तथा शोषित समाज को शोषक

वर्ग से स्वतंत्र करने की भावना। राष्ट्रीय कविताओं में पहला भाव तथा प्रगतिवादी रचनाओं में दूसरा भाव प्रकट हुआ है। आज्ञा-भंग, सत्याग्रह, क्रान्ति, विद्रोह आदि इसके लक्षण हैं।

स्वाधीन हुआ गौरव-खंडित भारत महान,
उड़ चला तिरंगा लाल किले पर साभिमान।

नलिन।

(९) प्रतिशोध

अपने अनिष्ट कर्त्ता के प्रति वैर चुकाने का भाव। इसमें विपक्षी के प्रति ललकार, चुनौती, अमर्ष, पीड़ा पहुँचाना, बदला लेने की प्रवृत्ति लक्षित होती है। प्रगतिवादी कविता में शोषक वर्ग के अत्याचारों को समूल नष्ट करने के लिए कवियों ने प्रतिहिंसा, प्रतिशोध का भाव प्रदर्शित किया है।

हिरोशिमा शाप—
एक दिन न्यूयार्क भी मेरी तरह हो जायगा
आज ढाई लाख में कोई नहीं जीवित रहा,
न्यूयार्क में भी एक दिन कोई नहीं रह जायगा।

—चंद्रकुंवर

(१०) प्रवंचना

धोखा या छल। आधुनिक सभ्यता पर छींटाकशी करते हुए 'शिशिर की राका-निशा' में अज्ञेय जी कहते हैं—

वंचना है चांदनी सित
झूठ वह आकाश का निरवधि गहन विस्तार—
शिशिर की राका निशा की शान्ति है निस्सार।

—अज्ञेय

निराला की 'मास्को डायलाग्ज' कविता भी इसका अच्छा उदाहरण है।

(११) नैराश्य

अपने इष्ट कार्य के अथवा उद्देश्य के विषय में निश्चित असफलता के विश्वास को निराशा कहते हैं। यह भाव आधुनिक काल की संपूर्ण कविता में झलकता है—

वेसुध जो अपने सुख से जिनकी हैं सुप्त व्यथाएँ
अवकाश भला है किनको, सुनने को करुण कथाएँ।

—प्रसाद

(१२) साहस

वह मानसिक शक्ति जिसके द्वारा मनुष्य दृढ़तापूर्वक विघ्न-बाधाओं और विपत्तियों का सामना करता है। वैयक्तिक चेतना-प्रधान कवियों में यह भाव अदम्य उत्साह के साथ प्रकट हुआ है। निर्भीकता, आत्म-विश्वास, ललकार, चुनौती देना आदि लक्षण हैं—

कहो मत कि ठहरूं—ठहरना नहीं है,
अरे डूबने पर उभरना सही है,
उछलता, उभरता तथा डूबता मैं,
चलूंगा सदा दौड़ता, ऊबता मैं !

—उदयशंकर

(१३) उत्सर्ग

किसी पवित्र कार्य या उद्देश्य, या सिद्धान्त के लिए अपना प्राण-त्याग करने का भाव। निर्भीकता, त्याग, आवेश, अन्याय के सामने सिर न झुकाने का भाव आदि लक्षण हैं—

वरण करता स्वर्ग वह जो मरण से डरता नहीं है,
मरण पाकर भी कभी क्या वीर भी मरता कहीं है ?
आज का जीवन यही है आज की है यही वाणी,
आज फिर अंगार से श्रृंगार कर मेरी जवानी।

—उदय शंकर भट्ट।

(१४) विजय

प्रतिपक्षी का उच्छेद कर प्रभुत्व स्थापित करने का भाव। इसमें आशा गर्व, स्वत्व, उल्लास आदि प्रदर्शित किए जाते हैं।

लो, क्षितिज के पास—
वह उठा तारा, अरे, वह लाल तारा, नयन का तारा हमारे
सर्वहारा का सहारा
विजय का विश्वास।

—भारत भूषण

(१५) स्वत्व

किसी वस्तु या व्यक्ति पर अधिकार प्रकट करने का भाव। अधिकार, स्वामित्व, हुंकार, चुनौती आदि लक्षण हैं—

याद रख यह देश
उसका है कि जिसकी मेहनतों पर बन सका है

याद रख यह विश्व
उसका है कि जिसकी
मेहनतों पर पल सका है।

—रांगेय राघव

१६—बौद्धिकता

धर्मवीर भारती के अनुसार 'प्रयोगवादी कविता में भावना है, किन्तु हर भावना के सामने एक प्रश्न-चिह्न लगा हुआ है। इसी प्रश्न-चिह्न को आप बौद्धिकता कह सकते हैं। सांस्कृतिक ढांचा चरमरा उठा है और यह प्रश्न-चिह्न उसकी ध्वनि-मात्र है। 'तर्क, वाद, शंका, प्रश्न, विचार, सिद्धान्त, प्रमाण, विवेचना आदि लक्षण हैं। आजकल के कवि इसी विचार-प्रवृत्ति को काव्य में प्रश्रय दे रहे हैं। इससे काव्य में भाव तत्व और कल्पना तत्व का ह्रास होता जा रहा है। तथा विचार-विवेचन का प्राचुर्य दिखाई पड़ता है। दिनकर के 'कुरुक्षेत्र' में विचार तत्व एवं बौद्धिकता ही अधिक है। प्रगतिशील एवं प्रयोग-वादी काव्य-धारा में इसी का प्राधान्य है।

१७—यौन वासना

वर्तमान युग के विशेषतः प्रयोगवादी कवि अपनी रचनाओं में यौन-प्रवृत्तियों को अधिक प्रश्रय देते हैं। उनकी कविताओं में यौन-वासना का स्वच्छन्द प्रकाशन है। अज्ञेय की 'हरी घास पर क्षण भर' 'ओ पिया पानी बरसा', बाहु मेरे रुके रहे', 'सावन-मेघ' तथा 'कलगी बाजरे की' आदि रचनाओं पर इसी भावना का प्रभाव है। इनमें काम-वासना का निर्बन्ध प्रकाशन है प्रेमी निर्भीक है तथा उसे किसी सामाजिक मर्यादा की बिलकुल चिन्ता नहीं है, क्योंकि यौन-प्रवृत्ति को वह एक सहज प्राकृतिक व्यापार मानता है।[1] गिरजाकुमार, शमशेर, भारती, अंचल तथा सुमन की रचनाओं में इसका रूप और अधिक प्रस्फुटित हुआ है।

१८—सहज संबंध

आजकल के कवि सहज संबंध (फ्री एसोशियेशन) की विधि का कविता में उपयोग करते हैं, जिससे उनकी व्यक्तिगत कुंठाओं का पता चलता है। अतिवस्तुवादी (सुर-रियलिस्ट्स), कवि स्वप्न (ड्रीम) अथवा समाधि (ट्रान्स) की पद्धति पर काव्य के वर्ण्य में असम्बद्धता पूर्ण चित्रों को प्रस्तुत करते हैं।

१—देखिए, चिन्ता, दूसरा संस्करण, पृ० ७६।

तारसप्तक की कुछ कविताएं स्वप्न की शैली पर लिखी गई हैं, जिनकी वस्तु-योजना सर्वथा असंगत एवं विपर्यस्त है। इस विपर्यास का कारण है, सहज संबंध (फ्री ऐसोशियेशन) के नियम की स्वीकृति। संश्लिष्ट चित्रण में स्वीकृत संगतियों को लेकर काव्य-वस्तु का साधारणीकरण प्रस्तुत किया जाता है, जिससे कवि का आशय तुरन्त बोधगम्य हो जाता है। सहज संबंध (फ्री एसोशियेशन) के आधार पर रचित कविताएं इसका अपवाद हैं। इनमें वस्तु की संश्लिष्ट-योजना का पूर्ण अभाव रहता है। शब्द-चित्र असंबद्ध तथा विचारों में असंगति होती है। ऐसी कविताएं असंबद्ध, खंडित चित्रों से युक्त कवि के विचारों की अस्त-व्यस्तता की द्योतक होती हैं। उदाहरण के लिए—

प्रत्यूष।

प्रत्यूष की नीली, धब्बों भरी शान्ति
क्षितिज की गंजी चांद,
गाढ़ा हरा रंग,
पथरीले कोयले के घूवर्त,
रव डरा हुआ चूं-चूं कांय,
चिड़ियों का, बैलगाड़ियों
के चक्कों का रौंदना
कोलतार की कोमल सड़क को
बैलों की क्षुद्र-घंटिकाओं का
क्षुद्रतर टुन टुन
रिक्शों को वर्ण संकर भोंपू—
सुहब की मीठी नींद टूट गई है,
मशहरी के पार जंगले से देख रहा हूं,
सन्दिग्ध प्रत्यूष-वेला
निश्चयपूर्ण दिन बन गई।
मनहूस—
प्रत्यूष।

—नलिनविलोचन शर्मा

इस कविता में खंड-चित्रों में पूर्ण असम्बद्धता है जिससे आधुनिक जीवन की अस्तव्यस्तता, विपर्यास एवं अशान्ति ध्वनित होती है। "प्रत्यूष" शब्द से वैदिक युग की अमृत वर्षिणी उषा का आभास मिलता है किन्तु 'मनहूस' विशेषण आधुनिक बीसवीं शताब्दी की आधिभौतिक सभ्यता का परिचायक है। संपूर्ण

कविता की असंबद्ध शब्द-योजना वर्तमान मानव जीवन की संकुलता, विषमता एवं सामाजिक यथार्थ को चित्रित कर देती है।

केसरीकुमार की 'आषाढस्य प्रथम दिवसे' नरेश की 'वेदना निग्रह' सहज संबंध (फ्री ऐसोशियेशन) के आधार पर रचित नये प्रयोग हैं, जिन पर आधुनिक मनोविश्लेषण पद्धति का प्रभाव है[1]।

(१९) संवेदन

जिस प्रकार काव्य में बुद्धि-वृत्ति का उपयोग है, उसी प्रकार संवेदन का भी। कविता के आधार तत्व भाव, विचार और संवेदन हैं। मानसिक संस्थान त्रिविध होता है, बोधात्मक, भावात्मक और क्रियात्मक। अथवा यों कह सकते हैं कि मानव-मन इच्छा, ज्ञान और क्रिया से संघटित हुआ है। भाव का संबंध हृदय से है, ज्ञान का बुद्धि से तथा संवेदन का इन्द्रियों से। मनुष्य जितना ज्ञान अर्जित करता है, वह सब ऐन्द्रिय संवेदनों द्वारा।

संवेदन क्या है ? किसी वस्तु काप्रारंभिक बोध संवेदन द्वारा होता है। इनके द्वारा जो ज्ञान प्राप्त होता है, उसी पर विचार, तर्क और कल्पना का रंग-महल खड़ा होता है। जिसे संवेदन और प्रत्यक्षीकरण (सेन्सेशन एण्ड परसेप्शन) की मानसिक क्रियाओं के विकास का साधन नहीं मिला होता, उसका बौद्धिक विकास भी नहीं होता। उसकी कल्पना और स्मृति विकसित नहीं हो सकती है। वह किसी तर्क, वाद अथवा विचार में अपनी सम्मति नहीं दे सकता तथा किसी गूढ़ समस्या पर अपने विचार भी प्रकट नहीं कर सकता। उसका ज्ञान अत्यंत सीमित रह जाता है।

वाह्य-वस्तु का इन्द्रिय से संपर्क होने पर ज्ञान-तन्तु (सेन्सरी नर्व) द्वारा इसकी सूचना मन को जाती है और तब व्यक्ति को यह बोध होता है कि कोई वस्तु या व्यक्ति सामने है

संवेदन पांच प्रकार से होता है—नेत्र से, श्रुति से, त्वचा से, नासिका से और जिह्वा से। इस प्रकार नेत्र से जो बोध होता है, उसे 'दृश्य', श्रुति के द्वारा जो बोध होता है, उसे 'श्रव्य', त्वचा के द्वारा जो बोध होता है, उसे 'स्पृश्य', तथा नासिका से जो बोध होता है, उसे 'घ्राण-संवेदन' एवं जिह्वा से जो बोध होता है, उसे 'रस-संवेदन' कहते हैं। इस प्रकार हर एक वस्तु अथवा विषय का बोध उससे संबद्ध इंद्रिय के द्वारा होता है।

१—देखिए, अवन्तिका, वर्ष २।१, काव्यालोचनांक प्रपद्यवाद की दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृ० २५३-५४।

संवेदन का प्रत्यक्षीकरण से निकट संबंध है। इसके बिना प्रत्यक्षीकरण संभव नहीं। प्रत्यक्षीकरण में भी संवेदन की तरह वाह्य वस्तु से इन्द्रिय का सम्पर्क होता है। दोनों क्रियाएँ बोधात्मक हैं। अन्तर केवल इतना है कि संवेदन में किसी वस्तु का केवल बोध होता है और प्रत्यक्षीकरण में उस वस्तु के स्वभाव, स्वरूप तथा अर्थ का स्पष्टीकरण हो जाता है। प्रत्यक्षीकरण में विवेचन होता है, विश्लेषण-संश्लेषण चलता है। इसमें बहुत से संवेदनों का मिश्रण हो जाता है। सेव के प्रत्यक्षीकरण में सेव का मीठापन तो 'आस्वाद' संवेदन है और उसका श्वेत रंग 'दृश्य' संवेदन है। प्रत्यक्षीकरण भी पाँच प्रकार से होता है—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध द्वारा।

प्रत्यक्षीकरण क्रिया में सभी व्यक्ति एक समान नहीं होते हैं जिस व्यक्ति का दृश्य प्रत्यक्षीकरण तीव्र होता है, वह दृश्य वस्तु का सरलता से ज्ञान कर लेता है। ऐसा व्यक्ति भ्रमण तथा पर्यवेक्षण से अधिक लाभ उठा सकता है। जिसका 'स्पृश्य' प्रत्यक्षीकरण तीव्र होता है, वह वस्तुओं के स्पर्श से उनकी कोमलता एवं कठोरता का ज्ञान कर लेता है। अन्य प्रत्यक्षीकरण विषयक ज्ञान की भी यही बात है। इसके अतिरिक्त गति, स्थिरता, क्रिया एवं ध्वनि-चित्रों का भी काव्य में उल्लेख पाया जाता है।

इससे स्पष्ट है कि संवेदन और प्रत्यक्षीकरण का बोध इन्द्रियों के विकास पर निर्भर है। इन्द्रियां बौद्धिक ज्ञान के द्वार हैं। कवि अपने काव्य-निर्माण में ऐन्द्रियिक संवेदनों का भी उपयोग करते हैं। जिनका संवेदन और प्रत्यक्षीकरण जिस किसी विषय में तीव्र होता है, वे उन्हीं बातों का अपनी कविता में अधिक वर्णन करते हैं। ज्ञान के विकास में दृश्य, स्पृश्य और श्रव्य संवेदनों से बहुत बड़ी सहायता मिलती है। प्रत्यक्ष संवेदन से जो ज्ञान होता है, उसमें सबसे अधिक स्पष्टता, प्रगाढ़ता एवं सुगमता होती है। श्रेष्ठ कवियों के काव्य में संवेदन-जन्य अनुभूतियों का प्रचुरता से उपयोग होता है। वे प्रत्यक्ष-बोध द्वारा शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध के अनुभवों को अपने काव्य में अत्यंत विशद् रूप से चित्रित करते हैं। यही नहीं काव्य में गति, स्थिरता एवं ध्वनि का भी प्रभावोत्पादक चित्रण होता है। वाल्मीकि के वर्षा-वर्णन एवं कालिदास के कुमार संभव के आरंभ के हिमालय वर्णन में दृश्य, श्रव्य एवं स्पृश्य संवेदनों का उपयोग प्रचुरता से मिलता है। अंग्रेजी कवि पोप के काव्य में ध्वनि-चित्र अधिकता से प्रयुक्त हुए हैं। शैली में घ्राण-चित्र बहुत हैं तो कीट्स में स्पर्श संबंधी अनुभवों की विशेषता है। तुलसी के दृश्य चित्र एवं सूर के श्रव्य चित्रों में अद्भुत मार्मिकता है।

आधुनिक कवियों में निराला जी को श्यामवर्ण से अधिक स्नेह है। पन्त जी को श्वेत वर्ण अधिक प्रिय हैं। पन्त जी की रुचि गन्ध, ध्वनि एवं स्पृश्य चित्रों की ओर अधिक दिखाई पड़ती है।

नीचे कुछ उदाहरणों द्वारा इसी विषय का अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है—जिसमें कवियों के दृश्य, श्रव्य, स्पृश्य, गन्ध, रस, गति एवं क्रिया संबंधी संवेदन का उपयोग पाया जाता है।

(१) दृश्य चित्र

अरे वह प्रथम मिलन अज्ञात !
विकम्पित मृदु उर, पुलकित गात
सशंकित ज्योत्स्ना सी चुपचाप,
जड़ित पद, नमित पलक दृगपात,
पास जब आ न सकोगी प्राण,
मधुरता में सी मरी अजान,
लाज की छुई मुई सी म्लान
प्रिये प्राणों की प्राण।

—भावी पत्नी के प्रति, पन्त

इसमें मुग्धा का दृश्य-चित्र है। हृदय का कम्पन, शरीर का पुल, पैरों की जड़ता, पलकों के गिरने और छुई मुई सा लज्जित होने में प्रिया का चित्र सजीव हो उठा है। प्रिया की शारीरिक चेष्टाओं के वर्णन से कवि की दृश्य-संवेदन विषयक शक्ति पर प्रकाश पड़ता है। इनकी 'नौका-विहार' और 'सान्ध्य तारा' में भी दृश्य संवेदन के सुन्दर चित्र हैं।

(२) ध्वनि चित्र

बन बन उपवन
छाया उन्मन उन्मन गुंजन
नव वय के अलियों का गुंजन।

—पन्त

इन पंक्तियों की सानुनासिक ह्रस्व वर्णिक ध्वनियों में अलियों के गुंजन का स्वर गूंजता-सा सुनाई पड़ता है। पन्त जी की 'निर्झरी', 'निर्झर गान' तथा निराला जी के 'बादल' राग में ध्वनि चित्रों का प्राधान्य है।

(३) स्पृश्य चित्र

तुम्हारे स्पर्श की बादल-धुली कचनार नरमाई।
तुम्हारे वक्ष की जादू भरी मद होश गरमाई!
तुम्हारी चितवनों में नरगिसों की पात शरमाई।
किसी भी मोल पर मैं आज अपने को लुटा सकता—

—भारती

इसमें 'कचनार नरमाई', 'वक्ष की गरमाई', नरगिस की शरमाई' आदि पदों में स्पृश्य-चित्र अंकित हैं। स्पृश्य और गन्ध चित्रों का उदाहरण फूलों और तितलियों का वह गान है, जो पन्त जी की ज्योत्स्ना में आया है।

(४) गन्ध चित्र

अब फैला फूलों में विकास
मुकुलों के उर मदिर वास
अस्थिर सौरभ से मलय श्वास
जीवन-मधु-संचय को उन्मन
करते प्राणों के अलि गुंजन।

—पन्त

यहां फूलों के विकास में, मुकुलों की मदिर वास में एवं श्वास के सौरभ में गन्ध-चित्रों का सौन्दर्य है।

(५) गति चित्र

दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह सन्ध्या-सुन्दरी-परी सी
धीरे, धीरे, धीरे!

—निराला

कवि ने मानवीकरण द्वारा, सन्ध्या-सुन्दरी का गति चित्र चित्र अंकित किया है। इसमें 'उतर रही है', 'धीरे-धीरे' आदि पद किसी अज्ञात नायिका की गति के व्यंजक हैं।

(६) स्वर्ण-भृंग तारावलि वेष्टित,
गुंजित पुंजित तरल रसाल,
मधु गृह से हम गगन-पटल में
लटके रहते विपुल विशाल।

—पन्त

यहां 'गुंजित', 'पुंजित' में ध्वनि चित्र, 'तरल' में गति चित्र एवं 'रसाल, में रस चित्र अंकित है। कवि ने विविध संवेदनों का समाहार करके अनुपम चित्रांकन किया है।

हिन्दी के प्राचीन साहित्य में से भी संवेदनमय चित्रों के उदाहरण ढूंढे जा सकते हैं, किन्तु ये प्रयोग विरल हैं। इसकी कोई परंपरा नहीं विकसित हुई है। आधुनिक कविता में भी इसके छिट-पुट उदाहरण ही पाये जाते हैं। पन्त जी की कविता में इनका बाहुल्य है। प्रसाद और निराला जी की कविताओं में भी संवेदन-जन्य चित्र अंकित हुए हैं। प्रयोगवादी कवियों में शमशेर और भारती की कविताओं में दृश्य, स्पृश्य एवं गति-चित्र दर्शनीय हैं। शमशेर की 'एक मुद्रा से', 'शरीर स्वप्न', भारती की 'उदास तुम', 'फागुन की शाम' कविताओं के दृश्य चित्र सुन्दर हैं।[१] गिरिजाकुमार की कविताओं में संवेदन चित्रों का सफल प्रयोग हुआ है। उनकी 'लैंड स्केप', 'शाम की धूप', 'सावन के बादल', 'बरफ का चिराग 'आदि कविताओं में दृश्य, स्पृश्य, श्रव्य, गन्ध, रस, गति एवं रंग चित्रों का प्रयोग अत्यन्त सुन्दरता से हुआ है।[२] इनसे कवि के प्रत्यक्षीकरण और संवेदन की शक्ति पर प्रकाश पड़ता है। अन्य प्रयोगवादी कवियों में नरेश मेहता, शम्भूनाथ सिंह भारत भूषण, नेमिचन्द्र आदि संवेदन चित्रों की ओर उन्मुख हैं।

ये प्रयोग कवियों की सूक्ष्म संवेदन शक्ति के परिचायक हैं। प्राचीन हिन्दी कविता में इनका अभाव सा ही है, क्योंकि इस ओर उनका सचेष्ट प्रयत्न दिखाई नहीं पड़ता है। सूर और तुलसी के काव्य में श्रव्य एवं दृश्य चित्र अंकित हुए हैं, किन्तु वे प्रयोग के रूप में ही हैं, उनका परंपरा के रूप में विकास नहीं हुआ है। आधुनिक युग के कवि संवेदन चित्रों के निर्माण की ओर सचेष्ट हैं, विशेषतः प्रयोगवादी कवि। अभी तो ये प्रयोग के रूप में ही यत्रतत्र पाए जाते हैं, परन्तु भविष्य में इन प्रयोगों की नवीन परंपरा विकसित होने की सम्भावना अवश्य दिखाई पड़ती है। पाश्चात्य अंगरेजी के कवि शेली, कीट्स, वर्डसवर्थ आदि और ईलियट, पाउंड आदि की रचनाओं का प्रभाव हिन्दी के वर्तमान कवियों पर भी लक्षित होता है, जिससे प्रेरित होकर ये इस ओर प्रवृत्त हुए हैं।

उपसंहार

कवि के व्यक्तित्व में मन की तीनों शक्तियां-बोधात्मिका, भावात्मिका

१—देखिए, दूसरा सप्तक और ठंढा लोहा (धर्मवीर भारती)।

२—देखिए, गिरिजाकुमार माथुर, धूप के धान।

तथा क्रियात्मिका-काम करती हैं। परन्तु किसी कवि में बोधात्मक वृत्ति प्रबल होती है तो किसी में भावात्मक तथा किसी अन्य में क्रियात्मक। प्रबन्ध के कवि के लिए तीनों शक्तियों का समन्वित रूप अपेक्षित होता है, किन्तु प्रगीत काव्य में भावात्मक तत्व प्रधान होता है। काव्य के निर्माण में रागात्मक तत्व की प्रधानता काव्य के सभी आचार्यों ने स्वीकार की है। किन्तु आजकल के कवि मनोविज्ञान एवं पदार्थ विज्ञान से अधिक प्रभावित हुए हैं। विज्ञान ने वस्तु-तत्व की परीक्षा के लिए बुद्धि-तत्व को प्रधानता दी है, जिसके लिए प्रमाण, प्रयोग, प्रत्यक्षीकरण, तर्क, विवेचन आदि अपेक्षित हैं। इसी प्रकार फ्रायड, युग, ऐडलर आदि मनोविज्ञान शास्त्रियों के मनोविश्लेषण ने मानव-मन के अज्ञात रहस्यों को ढूंढ निकाला है। आधुनिक कवि पदार्थ और अन्तर्मन की नूतन गवेषणाओं से अत्यधिक प्रभावित हुए हैं, जिससे नई कविता में अभिनव प्रयोगों का विकास हुआ है। फलतः आधुनिक कवि बोधात्मक-वृत्ति तथा ऐन्द्रियिक संवेदनों को अधिक महत्त्व प्रदान करते हैं। इसी कारण नयी कविता में बौद्धिकता, विचार, विवेचन, सिद्धान्त-निरूपण, प्रत्यक्षीकरण एवं अचेतन मन की कुण्ठाओं का प्रकाशन बहुत है। प्रगतिवादी कवि मार्क्स-दर्शन से प्रभावित होकर अपनी रचनाओं में बौद्धिकता को अधिक प्रश्रय दे रहे हैं। फ्रायड के अनुसन्धानों से प्रभावित हिन्दी के कवि अपनी कविताओं में फ्री ऐसोशियेशन एवं ऐन्द्रियिक संवेदनों के अतिरिक्त यौन-कुण्ठाओं को प्रकाशित कर रहे हैं। इन दोनों विचार धाराओं के आगमन से वर्तमान हिन्दी-कविता में भाव तत्व का शैथिल्य हो गया है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय कवियों ने नए आलम्बन एवं उद्दीपनों के साथ-साथ नये भावों की भी सृष्टि की हैं, जिनका ऊपर उल्लेख हो चुका है।

निष्कर्ष यह कि आलोच्यकाल की कविता में उत्तरोत्तर भाव-तत्व (रागात्मकता) का अभाव होता गया है। तथा बुद्धि-तत्व एवं ऐन्द्रियिक संवेदनों का प्रभाव अधिक है। भाव-व्यंजना के विविध प्रयोगों की दृष्टि से छायावादी काव्य बहुत उर्वर है। पन्त की ग्रन्थि, निराला की गीतिका, प्रसाद की आंसू, एवं महादेवी की नीरजा में भावोच्छ्वासों का प्रवाह छलकता है। राष्ट्रीय काव्य धारा में नए-नए आलम्बनों के साथ राष्ट्रीयता, विद्रोह, उत्सर्ग, स्वत्व, सहानुभूति, विक्षोभ, प्रवंचना आदि नए भावों का प्रादुर्भाव हुआ है। प्रगतिवादी कविता में बौद्धिकता अधिक है तथा प्रयोगवादी रचनाओं में यौन-भावना, फ्री ऐसोशियेशन एवं ऐन्द्रियिक संवेदनों के प्रयोग अधिक हैं।

प्रबन्ध काव्यों के अतिरिक्त आधुनिक युग की समस्त रचनाओं में रसात्मक तत्व का ह्रास होता चला गया है। प्रयोगवादी रचनाओं में रस-तत्व एवं

भाव-व्यंजना बहिष्कृत-से हो गए हैं। वर्तमान कविता में तर्क प्रवृत्ति, विचारात्मक तत्व, ऐन्द्रियिक बोध एवं प्रत्यक्षानुभूति के प्रयोग सर्वथा नूतन हैं। आजकल के कवि काव्य-चेतना के नए-नए स्तरों का अन्वेषण करने में संलग्न हैं। नई भाव-व्यंजना, बुद्धि-तत्व एवं नूतन ऐन्द्रियिक-बोध की विभूति काव्य के गौरव को बढ़ाने में कहां तक सहायता करेगी, यह भविष्य के द्वारा निश्चित होगा। किन्तु यह सत्य है कि आज कवि-चेतना कहीं अधिक जागरूक है तथा वह काव्य के नये स्तरों का अनुसन्धान करने में तत्पर है।

निष्कर्ष यह कि आधुनिक काव्य-धारा सतत् गतिशील है। वह नए सामाजिक बोध तथा ऐन्द्रियिक बोध से अनुप्राणित है। यद्यपि उसका सब कुछ मूल्यवान् नहीं है, तथापि कुछ कवियों की प्रतिभाओं ने अवश्य ही नये क्षेत्रों का उद्घाटन किया है, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

नवम अध्याय

काव्य-रूपों में प्रयोग

काव्य-रूपों में प्रयोग

महाकाव्य में प्रयोग

आलोच्यकाल के महाकाव्यों में कुछ नवीन प्रवृत्तियां मिलती हैं जिनका अध्ययन नीचे लिखे महाकाव्यों के आधार पर किया गया है :

(१) साकेत, (२) तक्षशिला, (३) कामायनी, (४) नूरजहाँ, (५) वैदेही वनवास, (६) दैत्य वंश, (७) रावण महाकाव्य, (८) आर्यावर्त, (९) कुरुक्षेत्र, (१०) रश्मिरथी, (११) विक्रमादित्य, (१२) शर्वाणी, (१३) जन नायक, (१४) कैकेयी और (१५) मेधावी।

उपर्युक्त महाकाव्यों में कुछ नए परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। ये परिवर्तन महाकाव्य के अंतरंग और बहिरंग—आत्मा और शरीर—दोनों में हुए हैं।

(१) महाकाव्य का अन्तरंग

इसमें नायक का चरित्र और रस संबंधी विचार हैं। परंपरागत महाकाव्यों का नायक कोई देवता अथवा धीरोदात्त उच्च कुलोद्भव क्षत्रिय होता है और कथा-वस्तु इतिहास-प्रसिद्ध एवं सज्जनाश्रित होती है। नये महाकाव्यों में 'धीरोदात्त' और 'सज्जनाश्रय' के प्रतिमान बदल गए हैं। आजकल जीवन में समाज-सेवा, राष्ट्रीयता एवं सांस्कृतिक गौरव की भावना का अत्यधिक विकास हुआ है। स्वच्छन्दतावाद के इस युग में कथा का 'सज्जनाश्रित' होना भी अनिवार्य नहीं है। आजकल महाकाव्यों की कथा दैत्य, नारी एवं सामान्य जनाश्रित भी हो सकती है, अन्यथा दैत्यवंश, रावण, नूरजहाँ, कैकेयी, वैदेही-वनवास और मेधावी जैसे महाकाव्यों की रचना न होती। 'जन नायक' में समाज-सेवा एवं राष्ट्रीयता का आदर्श प्रतिफलित हुआ है तथा 'सिद्धार्थ,' 'वर्द्धमान' एवं तक्षशिला में सांस्कृतिक गौरव का।

महाकाव्यों में शृंगार, वीर अथवा शान्त अंगी रस होता है, शेष अंगभूत होते हैं। किन्तु परंपरया वीर रस को प्रधानता मिली है, क्योंकि नायक के महान् कार्यों, विजय-यात्राओं और साहसपूर्ण कार्यों में इसी की सुन्दर अभिव्यक्ति होती है। आजकल करुण रस के महाकाव्यों की भी सृष्टि हुई है। प्रिय प्रवास, वैदेही वनवास, साकेत-सन्त आदि में शोक एवं विषाद की अभिव्यंजना विशेष रूप से लक्षित होती है।

इसके अतिरिक्त वर्तमान काल में कुछ ऐसे भी महाकाव्यों का सृजन हुआ है, जिनमें रस का स्थान सैद्धान्तिक विवेचन ने ले लिया है तथा रस की अपेक्षा बौद्धिकता एवं मनोवैज्ञानिक विश्लेषण को अधिक महत्व दिया गया है। जीवन के घात-प्रतिघात एवं अन्तर्द्वन्द्व का मनोवैज्ञानिक चित्रण करने की ओर भी कुछ कवि उन्मुख हुए हैं। 'कामायनी' और 'कुरुक्षेत्र' में यह प्रवृत्ति स्फुट है।

उद्देश्य

आधुनिक युग के महाकाव्यों के उद्देश्य संबंधी प्रतिमान भी बदल गए हैं। 'चतुर्वर्ग फल प्राप्ति 'और' सद्यः पर निर्वृत्ति 'में अब कोई कवि विश्वास नहीं रखता है। अब महाकाव्यों की रचना अपने' 'अहं' की परितुष्टि और नूतन समाज-बोध की दृष्टि से की जाती है।

महाकाव्य का बहिरंग

इसमें महाकाव्य का बाह्य शरीर—रूप एवं शैली—आते हैं।

(१) शास्त्रीय दृष्टि से प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द का विधान है। सर्गान्त में भावी कथा को सूचित करने के लिए छन्द बदल दिया जाता है। किन्तु पद्मावत और रामचरितमानस जैसे श्रेष्ठ महाकाव्यों में भी इस विषय का पालन नहीं हुआ है। ये दोनों ही काव्य-ग्रंथ चौपाई-दोहों की शैली में वर्णित हैं। आलोच्य काल में कृष्णायन भी इसी शैली पर रचा गया है। सर्गांत में छन्द बदलने के नियम का कामायनी और कुरुक्षेत्र में भी पालन नहीं हुआ है।

(२) नए महाकाव्यों में किसी प्रकार का मंगलाचरण नहीं होता है। यह परंपरा प्रायः समाप्त सी हो गई है। प्रारंभ में किसी प्राकृतिक दृश्य का वर्णन किया जाता है। इसके पश्चात् मूल कथा का श्रीगणेश होता है।

(३) राष्ट्रीयता और समाजवाद से संबंधित बहुत से नवीन विषय भी नए महाकाव्यों में आ गए हैं—सत्याग्रह, आन्दोलन, मातृभूमि, समाज-सुधार, राष्ट्र-प्रेम समानाधिकार, संगठन, ग्रामोद्योग, भौतिक एवं सामाजिक संघर्ष आदि ऐसे ही विषय हैं। इस प्रकार सामाजिक जीवन और राष्ट्रोन्नति से संबंधित अनेक विषयों का वर्णन किया जाता है।

(४) दुष्टों की निन्दा और सज्जनों की प्रशंसा का वर्णन अब नहीं होता है।

(५) नाटकीय संधियों की योजना भी आजकल आवश्यक नहीं है।

(६) गीति-काव्य अपने आप में पूर्ण एवं स्वतंत्र काव्य-रूप है, परंतु आधुनिक महाकाव्यों में गीतों का भी समावेश हो गया है। साकेत, वैदेही-वन-

वास, साकेत-सन्त, कामायनी, जन नायक आदि में गीतों की स्वतंत्रतापूर्वक योजना की गई है।

(७) आधुनिक युग में नारी-स्वातंत्र्य का स्वर मुखर है। नारी जीवन के हर एक क्षेत्र में पुरुष की सहचारिणी हो गई है। नारी को प्रधान पात्र बनाकर कई महाकाव्यों का सृजन हुआ है, जिनमें साकेत, वैदेही-वनवास, कामायनी, नूरजहाँ, शर्वाणी, कैकेयी आदि मुख्य हैं। 'पार्वती' महाकाव्य का प्रकाशन अभी हाल में हुआ है। इन महाकाव्यों में 'नारी' को प्रधान पात्र का स्थान दिया गया है।

(८) आधुनिक युग में अवतारवाद एवं देवतावाद का स्थान मानवतावाद ने ले लिया है। विज्ञान के आलोक में अब तर्कसंगत एवं बुद्धि-ग्राह्य घटनाओं में ही विश्वास किया जाता है। आधुनिक युग के कई महाकाव्यों में अवतारों का स्थान महापुरुषों ने ले लिया है अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, असंभव और अतिरंजित घटनाओं को अब काव्यों में चित्रित नहीं किया जाता है। साकेत और वैदेही वनवास के राम तथा सिद्धार्थ के बुद्ध महापुरुषों के रूप में ही चित्रित हुए हैं।

आलोच्यकाल के महाकाव्यों में कुछ नये परिवर्तन हुए हैं। उन्हें नीचे तालिका द्वारा स्पष्ट किया जाता है :

(१) अंतरंग

१—नायक के आदर्श में परिवर्तन

२—भाव क्षेत्र में परिवर्तन

३—वस्तु एवं घटनाओं का सैद्धांतिक विवेचन।

(२) बहिरंग

१—प्रकृति-चित्रण

२—विषय और उपादान

क—राष्ट्र

ख—संस्कृति

ग—सामाजिक जीवन

३—छन्दोविधान

क—भिन्न तुकान्त

ख—मुक्त

ग—मिश्रित

घ—गीत

ङ—उर्दू के छन्द

४—नाटकीय संवाद

५ —भाषा

नायक का आदर्श

आधुनिक युग में मानवतावादी दृष्टि के प्रधान हो जाने से परंपरागत नायकों के आदर्शों में परिवर्तन हो गया है। आधुनिक युग के महाकाव्यों में यह प्रवृत्ति प्रत्यक्ष दिखाई पड़ती है। प्रियप्रवास के नायक कृष्ण का आदर्श परंपरानुगत नहीं है। हरिऔध जी ने कृष्ण को आदर्श महापुरुष और राधा को आदर्श नारी के रूप में चित्रित किया है। भगवान् कृष्ण के जीवन की अलौकिक एवं अतिरंजित घटनाओं को युक्तिपूर्वक विज्ञान-सम्मत बनाया गया है। वैदेही-वनवास के राम भी आदर्श महापुरुष हैं तथा सती-साध्वी नारी के रूप में चित्रित हैं। साकेतकार ने राम के अवतार रूप में विश्वास प्रकट किया है, किन्तु राम के जीवन की अलौकिक घटनाओं को सर्वत्र बचा गए हैं। केवल उन्हीं घटनाओं का वर्णन किया है, जो वैज्ञानिक दृष्टि से संभव हैं। लंका-विजय के प्रसंग में सेना द्वारा समुद्र को तरने की कथा में से अलौकिक चमत्कार हटा दिया गया है तथा 'सेतु रूप ही है उत्साह' कहकर उत्साह को ही सेतु-रूप बताया गया है।

भारतीय परंपरा में कैकेयी का चरित्र गर्हित, निन्दित एवं कुत्सित भावों से परिपूर्ण चित्रित किया गया है। तुलसीदास ने कैकेयी को कुटिलता की प्रतिमूर्ति और 'पापिनि' के रूप में अंकित किया है। साकेत में उनके चरित्र की रक्षा की गई है। इसी प्रकार साकेत में उर्मिला के चरित्र को नवीन सृष्टि की गई है। नवीन जी ने 'उर्मिला' महाकाव्य की रचना की है। प्रभातकुमार मिश्र ने अपने 'कैकेयी' काव्य में कैकेयी को आदर्शवादी नारी के रूप में चित्रित किया है। इस प्रकार आलोच्य काल में पात्रों के परंपरागत आदर्श में नए परिवर्तन हुए हैं। आर्यावर्त को संयोगिता भी परिवर्तित नारी के रूप में चित्रित की गई है। वह व्यक्तिगत मान और अपमान से ऊंचे उठकर पृथ्वीराज की पराजय का बदला लेने के लिए आर्यावर्त की विशाल सेना को सुसंगठित करती है और युद्ध में यवनों को परास्त करके आर्य-राष्ट्र के संमान की रक्षा करती है।

आधुनिक युग में नारी को उत्कर्ष मिला है तथा उसे पुरुष के समकक्ष मान लिया गया है। आलोच्य काल के अनेक महाकाव्य नारी के महत्व की स्थापना करने के लिए प्रणीत हैं। कामायनी, नूरजहाँ, शर्वाणी, कैकेयी, उर्मिला, पार्वती आदि महाकाव्यों में नारी के आदर्श की प्रतिष्ठा हुई है। श्यामनारायण पांडेय के 'जौहर' में भी रानी पद्मिनी का आदर्श चरित्र अंकित है। इससे सिद्ध है कि नये महाकाव्यों में नारी को गौरवपूर्ण स्थान पर प्रतिष्ठित करने का

सोद्देश्य प्रयत्न किया है।

अब तक के महाकाव्यों में सद्वंशोद्भव राजा या राजन्य वर्ग के पुरुषों को ही महाकाव्य के नायक के रूप में चुना गया है। साधारण मानव को यह संमान कभी नहीं दिया गया। आलोच्यकाल के महाकाव्यों में साधारण श्रेणी के व्यक्ति भी नायक चुने गए हैं। 'नूरजहाँ' की नूरजहाँ एक सामान्य कुल की नारी होने पर भी प्रधान पात्र चुनी गई है। 'जन नायक' के पूज्य बापू साधारण कुलोत्पन्न हैं, क्षत्रिय वंश के भी नहीं, युद्ध वीर होना तो दूर रहा। सामान्य स्थिति से ही उन्नति करके उन्होंने राजनैतिक नेता का पद प्राप्त कर लिया था। शास्त्रीय परंपरा के अनुसार वे महाकाव्य के नायक नहीं हो सकते, किन्तु आधुनिक युग ने 'जन नायक' को राजा से भी अधिक आदर दिया है। रांगेय राघव का 'मेधावी' भी एक नूतन महाकाव्य है जिसका नायक 'मेधावी' एक सामान्य श्रेणी का व्यक्ति है। इस प्रकार आधुनिक काल में सामान्य श्रेणी के पात्रों को भी महाकाव्य के नायक का गौरव प्राप्त हुआ है।

हरदयालु सिंह के 'दैत्यवंश' और 'रावण महाकाव्य' में नायक का पद दैत्य राजाओं एवं असुरों को मिला है। महाकाव्यों की परंपरा में असुर सदैव खल नायक के रूप में चित्रित किए गए हैं, किन्तु इन दोनों महाकाव्यों में दैत्य राजाओं को नायक के रूप में चुना गया है तथा उनमें धीरोदात्त नायक के गुणों को प्रदर्शित किया गया है। दिव्य पात्रों को प्रतिनायक के स्थान में रखा गया है रावण महाकाव्य में रावण धीरोदात्त नायक है तथा राम प्रतिनायक। दैत्य-वंश में नायक के रूप में हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु, बलि, बाणासुर आदि छः दैत्य कुलोद्भव राजाओं का वर्णन है। इससे सिद्ध है कि आलोच्य काल में नायक के आदर्श में महान् परिवर्तन हुए हैं। परंपरा में जिन बातों को दोष समझा जाता था, आजकल उन्हें उदात्त रूप में ग्रहण किया जाता है।

भाव-क्षेत्र में परिवर्तन

प्रियप्रवास के राधा और कृष्ण लोक-सेवा के आदर्श हैं। उनमें जीवन के प्रारम्भ से ही दूसरों के सुख के हेतु अपने सुख का त्याग करने की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। श्रीकृष्ण बाल्यकाल से ही निःस्वार्थ भाव से प्रेरित होकर समाज-सेवा एवं सर्व-हित के कार्यों में संलग्न दिखाई पड़ते हैं। परोपकार और सेवा-व्रत उनके जीवन के प्रधान अंग हैं।

साकेत के राम में भी लोक-सेवा का आदर्श प्रस्फुटित हुआ है। वे राज्याभिषेक की अपेक्षा वन-यात्रा को श्रेष्ठतर समझते हैं। दक्षिण देश की बर्बर कौणप जाति के उपद्रवों को मिटाने के लिए उनके भुजदंड फड़क उठे हैं। उनके

जीवन का आदर्श है—'हम हों समष्टि के लिए व्यष्टि बलिदानी।'

कामायनी में व्यष्टि सत्ता को समष्टि चेतन में लय कर देने की भावना प्रतिफलित हुई है। स्वार्थपरता में लिप्त मनु को सचेत करते हुए श्रद्धा लोक में आनन्द की भावना को प्रसारित करने का उपदेश देती है।[१]

सिद्धार्थ, वैदेही बनवास, कृष्णायन, कुरुक्षेत्र, जन नायक, तक्षशिला आदि सभी महाकाव्यों में जातीय, राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक भावों की अभिव्यक्ति है। व्यक्तिगत रसात्मक भाव-भूमि से ऊँचे उठकर आनन्द को सामाजिक एवं राष्ट्रीय स्तर पर व्यंजित करने की परम्परा सर्वथा नवीन है। प्राचीन काल के महाकाव्यों में रस-संचार का विशेष रूप से ध्यान रखा जाता था। रसोन्मेष की दृष्टि से ही कथा-वस्तु के अन्तर्गत विविध प्रसंगों की योजना की जाती थी। आलोच्यकाल के महाकाव्यों में रस का स्थान गौण हो गया है। आजकल के रचनाकार चरित्रों के उदात्त वर्णन, घटना एवं संघर्षों के मनोवैज्ञानिक चित्रण की ओर अधिक ध्यान देते हैं। आर्यावर्त, कुरुक्षेत्र, जन नायक एवं मेधावी में घटना, संघर्ष एवं चरित्रांकन की प्रधानता है। कुरुक्षेत्र, में हर एक घटना के मूल में मनोवैज्ञानिक कारणों का निरूपण किया गया है।

वस्तु एवं घटनाओं का सैद्धान्तिक विवेचन

'कुरुक्षेत्र' के कवि ने प्रथम सर्ग में युद्ध की मीमांसा प्रस्तुत की है। युद्ध का उत्तरदायित्व किस पर है? व्यक्ति पर, समाज पर अथवा किसी नेता पर? कहा जाता है कि देश के गौरव के लिए युद्ध लड़ना अनिवार्य हो जाता है। किंतु कवि को संदेह 'देश की लज्जा' का विषय कोई वास्तविक सत्य है अथवा स्वार्थ-लोलुप सभ्यता के अग्रणी नायकों के पेट में जलती हुई द्रोहाग्नि का मात्र आवरण है। विश्व के मानवों के हृदय में द्रोहाग्नि नहीं है, समुदाय भी लड़ाई नही चाहते। केवल व्यक्ति ही युद्ध के विषाक्त वातावरण का निर्माण करते हैं। इस प्रकार पूरे प्रथम सर्ग में कवि ने युद्ध की समस्या पर तर्कपूर्ण विवेचन किया है। इसी प्रकार छठे सर्ग में मानव की पाशविक वृत्तियों का विवेचन किया गया है। मनुष्य अपनी आदिम भोग-प्रवृत्ति से आज भी अपना पिंड नहीं छुड़ा सका है—वही आहरण, वही शोषण, वही दमन, उसके हृदय में द्वेष, द्रोह, और उन्माद का आज भी वैसा ही ताण्डव विद्यमान है।

अंगराज के पच्चीसवें सर्ग में कौरवों की नैतिक विजय और पाण्डवों की जीत में हार का बौद्धिक निरूपण किया गया है तथा यह सिद्धान्त उपपादित

१—देखिए, कामायनी, पृ० १३२।

किया है कि क्रियाशीलता से ही सिद्धि मिलती है।

जन नायक में भी रस-पक्ष निर्बल है और स्थल-स्थल पर गांधीवादी विचार-धारा का निरूपण किया गया है। संपूर्ण काव्य में घटनाओं के विवरणों की विवृत्ति है और सिद्धान्तों की पुनरावृत्ति है।

कामायनी की घटनाओं में अन्तर्द्वन्द्व का उन्मीलन है। अध्यात्मवाद और भौतिकवाद, हृदय और बुद्धि, नारी और पुरुष, भोग और त्याग, शासक और शासित, देव और दानवों के संघर्ष के मूल में दो विरोधी भावों का ही द्वन्द्व है। आदि काल से ही नारी और पुरुष का संबंध एक प्रश्न बना हुआ है। पुरुष नारी पर एकान्त अधिकार चाहता है क्योंकि वह अपने को किसी नियम में नहीं रख सकता। मनु को यह सह्य नहीं कि श्रद्धा का स्नेह-पात्र कोई दूसरा बने। अपने पुत्र और मृग-शावक के प्रति भी इसीलिए उन्हें ईर्ष्या है।

इड़ा के उपदेश से वे मुक्त भोग में प्रवृत्त होते हैं। सारस्वत प्रदेश में उनका राज्य स्थापित होता है। उनमें शासक का गर्व है, अतएव प्रजा से उनका संघर्ष छिड़ जाता है। भीषण संग्राम में आहत होकर मनु भाग निकलते हैं। कामायनी के कथानक में एक पक्ष भौतिक वाद का है, जिसका प्रतीक इड़ा है और दूसरा पक्ष अध्यात्मवाद का है, जिसका प्रतीक है श्रद्धा। कामायनीकार ने इच्छा, ज्ञान और क्रिया के सामंजस्य में स्थायी सुख का समाधान ढूंढ़ा है। समरसता की प्राप्ति आध्यात्मिक शान्ति का द्वार है। यही कामायनी का सन्देश है।

इससे सिद्ध है कि नए महाकाव्यों में वस्तु एवं घटनाओं के विश्लेषण का प्रयास अधिक है, वस्तु-वर्णन की अपेक्षा तर्कपूर्ण विवेचन प्रधान है तथा जीवन के नैतिक प्रतिमानों के बौद्धिक निरूपण की प्रवृत्ति अधिक है।

बहिरंग—प्रकृति चित्रण

हिन्दी के महाकाव्यों की परंपरा में प्रकृति का स्वतंत्र वर्णन बहुत कम मिलता है। पद्मावत और रामचरितमानस दोनों महाकाव्यों में प्रकृति-वर्णन तो बहुत हुआ है, किन्तु आलम्बन रूप में नहीं। पद्मावत के ऋतु वर्णन, बारह-मासा, समुद्रादि के वर्णनों में अधिकतर उद्दीपन रूप की ही प्रधानता है। मानस के वर्षा, शरद् ऋतुओं के वर्णन में उपदेश ढूंढ़ने की प्रवृत्ति प्रधान है। केशव की रामचन्द्रिका में अलंकारों के रूप में और उद्दीपन के रूप में ही प्रकृति का उपयोग हुआ है। यदि कहीं स्वतंत्र वर्णन है भी, तो वह वस्तु परिगणन मात्र है।

आधुनिक महाकाव्यों में प्रकृति-चित्रण दो रूपों में अधिक पाया जाता

है—मानवीकरण के रूप में तथा आलम्बन रूप में। आधुनिक काल में प्रकृति के अचेतन पदार्थों में मानवीय धर्मों के आरोप करने की प्रवृत्ति अधिक प्रचलित है। इससे प्राकृतिक वस्तुओं का मानवीकरण हो जाता है। आलोच्यकाल के प्रायः सभी महाकाव्यों में यही प्रवृत्ति प्रधान है। कामयनी, नूरजहाँ, वैदेही-वनवास, साकेत, आदि महाकाव्यों में प्रकृति का मानवीकरण प्रचुरता से मिलता है।

नए महाकाव्यों में प्रकृति के स्वतंत्र चित्रण की योजना करके कवियों ने वाल्मीकि और कालिदास की परिपाटी को पुनरुज्जीवित किया है। बुद्ध चरित्र, विक्रमादित्य, कामायनी, नूरजहाँ, सिद्धार्थ, वैदेही-वनवास आदि महाकाव्यों में इसका प्राचुर्य है।

कामायनी के आनन्द सर्ग में मानसरोवर और कैलास के वर्णन में प्रकृति के संश्लिष्ट योजना के चित्र अत्यंत सुन्दर हैं। विक्रमादित्य के अठारहवें सर्ग में सौराष्ट्र वर्णन में प्रकृति-चित्रण अपने विशुद्ध रूप में पाया जाता है। 'सिद्धार्थ' में शुक्ला रात्रि, उपवन, वाटिका, वर्षा-वैभव के चित्रण अत्यंत मनोरम हैं।

विषय और उपादान

आधुनिक युग के महाकाव्यों में कुछ नवीन विषय आ गए हैं, जिनको तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है : (१) मातृभूमि तथा राष्ट्रीय विषय (२) संस्कृति और राजनीतिक विषय।

मातृभूमि तथा राष्ट्रीय विषय—आधुनिक युग के महाकाव्यों में मातृभूमि से संबंधित विषयों का उल्लेख प्रचुर मात्रा में रहता है। 'विक्रमादित्य' में वीर चन्द्रगुप्त शकों पर विजय प्राप्त कर भारत को लौट रहा है। सेना विजयोल्लास से पूर्ण है। इस प्रसंग में कवि ने हिमालय, कश्मीर आदि का वर्णन किया है। स्वदेश-प्रेम से अनुरंजित होने के कारण ये राष्ट्रीय विषय बन गए हैं।[१]

दरिद्रता से पीड़ित गयास और उसकी पत्नी आजीविका के हेतु भारत जाने को उद्यत हैं। अपनी मातृभूमि फारस को छोड़कर विदेश-यात्रा करने में बेगम का हृदय उद्विग्न होता है। इस प्रसंग में स्वदेश के मनोहर दृश्यों का चित्रण अत्यंत सजीव एवं मार्मिक है[२] इसी प्रकार अंगराज के प्रथम सर्ग में भारत-भूमि का महिमामय चित्रांकन है। यह वर्णन पूरे प्रथम सर्ग की समाप्ति तक चलता है।

सत्याग्रह, आन्दोलन, दमन, वलिदान, स्वतंत्रता, स्वत्व, संगठन, एकता,

---

१—देखिए, विक्रमादित्य, सर्ग ३६।

२—देखिए, नूरजहाँ, पहला सर्ग।

अहिंसा, ग्रामोद्योग, सह-शिक्षा, सुधार आदि आदि विषयों का वर्णन अनेक महाकाव्यों के अंतर्गत पाया जाता है। साकेत से जब राम वन को जाते हैं, तब अयोध्या के निवासी सविनय सत्याग्रह करते हैं।[१] चित्रकूट पर निवास करते हुए 'अंचल-पट-कटि में खोंस कछोटा मारे हुए' सीता पौधों को सींचती हैं। स्वावलम्ब के जीवन में उन्हें संतोष है। वे भोलीभाली कोल-किरात-भिल्ल-वन-बालाओं के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेती हैं तथा उन्हें स्वत्व का उपदेश देती हैं। उन्हें कातने-बुनने के लिए प्रेरित करती हैं। इस प्रसंग को पढ़कर गांधी जी के वर्धा आश्रम की याद आ जाती है।

'दैत्य वंश' के स्कन्द के राज्य में आधुनिक युग की ग्राम-सुधार-योजना ही प्रतिफलित हुई है। स्कन्द आदर्शवादी नरेश हैं। उनके राज्य में शिक्षा के विशाल केंद्र हैं, महान् पुस्तकालय हैं तथा अनेक चिकित्सालय हैं। सैनिक शिक्षा का भी प्रबन्ध है। कृषि की उन्नति के लिए नहरें बनवाई गई हैं। सहकारी समितियां स्थापित की गई हैं।[२] ये सब आधुनिक युग की राष्ट्रीय-सुधार-योजना के विषय हैं।

वैदेही-वनवास के वाल्मीकि के आश्रम में कन्या-विद्यालय भी है, जिसकी अधिष्ठात्री एक तपस्विनी महिला हैं। सीता जी को निवास करने के लिए इसी आश्रम में रखा जाता है।[३]

रावण महाकाव्य में मुनियों और राक्षसों के संघर्ष का जो चित्र अंकित किया गया है, उस पर आधुनिक युग की क्रान्ति की छाप है। इस प्रसंग में सत्याग्रह, दमन, आन्दोलन आदि का वर्णन है। जनस्थान का शासन करने के लिए शूर्पणखा को उसी प्रकार नियुक्त किया गया था, जिस प्रकार आधुनिक युग में सरोजिनी नायडू उत्तरप्रदेश के शासन के लिए राज्यपाल के पद पर प्रतिष्ठापित की गई थीं।[४]

'जन नायक' में स्वतंत्रता चरखा सत्याग्रह, आन्दोलन, बलिदान, दमन, अत्याचार आदि विषयों के विस्तृत वर्णन मिलते हैं। सन् १९४२ की राज्य-क्रान्ति के प्रसंग में इन सभी विषयों का वर्णन आ गया है।[५]

१—देखिए, साकेत, अष्टम सर्ग, पृ० २१०।

२—देखिए, दैत्य वंश, अष्टादश सर्ग, पृ० २५१–२४।

३—,, वैदेही-वनवास, सर्ग १८।२६।

४—,, रावण महाकाव्य, १५।२५।३०।

५—देखिए, जन नायक, पृ० ३५५।

'कामायनी' में अहिंसा, ग्रामोद्योग आदि विषय वर्णित हैं। मनु की सुधि लिए बैठी हुई श्रद्धा अपनी कुटिया में तकली चलाती है।[1]

(ख) सांस्कृतिक विषय

इसके अंतर्गत अतीत गौरव, आर्य-संस्कृति, स्वाभिमान, नीति एवं धर्म का वर्णन आता है। साकेत, वैदेही-वनवास आदि महाकाव्यों में आर्य संस्कृति, स्त्रियों के धर्म, राम राज्य, मनुष्य के कर्तव्य आदि विषयों का वर्णन है। कृष्णायनकार ने सांस्कृतिक एकता को अक्षुण्ण रखने के लिए आर्य सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। 'आर्यावर्त' में आर्य-संस्कृति एवं धर्म का निरूपण है। कुरुक्षेत्र के छठें सर्ग में नीति, संस्कृति एवं धर्म के सिद्धान्तों का विशद निरूपण है। सातवें सर्ग में भाग्यवाद और पुरुषार्थवाद जैसे विषयों पर आर्थिक रीति से प्रकाश डाला गया है। 'अंगराज' के अन्तिम सर्ग में नीति पक्ष का सुन्दर विवेचन है।

साकेत सन्त में नीति, कर्तव्य, सदाचार का अनेक स्थलों पर वर्णन हुआ है। यद्यपि ये विषय मानस और रामचन्द्रिका में भी प्रचुरता से वर्णित हैं, किन्तु आलोच्यकाल के महाकाव्यों में इन विषयों का भिन्न दृष्टि से वर्णन किया गया है। विषय वही हैं, किन्तु दृष्टि का भेद है। आधुनिक युग के कहाकाव्यों में इन्हीं विषयों पर राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक दृष्टि से विचार हुआ है। इनके वर्णन में नवीन दृष्टि का उन्मेष है। अतएव इनको नई परंपरा के अन्तर्गत लिया गया है।

(ग) राजनीतिक विषय

इसकी परिधि में संघर्ष, शोषक वर्ग समानाधिकार, शोषण, किसान, मजदूर, दलित, क्रान्ति आदि विषय आते हैं। जन नायक, कुरुक्षेत्र, रश्मिरथी तथा मेधावी में ये विषय प्रचुरता से वर्णित हैं। मेधावी के अन्तिम सर्ग में शोषक वर्ग के अत्याचार, किसान, मजदूर, निम्न वर्ग आदि की दुरवस्था के सजीव चित्र अंकित हैं।[2]

कुरुक्षेत्र के अन्तिम सर्ग में साम्यवाद, शोषण, क्रान्ति आदि का विस्तृत विचार है। कामायनी के 'संघर्ष' सर्ग में मनु के निरंकुश शासन के विरुद्ध

१—देखिए कामायनी, पृ० १२० ।

२—देखिए, मेधावी, सर्ग १४ ।

प्रजा के विद्रोह एवं तज्जन्य संघर्ष में 'स्वाधिकार' का ही वर्णन है। इस घटना में नृशंस शासक के अत्याचार, शोषण, अन्तर्द्वन्द्व, दमन, संघर्ष आदि सभी विषय वर्णित हैं, जिन पर समाजवादी दृष्टि का प्रभाव लक्षित होता है। यह प्रसंग आधुनिक युग की समाजवादी विचारधारा के अनुकूल है।

छन्दो-विधान

आधुनिक महाकाव्यों में छन्दों की नवीन परंपराएँ स्थापित हुई हैं। ये अनेक रूपों में प्रचलित हैं : संस्कृत वृत्त, भिन्न तुकान्त, मुक्त, मिश्र गीत, उर्दू के छन्द आदि।

(क) संस्कृत वृत्त

हिन्दी महाकाव्यों की परंपरा छन्दों की दृष्टि से पूर्णतः समृद्ध है। रामचरितमानस में हिन्दी एक संस्कृत के विविध छन्द प्रयुक्त हुए हैं। रामचन्द्रिका तो छन्दों का अजायबघर है। किन्तु भिन्न तुकान्त शैली के छन्दों का प्रयोग आलोच्य काल में ही सबसे अधिक मिलता है।

संस्कृत के छन्दों का प्रयोग सबसे अधिक प्रियप्रवास, सिद्धार्थ, वर्द्धमान, अंगराज आदि में मिलता है। इनमें द्रुत विलम्बित, वसन्त तिलक, वंशस्थ, शिखारिणी, मालिनी, मन्दाक्रान्ता एवं शार्दूल विक्रीड़ित आदि आदि संस्कृत के वर्ण वृत्तों का प्रयोग हुआ है।

(ख) भिन्न तुकान्त मुक्त छन्द :

अन्त्यानुप्रासहीन छन्दों का प्रयोग आजकल के सिद्धार्थ, वर्द्धमान, आर्यावर्त एवं मेघावी में हुआ है। पहले दो काव्य भिन्न तुकान्त संस्कृत वृत्तों में रचित हैं, तीसरा बंगला के अमित्राक्षर छन्द में तथा चौथा भिन्न तुकान्त मुक्त शैली का काव्य है।

(ग) मिश्र छन्द :

आधुनिक युग की यह नई प्रवृत्ति है कि दो दो छन्दों के लक्षणों को मिला कर एक नया छन्द बना लिया जाता है। यही मिश्र छन्द का स्वरूप है। कामायनी में इसका प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है। ईर्ष्या और श्रद्धा सर्गों में पद्धरि छन्द (१३ + १६ = २९) कुछ अन्तर के साथ प्रयुक्त हुआ है। 'नूरजहाँ' में भी मिश्र छन्द प्रयुक्त हुआ है।

(घ) गीत-योजना :

आधुनिक महाकाव्यों में गीतों की योजना की एक नवीन परंपरा चली है। कामायनी के 'निर्वेद सर्ग' में, 'तुमुल कोलाहल कलह में, मैं हृदय की बात रे मन !' गीत-योजना है। साकेत के नवम सर्ग में गीतों का ही प्राचुर्य है। विक्रमा-

दित्य के अनेक सर्गों में गीतों की योजना है जननायक, वैदेही-वनवास साकेत सन्त के सर्गों के बीच-बीच में गीत रखे गए हैं। इन गीतों में भावों का माधुर्य छलछलाता है। प्रवन्ध काव्यों में गीत-सृष्टि नवीन प्रयोग है। इनसे यद्यपि कथा के विकास में बाधा पड़ती है तथापि आन्तरिक भावों की व्यंजना में बहुत सहायता मिलती है।

(ङ) उर्दू के छन्द :

कहीं कहीं उर्दू-छन्दों का भी प्रयोग मिलता है। इस प्रकार के छन्दों का प्रयोग नूरजहां[1] और हल्दीघाटी[2] में पाया जाता है।

नाटकीय-संवादों की योजना

आधुनिक काल के महाकाव्यों में नाटकीय संवादों की योजना एक नया प्रयोग है। प्रियप्रवास में कृष्ण के जीवन की अनेक घटनाएँ पात्रों द्वारा कहलाई गई हैं। कृष्ण स्वयं रंगमंच पर आते हुए नहीं दिखाई पड़ते। पात्रों द्वारा उनके चरित्र पर प्रकाश डाला गया है। यह संवाद उद्धव और गोपियों में चलता है।

साकेत में कथानक को नाटकीय रूप में प्रस्तुत किया गया है। प्रथम सर्ग के लक्ष्मण उर्मिला संवाद-की योजना है। रंगमंच पर लक्ष्मण-उर्मिला के मनोरंजक संवाद द्वारा कथानक को प्रारंभ किया गया है। इस प्रकार के संवादों से पात्रों के चरित्र भी प्रकाश में आते हैं।

'विक्रमादित्य' का संपूर्ण कथानक नाटकीय संवादों में ही गूंथा गया है। ध्रुव देवी और चन्द्र गुहा के वार्तालाप से ग्रंथ आरम्भ सोता है। केशव की रामचन्द्रिका, तुलसी के मानस और पद्मावत के नागमती-पद्मावती के वार्तालापों में संवादों की योजना मिलती है। किन्तु प्राचीन और अर्वाचीन संवाद-योजना में अन्तर है। आधुनिक महाकाव्यों के संवादों में नाटकीय तत्व अधिक हैं। संवादों की योजना सचेष्ट, और सुस्पष्ट है तथा बहुत दूर तक चलती है। इसके अतिरिक्त इन संवादों से कथा के विकास और पात्रों के चरित्र पर प्रकाश पड़ने में बहुत सहायता मिलती है। प्राचीन युग के महाकाव्यों के संवादों में यह गुण नहीं है।

१—यह हार मेरे गले का ले अब, तू हार मेरे गले का होजा !
हुए शिथिल तेरे अंग थककर, तू लग कलेजे में मेरे सोजा ॥ नूरजहाँ
यह उर्दू की बहरे तवील के वजन पर रचित है, जिसका लक्षण है—फ़ऊल फेलून, फऊल फेलुन फ़ऊल फेलुन फ़ऊल फा।

२—'क्षण इधर गई क्षण उधर गई, क्षण चढ़ी बाढ़ सी उतर गई।
था प्रलय चमकती जिधर गई, क्षण शोर हो गया किधर गई ॥ हल्दीघाटी
इस छन्द में उर्दू की मसिरा शैली की छाप है।

भाषा के प्रयोग

आधुनिक युग के महाकाव्यों में भाषा सम्बन्धी प्रयोग भी मिलते हैं। खड़ी बोली में अनेक महाकाव्यों का सृजन हुआ है प्रियप्रवास, साकेत, सिद्धार्थ, वैदेही-वनवास, नूरजहाँ, तक्षशिला, विक्रमादित्य तथा अंगराज। ब्रजभाषा में भी महाकाव्य लिखे गये हैं—दैत्यवंश, रावण महाकाव्य, गंगावतरण। कृष्णायन अवधी का महाकाव्य है, परन्तु इसकी भाषा में खड़ी बोली के तत्सम शब्दों की प्रधानता है।

प्रतीकात्मक भाषा, मानवीकरण, विशेषण-विपर्यय, चित्रात्मक भाषा, लाक्षणिक प्रयोग, नादात्मक सौन्दर्य, अंगरेजी के प्रयोग, संस्कृत-गर्भित पदावली, उर्दू-मिश्रित हिन्दी आदि भाषा के विविध रूप आधुनिक महाकाव्यों में पाये जाते हैं।

इससे सिद्ध है कि आलोच्य काल के महाकाव्यों में नवीन प्रयोगों की सशक्त स्थापना हुई है, जिनमें अपेक्षाकृत ओज और शक्ति भी अधिक हैं।

विवेचन

आधुनिक युग के महाकाव्यों के रचना-बाहुल्य पर एक विहंगम दृष्टि डालने से बड़ा आश्चर्य होता है कि युग की प्रवृत्ति महाकाव्यों की रचना के अनुकूल न होने पर भी इतने अधिक महाकाव्यों को सृष्टि कैसे संभव हुई। समस्त हिन्दी काव्य-परम्परा में वीरगाथा युग से लेकर भारतेन्दु युग पर्यन्त कुल चार महाकाव्य दृष्टिगोचर होते हैं किन्तु आधुनिक काल (बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध) में लगभग दो दर्जन से ऊपर महाकाव्यों का सृजन हुआ है। क्या यह आश्चर्य का विषय नहीं है ? अस्तु, इन तथाकथित महाकाव्यों के काव्यत्व पर विचार करना समीचीन होगा। ये महाकाव्य समग्र मानव-जीवन को चित्रित नहीं करते तथा इनमें कोई महान् उद्देश्य भी प्रतिफलित नहीं हुआ है। जीवन की विषम परिस्थितियों का जैसा मार्मिक एवं प्रभावोत्पादक चित्रण अपेक्षित है, वैसा इनमें नहीं पाया जाता। इस दृष्टि से इनमें से अधिकांश खंडकाव्य की कोटि में ही रह जाते हैं।

नायक के आदर्शों में जो परिवर्तित दृष्टि रखी गई है, उससे भी महाकाव्य के आदर्श को क्षति पहुँचती है। साधारण मानवता, स्त्री एवं दैत्यों को नायक के स्तर पर उपस्थापित करना उतना अनीप्सित नहीं है, जितना उनमें प्राण-प्रतिष्ठा न कर पाना। परम्परा-विहित आदर्शों को बदलने के लिये महान् प्रतिभा अपेक्षित होती है। इसके अभाव में महाकाव्य अपने गौरव से स्खलित हो जाता है। नायक के धीरोदात्त तथा श्रेष्ठ कुलोद्भव होने का यही तात्पर्य है कि

उसके लोकप्रिय गुणों के साथ हृदय का सामंजस्य हो जाता है तथा साधारणी-करण हो जाने से पाठक उसमें पूर्ण तन्मयता प्राप्त कर लेता है। आजकल के तथाकथित महाकाव्यों में इसका अभाव है।

इसके अतिरिक्त आधुनिक महाकाव्यों में सानुबन्ध कथा एवं प्रबन्ध-कौशल का अभाव होने से पाठक के हृदय पर अभीष्ट नहीं पड़ता है। साकेत और कामायनी में इसी तत्व की कमी है।

महाकाव्य में वीर भाव की व्यंजना को पूर्ण उत्कर्ष मिलने से हृदय उच्छ्वसित होता है। करुण और शृंगार रस भी अभीष्ट प्रभाव डालने में समर्थ होते हैं, किन्तु आधुनिक युग के महाकाव्यों में पूर्ण रस-संचार नहीं होता, जिससे हृदय अतृप्त रह जाता है। कामायनी, साकेत-सन्त, जन नायक, कुरुक्षेत्र आदि महाकाव्यों में रस का अभाव बहुत खटकता है। रामचरितमानस की लोक-प्रियता का रहस्य उसकी पूर्ण रसात्मकता और सौन्दर्य-बोध में ही ढूंढ़ा जा सकता है।

महाकाव्य की कथा के इतिहास-प्रसिद्ध और सज्जनाश्रित होने का तात्पर्य यह है कि उसमें लोक-हृदय का रागात्मक संबंध स्वभावतः हो जाता है। ऐसी कथाओं में उन्हीं जीवनादर्शों का चित्रण होता है, जिनको सामान्य मानवता युग-युग से आदर की दृष्टि से देखती आई है। नूरजहाँ, दैत्य-वंश एवं रावण महाकाव्य की कथा-वस्तु के साथ लोक-हृदय का सामंजस्य नहीं हो पाता। 'मेधावी' एक प्रतीक काव्य सा है। उसमें एक भावना का चित्रण है। कथा-वस्तु का कोई पूर्ण चित्र आँखों के सामने नहीं खुलता है, जिससे इप्सित प्रभाव नहीं पड़ता। एक कुतूहल सा ही जाग्रत होकर रह जाता है।

महाकाव्य की वस्तु-योजना के अन्तर्गत चन्द्र, सूर्य, ऋतु आदि के वर्णनों का अभिप्राय यह है कि प्रकृति एवं जीवन के विविध पक्षों का सम्यक् उद्घाटन हो, जिससे चित्त का पूर्ण अनुरंजन हो सके। इसी कारण प्राचीन महाकाव्यों में जीवन, जगत् और नैतिक आदर्शों का सम्यक् चित्रण किया जाता था। चतुर्वर्ग का निरूपण भी इसी आशय से होता था कि जीवन को उस ओर अग्रसर किया जा सके, जो पदार्थ हमारे लिए काम्य हों। आधुनिक महाकाव्यों में ऐसा कोई उद्देश्य सम्मुख नहीं रखा जाता तथा वस्तु-योजना में केवल वस्तु-परिगणन-मात्र होता है अथवा उन प्रसंगों को ही उड़ा दिया जाता है। तक्षशिला, हल्दीघाटी, आर्यावर्त, कामायनी, साकेत आदि महाकाव्यों में वस्तु-व्यापार-योजना का अभाव है। इन काव्य-ग्रन्थों की वस्तु-योजना एवं कथा-विस्तार इतने क्षीण एवं संकुचित

है कि उनमें पाठकों को तन्मय होने का अवसर ही नहीं आता। केवल शैली-शिल्प की मनोहरता ही कुतूहल-मात्र जगाकर रह जाती है।

इससे सिद्ध है कि आलोच्यकाल के प्रयोग महाकाव्य के गौरव के अनुकूल नहीं हैं। महाकाव्य के उपकरणों की योजना कर देने से अथवा किसी महापुरुष के जीवन का विवरण प्रस्तुत कर देने से अथवा किसी युद्धवीर की प्रशस्ति का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन करने से कोई ग्रन्थ महाकाव्य कहलाने का अधिकारी नहीं हो जाता। जब तक उसमें उदात्त जीवन के आदर्श, प्रतिमान एवं उद्देश्य प्रतिष्ठित नहीं होते, तब तक महाकाव्य नाम सार्थक नहीं होता।

आख्यान काव्य—आलोच्यकाल में आख्यान काव्यों की एक नवीन परंपरा के भी दर्शन होते हैं। आख्यान काव्य खंड काव्यों के रूप से नितान्त भिन्न है, क्योंकि इनका प्राचीन काव्य-परंपरा से कोई संबंध नहीं है। ये बिलकुल आधुनिक युग की देन हैं। इसका रूप अंगरेजी बैलेड से मिलता-जुलता है। इसमें युद्ध, वीरता और पराक्रम के कार्यों का वर्णन होता है और प्रेम, उत्साह, करुणा के भावों की मार्मिक अभिव्यक्ति होती है। इसकी वर्णन-शैली सरल, ओजपूर्ण एवं प्रवाहयुक्त होती है। इसमें किसी वीरतापूर्ण घटना का ओजस्वी वर्णन होता है, जिसके पढ़ने से पाठकों के हृदय में उत्साह, स्फूर्ति एवं साहस का भाव उद्दीप्त होता है। आधुनिक युग में देश-भक्ति, राष्ट्रीयता के भावों से ओत-प्रोत अनेक आख्यान काव्यों का सृजन हुआ है।

लाला भगवानदीन के 'वीर पंचरत्न,' 'वीर प्रताप,' मैथिलीशरण के 'रंग में भंग,' 'विकट भट,' 'गुरुकुल,' सुभद्राकुमारी चौहान की 'झाँसी की रानी,' जौहर (सुधीन्द्र), महाराणा का महत्व (प्रसाद), जौहर (रामकुमार वर्मा) आदि रचनाएं उत्कृष्ट आख्यान काव्य हैं। पन्त की 'ग्रन्थि' सुन्दर आख्यान गीत है।

ये आख्यान काव्य परंपरागत विषय-वस्तु के आधार पर वीर भावों की अभिव्यंजना करने में पूर्ण समर्थ हैं। 'वीर पंचरत्न' और 'वीर प्रताप' में सरल भाषा और वेगयुक्त प्रवाह का सौन्दर्य है। 'रंग में भंग,' 'विकट भट' आदि परिष्कृत भाषा और साहित्यिक शिल्प की दृष्टि से उत्कृष्ट काव्य हैं। 'झाँसी की रानी' में सरलता, धारा-वाहिकता, तथा ओजमयी भाषा का गुण है। इसी से यह सबसे अधिक लोकप्रिय रचना है। वीरत्व की व्यंजना करने में यह इतनी प्रभावोत्पादक सिद्ध हुई है कि रसिकजन इसको कंठाग्र कर डालने का लोभ नहीं संवरण कर सके हैं।

इस प्रकार आख्यान काव्य सरल भाषा में मार्मिक भावों के अभिव्यंजक हैं। इनमें उत्साहवर्द्धक कथानकों के आधारपर देश-भक्ति, आर्य-गौरव एवं स्वा-

भिमान के भावों को जागृत किया गया है। नाद-सौन्दर्य, गीति-मत्ता, एवं भावोत्कर्ष के गुणों ने इन काव्यों को सफलता प्रदान की है।

निष्कर्ष यह कि आख्यान काव्य खण्ड काव्यों से बिलकुल भिन्न नवीन काव्य रूप है, जिनमें उत्साह, प्रेम एवं जातीय गौरव के भावों की सफल व्यंजना हुई है। किन्तु यह परम्परा कुछ संतोषजक प्रगति नहीं कर सकी है। इसके उत्कर्ष में गिने-चुने कवियों का ही योग-दान है। वर्तमान काल में इस प्रकार की काव्य-रचना करने की ओर किसी कवि का ध्यान ही नहीं है। अतएव इसमें गति नहीं है।

निबन्ध तथा मुक्तक काव्य—भाव-व्यंजना की दृष्टि से नवीन परम्परा के मुक्तकों को तीन वर्गों में बांटा जा सकता है—(१) देश-प्रेम, (२) अतीत गौरव और (३) राजनीतिक विक्षोभ।

नए मुक्तकों के क्षेत्र में वस्तु और शैली के कुछ नए प्रयोग हुए हैं जिनकी नवीन परंपरा चल पड़ी है। देश-प्रेम की व्यंजना मैथिलीशरण, सुभद्राकुमारी चौहान तथा सोहनलाल द्विवेदी, सुमित्रानन्दन पन्त की मुक्त रचनाओं में अत्यंत उत्कृष्ट हैं। मातृभूमि, मुकुल, भैरवी, ग्राम्या, वीर सतसई इस दृष्टि से सुन्दर काव्य हैं।

अतीत गौरव के भाव गुप्त जी की 'भारत-भारती,' 'स्वर्गीय-संगीत' निराला की 'अनामिका' की अनेक कविताओं में अभिव्यंजित हुए हैं।

राजनीतिक विक्षोभ एवं असंतोष का स्वर माखनलाल चतुर्वेदी की 'हिम किरीटिनी,' निराला की 'नए पत्ते,' पन्त की 'युग वाणी,' दिनकर की 'रेणुका,' 'हुंकार,' 'धूप और धुआं,' नवीन की स्फुटिक रचनाओं, नरेन्द्र की 'प्रभात फेरी' तथा रांगेय राघव की 'पिघलते पत्थर' आदि कविताओं में सुस्पष्ट है।

शैली की दृष्टि से भी अनेक प्रयोग हुए हैं। इनकी भी परंपरा बन चुकी हैं—

(क) उर्दू की रुबाई के ढंग पर चतुष्पदियां लिखी जाती हैं। उमर खैयाम की रुबाइयां प्रसिद्ध हैं। हिन्दी के वर्तमान कवियों पर भी इसका प्रचुर प्रभाव है। भारती, शमशेर, सुमन आदि अनेक कवि रुबाइयां लिख रहे हैं। इनमें सरल बोलचाल की भाषा में किसी मार्मिक अनुभूति को प्रकाशित किया जाता है।

(ख) मुक्तक की एक और शैली है जिसमें जीवन की किसी घटना का वर्णन भावपूर्ण रीति से किया जाता है। इसे विवरणात्मक मुक्तक कहा जा

सकता है। सोहनलाल द्विवेदी की 'वासवदत्ता,' नागार्जुन की 'भिक्षुणी,' निराला की 'राम की शक्ति पूजा,' 'सरोज स्मृति,' 'नाचे उस पर श्यामा,' 'सेवा प्रारंभ,' पन्त की 'अरविन्द दर्शन,' राम इकबाल सिंह की 'हिमालय अभियान' आदि इसी श्रेणी की कविताएँ हैं।

(ग) स्वतंत्र या मुक्त छन्द में भी मुक्तक का प्रयोग हुआ है। निराला जी की 'कुकुर मुत्ता' ऐसी ही व्यंग्यपूर्ण रचना है। इसमें पूंजीपति वर्ग पर कटु व्यंग्य है। अज्ञेय की 'शिशिर की राका निशा,' 'नदी के द्वीप,' 'हरी घास पर क्षण भर' आदि इसी श्रेणी के प्रयोग हैं। आजकल की प्रयोगवादी काव्य रचनाएँ इसी वर्ग में आती हैं।

इससे सिद्ध है कि विषय, वस्तु एवं शैली की दृष्टि से मुक्तक कई रूपों में विकसित हुआ है, जिनका प्राचीन परंपरा से कोई संबंध नहीं है तथा वर्तमान काल में अनेक कवियों में प्रचलित हो जाने से यह नई परंपरा के रूप में विकसित हुआ है।

प्रगीत काव्य—आलोच्यकाल के प्रगीत काव्य में रूप की दृष्टि से नए-नए प्रयोग हुए हैं जिनकी परंपराएँ स्थापित हो गई हैं, उनका नीचे उल्लेख किया जाता है—

(१) व्यंग्य गीति—नाथूराम शंकर ने ऐसे अनेक गीत बनाए हैं, जिनमें सामाजिक, धार्मिक रीति-नीतियों पर व्यंग्य हैं। 'दिवाली नहीं दिवाला है,' गीत में समाज की दुर्दशा, ढोंग, पाखंड एवं अज्ञान पर छींटे कसे गए हैं। जिस समाज में सज्जनों का अपमान और दुष्टों की प्रतिष्ठा हो, वहाँ दिवाली का दिवाला ही निकला समझना चाहिए। 'सलूने की आल्हा,' 'आर्य समाज की आल्हा,' 'पंच पुकार,' 'कजली कलाप' व्यंग्योक्तियों में शंकर ने व्यंग्य, विनोद एवं हास्य का सफल प्रयोग किया है।

प्रगतिवादी प्रगीत-काव्य में कटु-तिक्त व्यंग्यों का सफल प्रयोग हुआ है। इनका लक्ष्य है, शोषक वर्ग। इस व्यंग्य में हास्य, विनोद बिलकुल नहीं। इसके पीछे क्रोध, प्रतिशोध की अग्नि के स्फुल्लिंग हैं। यह व्यग्य क्रान्ति के पार्श्वों को छूता हुआ चलता है सुमन के गीतों में क्रान्ति की आग है। निराला की व्यंग्य-गीतियों में वैविध्य मिलता है। उनके 'कुक्कुरमुत्ता' में शोषक वर्ग के प्रति सजीव व्यंग्य है। 'नए पत्ते' की अनेक रचनाओं में व्यंग्य का सफल प्रयोग हुआ है।

दिनकर के व्यंग्य अत्यंत मर्मस्पर्शी हैं। इनका डंक बहुत तीखा है। 'हिमालय के प्रति' कविता में व्यंग्य बड़ा मार्मिक है। 'हाहाकार,' 'दिल्ली' तथा

'कस्मै देवाय,' 'वन फूलों की ओर' आदि रचनाओं में व्यंग्य बड़ा सटीक है। उनका प्रहार अन्तस्तल पर चोट करता है।

नरेन्द्र की 'बबूल,' 'रूढ़िवाद,' 'कवि के प्रति,' भगवतीचरण की 'भैंसा गाड़ी' आदि गीतियों का व्यंग्य बड़ा मार्मिक है। रांगेयराघव, उदयशंकर, अंचल, बच्चन, भारती, रामविलास, प्रभाकरमाचवे आदि इस युग के श्रेष्ठ व्यंग्यकार हैं। इन कवियों ने प्राचीन रूढ़ियों, आदर्शों और मर्यादाओं पर भी कठोर व्यंग्यों की वर्षा की है। सामाजिक समस्याओं पर सुधार की भावना से किए हुए व्यंग्य भी हैं। प्रगतिवादी गीति-काव्य ने पूंजीवाद, शोषण, आडम्बर, झूठी लीडरी और अन्य सामाजिक एवं आर्थिक विषमताओं को अपने व्यंग्य का लक्ष्य बनाया है। पन्त की 'ग्राम्या' में मृदु व्यंग्य है।

प्रगतिवादी काव्य में व्यंग्य-गीतों का प्राचुर्य है। सामाजिक, राजनीतिक, अव्यवस्था, आर्थिक विषमता, धार्मिक आडम्बर, ढोंग, पाखंड एवं प्रवंचना को इन गीतों में व्यंग्य का लक्ष्य बनाया गया है। छायावादी काव्य में व्यंग्य-गीतियों का सर्वथा अभाव है।

(२) शोक-गीत (एलेजी)—इनमें शोक के उद्‌गार प्रकट होते हैं। दिवंगत आत्माओं, महापुरुषों, मित्रों एवं प्रेमियों के लिए शोक-गीत प्रस्तुत किए जाते हैं। 'शंकर' ने 'हाय मिस्टर गोखले' 'स्वामी दयानन्द सरस्वती' और 'गणपति-प्रयाण' आदि रचनाओं में इन महापुरुषों की मृत्यु पर शोक के उद्‌गार प्रकट किए हैं। आधुनिक युग में अमर शहीद श्रद्धेय गणेश शंकर विद्यार्थी की स्मृति में अनेक शोक-गीतियां रची गई हैं, जिनके भाव अत्यंत हृदय-द्रावक हैं। रांगेय राघव की ऐसी ही रचना अत्यंत मर्मस्पर्शी है। सुमन की 'हा प्रसाद' शोक-गीत है, जिसमें छायावाद के सुप्रसिद्ध कवि जयशंकर प्रसाद के दिवंगत हो जाने पर शोक प्रकट किया गया है। 'सैनिक की मृत्यु-शैया पर' गीत में उदय-शंकर भट्ट ने भारत-माता की स्वतंत्रता के रक्षक एक सैनिक के प्रति शोक के मार्मिक उद्‌गार प्रकट किये हैं। भट्टजी ने बेलजियम के युद्ध में मारे हुए एक भारतीय सैनिक की मृत्यु पर जो शोक-गीति लिखी है, उसमें एक घायल सिपाही के विषय में मनोवैज्ञानिक चिन्तन है। 'तिलांजलि' और 'सरोज-स्मृति' निराला जी की शोक-गीतियां हैं। पहली आर० यस० पंडित को लक्ष्य कर लिखी गई है और दूसरी छोटी बालिका के प्रति। 'बापू' को लक्ष्य कर बहुत सी शोक-गीतियां की रचना की गई हैं।

'आंसूवाद' और 'दुःखवाद' प्रचलित युग के दो और विषय बहुत अधिक प्रसिद्ध हैं। प्रसाद का 'आंसू' काव्य अत्यंत प्रसिद्ध शोक-गीति है। आंसू

में शोक की व्यंजना मर्मस्पर्शी है। इसमें अतीत के संयोग-सुख की विषादमयी अनुभूतियां रह रह कर झलक मारती हैं। ये आंसू लोक-पीड़ा पर करुणा के आंसू ही जान पड़ते हैं। इसमें आदि से अन्त तक वेदना के विविध रूपों की मार्मिक विवृत्ति है। इसी प्रकार पन्त के 'आंसू' और 'ग्रन्थि' में भी पीड़ा का राज्य है। 'ग्रन्थि' में प्रणय की स्मृति निराशा और विषाद में परिणत हो गई है, जिसने इसे शोक-गीति का रूप प्रदान किया है। महादेवी के गीत भी शोक से आविल हैं। उनमें प्रिय के चिर विरह के भावोद्गार हैं।

(३) सम्बोध गीति (ओड)—प्रसाद की 'किरण', 'वसन्त,' 'दीप', 'विषाद', 'विन्दु', 'अरी वरुणा की शान्त कछार' कविताएं, पन्त की 'अन्धकार के प्रति', 'छाया', 'शिशु', 'अनंग', 'विहग बाला के प्रति', 'सन्ध्या', 'शुक्र', 'चांदनी', 'निर्झरी,' 'अप्सरा', 'मधुकरी' आदि कविताएं, निराला की 'सन्ध्या सुन्दरी', 'जूही की कली', 'यमुना के प्रति', 'ठूंठ', 'खंडहर से', 'उद्बोधन', 'वासन्ती', 'भिक्षुक', 'शेफालिका' आदि, रामकुमार की 'ये गजरे तारों वाले', 'चट्टान', 'फूलोंवाली', 'नूरजहां' आदि, उदयशंकर भट्ट की 'दीप कहता अंधेरे से', 'पूछती मझधार कवि से', 'विजयिनी यह वरदान' आदि, हरिकृष्ण प्रेमी की 'बन्धन-मुक्त', 'पंछी की पीड़ा' आदि दिनकर की 'हिमालय के प्रति', 'रास की मुरली', 'दिल्ली', 'गगन का चांद' 'आदि आदि सुन्दर संबोध गीतियां हैं।

इनके अन्तर्गत एक अन्य रूप भी मिलता है, जिसमें आत्म-कथा की शैली अपनाई जाती है। सुमित्रानन्दन पन्त की 'बादल', 'जुगनू', 'विहग गीत' आदि इसी श्रेणी में आती हैं। पन्त की 'बादल' बहुत प्रसिद्ध रचना है। इसमें अलंकृत भाषा और कल्पनाओं की विभूति का सौन्दर्य है। गुरुभक्त सिंह की 'ओस' भी ऐसी ही गीति है। सुभद्राकुमारी, रायकृष्णदास और सियाराम-शरण के गीतों में इस रूप का अच्छा विकास हुआ है।

इसमें एक तीसरा रूप और है जिसमें वीणावादिनि सरस्वती की वन्दना के गीत हैं। निराला, उदयशंकर आदि कवियों के सरस्वती-वन्दना के गीत अत्यंत भावपूर्ण हैं।

इस प्रकार संबोद्ध-गीतियों में हृदय के भावों, विचारों, चित्रों और कल्पनाओं की उद्भावना की जाती है। इसमें कवि किसी प्राकृतिक पदार्थ भौतिक वस्तु, अमूर्त उपादान एवं दृश्य के प्रति भी अपने भावोद्गार प्रकट कर सकता है। आधुनिक हिन्दी काव्य में इस प्रकार की गीतियों की एक स्वस्थ परंपरा है।

(४) राष्ट्रीय गीति—अनेक कवियों ने अपनी कविताओं में राष्ट्र प्रेम का समुज्ज्वल रूप चित्रित किया है। स्वदेशाभिमान, स्वदेश प्रेम, भारतभूमि के प्राकृतिक सौन्दर्य को चित्रित करते हुए अनेक राष्ट्रगीतों की भी रचना हुई है। बंकिम बाबू को 'सुजनां सुफलां शस्य श्यामलं' 'सबसे अधिक लोकप्रिय गीति है। नेपाली की 'भारत माता' गुप्त जी की 'भारत माता', पन्त की 'ज्योति भारत', राष्ट्र गान', निराला की 'दिल्ली', सोहनलाल द्विवेदी की 'वन्दना', दिनकर की अरुणोदय आदि रचनाएं प्रसिद्ध राष्ट्रीय गीत हैं। पन्त की 'ग्राम', 'श्री' भी इसी श्रेणी में आती हैं। चन्द्रगुप्त नाटक में कार्नेलिया द्वारा गाया हुआ गीत छायावाद की राष्ट्रीय प्रवृत्ति का परिचायक है[१]। प्रसाद जी का 'अभियान गीत' अति प्रसिद्ध है। इसमें राष्ट्रीय गौरव की भावना अत्यंत ओजपूर्ण है। इसकी शालीनता मोहक है[२]। 'भारतवर्ष' गीत में आत्माभिमान, जातीय गौरव, एवं सांस्कृतिक प्रेम की झलक मारती है। सोहनलाल द्विवेदी, उदयशंकर भट्ट, दिनकर आदि अन्य कवियों ने भी इस प्रकार के गीतों की रचना की है। निराला ने राष्ट्रीय प्रभाती के रूप में एक 'उद्‌बोधन गीति' की रचना की है जिसमें छायावादी कोमलता एवं चित्रोपमता के साथ ही देशवासियों के लिए जागरण का संदेश है।

ज्ञान और रहस्य की खोज में हिमालय के अपरास्त उच्चतम शिखर पर आरोहण करने वाले वीरों की प्रशस्ति में श्री रामइकबाल सिंह 'राकेश' का 'हिमालय अभियान' गीत है।

राष्ट्रीय गीतों का एक अन्य रूप है जिसमें जाति, वर्ग और सम्प्रदाय की भावनाओं के आधार पर गीतों का सृजन हुआ है। प्रगतिशील कवियों के अनेक गीत इसी श्रेणी में आते हैं। स्वातंत्र्य वीर सुभाष बाबू की आजाद हिन्द सेना को लक्ष्य कर 'एक गीत जयहिन्द' में नरेंद्र ने जयहिन्द के स्वर में भारतीय

१—अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।
—प्रसाद

२—हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती—
अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो
प्रशस्त पुण्य पन्थ है, बढ़े चलो बढ़े चलो॥
—प्रसाद

स्वातंत्र्य का गौरव गान किया है। इनकी 'जागरण-नयन-जावा' गीत में भारत, चीन, जापान, जावा-समस्त एशिया की सामूहिक चेतना के जागरण का उद्‌घोष है। इनकी 'प्रभात फेरी', 'रुढ़िवाद', 'रुद्र रूप भारत', दिनकर की 'जनतंत्र का जन्म', 'पंचतिक्त', 'लोहे के पेड़ हरे होंगे', 'हाहाकार', पन्त की 'उद्‌बोधन', 'पतझर,' 'संस्कृति का प्रश्न', 'भारत' माता', रांगेय राघव की 'साम्राज्यवाद के प्रति', 'भस्मनाद', 'राष्ट्र की पुकार', 'तड़कती बेड़ियां', 'अमर गीत', 'जलते दाग', 'तूफान गरजता है,' अंचल की 'आह्वान 'आदि आदि गीतियों में साम्यवादी प्रजातंत्र की भावना अभिव्यक्त हुई है। ये गीत वर्ग चेतना, संघर्ष एवं साम्यवाद का स्वर ऊँचा करते हैं।

राष्ट्रीय गीतों का एक तीसरा रूप वह है जिसमें किसान, मजदूर, आदि शोषित-पीड़ित वर्ग के प्रति सहानुभूति, शोषक वर्ग के प्रति विद्रोह, रूस, लाल सेना, मास्को का यशोगान, हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के भावों की सजग अभिव्यक्ति है। बंगाल के अकाल पर भी प्रगतिशील कवियों ने प्रभूत काव्य-गीतों की रचना की है। इसमें पीड़ित मानवता के प्रति संवेदना एवं शोषक वर्ग के प्रति तथा चोर बजार के व्यापारियों के प्रति उत्कट घृणा प्रदर्शित की गई है। वर्गवादी चेतना को लेकर गीतों की सृष्टि करने वाले कवियों में निराला, पन्त, उदयशंकर भट्ट, दिनकर, नरेंद्र, अंचल, सुमन, रांगेय राघव आदि गीतकारों के नाम मुख्य हैं। वीरेंद्र मिश्र, रमानाथ अवस्थी ने भी इस परंपरा के विकास में योग दिया है।

इस प्रकार दो महायुद्धों के बीच की हिन्दी-कविता में राष्ट्रीय स्वतंत्रता का आन्दोलन पूर्ण वेग से प्रचलित रहने के कारण समाज और साहित्य पर भी इसका गहरा प्रभाव पड़ा है। फलतः इस काल में राष्ट्रीय गीतों का सृजन प्रचुर परिमाण में हुआ है।

(५) विचारात्मक गीति—'सुख-दुःख' कविता में पन्त का कवि सुख-दुःख की आँख-मिचौनी में जीवन की पूर्णता का दर्शन करता है।[१] 'तप रे मधुर मधुर मन, सागर की लहर लहर में' आदि गुंजन की गीतियों में कवि के जीवन संबंधी विचारों की अभिव्यक्ति है। स्वर्ण धूलि की 'आर्षवाणी' के वैदिक मंत्रों के आधार पर रचित गीतों में दार्शनिक तत्व-विचार है। 'बापू के प्रति,'

१—सुख दुःख के मधुर मिलन से, यह जीवन हो परिपूरन,
फिर घन में ओझल हो शशि, फिर शशि से ओझल हो घन।'
—गुंजन, पन्त

'मानव,' 'सृष्टि,' 'परिवर्तन' आदि रचनाएं विचारात्मक गीतों की श्रेणी में ही हैं। स्वर्ण-किरण की कविताओं में चिन्तन प्रधान है।

विचारात्मक गीतों का दूसरा रूप है, प्रगतिशील कवियों द्वारा प्रस्तुत साम्यवादी दर्शन। इन गीतों में मार्क्स-दर्शन पर आधारित गीत हैं। पन्त की युगवाणी, नरेंद्र की प्रभातफेरी, रांगेय राघव की 'पिघलते पत्थर,' दिनकर की धूप और धुआं की अनेक रचनाएं इसी विचार धारा से प्रभावित हैं।

तीसरा रूप वह है जिसमें उपदेशात्मक गीत आते हैं। ये गीत कबीर, सूर और तुलसी के गीतों से बिलकुल भिन्न हैं। इनमें धार्मिकता की छाप नहीं है। ये गीत उद्बोधन, आश्वासन, मंगल कामना, जागरण के भावों से ओतप्रोत हैं। पन्त का कवि कुसुमों के जीवन से प्रसन्न रहने का आदेश ग्रहण करता है[1]। 'उद्बोधन' शीर्षक निराला की कविता में जगत् के दैन्य, दारिद्र्य को दूर कर सत्य के उज्ज्वल प्रकाश के अवशिष्ट रहने की कामना है। 'शंखनाद' कविता में सियारामशरण सदा शिव से ऐसी हुङ्कार भरने की प्रार्थना करते हैं, जिसे सुनकर उन्मत्तों का मद दूर हो जाय।

इस प्रकार विचारात्मक गीतियों का प्रचुरता से सृजन हुआ है। इनमें अधिकतर जीवन संबन्धी सुख-दुःख हर्ष-विषाद की काव्यात्मक मीमांसा की गई है।

(६) पत्र-गीति—अंगरेजी के प्रसिद्ध समालोचक हडसन के अनुसार पत्र-रचना गीति-काव्य के अंतर्गत आती है। बंगला के महाकवि माइकेल मधुसूदन दत्त की 'वीरांगना' के अनुकरण पर हिन्दी में भी पत्र-गीत लिखे गए। मैथिलीशरण गुप्त की 'पत्रावली' इसी प्रकार की रचना है। इसमें सात पत्र-गीतियां हैं। जयसिंह के नाम 'महाराज शिवाजी का पत्र' निराला जी की रचना है। 'ठंडा लोहा' में दो पत्र धर्मवीर भारती की पत्र-गीतियां हैं। पहले पत्र में प्रेयसी का पत्र पढ़कर कवि का प्रेमी हृदय हर्ष से नाच उठा है तथा दूसरे पत्र में प्रेमी के लिये प्रेमिका का उत्तर है। दोनों पत्रों में प्रेम की रसात्मक अभिव्यक्ति है तथा वर्णनात्मकता की अपेक्षा भावात्मक तत्व की प्रधानता है। अत्यंत आधुनिक कवियों में गजानन और नीरज ने कुछ पत्र-गीतियां लिखी हैं। नीरज की 'एक मित्र के प्रति' कानपुर के नाम, नील की बेटी के नाम, काश्मीर

१—वन की सूनी डाली पर, सीखा कलि ने मुसकाना,
मैं सीख न पाया अब तक, सुख से दुख को अपनाना।
—गुंजन, पन्त

के नाम तथा कल्पना के नाम, नीरज की पाती, अत्यन्त सुन्दर, भावपूर्ण एवं प्रभावोत्पादक पत्र गीतियां हैं। ये प्रायः सभी काल्पनिक हैं, जिनमें वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन की अनुभूतियों की मार्मिक-व्यंजना है।

मैथिलीशरण गुप्त और निराला की पत्र-गीतियां ऐतिहासिक आधार पर रचित वर्णनात्मक गीतियां हैं। इनमें गीति-तत्व का भी अभाव है। किन्तु भारती, गजानन और नीरज की पत्र-गीतियों में भावों की सजलता, भाषा की व्यंजकता एवं कल्पना की सरलता अत्यन्त सुन्दर हैं।

इससे स्पष्ट है कि साहित्य में पत्र-गीतियों के विकास की दिशा में अच्छी प्रगति है तथा आशा की जाती है कि वर्तमान काल के ये स्फुटिक प्रयत्न भविष्य में एक स्वस्थ परंपरा के रूप में विकसित होंगे।

(७) लोक-गीति—लोक-गीतों की ध्वनियों में रचनाएं करने की परम्परा के निर्माण में आजकल अनेक कवि योग दे रहे हैं। वीरेन्द्र मिश्र, माचवे, रमानाथ अवस्थी, जानकी वल्लभ, शम्भूनाथ सिंह, ठाकुर प्रसाद सिंह, हंसकुमार तिवारी आदि अनेक कवियों के गीतों में रोमानी भावना के दर्शन मिलते हैं। इनमें रंग-योजना और नये उपमानों का प्रयोग शम्भूनाथ सिंह के गीतों में सबसे अधिक मिलता है। गीतों को बोलचाल की चलताऊ भाषा और लोक-ध्वनियों में प्रस्तुत करने के प्रयोग वीरेन्द्र मिश्र के गीतों में अधिक हैं। भवानीप्रसाद मिश्र की 'पी के फूटे आज प्यार के पानी बरसा री', अज्ञेय की 'ओ पिया पानी बरसा, छिटक रही है चाँदनी' आदि रचनाओं में लोक-गीतों का स्वर है।

जातीय जीवन और जन-संस्कृति से सामग्री लेकर लोक-गीतों की रचना की जाती है। जन-जीवन का भावोल्लास लोक-गीतों के रूप में फूट पड़ता है। इसी से इनमें जन जीवन के हृदय का स्पन्दन पाया जाता है।

साहित्यिक गीत लोक-गीतों के ही परिमार्जित रूप होते हैं। इनमें लोक-सामान्य भावों का उद्‌गार होने से इनके द्वारा गायक और श्रोता का आसानी से तादात्म्य हो जाता है क्योंकि इनमें साधारणीकरण का तत्व विशेष रूप से होता है। ये गीत प्रायः पर्व, उत्सव एवं प्रेम के उल्लास में गाए जाते हैं। आधुनिक काल में पं० रामनरेश त्रिपाठी और देवेन्द्र सत्यार्थी ने लोक-गीतों का संग्रह कर साहित्य भंडार की अतुल श्रीवृद्धि की है।

(८) चित्रपट-गीत—आजकल सिनेमा गीतों का अधिक प्रचार है। वाद्य-यंत्रों की विविध ध्वनियों तथा कंठ की विचित्र माधुरी से ये गीत जनता का मनोरंजन कर रहे हैं जिससे आकृष्ट होकर अनेक कवि सिनेमा के गीतों की ध्वनियों से अपने गीतों को सजा रहे हैं।

चित्रपट के गीत काव्य के रचनाकारों में भगवतीचरण वर्मा, नरेंद्र, प्रदीप, गोपाल सिंह नैपाली, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, नीलकंठ तिवारी, भरत व्यास प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त अनेक नये कलाकार चित्रपट के गीतों की मोहिनी से आकर्षित होकर नये गीतों की सृष्टि में लगे हुए हैं। इन गीतों में प्रेम, वासना और सस्ती भावना का प्रदर्शन अधिक रहता है। साहित्य में स्थान पाने योग्य अच्छे गीतों की आवश्यकता अभी बनी हुई है। इनका पद-विन्यास शिथिल, भाषा गद्यात्म तथा भाव-व्यंजना प्रायः अश्लील होती है किन्तु ये सब दुर्बलताएं लय, संगीत एवं स्वरों के आरोह-अवरोह में छिपी रहती हैं। अभी ये साहित्य के प्रगीत काव्य की मर्यादा से बाहर जा रहे हैं। कला में औचित्य का विचार स्पृहणीय है।

विवेचन—छायावादी-रहस्यवादी गीतों में कोमल भावनाओं एवं रम्य कल्पनाओं का समावेश है क्योंकि ये कवि अपने भावों की प्रेरणा प्राकृतिक सौन्दर्य तथा चराचर में व्याप्त परोक्ष सत्ता से ग्रहण करते हैं। इनके भाव-गीतों में जिस अव्यक्त प्रिय के प्रति आत्म-निवेदन है, वह साम्प्रदायिक रूढ़िवाद से परे की वस्तु है। ये कवि स्थूल सौन्दर्य की अपेक्षा अन्तःसौन्दर्य के चितेरे हैं। इनके गीतों में आत्माभिव्यक्ति का सौन्दर्य शत-शत रूपों में खिल उठा है। भाषा की प्रांजलता, कोमल पद-शैया, भाव-सुषमा, संगीत की मधुरिमा, अनुभूति की एकतानता एवं सुकुमार कल्पनाओं ने इनके गीतों को अभिनव सौन्दर्य से मंडित कर दिया है। इन गीतों में अन्तर्वृत्तियों का सूक्ष्म चित्रण अत्यंत सुन्दर है।

छायावाद-रहस्यवाद के कोमल स्निग्ध अंचल में जिन मधुर गीतों की सृष्टि हुई है, उनको विषय-वस्तु के विचार से पांच भागों में बाँटा जा सकता है—

(१) प्रकृति संबंधी गीत
(२) जीवन-मीमांसा संबन्धी गीत
(३) आध्यात्मिक विरह-मिलन के गीत
(४) गांधीवाद से प्रभावित राष्ट्रीय गीत
(५) लौकिक प्रेम गीत।

छायावाद-रहस्यवाद की सूक्ष्म वायवी कल्पनाओं की प्रतिक्रिया में प्रगतिवाद आया। प्रगतिवादी-दर्शन जीवन के सामाजिक यथार्थ एवं भौतिकवाद को लेकर चला है। इसके लिए कविता जीवन-सापेक्ष है। भौतिक जीवन की स्थूल आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आर्थिक व्यवस्था का यथोचित विभाग उचित है। प्रगतिवादी कवियों का जीवन-दर्शन अर्थ-काम पर केंद्रित है। दलित

वर्ग के प्रति सहानुभूति एवं पूंजीवादी, साम्राज्यवादी, शोषक वर्ग के प्रति विद्रोह को भावना का स्वर इनके गीतों में प्रधान हो गया है।

छायावाद और प्रगतिवाद दोनों जीवन के दो पक्षों-वाह्य और आभ्यन्तर को-लेकर चलते हैं। छायावादी गीतों में कोमल एवं सूक्ष्म अन्तर्वृत्तियों का तथा प्रगतिवादी गीतों में कठोर एवं वाह्य वृत्तियों का चित्रण रहता है। छायावाद की प्रवृत्ति सौमनस्य की ओर है, प्रगतिवाद की वैमनस्य की ओर। छायावाद में कोमलता एवं शालीनता है, प्रगतिवाद में उग्रता एवं परुषता। छायावाद एकान्त साधना में विश्वास करता है, प्रगतिवाद सामूहिक विद्रोह-भावना में। एक में कष्ट-सहिष्णुता है दूसरे में असहिष्णुता। एक में भावों की मन्द-मदिर गति है दूसरे में भावों का प्रखर वेग। पहले में लय, स्वर और संगीत का स्वरस्य है, दूसरे में संगीत का भैरव निनाद। पहले में आशा, आकांक्षा, प्रेम एवं उच्छ्वासों की फुलझड़ियां हैं, दूसरे में विद्रोह, उत्क्रान्ति, संघर्ष एवं प्रलय के स्फुल्लिंग। छायावाद आदर्श की ओर देखता है, प्रगतिवाद भौतिक यथार्थ की ओर। छायावादी गीतों में एक विशेष सूक्ष्मता, व्यंजकता, सांकेतिकता एवं आत्म-समर्पण है, प्रगतिवाद के गीतों में नग्नता, अश्लीलता एवं निरावरण मांसलता। सामाजिक रूढ़िवाद के प्रति विद्रोह को भावना भी इसमें मुखर है।

प्रगतिवादी गीतों के विषय हैं :

(१) दलित वर्ग के प्रति सहानुभूति तथा शोषक वर्ग के प्रति विद्रोह की भावना।
(२) रूस, लाल सेना, मास्को का गौरव मान।
(३) स्वच्छन्द प्रेम।
(४) हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य।
(५) रूढ़िवाद और पुरातनता का विरोध।

इस प्रकार आधुनिक युग के गीति-काव्य में अंग्रेजी लीरिक के सब गुण पाये जाते हैं। ये संक्षिप्त एवं लघु होते हैं, प्रत्येक गीत में एक ही कोमल हृदयोच्छ्वास होता है, आत्माभिव्यंजन की प्रधानता होती है, भाषा में लाक्षणिकता, व्यंजकता, वैचित्र्य एवं नूतन भंगिमाओं का सौन्दर्य होता है, गेयात्मक तत्व प्रचुरता से होता है तथा व्यक्तिगत जीवन की हास-अश्रुमय सुकुमार वृत्तियों का चित्रण होता है।

इस प्रकार आलोच्यकालीन गीतकारों ने अपना नूतन पथ प्रशस्त किया है। इनमें प्राचीन गीतों की समस्त रूढ़ि, परंपरा एवं मर्यादाओं का अभाव हो

गया है। ये गीत भाषा, विषय-वस्तु, भाव-प्रकाशन की शैली एवं कलात्मक रूप में प्राचीन काल के गीतों से सर्वथा भिन्न हैं। प्राचीन और नवीन युग के गीति-काव्य में वस्तु और शिल्प का महान् अन्तर है।

निष्कर्ष यह कि आलोच्यकाल के प्रगीत काव्य में एक सर्वथा स्वतंत्र परंपरा का विकास हुआ है जिसकी अभिव्यक्ति दर्जनों गीतकारों के स्वरों में मिलती है। किन्तु वर्तमान काल में थोड़े से ही कवि इस ओर उन्मुख हैं। प्रयोग-वादी रचनाओं में गीति-तत्व अल्प हैं।

अन्य काव्य का रूप—अन्य काव्य रूपों में गीति-नाट्य, एकालाप (मोनोलाग), संलाप (डायलाग) एवं चम्पू काव्य आते हैं।

(१) **गीति-नाट्य**—आलोच्यकाल में गीति-नाट्यों का भी सृजन हुआ है। साधारण नाटकों में पात्रों का वार्तालाप गद्य में होता है, अन्य समस्त क्रिया-कलापों का गद्य में ही वर्णन होता है किन्तु गीति-नाट्य में इसके विपरीत पात्रों का वार्तालाप तथा अन्य बातों का वर्णन गीतियों में होता है। यही दोनों का स्थूल भेद हैं।

गीति-नाट्यों की कथा-वस्तु बहुत सीधी-सादी होती है। इसमें कथा-तत्व गौण होता है। भाव—तत्व का प्राधान्य होता है। इसके सीमित कलेवर में प्रायः हृदय की सुकुमार एवं कोमल वृत्तियों का ही प्रकाशन होता है। जीवन के सूक्ष्म एवं सरल व्यापारों को भावों की व्यंजना द्वारा मूर्त रूप देने का प्रयास किया जाता है। इसमें जीवन के कटु-क्रूर एवं भयानक कार्यों के लिए अवकाश नहीं होता। घटना एवं व्यापारों के अभाव की पूर्ति भाव-विलास के द्वारा की जाती है।

साधारण नाटकों में घात-प्रतिघात, क्रिया-प्रतिक्रिया, उत्थान-पतन कार्य एवं व्यापारों की जटिलता प्रधान होती है क्योंकि उसकी शैली वस्तुपरक होती है। गीति-नाट्य में आत्माभिव्यंजन का तत्व अधिक मात्रा में होता है। इसके पात्र मानसिक चिन्तन में डूबे रहते हैं। शारीरिक व्यापारों की अपेक्षा इसमें मानसिक व्यापारों का अधिक चित्रण होता है। इसी से इन्हें भाव-नाट्य कहना अधिक उपयुक्त है।

गीति-नाट्य में पात्रों का कार्य-क्षेत्र वाह्य जगत् से अधिक अन्तर्जगत होता है। इनके संघर्ष वस्तु जगत् के न होकर मनोराज्य के होते हैं। जीवन की किसी एक परिस्थिति को लेकर पात्रों के मनोजगत् में उठने वाले अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण करना ही गीत-नाट्यकार का मुख्य उद्देश्य होता है। नाटकीय

संवादों की गीतमय भावाभिव्यक्ति के कारण इन्हें रूपक काव्य भी कहा जा सकता है।

(१) हिन्दी में जिस प्रकार अमित्राक्षर काव्य के प्रथम प्रयोग-कर्त्ता प्रसाद जी हैं उसी प्रकार गीति-नाट्य के भी। उनका 'करुणालय' प्रथम गीति-नाट्य है जो मार्च १९१३ के इन्दु में प्रकाशित हुआ था। इसमें अतुकान्त मात्रिक छन्द हैं, जिसके विराम-चिह्न वाक्यानुसार चरण के मध्य में पड़ते हैं। इसकी कथा करुण रस पूर्ण है। बीच-बीच में प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन अत्यंत आकर्षक हैं।

(२) सुमित्रानन्दन पन्त ने इस प्रकार के अनेक काव्य रूपकों की रचना की है। युग पथ में 'त्रिवेणी' इसी प्रकार की रचना है। इसमें तीन पात्र हैं—गंगा, यमुना और सरस्वती। स्वर्णधूलि में 'मानसी' एक सुन्दर रूपक काव्य है, जिसमें गीत, वाद्य, वेश-विन्यास आदि सभी नाटकीय तत्वों की योजना है। 'रजत-शिखर में छः काव्य रूपक हैं–रजत शिखर, फूलों का देश, उत्तर शती, शुभ्र पुरुष, विद्युत् वसना और शरद् चेतना। 'रजत शिखर' के सभी रूपक-सौष्ठव, संवाद योजना एवं वस्तु-विन्यास की दृष्टि से अत्यंत सफल हैं। इन सभी में पन्त जी के रचना-कौशल की प्रतिभा झलकती है। निराला के 'परिमल' में 'पंचवटी प्रसंग' काव्य रूपक है, जिसमें सीता, राम, लक्ष्मण, शूपनखा आदि पात्रों की योजना की गई है। उदयशंकर भट्ट ने विश्वमित्र, राधा, मत्स्यगन्धा और एकला चलो रे रूपक-काव्यों की रचना की है। ये रूपक विषय-वस्तु, गीत, संवाद एवं भावोत्कर्ष की दृष्टि से पूर्ण सफल हैं। गिरिजाकुमार माथुर के धूप के धान में 'इन्दुमती' एक सुन्दर रूपक काव्य है जिसमें सुनन्दा, इन्दुमती आदि पात्र हैं। मैथिलीशरण गुप्त के भी कई नाट्य काव्य हैं जिनमें अनघ, जयिनी, दिगेदास, पृथिवी पुत्र प्रसिद्ध हैं। भगवतीचरण वर्मा का 'तारा' गीति-नाट्य है। यह इनके 'मधुकण' नामक काव्य-संग्रह में संगृहीत है।

(२) **संलाप-काव्य**—इसमें दो ही पात्र होते हैं। धर्मवीर भारती के ठंडा लोहा काव्य में 'दो आवाजें' और 'अनजान पगध्वनियाँ' इसी कोटि की रचनाएं हैं। देवराज 'दिनेश', गिरिजाकुमार माथुर ने भी संलाप काव्य लिखे हैं।

(३) **एकालाप**—ये भी वर्तमान काल में लिखे गए हैं। इस दिशा में अज्ञेय तथा गिरिजाकुमार माथुर नये-नये प्रयोग करने में संलग्न हैं।

(४) **चम्पू काव्य**—गद्य-पद्यमयी काव्य-रचना को चम्पू कहते हैं। हिन्दी में मैथिलीशरण गुप्त की 'यशोधरा' इसी प्रकार की रचना है। कवि ने भावमय

गीत, एवं गद्यात्मक संवादों की योजना करके हिन्दी काव्य-क्षेत्र में एक अनूठी रचना प्रस्तुत की है। अज्ञेय की 'चिन्ता' भी इस प्रकार का नूतन प्रयोग है।

(५) एकार्थ काव्य—इसमें न तो महाकाव्य की पंचसंधियों का विधान होता है, न उनका विस्तार ही, वरं इसमें कथा का कोई उद्दिष्ट पक्ष होता है। इसमें कथा-प्रवाह भी वहुत जटिल नहीं होता और कवि की वृत्ति वर्णन करने या भाव-व्यंजना करने पर ही केंद्रित रहती है, यथा—गंगावतरण (रत्नाकर), जगदालोक (गोपालशरण सिंह), कुणाल (सोहनलाल द्विवेदी)।

ऊपर जिन काव्य रूपों का उल्लेख हुआ है वे हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र में काव्य-विकास के नये पग-चिन्ह हैं। पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव से हिन्दी में इनका आगमन हुआ है। आधुनिक कवियों की रचना-शैली पर अंगरेजी साहित्य का प्रभाव अधिक है। अतएव पाश्चात्य साहित्य से प्रभावित होकर ही कवियों ने हिन्दी कविता में नये-नये प्रयोग आरम्भ किये हैं। इसमें नाट्य काव्य का प्रयोग सबसे अधिक सफल हुआ है। पन्त के रूपकों की कथा-वस्तु राष्ट्रीय-सांस्कृतिक है। भट्ट जी तथा गुप्त जी के नाट्य काव्यों का भी यही विषय है। भारती और गिरिजाकुमार के कथानकों का स्वर बिलकुल नवीन है। शैली की दृष्टि से इसमें गीतात्मक तत्व प्रधान है। पन्त जी तथा भट्ट जी के रूपक गेय होने से आकाश-वाणी से भी प्रसारित हो चुके हैं। वर्तमान कविता में यह काव्य रूप सबसे अधिक सफल हुआ है। इसी से इसकी नवीन परंपरा विकसित हो चली है। आजकल के तरुण कवि इस ओर बहुत प्रयत्नशील हैं। देवराज 'दिनेश' उदय-शंकर भट्ट आदि कवियों का प्रयत्न स्तुत्य है।

एकालाप और संलाप काव्य-रूपों के भी कुछ नये प्रयोग हुए हैं किन्तु दो-एक कवियों ने ही इस ओर ध्यान दिया है। भारती, गिरिजाकुमार, अज्ञेय आदि इस ओर प्रयत्नशील हैं।

चम्पू काव्य बहुत थोड़े लिखे गए हैं। मैथिलीशरण और अज्ञेय ने ही इस ओर रुचि दिखलाई है। 'यशोधरा' और 'चिन्ता' दोनों ही चम्पू के सफल प्रयोग हैं। रचना, शैली, शिल्प और काव्योत्कर्ष की दृष्टि से ये दोनों ही सुन्दर काव्य हैं।

वर्तमान काल के कवियों की काव्य-चेतना नये-नये काव्य रूपों के निर्माण में लगी हुई है। नई पीढ़ी के कवि काव्य-क्षेत्र में नये-नये प्रयोगों में संलग्न हैं। प्रबन्ध, मुक्तक एवं प्रगीत काव्य के सृजन में तो नए-नए रूपों के दर्शन मिलते ही हैं अन्यान्य काव्य रूपों का भी समीचीन विकास हुआ है।

इनकी सफलता इसी से सिद्ध है कि इनमें से अधिकांश प्रयोग नवीन परंपरा का रूप धारण कर चुके हैं। नई पीढ़ी के शत प्रतिशत कवि काव्य रूपों के नये प्रयोगों की ओर सचेष्ट हैं। प्रगीत मुक्तकों की सृष्टि आलोच्यकाल की सबसे बड़ी विशेषता है। इस दिशा में शत-प्रतिशत कवियों का योगदान है। इसमें संदेह नहीं कि गीतों की समृद्धि ने आधुनिक हिन्दी-काव्य को महान् गौरव प्रदान किया है।

—:०:—

दशम् अध्याय

काव्य-शैली में प्रयोग

दशम् अध्याय

काव्य-शैली में प्रयोग

अलंकारों के प्रयोग

जब से नये युग का प्रवर्तन हुआ है, तब से हिन्दी कविता में अलंकार-विषयक कतिपय नई प्रवृत्तियां दिखाई पड़ने लगी हैं। अंगरेजी, बंगला एवं उर्दू कविता के अध्ययन से नये रंग के अलंकार हिन्दी में चल पड़े हैं। इसके अतिरिक्त श्रेष्ठ कवियों की प्रतिभा के कारण भी कुछ नये अप्रस्तुतों की सृष्टि हुई है। काव्य-शैली के क्षेत्र में सदैव नये-नये प्रयोग होते रहते हैं। इसकी कोई सीमा नहीं है। व्युत्पत्ति की सामर्थ्य से प्रतिभावान् कवि नये-नये अलंकारों के प्रयोग करते रहते हैं। इसलिए आचार्य दण्डी ने कहा है कि काव्य के सौन्दर्य-कारक विशिष्ट गुणों को अलंकार कहते हैं। आज भी कवि लोग कल्पना के बल पर अलंकारों में विविध प्रकार की उद्भावनाएं कर रहे हैं, अतः उनका पूर्ण रूप से वर्णन करने में कौन समर्थ हो सकता है?[1]

अलंकार काव्य-शैली के सबसे अधिक रोचक अंग हैं। हर एक प्रतिभावान् कवि का अलंकार-शैलियों के प्रयोग में अवश्य ही कुछ न कुछ नूतन योगदान रहता है। यहां प्रयोग से तात्पर्य केवल इतना है कि जो अलंकार जीवन की नई परिस्थितियों तथा प्रवृत्तियों से उगे हैं अथवा किसी वाद-विशिष्ट के अन्तर्गत कवि-कल्पना से उद्भूत हैं, उन्हीं का यहां अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है। मानवीकरण, विशेषण विपर्यय, एवं नूतन अप्रस्तुत योजना की दृष्टि से यहां अलंकारों पर विचार किया जाता है—

(१) मानवीकरण

यह अंगरेजी का पर्सानिफिकेशन है। इसके अन्तर्गत अचेतन पदार्थ या वस्तु पर मानवीय धर्म का आरोप किया जाता है। आधुनिक युग की कविता में इसका सबसे अधिक प्रचलन देखा जाता है। मुक्तक, गीत एवं प्रबन्ध सभी प्रकार के काव्यों में इसका प्रचार-प्रसार पाया जाता है। इसके मूल में सर्वात्मवादी दर्शन तथा व्यक्तिवादी मानव का स्वर प्रधान है। छायावादी—रहस्यवादी कवि इसी भाव से प्रेरित हुए हैं। यों तो मानवीकरण की प्रवृत्ति हिन्दी साहित्य

1—देखिए दंडी : काव्यादर्श, २।१

के लिए अपरिचित नहीं हैं, किन्तु आधुनिक कविता में इस प्रवृत्ति का विकास अंग्रेजी साहित्य के परिणाम-स्वरूप हुआ है—

"उठ-उठ री लघु लोल लहर,
इस सूखे तट पर छहर-छहर"

—प्रसाद

"दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह सन्ध्या सुन्दरी परी सी
धीरे धीरे धीरे।"

—निराला

"हम नदी के द्वीप हैं
"हम नहीं कहते कि हमको छोड़कर स्रोतस्विनी वह जाय।"

—अज्ञेय

प्राकृतिक वस्तुओं के अतिरिक्त आधुनिक काव्य में मनोवृत्तियों को भी सजीवता प्रदान करके उन्हें मूर्तरूप दिया गया है। कामायनी में चिन्ता, वासना, लज्जा आदि सभी पात्रों का मानवीकरण हुआ है। रांगेयराघव के 'मेधावी' काव्य में वैज्ञानिक विकासवाद के आधार पर ऋतु, धरणी, उषा, सूर्य एवं निम्न मध्यवर्ग, पूंजीवाद, फासिस्टवाद, जनशक्ति आदि विषयों को मानवीकृत रूप में चित्रित किया गया है।

उदाहरण स्वरूप फासिस्टवाद का नृत्य है—

"मैं क्रुद्ध विभीषण नाच रहा,
लो कुचल दिये हैं देश-देश।"[१]

(२) विशेषण विपर्यय

यह अंग्रेजी का ट्रान्सफर्ड एपिथेट अलंकार है। हिन्दी की दृष्टि से इसे लाक्षणिक प्रयोग कहा जा सकता है, किन्तु अंग्रेजी में यह एक अलंकार के रूप में स्वीकृत है। छायावादी काव्य में इसका प्रचुरता से प्रयोग हुआ है—इसमें विशेषण का लक्ष्यार्थ ग्रहण किया जाता है—

(१) आह, यह मेरा गीला गान।

—पंत

१—रांगेय राघव : मेधावी, पृ० २२६।

(२) इस करुणा कलित हृदय में क्यों विकल रागिनी बजती ।
—प्रसाद

(३) सकूंगी कैसे स्वयं संभाल,
तरंगित यौवन का रसवाह !
ग्रन्थि के ढीले कर सब बन्ध
नाचने को आकुल है चाह ।
—दिनकर

प्रथम पंक्ति में 'गीलागान' में गान गीला नहीं होता है । गीले वस्त्रादि हुआ करते हैं । गीला शब्द में लक्षण है । इसका लक्ष्यार्थ है करुण अथवा वेदनायुक्त । दूसरी पंक्ति में 'विकल' रागिनी का विशेषण है । किन्तु विकलता चेतन-प्राणी का धर्म है, रागिनी का नहीं । तीसरी पंक्ति में 'तरंगित' होना जल प्रवाह का धर्म है किन्तु यहां यौवन का विशेषण है, जिसका लक्ष्यार्थ है, उल्लास-पूर्ण । एवं 'आकुल चाह' में 'चाह' आकुल नहीं हो सकती, क्योंकि आकुल होना हृदय का धर्म है । यहां इसका लक्ष्यार्थ है, उत्कट । ये सब विशेषण विपर्यय के उदाहरण हैं, जिनके प्रयोग से कविता में अनूठा चमत्कार आ गया है ।

(३) मूर्त के लिए अमूर्त का प्रयोग

मूर्त उपमेय के लिए अमूर्त उपमान प्रयुक्त करने की प्रवृत्ति भी आधुनिक कविता की एक विशेषता है । छायावादी कवियों में इसका प्राचुर्य है–

(१) मादकता से आये तुम, संज्ञा से चले गए थे — प्रसाद
(२) बिखरी अलकें ज्यों तर्क जाल — प्रसाद
(३) धीरे-धीरे संशय से उठ, बढ़ अपयश से शीघ्र अछोर ।
नभ के उर में उमड़ मोह से, फैल लालसा से निशि भोर ॥
—पन्त ।

पहली पंक्ति में 'मादकता' और 'संज्ञा' दोनों अमूर्त उपमान हैं, जो 'प्रिय' के लिए आये हैं । दूसरी पंक्ति में इड़ा की अलकों का वर्णन है । इसमें उपमेय-भूत मूर्त अलकों के लिये अमूर्त उपमान 'तर्क जाल' का प्रयोग हुआ है । तीसरे बन्ध में बादल उपमेय है जिसके उठने, बढ़ने, उमड़ने और फैलने के लिये क्रमशः संशय, अपयश, मोह और लालसा जैसे अमूर्त उपमान रखे गये हैं ।

(४) अमूर्त के लिए मूर्त का प्रयोग

इसी प्रकार अमूर्त उपमेय के लिए मूर्त उपमानों को रखने का भी बहुत अधिक प्रचार हुआ है–

(१) तेरे भ्रू भंगों में कैसे बिंधवा दूं निज मृग-सा मन ? —पंत

(२) प्रेम की मधुझील के तट पर मिले हम आज फिर। —अंचल

(३) जल उठा स्नेह दीपक-सा नवनीत हृदय था मेरा—प्रसाद

पहली पंक्ति में मन के लिए 'मृग' दूसरी पंक्ति में प्रेम के लिए 'मधु झील' और तीसरी पंक्ति में स्नेह के लिए 'दीपक' के उपमान हैं।

(५) अंगी के लिए अंग का प्रयोग

इसमें प्रधान, सक्रिय एवं प्रसिद्ध अंग के कथन द्वारा अंगी या अप्रस्तुत का बोध करा दिया जाता है। यह अंगरेजी के सिनेक्डोच से मिलता जुलता अलंकार है—

(१) कब्र कब्र में अबुध बालकों की भूखी हड्डी रोती है। —दिनकर

(२) किन्तु सामने एक भिखारी का फैला कर क्यों रोता है ?

—रांगेय राघव

(३) होठ में सो गये शब्द—शमशेर

(४) खलिहानों में जहां मचा करता है हाहाकार कुपारी—दिनकर।

उपर्युक्त उद्धरणों में हड्डी, कर, होठ और खलिहान के कथन द्वारा क्रमशः शरीर, व्यक्ति, मुख और कृषक-भूमि से तात्पर्य है। इनमें अंगी या अवयवी के लिए उसके अंगों या अवयव द्वारा पूर्ण का बोध कराया गया है।

(६) विशेष के लिए सामान्य का प्रयोग

कितनी मणियां लुट गईं ! मिटा कितनी मेरा वैभव अशेष
तू ध्यान मग्न हो रहा, इधर वीरान हुआ प्यारा स्वदेश।

—दिनकर

इस पद्य में 'मणियां' और 'वैभव' सामान्य शब्दों से 'कोहनूर' और मयूर सिंहासन (तख्त ताऊस) आदि विशेष पदार्थों की ओर संकेत है।

(७) सामान्य के लिए विशेष का प्रयोग

(१) कितनी द्रुपदा के बाल खुले दिनकर

(२) दुश्मन के बममार फाड़ते
युग-युग के अरमान
एक साथ दम तोड़ रहे हैं
रामू औ रहमान
बापू...जिन्ना...। रांगेय राघव

पहली पंक्ति में 'द्रुपदा' से तात्पर्य भारतीय देवियां और दूसरे बन्ध में

'रामू रहमान' हिन्दू-मुसलमान के लिए आए हैं। इसी प्रकार बापू...जिन्ना... भी। ये विशेष अप्रस्तुत सामान्य के व्यंजक हैं।

(८) जातिवाचक के लिए भाववाचक का प्रयोग

(१) ज्ञान अपने खोल दोनों हाथ
मांगता था भीख हो निरुपाय।

—रांगेय राघव

(२) कराह, आह का धुंवा, हरेक सांस घुट रही—भगवतीचरण

प्रथम पंक्ति में ज्ञान से अभिप्राय ज्ञानवान व्यक्ति से है और द्वितीय पंक्ति में सांस का प्रयोग पीड़ित मानव के लिए हुआ है।

(९) भाववाचक के लिए जातिवाचक का प्रयोग

(१) फिर वह एक हिलोर उठी—शमशेर

(२) प्राण में अब भी वही फुंकार भरता नाग—दिनकर

(३) लंगड़े को पांव और लूले को हाथ दे—भवानीप्रसाद

पहली पंक्ति में हिलोर, दूसरी में नाग और तीसरी में हाथ-पांव शब्दों के प्रयोग क्रमशः उत्तेजना, अहंकार और सहायता के लिए हुए हैं।

(१०) गुणवाचक पदार्थ के स्थान पर उसके गुण का प्रयोग

व्यक्त नील में चल प्रकाश का कंपन सुख बन जाता था। —प्रसाद

इसमें 'नील' आकाश का गुण है और 'प्रकाश' चन्द्र-किरण का। अतएव ये 'नील' और 'प्रकाश' दोनों शब्द क्रमशः आकाश और चन्द्र-किरण के व्यंजक हैं।

(११) प्रभाव-साम्य के आधार पर अप्रस्तुतों का प्रयोग

इनमें बाहरी सादृश्य या साधर्म्य अत्यन्त अल्प या बिलकुल नहीं होता है। केवल आभ्यन्तर प्रभाव को लेकर ही अप्रस्तुत-योजना की जाती है। आधुनिक काव्य में ऐसे ही प्रयोगों का बाहुल्य है।

(१) नवोढ़ा बाल-लहर
अचानक उपकूलों के
प्रसूनों के ढिग रुककर
सरकती है सत्वर। —पन्त

इसमें नवोढ़ा और बाल लहर में कोई साम्य नहीं है। स्वरूपतः कुछ भी सादृश्य नहीं है। रुक रुक कर सरकने की क्रिया का ही अल्प साधर्म्य है। नवोढ़ा जब पति के समीप जाती है, तब लज्जा से अभिभूत होने के कारण धीरे धीरे सरकती जाती है। इतने ही क्रिया-साम्य के आधार पर नवोढ़ा एवं बाल लहर में अध्यवसान किया गया है।

(२) बीत चली सूनी की सूनी, बुझे दीप-सी रातें काली
जाने किन महलों में छाये, सखी वियोगिन के बनवारी।

—गिरिजाकुमार

इसमें काली रातों के लिए बुझे दीपक को उपमान के रूप में लाया गया है। स्पष्टतः दोनों में कोई सादृश्य या साधर्म्य का आधार नहीं है। दीपक के बुझने पर सूना-सूना सा दिखाई पड़ता है। वियोगिनी के लिए भी काली रातें सूनी-सूनी सी दिखाई पड़ती हैं। दोनों में सूनेपन का ही साम्य है जिसके आधार पर काली रातों की बुझे दीपक से समता की गई है। छायावादी कवियों में यह प्रवृत्ति सबसे अधिक है।

(१२) प्रस्तुत-अप्रस्तुत का तादात्म्य

आधुनिक कवियों में अप्रस्तुत-विधान की प्रवृत्ति इतनी बलवती दिखाई पड़ती है कि जिसके कारण प्रस्तुत का ध्यान ही छूट जाता है। प्रस्तुत-अप्रस्तुत की एकात्मता के ऐसे उदाहरण पन्त, प्रसाद, निराला, महादेवी, रामकुमार आदि छायावादी कवियों में प्रचुरता से मिलते हैं।

विजन वन वल्लरी पर
सोती थी सुहाग-भरी-स्नेह-स्वप्न-मग्न-
अमल कोमल-तनु-तरुणी-जुही की कली,
दृग बन्द किये, शिथिल,—पत्रांक में
वासन्ती निशा थी,

—निराला

जुही की कली का वर्णन प्रस्तुत है तथा उस पर किसी अप्रस्तुत तरुणी का आरोप किया गया है। किन्तु अप्रस्तुत तरुणी के वर्णन की ओर कवि का इतना अधिक ध्यान चला गया है कि प्रस्तुत कली के दृग भी बन्द करा दिए हैं तथा नायक मलयानिल के द्वारा कपोल चुम्बन भी हुआ है। प्रस्तुत विषय अप्रस्तुत के द्वारा इतना अधिक दब गया है कि न तो इसे अप्रस्तुत प्रशंसा ही कह सकते हैं और न समासोक्ति ही। यहाँ प्रस्तुत-अप्रस्तुत दोनों मिश्रित हो गए हैं। दोनों के संकर के ऐसे उदाहरण पन्त की 'छाया' 'अप्सरी' 'निर्झरी' निराला की 'सन्ध्या सुन्दरी', 'यमुना के प्रति' प्रसाद की 'लज्जा' महादेवी की 'वसन्त-रजनी', 'रूपसि तेरा घन केश-पाश' रामकुमार वर्मा की 'ये गजरे तारों वाले', अज्ञेय की 'नदी के द्वीप' आदि विविध कविताओं में पाए जाते हैं।

(१३) प्रतीकात्मक उपमान

उपमा में उपमेय और उपमान की पृथकता दिखायी जाती है, किन्तु रूपक में दोनों का अभेद दिखाया जाता है। प्रतीकात्मक उपमान दोनों का स्थान ग्रहण कर लेता है।

ग्रास करने नौका स्वच्छन्द, घूमते फिरते जलचर वृन्द।
देखकर काला सिन्धु अनन्त, हो गया हा ! साहस का अन्त ॥

—महादेवी

इसमें 'नौका' 'जीवन' के लिए, 'जलचर वृन्द' 'सांसारिक कामादि दोषों के लिए और सिन्धु' संसार के लिए प्रतीक रूप में आए हैं। संसार समुद्र सा ही अनन्त एवं अगाध है ! कामादि विकार के समान जलचर वृन्द हैं क्योंकि ये उन्हीं के समान घातक हैं। नौका के सदृश जीवन भी संसार-सागर में तैरता रहता है। इन प्रतीकात्मक उपमानों ने भाव को सप्राण कर दिया है।

उषा का था उर में आवास, मुकुल का मुख में मृदुल विकास।
चाँदनी का स्वभाव में भास, विचारों में बच्चों के सांस ॥

—पन्त

इसमें उषा, मुकुल और चांदनी प्रतीकात्मक उपमान हैं। पवित्रता स्फूर्ति एवं उज्ज्वलता का प्रतीक उषा है, अबोधता, अस्फुटता, स्वच्छता का प्रतीक मुकुल है एवं शीतलता और मृदुलता का प्रतीक है, चांदनी। बच्चों के सांस से भोलेपन का भाव लिया गया है।

इनमें गुण या धर्म का उल्लेख न करके वस्तुओं का ही विधान किया गया है जो समान धर्म एवं गुण के कारण लाक्षणिक प्रतीक का काम करते हैं। इसमें 'उषा' शुद्ध प्रतीक है, शेष लाक्षणिक उपमान हैं।

"यह विशद जीवन कि जो आकाश सा
या कि निर्झर-सा चपल लघु तीव्र है।
क्या पूर्ण है ? क्या तृप्ति पाता शीघ्र है,
वह ग्रीष्म सा है या मदिर मधुमास-सा।"

—गजानन मुक्तिबोध

विशदता के कारण आकाश तथा चपलता के कारण निर्झर जीवन के प्रतीकात्मक उपमान है। ग्रीष्म-उदासी, नीरसता, शिथिलता, खिन्नता आदि का प्रतीक है, क्योंकि ये सब बातें ग्रीष्मकाल में अनुभूत होती हैं। उसके विपरीत वसन्त है। यह उल्लास, सरसता एवं स्फूर्ति का प्रतीक है। जीवन के लिए ये प्रतीकात्मक उपमान उसके रूप को प्रत्यक्ष रूप में रख देते हैं।

(१४) लाक्षणिक उपमान

आधुनिक कविता में अनेक स्थलों पर ऐसे प्रयोग मिलते हैं, जिनमें उपमानों का लाक्षणिक अर्थ ग्रहण किया गया है।

नखत की आशा किरण समान,
हृदय के कोमल कवि की कान्त—
कल्पना की लघु लहरी दिव्य
कर रही मानस हलचल शान्त

—प्रसाद

श्रद्धा का प्रथम बार दर्शन कर मनु का हृदय उत्फुल्ल हो जाता है और वे कहने लगते हैं कि तुम मेरे लिए तारिका के समान आशा की किरण हो। तुम्हारे दर्शन से मन की हलचल उसी प्रकार शान्त हो गई है जिस प्रकार किसी कोमल-हृदय कवि के मन को किसी सुन्दर पवित्र कल्पना की एक छोटी सी लहर के उठने से शान्ति मिलती है।

इसमें श्रद्धा को आशा की किरण के समान कहा गया है। किरण सूर्य से उत्पन्न होती है, आशा से नहीं। इसलिए लक्ष्यार्थ हुआ, आशा को जन्मदात्री। यह लाक्षणिक उपमान है। इसी प्रकार 'कल्पना की लघु लहरी' भी है। श्रद्धा को कल्पना की लहर कह कर उपमान का भावोत्कर्ष दिखाया गया है। भाव यह है कि तुम्हें देखकर हृदय में आशा का संचार हुआ है एवं शान्ति प्राप्त हुई है।

उठ-उठ री लघु लोल लहर
करुणा की नव अंगड़ाई सी, मलयानिल की परछाईं सी,
इस सूखे तट पर छहर-छहर।

—प्रसाद

मेरे शुष्क जीवन में सरस कोमल भावों का जागरण हो, 'लहर' और 'सूखे तट' का यही लाक्षणिक अर्थ है। दूसरी पंक्ति में 'लोल लहर' के दो उपमान हैं। करुणा की नव अंगड़ाई और मलयानिल की परछाईं, ये दोनों उपमान भी लाक्षणिक हैं। इनमें करुणा का उन्मेष होता है एवं शीतलता तथा सरसता का भाव व्यक्त होता है।

(१५) विरोधात्मक विशेषणमूलक उपमान

नवीन कविता के विरोधपूर्ण शब्दों में भी उपमानों का प्रयोग हुआ है। ये बड़े व्यंजनापूर्ण हैं। इनकी अप्रस्तुत योजना बड़ी सूक्ष्म एवं मार्मिक है। यह

विरोध प्रतीत-सा होता है, वस्तुतः होता नहीं। इसका परिहार होते ही भाव की व्यंजना स्फुट हो जाती है।

(१) अरी व्याधि की सूत्रधारिणी, अरी आधि, मधुमय अभिशाप।
हृदय गगन में धूमकेतु सी, पुण्य सृष्टि में सुन्दर पाप।
प्रसाद।

इसमें चिन्ता के लिए दो विरोधात्मक विशेषण मूल उपमान हैं—मधुमय अभिशाप और सुन्दर पाप। चिन्ता से मन व्याकुल रहता है, अतः उसे अभिशाप कहना उचित ही है, परन्तु मनुष्य चिन्ता से मुक्त भी नहीं होना चाहता है। यदि वह उससे मुक्त हो जाय तो लोक-जीवन में कोई सुख का विधान ही न करे। चिन्ता ही से जीवन में मधुरता आती है। इसी से वह मधुमय है। आत्मा आनंद-मय है। चिन्ता उस आनंद में व्याघात है। अतएव अवांछनीय होने के कारण वह पाप है, किन्तु वह सहज एवं अनिवार्य भी है, अतः सुन्दर है। इसी से उसे 'सुन्दर पाप' कहा है। इस विरोधमूलक उपमान-प्रदर्शन का भाव यह है कि अनिच्छित वस्तु को भी लाभदायक समझकर जैसे ग्रहण कर लिया जाता है, वैसे ही दुःखदायिनी को भी 'मधुमय' और 'सुन्दर' समझ कर ग्रहण किया जाता है।

(२) नयन में जिसके जलद वह तृषित चातक हूँ,
शलभ जिसके प्राण में वह निठुर दीपक हूँ।
फूल को उर में छिपाये विकल बुलबुल हूँ,
एक होकर दूर तन से छांह वह चल हूँ।
दूर तुमसे हूँ, अखंड सुहागिनी भी हूँ,
बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।

—महादेवी।

इसमें आत्म-निवेदन का भाव है। तृषित चातक, विकल बुलबुल, चंचल छांह, अखंड सुहागिनी—सब विशेषण मूल विरोधात्मक उपमान हैं। जलद के रहते चातक के तृषित होने में विरोध है। पर वस्तुतः विरोध नहीं है, क्योंकि अश्रुपूर्ण नेत्रों को जलद कहने से विरह व्यंजित होता है। तृषित विशेषण है। भाव यह है कि तुम्हारे दर्शनों के लिए तृषित नेत्र निरंतर आँसू ढालते रहते हैं। इसी प्रकार निठुर, विकल, चल, अखंड आदि शब्द क्रमशः दीपक, बुलबुल, छांह और सुहागिनी के विशेषण हैं तथा हर एक उपमान में विरोध का भाव प्रदर्शित किया गया है, जिससे भावोत्कर्ष में सहायता मिलती है।

(१६) आत्म विषयक रूपक

रूपक में प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत का तादात्म्य होता है, किन्तु आत्म विषयक रूपक में कवि अपने को ही प्रस्तुत के रूप में रखता है तथा अप्रस्तुत के साथ एकरूपता कर लेता है—

> मैं बनी मधुमास आली।
> आज मधुर विषाद की घिर करुण आई यामिनी,
> बरस सुधि के इन्दु से छिटकी पुलक की चांदनी।
> उमड़ आई री दृगों में सजनि कालिन्दी निराली।
>
> —महादेवी।

इसमें कवि ने आत्म को प्रस्तुत रूप में रखकर अप्रस्तुत मधुमास का अभेद आरोप किया है। 'मैं नीर भरी दुःख की बदली' 'मधुर मधुर मेरे दीपक जल' 'बीना भी हूं मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ आदि महादेवी के गीतों में रूपक का नया प्रयोग हुआ है।

हर एक युग के काव्य में शृंगार का प्राचुर्य पाया जाता है। शृंगारिक रचनाओं का केन्द्र स्त्री-सौदर्न्य का वर्णन है। स्त्री के अंग-प्रत्यंगों के लिए परम्परानुगत अप्रस्तुतों का ऊपर वर्णन किया जा चुका है।

आधुनिक युग की कविता में भी शृंगारिक रचनाओं का ही बाहुल्य है। नए युग की प्रवृत्ति के अनुकूल कवियों ने स्त्री-अंगों के लिए नये अप्रस्तुतों की उद्भावनाएं की हैं। ये परम्परानुगत काव्य के उपमानों से भिन्न हैं। नीचे इन्हीं का अध्ययन किया जाता है।

उपमेय	उपमान
स्त्री-शरीर	लवंगलता, सिरस, रत्न-दीप, स्वर्ण-प्रभा, चम्पा, बाजरे की कलंगी, बिछली घास।
अंग-सौन्दर्य	संगमरमर, जूही, सुधा-जलद, फूल, बहार, शरद, चांदनी, इन्द्र-धनुष, चंचला, पूर्णिमा, मदिरा, चांद, कुसुम-कली, गुलाब, नरगिस, कली, कचनार, सेब, उषा, कलिका, कल्पलता, स्वर्ग, दूज की कला।
तरुणी	अप्सरी, हँसिनी, ज्योत्स्ना, छुईमुई, तारिका, शशिकला, तितली, लहरी, मार्जारी, विहगी, मधुबाला।
मुख	मुकुल, कोका बेली

उपमेय	उपमान
मस्तक (सिर)	नारियल
नयन	सिन्धु, बादल, झील, व्योम, भ्रमर, प्याला, सरसी, यमुना, नीलम की प्याली, विहग।
मुसकान	छपी-सी, पी-सी, मुकुल, मोतिया, मधु-सरिता
चितवन	प्रात, सुरा,
दृष्टि	दीप
कपोल	गुलाब
अधर	अमृत मदिरा
कर्णफूल	मोगरा
पलक	यवनिका
श्वास	सुधा, केसर
उर (हृदय)	वीणा, तंत्री, तार, उषा, मंच, कमल, हीरा, नवनीत, पाटल,
अलक	नील रेशम, रजनी, नीलघन, फणिधर, हरसिंगार, रश्मितार।
हथेली	बन्धूक
उंगलियां	मदन-बाण
उरोज	ग्रंथियां
भाल	शशिखंड
बाहु	लहरी, चमेली की डाल, लता, मृणाल, चिकना चोड़।
होठ	मिश्री, पाटल, फीरोज, कोपल
प्राण	पिक
दसन	हीरक
कान	सीपी
जंघा	पावस की सरिता।
चरण	जावक, मोती
नख	नक्षत्र
एड़ी	दाड़िम
तलुए	गेंहुए, मकई से (लाल)

अप्रस्तुतों की दिशा में आधुनिक कवियों ने अत्यन्त विचित्र प्रयोग किए हैं, जिनका प्राचीन काव्य-परम्परा में कहीं भी दर्शन नहीं मिलता है। छायावादी कवियों की दृष्टि सदैव सौन्दर्य की ओर उन्मुख रहती है। इसलिए उनका अप्रस्तुत विधान अत्यन्त चित्ताकर्षक एवं श्लाघ्य है। किन्तु प्रगतिवादी कवियों ने अपने काव्य के माध्यम से एक नये जीवनदर्शन को उपस्थापित किया है। यह है सामाजिक यथार्थ। इसमें उनकी दृष्टि जीवन के स्थूल, भौतिक पक्ष की ओर रहती है। इस नग्न सत्य का उद्घाटन करने में वे इतने व्यस्त हो जाते हैं कि सौन्दर्य का ध्यान ही छूट जाता है। अतएव इनके काव्य में कोरा तथ्य-प्रदर्शन रह जाता है। किन्तु प्रयोगवादी कवियों का एक ऐसा वर्ग है, जिन्होंने वस्तु और शिल्प दोनों पर समान रूप से ध्यान दिया है। वस्तु पर ध्यान केन्द्रित हो जाने पर अलंकारों की आप से आप उपेक्षा हो जाती है। ऐसी दशा में वे अपनी वाणी को सिद्धान्ततः अलंकृत करना आवश्यक नहीं समझते—

'ज्योतित कर जन-मन के जीवन का अन्धकार
तुम खोल सको मानव-उर के निःशब्द द्वार
वाणी मेरी चाहिए तुम्हें क्या अलंकार !"

—पन्त

किन्तु कुछ कवियों के अलंकार-विधान में वैचित्र्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति सीमा का अतिक्रमण कर गई है।

(१) ज्यों घेर सकल संसार, कुण्डली मार
पड़ा हो अहि विशाल,
आक्रान्त धरा की छाती पर
गुम-सुम बैठा मध्याह्नकाल।

—नरेन्द्र

इसमें कवि ने जेठ के महीने के मध्याह्न का एक विशाल अजगर से साम्य दिखाया है। अमूर्त 'मध्याह्न काल' के लिए विशाल अहि' का मूर्त उपमान प्रस्तुत किया गया है। दोनों में 'गुम सुम' गुण का साम्य है। यहाँ उपमा है और अत्यन्त प्रभाववर्द्धक भी है। लाक्षणिक अप्रस्तुत तक तो बात ठीक है, किन्तु कुन्डलीमार कर पड़ने की क्रिया में सीमा का अतिक्रमण है। इसकी संगति नहीं बिठाई जा सकती। एक प्रयोगवादी कवि का संध्या का वर्णन कितना वैचित्र्यपूर्ण है।

(२) सोने की मेघ चील,

अपने चमकीले पंखों में ले अन्धकार अब बैठ गयी दिन अंडे पर।
नदी वधू की नथ का मोती चील ले गयी।
गगन नीड़ से सूरज ग्वाला हाँक रहा है दिन की गाएँ।
नभ का नीलापन चुप है दिशि के कन्धों पर सिर धर।
इस उतराई मार्ग दिवस के सैन्धव नत शिर होकर उतरे, सधे चरण से
चमक रही पीले बालों वाली अयाल उनके गर्दन की।
साँझ, दिवस की पत्नी, अपने नील महल में बैठी कात रही है बादल
दिशि की चारों कन्यायें हैं मांग रही तारों की गुड़ियां।

—नरेश कुमार

अलंकृत शैली में कवि ने सन्धया का वर्णन किया है। सुनहरी मेघ के लिए चील, दिन के लिए अंडे, नदी के लिए वधू, सूरज के लिए ग्वाला, दिन के लिए गाएँ, साँझ के लिए दिवस की पत्नी, दिशाओं के लिए कन्याएँ और तारों के लिए गुड़िया एक दम नये उपमान हैं। इसमें रूपक लक्षणा के आश्रित हैं। अलंकार भावोत्कर्ष में सहायक होते हैं। जहाँ वे उसमें सहायता नहीं करते, वहाँ मात्र कौतूहल उत्पन्न करते हैं। ऊपर की कविता में सन्ध्या का वर्णन इष्ट है, किन्तु कविता पढ़ने से वर्ण्य वस्तु का चित्र सामने नहीं आता है। अलंकारों का वैचित्र्य अवश्य कौतूहल को जगाता है।

अप्रस्तुत-विधान यदि प्रभाव-साम्य को लेकर चलता है, तो उसका अभीष्ट प्रभाव पड़ता है, अन्यथा नहीं।

कवि सौन्दर्य का प्रेमी होता है। अप्रस्तुत विधान द्वारा वह सुन्दर भावों को उद्‌बुद्ध करता है। अपरूप एवं घृणास्पद व्यापारों की योजना करने से वीभत्स रस की अवश्य उत्पत्ति होती है, किन्तु उचित स्थल पर ही उसका सन्निवेश होना चाहिए। आधुनिक प्रयोगवादी कवि अवांछित एवं वीभत्स व्यापारों की योजना करते हैं, जिससे कुरुचि उत्पन्न होती है—

'पूरब दिशि में हड्डी के रंग वाला बादल लेटा है, पेड़ों के ऊपर गगन खेत में दिन का श्वेत अश्व मार्ग के श्रम से थक कर मरा पड़ा ज्यों।'

नरेशकुमार।

बादल हड्डी के रंग वाला है तथा दिन श्वेत अश्व है जिसकी दिन भर की थकान के कारण मृत्यु हो गई है। गगन को श्वेत तथा दिन को श्वेत अश्व कहने में रूपक है। हड्डी के रंग के बादल ऐसे दिखाई पड़ते हैं जैसे श्वेत अश्व

मर गया हो। इसमें उपमा है। ऐसे अप्रस्तुत विधान से सुरुचि उत्पन्न नहीं हो सकती है, उल्टे काव्य को क्षति पहुँचती है।

(३) काव्य में व्रीड़ाजनक अप्रस्तुतों का प्रयोग अश्लीलत्व दोष के अन्तर्गत आता है। आजकल के कवि इसका बेधड़क प्रयोग करते हैं—

'और वह दृढ़ पैर मेरा है,
गुरु, स्थिर, स्थाणु सा गड़ा हुआ
तेरी प्राण-पीठिका पे लिंग-सा खड़ा हुआ।'

—अज्ञेय

इस पद्य में सर्वहारा वर्ग की शोषक के प्रति ललकार है। किन्तु भावावेश में औचित्य का विचार छूट गया है। इसीलिए 'पैर' के लिए स्थाणु सा कहने तक तो गनीमत थी, किन्तु 'लिंग-सा' कहने में शिष्ट मर्यादा की अवहेलना का दोष आ गया है।

(४) प्रगतिशील कविता में अभारतीय अप्रस्तुतों का भी विधान पाया जाता है। इससे अभीष्ट प्रभाव नहीं पड़ता है, क्योंकि विदेशीय उपमानों के साथ हृदय का रागात्मक संबंध नहीं हो पाता है—

'लाखों की अगणित संख्या में
ऊँचा गेहूं डटा खड़ा है
ताकत से मुष्ठी बांधे है
नोंकीले भाले ताने है
हिम्मतवाली लाल फौज सा
मर मिटने को झूम रह है।'

—केदार

इस पद्य में 'गेंहुओं' के लिए दो अप्रस्तुत लाये गए हैं। 'नुकीले भाले' और 'लाल फौज' पहले तक तो बात कुछ ठीक है, किन्तु 'लाल फौज' के साथ पाठक समझौता नहीं कर पाता। अतएव ऐसे उपमान प्रभावहीन हो जाते हैं।

(५) जीवन के विरूप, भद्दे एवं कुत्सित पक्ष को मूर्तिमान करनेवाले अप्रस्तुत ही प्रगतिवादी कविता में लाए जाते हैं—

उस ओर क्षितिज के कुछ आगे कुछ पांच कोस की दूरी पर
भू की छाती पर फोड़ों-से, हैं उठे हुए कुछ कच्चे घर।

—भगवतीचरण वर्मा

इसमें निर्धन व्यक्तियों के टूटे-फूटे कच्चे घरों के लिए 'फोड़ों' का अप्रस्तुत लाया गया है। इस उपमा से पाठक नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं।

(६) अन्तरराष्ट्रीय विषयों के लिए जो अप्रस्तुत लाए गए हैं, उनसे भी विनाश की भावना व्यक्त होती है—

यह दलितों की तीर्थभूमि है, युग का प्रबल तकाजा।
सर्व प्रथम साम्राज्यवाद का, निकला यही जनाजा।

—सुमन

इस पद्य में रूस देश को 'तीर्थभूमि' कह कर स्तुति की गई है और साम्राज्यवाद के लिए 'जनाजा' का अप्रस्तुत है। इससे रूस के लिए पक्षपात और साम्राज्यवाद के प्रति जुगुप्सा प्रकट होती है।

(७) लाक्षणिक उपमान भी मिलते हैं जो अभीष्ट प्रभाव डालने में सक्षम हैं—

'उग रही तलवार की फसलें
प्रलय अणुबम बरसता'

—सुमन

इसमें 'फसल' और 'प्रलय' दो अप्रस्तुत हैं। दोनों लाक्षणिक उपमान हैं। रूपक अत्यन्त सजीव हो उठा है।

(८) प्रगतिवादी काव्य जन-काव्य है। अतएव उसमें जन-जीवन के अप्रस्तुतों पर अधिक विचार रखा गया है—

सरग था ऊपर
नीचे पाताल था
अपच के मारे बहुत बुरा हाल था
दिल-दिमाग भुस का, खद्दर का खाल था।

—नागार्जुन।

कवि ने वर्तमान स्थिति को भुस के पुतले की तरह बताया है, जो जनता की रक्षा करने में समर्थ नहीं हैं।

(९) जीवन के मस्ती भरे हल्के पक्षको साकारता देने वाले उपमान भी पाये जाते हैं—

'हल्की मीठी चा-सा दिल
मीठी चुस्की-सी बातें'

—शमशेर

इस पंक्ति में 'दिल' के लिए 'चा' और 'बातों' के लिए 'चुस्की' के उपमान हैं जो अतियथार्थवादी आधुनिक सभ्यता के परिचायक हैं।

(१०) प्रगतिशील कवियों पर यांत्रिक सभ्यता का प्रभाव है। उनके अप्रस्तुत भी यांत्रिक हैं—

'दिन के बुखार
रात्रि की मृत्यु
के बाद हृदय पुंस्त्वहीन
अन्तर मनुष्य
रिक्त सा गेह
दो लालटेन से नयन दीन
निष्प्राण स्तंभ
दो खड़े पांव
लकड़ी का खोखा वक्ष रिक्त
मस्तिष्क तेल
की है मशीन
संसार-क्षेत्र है तेल-सिक्त।

—मुक्तिबोध

इस कविता में मनुष्य के पुंस्त्वहीन जड़ का चित्रण है। इसमें नये युग के अभिनव उपमान हैं। नेत्रों के लिए 'दो लालटेन' पावों के लिए 'स्तंभ' वक्ष के लिए 'लकड़ी का खोखा' मस्तिष्क के लिए 'तेल की मशीन' के उपमान लाए गए हैं। ये उपमान कौतूहलपूर्ण अवश्य हैं, पर इनमें मार्मिकता का अभाव है, क्योंकि इन अप्रस्तुतों के साथ पाठक के हृदय का साधारणीकरण नहीं होता है।

प्रगतिवादी कविता में वैचित्र्यपूर्ण' अश्लील एवं अकाव्योचित अप्रस्तुत विधान की कमी नहीं है। नये सामाजिक तत्व से उन्होंने जो नवीन जीवन-दृष्टि ग्रहण की है, उसी का प्रभाव उनकी कविता पर लक्षित होता है। इसी कारण शशि के लिए 'ढाल', असि', क्षितिज के लिए 'गंजी चांद', सामन्ती युग के लिए 'लोह-महल, जन जल के लिए 'भूकम्प' पीड़ित वर्ग के लिए 'कीड़े-मकोड़े, पौराणिक संस्कृति के लिए 'कछुआ, भाव-जगत के स्रष्टा कवि के लिए 'दर्जी, विविधता से संकुल जटिल जीवन के लिए 'रद्दी की टोकरी', कोयले की खान में काम करनेवाली मजदूरनी के लिए 'कालीरात' अप्रस्तुत के रूप में लाए गए हैं। ये उपमान नूतन प्रयोग भले ही हों, किन्तु इनमें सुरुचि का अभाव है तथा ये हृदय को स्पर्श करने में सर्वथा असमर्थ हैं। इनके द्वारा विरूपता, कटुता, उच्छृंखलता एवं अश्लीलता आदि दोष प्रकट होते हैं।

विवेचन

आलोच्यकालीन कविता में प्रारंभ से ही नये प्रयोगों का पूर्वाग्रह विद्यमान हैं। पल्लव की भूमिका में पन्त जी ने पुराने अलंकारों को 'दादुरावृत्ति' की ओर घोर अरुचि प्रदर्शित की है। पंत जी के विचारों में तत्कालीन युग की काव्य-प्रवृत्ति का पूर्ण परिचय मिल जाता है, क्योंकि उनके विचार परिवर्तित युग की जन-रुचि का प्रतिनिधित्व करते हैं। प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी, रामकुमार वर्मा, छायावाद-रहस्यवाद के प्रतिनिधि कवि हैं। इनके काव्य में पुराने पिष्टपेषित अलंकारों के स्थान पर अलंकारों को नये रूप में प्रयुक्त करने का आग्रह सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। इन कवियों के अलंकारविधान पर अंगरेजी के शैली, कीट्स, बायरन, वर्ड्सवर्थ, टेनीसन आदि का भी प्रभाव है और बहुत कुछ अंश में उनकी समर्थ प्रतिभा ने भी अप्रस्तुत-विधान के नये-नये स्तरों का अन्वेषण किया है। इनमें विशेषरण-विपर्यय, मानवीकरण तथा ध्वन्यर्थ व्यंजक अलंकारों के लिए तो अंगरेजी काव्य-पद्धति का अनुसरण किया गया है तथा उपमा, रूपक, अतिशयोक्ति आदि औपम्य-गर्भ अलंकारों के क्षेत्र में नये प्रयोगों को उनकी स्वस्थ काव्य चेतना ने स्वयं खोज निकाला है। किन्तु यह निश्चय है कि छायावादी-रहस्यवादी कविता की अलंकार योजना में सौन्दर्य के नाना पक्षों का सफल उद्घाटन हुआ है। उपमान एवं प्रतीकों की खोज के लिए कवियों की प्रतिभा ने अधिकतर प्राकृतिक क्षेत्रों का अनुसंधान किया है तथा सूक्ष्म, सुन्दर एवं रमणीय उपमानों की योजना सफलतापूर्वक की गई है। इसके अतिरिक्त लाक्षणिक एवं व्यंजक अप्रस्तुतों की सृष्टि करने में भी इन कवियों ने अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है। ऊपर दिए गए उदाहरणों से यह तथ्य भलीभाँति स्पष्ट हो जाता है।

प्रगतिवादी-प्रयोगवादी कवियों ने उपमानों का संग्रह प्रायः भौतिक जीवन के स्थूल, प्रचलित एवं व्यावहारिक क्षेत्र से किया है। अतः इनमें सरलता एवं मार्मिकता है। भगवतीचरण, नरेन्द्र, अंचल, बच्चन, सुमन के अलंकार-विधान में स्वाभाविकता, मार्मिकता तथा अर्थ-बोध की सुगमता मिलती है। किन्तु ऐसा सर्वत्र नहीं हैं। कहीं-कहीं आवेश और विद्रोह के स्वर में अश्लील, असुन्दर एवं कुत्सित उपमानों को भी प्रयुक्त किया गया है। तीसरे और पाँचवें संख्या के उदाहरणों से यही प्रकट होता है। इसके अतिरिक्त अज्ञेय, स्कूल के कवियों की उपमान-योजना में यौन-कुंठा का रूप भी निखर उठा है। अज्ञेय की 'सावन-मेघ' 'कलगी बाजरे की', तथा भारती के गुनाह के गीतों से इस तथ्य पर पूर्ण प्रकाश पड़ता है।

निष्कर्ष यह कि छायावादी-रहस्यवादी काव्य में नये अलंकारों का जो सौन्दर्य प्रस्फुटित हुआ है, वह उत्तरवर्ती काव्य में नहीं है। किन्तु उपमानों की दिशा में नये प्रयत्न स्तुत्य हैं, और वे जागरूक चेतना के परिचायक हैं। यद्यपि इनमें कुछ अनुचित एवं अनगढ़ रूप में प्रकट हुए हैं, तो भी ये नये भाव-बोध को जाग्रत करने में पूर्णरूप से सहायता करते हैं। मूलतः ये नई परिस्थिति से उत्पन्न हुए हैं तथा परिवर्तन की दिशा में ये कवियों की समर्थ कल्पना-शक्ति को प्रमाणित करते हैं।

———

प्रतीक

प्रतीकों का महत्व

यद्यपि आधुनिक काल में 'प्रतीकवाद' का उद्घोष नया है, तो भी इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्रतीकों की परम्परा उतनी ही प्राचीन है, जितनी मानव-संस्कृति।

भारतीय संस्कृति में धर्म का विशेष आदर है। साहित्य में भी धार्मिक संस्कृति पूर्णरूप से प्रतिबिम्बित हुई है। धार्मिक एवं आध्यात्मिक साहित्य में अनुभूति की प्रेषणीयता के लिए प्रतीकों का प्रयोग अनिवार्य सा हो जाता है क्योंकि प्रतीकों की सहायता से प्रस्तुत अर्थ को समझने में सरलता, सुबोधता, एवं रोचकता आ जाती है। अभिव्यक्ति को सुबोध बनाने के लिए सभी महा-कवियों ने इनका उपयोग किया है। हिन्दी के सिद्ध, सन्त, भक्ति-साहित्य में प्रतीकों का बाहुल्य है। साधक, सन्त एवं भक्त कवियों ने अपने आध्यात्मिक चिन्तन को सर्व-ग्राह्य बनाने के लिए अनेक प्रकार के प्रतीकों का सृजन किया है। ये प्रतीक दैनिक जीवन से लिए किये गए हैं। दूध दुहना, हल चलाना, आखेट करना, मथना, धुनना, मधूकरी मांगना, चर्खा कातना, वस्त्र बुनना, वस्त्र रंगना, मिट्टी गूंदना, बर्तन बनाना, माला गूंथना, कोल्हू चलाना, चाक घुमाना, हरट चलाना आदि आदि दैनिक जीवन से सम्बन्धित कार्य-व्यापारों के प्रतीकों द्वारा सिद्ध एवं सन्त कवियों ने आत्मज्ञान विषयक ऊँची से ऊँची और गहरी से गहरी बातें कह दी हैं।[1]

समाज और साहित्य के परिवर्तन के साथ प्रतीकों का महत्व और क्षेत्र भी घटता-बढ़ता रहता है। कुछ प्रतीक जन-चेतना के साथ-साथ चलते हैं, कुछ पीछे छूट जाते हैं, कुछ भावोत्कर्ष को प्राप्त करते हैं तथा कुछों के अर्थ की क्षति हो जाती है। सिंह, सूर्य, कमल आदि के प्रतीक समय के साथ चल रहे हैं, कल्पवृक्ष, कामधेनु, चिन्तामणि आदि प्रतीक जीवन से पिछड़ गए हैं, मिट्टी, पानी, आग के प्रतीकों का भावोत्कर्ष हुआ है, तथा महाजन ज्वाला और वर्ण आदि प्रतीकों की अर्थ-क्षति हुई है।

अभिव्यक्ति को सुन्दर, सुबोध एवं हृदय-ग्राही बनाने के लिए कवि-

---

१—देखिए, हिन्दी काव्य की प्रवृत्तियां, प्रतीकवाद, पृ० ६५।

परम्परा में अप्रस्तुत-योजना सदा से चली आ रही है। अभिव्यक्ति का सर्वोच्च साधन प्रतीक है। हिन्दी काव्य-परम्परा में आए हुए प्रतीकों में सबसे अधिक संख्या दाम्पत्य-जीवन के प्रतीकों की है। इनसे हिन्दी-साहित्य बहुत समृद्ध है। प्रतीक-योजना का चरमोत्कर्ष सन्त-साहित्य में हुआ है।

प्रतीकों में अचेतन मन का पूर्ण चित्र अन्तर्हित होता है। कभी इनमें दमित इच्छाओं की अभिव्यक्ति होती है और कभी इनके माध्यम से परम्परानुगत जातीय एवं सांस्कृतिक जीवन के आदर्शों का प्रतिबिम्बन होता है। जिस प्रकार बीज में सम्पूर्ण वृक्ष का विस्तार छिपा रहता है, उसी प्रकार प्रतीकों में आन्तरिक मन की सम्पूर्ण भाव-सृष्टि अन्तर्हित होती है। किसी कवि के प्रतीकों से उसके वैयक्तिक सौन्दर्य-बोध, अनुभूति, रुचि एवं जातीय संस्कार तथा सांस्कृतिक विश्वास एवं आदर्शों का अध्ययन किया जा सकता है।

प्रतीक का मनोविज्ञान

मनोविज्ञान शास्त्र में प्रतीकों पर एक भिन्न दृष्टि से विचार हुआ है। अचेतन मन में कुछ अतृप्त वासनाएं दबी पड़ी रहती हैं। ये प्रायः काम-वासना से सम्बन्धित होती हैं। वे प्रेममूलक इच्छाएं प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त होती हैं। अतएव प्रतीक अचेतन मन की दमित इच्छा एवं आकांक्षाओं के सांकेतिक चिह्न हैं। मानव के हृदय में जो कुछ गुप्त मनोविकार हैं वे प्रतीकों में सम्पूर्ण रूप से आकार ग्रहण कर लेते हैं। इस प्रकार प्रतीकों से आन्तरिक इच्छाओं की पूर्ण अभिव्यक्ति हो जाती है। इससे दो बातें सिद्ध होती हैं। पहली यह कि दमित इच्छाएं चित्रोपम रूप धारण करती हैं तथा दूसरी यह कि प्रच्छन्न वासनाओं को एक भिन्न प्रणाली द्वारा व्यक्त करने के लिए प्रतीक सबसे अच्छा माध्यम है। इस प्रकार प्रतीक छिपी हुई वासना का समग्र स्थानापन्न है। युंग की दृष्टि इससे भिन्न है। युंग का कहना है कि हर एक प्रतीक किसी न किसी मनोवैज्ञानिक नियम या सिद्धान्त को व्यक्त करता है तथा वह सिद्धान्त जीवन के लिए आदर्श-भूत होता है। युंग प्रतीक को मात्र स्थानापन्न नहीं मानते हैं, वे उसे भावना का लक्षक समझते हैं। वे कहते हैं—'मनोविज्ञान की हर एक चेष्टा या क्रिया प्रतीकात्मक होती है जबकि हम यह मान लेते हैं कि उससे किसी महान् प्रयोजन की अभिव्यक्ति होती है। यह प्रयोजन तात्कालिक बोध के लिए अगम्य होता है। जैसे ईसाई धर्म में क्रास का प्रतीक एक शारीरिक चिह्न का द्योतक है, किन्तु उसमें जो एक अज्ञात रहस्य की भावना अन्तर्निहित है, वह प्रतीकात्मक है[1]।'

१—सी० जी० युंग : साइकालाजिकल टाइप्स, चैप्टर ११, पृ० ६०२।

फ्रायड ने जो प्रतीक की व्याख्या दी है, उसमें काम-वृत्ति के प्रकाशन को अतिशय प्रधानता मिल गई है। फ्रायड के विचार से मनुष्य की चेष्टाएं और क्रियाएं मात्र उसकी यौन-वासना के प्रतीक-स्वरूप होती हैं। इनके द्वारा वह प्रच्छन्न रूप से अपनी दमित इच्छाओं की तृप्ति कर लेता है।

प्रतीक का संबंध केवल कामवासना से जोड़ना उचित नहीं है, क्योंकि मानव का चरित्र विविध वृत्तियों से संघटित हुआ है तथा काम-वृत्ति के सदृश आत्म-प्रकाशन की प्रवृत्ति भी उतनी ही महत्वपूर्ण है। अतः मानव-प्रवृत्तियों के भेद से प्रतीकों के भी अनेक भेद हैं—धार्मिक प्रतीक, नैतिक प्रतीक, शृंगारिक प्रतीक, आत्म-स्थापन के प्रतीक आदि। इस प्रकार भावानुभूति की विविधता से प्रतीकों के भी अनेक भेद हो जाते हैं। कला के प्रकाशन में ऐडलर ने मात्र-हीनता की भावना को ही स्वीकार किया है। इस सिद्धान्त के अनुसार जिस व्यक्ति में शारीरिक या आंगिक हीनता होती है, वह उसकी प्रकारान्तर से पूर्ति करता है। उस अभाव की पूर्ति के लिए वह सतत उद्योग करता रहता है तथा विशेषीकरण की ओर उन्मुख होता है। भावात्मक प्रतीक-विधान के मूल में ही वृत्तियाँ प्रधान रूप से क्रियाशील रहती हैं।

काव्य के प्रतीकों के अध्ययन के लिए पहले कवि की भाषा के अनुशीलन की आवश्यकता है। भाषा ही भावाभिव्यक्ति का साधन होती है। प्रतीकों में भावों का ही प्रतिबिम्बन होता है। ये अचेतन मन के व्यापारों को अविकल रूप से अभिव्यक्त करते हैं। किसी कवि के काव्यात्मक प्रतीकों के द्वार से उसके मनो-भवन की पूर्ण झांकी हो सकती है। छायावादी कवियों की प्रतीक-योजना अत्यन्त मनोरम एवं भावाभिव्यंजक होती है।

हो गया था पतझड़, मधुकाल,
पत्र तो आते हाय, नवल।
झड़ गए स्नेह-वृन्त से फूल,
लगा यह असमय कैसा फल॥

—उच्छ्वास—पन्त

इस छन्द में पतझड़, मधुकाल, पत्र, वृन्त, फूल, फल प्रतीक हैं। इसमें पतझड़ से वियोग, मधुकाल से संयोग, पत्र से प्रेमोदय, वृन्त से हृदय, फूल से सुख, असमय के फल से दुःख का भाव अभिप्रेत है। मधुऋतु में तरु की डाली पर नवांकुर छिटकते हैं, फिर नवीन किसलय दल, फिर फूल, तत्पश्चात् फल, किन्तु यह कैसा व्यतिक्रम। मधुकाल पतझड़ में परिवर्तित हो गया। इसमें मग्न

प्रेम की व्यंजना है। ये प्रतीत भावों की सशक्त व्यंजना करने में पूर्ण रूप से समर्थ हैं।

नवोढ़ा बाल लहर,
अचानक उपकूलों के।
प्रसूनों के ढिग रुक कर,
सरकती है सत्वर।

—आंसू—पन्त

इसमें 'बाल लहर' मुग्धा का प्रतीक है। मुग्धा पति के समीप जाते समय लज्जा के कारण ठिठक कर चलती है, कभी रुककर और कभी तेजी से। पन्त के छवि-चित्र बड़े मधुर एवं व्यंजक होते हैं।

रहस्यात्मक कविताओं में प्रेम के प्रतीकों का अधिक व्यवहार हुआ है—

स्नेहालिंगन की लतिकाओं की झुरमुट छा जाने दो।
जीवन धन! इस जले जगत को वृन्दावन बन जाने दो॥

—लहर—प्रसाद

इसमें झुरमुट, जले जगत और वृन्दावन क्रमशः निविड़ प्रेम, दुखी जीवन एवं सुख के आवास के प्रतीक हैं।

सौन्दर्य के प्रतीक भी अत्यन्त सुन्दर हैं—

ओ विभावरी।
चाँदनी का अंगराग,
माँग में सजा पराग
रश्मितार बाँध मृदुल
चिकुर भार री!

—महादेवी

विभावरी किसी अलौकिक सुन्दरी का प्रतीक है। अंगराग और चिकुर-जाल क्रमशः चांदनी और रश्मिजाल के प्रतीक हैं। इस सौन्दर्यमय प्रतीकविधान में अपार्थिव सौन्दर्य का चित्रण है।

छायावादी कवि जिन प्राकृतिक प्रतीकों को उपयोग में लाते हैं, उनसे किसी न किसी मानवीयभावना की अभिव्यक्ति होती है। ये प्रतीक आभ्यन्तर प्रभाव साम्य के आधार पर निर्मित हैं, जिससे यह काव्यशैली अत्यन्त समृद्ध है।

उषा, प्रभात, मधुकाल से क्रमशः सुख, आनन्द, प्रफुल्लता आदि भावों की व्यंजना होती है। इसी प्रकार शूल-फूल, अश्रु-हास के प्रतीकों से दुःख-सुख के भावों की अभिव्यक्ति होती है। कुन्द और रजत शुभ्र के, मधु माधुर्य का, स्वर्ण-दीप्ति या कान्ति का, अन्धकार या छाया अवसाद का, झंझा, तूफान मानसिक आकुलता या क्षोभ के, झंकार भाव-तरंग का, संगीत या मुरली का स्वर भाव-प्रवाह के प्रतीक हैं। छायावादी काव्य के प्रतीकों में लाक्षणिकता और अन्योक्ति पद्धति का ही विशेष रूप से आश्रय लिया गया है।

कवि की कला मात्र कल्पना ही नहीं है, उसमें जीवन का सत्य निहित होता है। प्रगतिवादी कवियों के प्रतीक-विधान में जीवन के यथार्थ का सजीव चित्रण पाया जाता है। पतझड़, तांडव, चट्टान, लालरंग, नई फसल आदि प्रतीक मानव-जीवन की दरिद्रता, परतंत्रता, विनाश, बाधा, क्रान्ति तथा नवजीवन के व्यंजक हैं। शोषक के स्थान पर जोंक, सर्वहारा के स्थान पर हड्डियाँ, दकियानूसी लोगों के स्थान पर मिट्टी के ढेले आदि प्रतीक व्यावहारिक जीवन की यथार्थता को प्रकाशित करते हैं। इनमें जीवन का कठोर सत्य व्यंजित होता है।

कवि वस्तु-जगत् में जिन फलों से वंचित रहता आया है, उन्हें वह काल्पनिक जगत में प्राप्त कर लेता है। काव्य में कवि की आत्मा का प्रतिबिम्ब झलकता है। देखने में कविता भले ही बाह्यार्थ निरूपक हो, वस्तुतः उसके प्रतीक अन्तर्वृत्ति निरूपक ही होते हैं। यह मनोविज्ञान का सिद्धान्त है कि कला में मानव-हृदय की आभ्यन्तर वृत्तियाँ ही प्रतीकों में रूपायित होती हैं।

किसी काल के प्रतीकों के अध्ययन से व्यक्तिगत अभिरुचि के साथ-साथ युगगत प्रभावों का भी अध्ययन किया जा सकता है। प्रतीक जहाँ एक ओर कवि के मानस को प्रत्यक्ष कराने में सहायता करते हैं, वहाँ दूसरी ओर ये कवि के हृदय पर पड़ने वाले युग-विशेष के संस्कारों के भी परिचायक होते हैं। प्रसिद्ध मनोविज्ञान शास्त्री युंग के अनुसार कला में युग की अभिव्यक्ति होती है। वास्तविक कला में हृदय के गंभीर एवं सार्वभौम विचारों का प्रकाशन होता है और इन भावों को व्यक्त करने वाले प्रतीक ही सार्थक हैं। वह कला निकृष्ट कोटि की है जिसमें मात्र कवि के व्यक्तिगत जीवन की कुंठाओं एवं दुर्बलताओं को ही अभिव्यक्ति होती है[1]।

१—डा० पद्मा अग्रवाल : सिम्बोलिज्म, ए साइकालाजीकल स्टडी, पृ० ११६

प्रगतिवादी कवियों की दृष्टि भविष्य के नव-निर्माण की ओर है। इन्हें प्राचीन रूढ़ियों तथा परम्पराओं में बिल्कुल विश्वास नहीं है। अतीत की संस्कृति इनके निकट जड़, अन्ध विश्वासपूर्ण एवं अगतिशील है। ये कवि मार्क्स-वादी आर्थिक व्यवस्था में पूर्ण विश्वास रखते हैं तथा समाज में प्रतिक्रियावादी तत्वों का उन्मूलन करना चाहते हैं। इसके लिए क्रान्ति अनिवार्य है। इनकी प्रतीक-पद्धति में क्रोध, जुगुप्सा, अमंगल, व्रीड़ा, विक्षोभ, आक्रोश तथा पुरातन प्रथाओं के प्रति विद्रोह का स्वर सहस्रधाराओं में फूट पड़ा है।[1] दिनकर, नरेन्द्र, सुमन, अंचल, केसरी, रांगेयराघव, भारती, रामविलास, माचवे, नरेशकुमार, गजानन, नागार्जुन के प्रतीकों में इसी प्रकार के भावों की व्यंजना मिलती है।

प्रतीक विधान की दृष्टि से आलोच्यकालीन काव्य बहुत सम्पन्न है। मनोविज्ञान दृष्टि से इस काल के प्रतीकों का विभाजन दो श्रेणियों में हो सकता है। (१) यौन-वासना सम्बन्धी प्रतीक तथा (२) सामाजिक यथार्थ सम्बन्धी प्रतीक। छायावादी काव्य के सौन्दर्यमय प्राकृतिक प्रतीकों में वैयक्तिक यौन-परिकल्पनाओं तथा परम्परानुगत नैतिक आदर्शों का प्रतिबिम्बन प्रधानता से हुआ है। पन्त के सौन्दर्य प्रतीक, प्रसाद के माधुर्य प्रतीक, निराला के सांस्कृतिक नैतिक प्रतीक एवं महादेवी के रहस्यात्मक प्रतीकों में वैयक्तिक भावनाओं तथा युग-युग के संस्कारों का समवेत स्वर है।[2] प्रगतिशील काव्य के प्रतीकों में यौन-कुंठाओं तथा सामाजिक मूल्यों का यथा तथ्य चित्रण है। इनमें एक ओर यौन-विकृतियों की निश्छल अभिव्यक्ति है और दूसरी ओर प्राचीन परम्परा, संस्कृति, आभिजात्य पूंजीवाद, साम्राज्यवाद के प्रति विद्रोह का स्वर है। इन प्रतीकों के लिए कल्पना ने भौतिक जीवन के पार्श्वों का ही स्पर्श किया। इसलिए इसमें मार्मिकता है।

प्राचीन हिन्दी-साहित्य की परम्परा में इस प्रकार के प्रतीकों का कभी व्यवहार नहीं हुआ है। न ये परम्परागत प्रतीकों के नये विकास के रूप में व्यवहृत हुए हैं। ये सर्वथा नये जीवन-बोध, नई परिस्थिति एवं नये सामाजिक सम्बन्धों की उपज हैं। लाक्षणिक एवं अन्योक्ति प्रधान प्रतीकों की एक विशाल सृष्टि छायावाद-रहस्यवाद युग में ही हो चुकी थी। प्रगतिवादी-प्रयोगवादी काव्यधारा में बिलकुल नये प्रकार के प्रतीकों का प्रयोग पाया जाता है। इनमें

१—देखिए परिशिष्ठ, पृ० ५५१।

२—देखिए, परिशिष्ठ, पृ० ५४८।

सामयिकता की छाप अधिक है तथा भौतिक जगत् के स्थूल पदार्थों से इनका संचयन हुआ है। नये प्रतीकों के निर्माण की ओर प्रायः शत-प्रतिशत कवियों की चेतना सजग है। इसी से नयी कविता प्रतीक-योजना की दृष्टि से बहुत समृद्ध है। किन्तु अतिशय बौद्धिकता के कारण इन प्रतीकों में अस्पष्टता है तथा रोचकता का अभाव है। किन्तु जो प्रतीक व्यावहारिक जीवन से चुने गए हैं, उनसे भाव-बोध में पूर्ण सहायता भी मिलती है।

भाषा

आलोच्यकाल के प्रारंभ से ही काव्य-भाषा का स्थान खड़ीबोली ग्रहण कर चुकी थी। अतएव सभी कवि इसी के माध्यम से अपने भावों को अभिव्यक्ति देने लगे। काव्य-भाषा के रूप में गृहीत हो जाने पर खड़ीबोली की स्वकीय परम्पराओं का विकास हुआ। उन्हीं का यहाँ अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इसके साथ-साथ ब्रजभाषा में भी आधुनिक काल में काव्य का सृजन हुआ है, जिसका पर्याप्त महत्व है; किन्तु यहाँ ब्रजभाषा की परम्पराओं का अध्ययन इष्ट नहीं है, अतएव उस पर विचार नहीं किया गया है। अवधी में भी कृष्णायन जैसे महाकाव्य का प्रणयन हुआ है, किन्तु विषय से बाहर होने के कारण उसको भी छोड़ दिया गया है। काव्य-साहित्य की प्रधान भाषा होने के कारण यहाँ केवल खड़ीबोली की परम्पराओं का ही अध्ययन किया जाता है। यहाँ भाषा से तात्पर्य साहित्यिक खड़ीबोली से है।

भाषा के विचार से आधुनिक काव्य-भाषा खड़ीबोली में प्रधान रूप से नीचे लिखे प्रयोग मिलते हैं—

१—सन्धि समासयुक्त संस्कृत गर्भित भाषा

२—साधारण बोलचाल की भाषा :—

उर्दू मिश्रित भाषा, व्रजभाषा

३—अंग्रेजी के शब्द तथा छायानुवाद

४—शब्द-शिल्प, नए शब्दों की रचना

५—लाक्षणिक पद-प्रयोग

६—लोकोक्ति एवं प्रोक्ति (मुहावरे) चमत्कार

७—द्विरुक्त पद

८—ध्वन्यात्मक शब्द

संस्कृत तत्सम शब्द प्रधान भाषा की शैली नई नहीं है। तुलसी की विनय पत्रिका, रामचरितमानस और केशव की रामचन्द्रिका में भी इसके दर्शन मिलते हैं। द्विवेदी युग में भाषा-सुधार का आन्दोलन चला, जिसके फलस्वरूप फिर उसी भाषा-शैली की काव्य के क्षेत्र में प्रतिष्ठा हुई। आचार्य द्विवेदी ने 'रसवती, ऊर्जस्विनी, परिमार्जित और तुली हुई भाषा में' कविता करने के लिए रचनाकारों को प्रेरित किया था। उन्होंने स्वयं इस प्रकार की रचना आरंभ

की थी। उनकी स्थापित की हुई शैली का अनुसरण करनेवाले कवियों में श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय, रामचरित उपाध्याय, लोचनप्रसाद पांडेय मैथिलीशरण गुप्त आदि मुख्य हैं।

संस्कृत तत्सम प्रधान भाषा-शैली के छन्दों में तीन बातें विशेषत: पाई जाती हैं—(१) सन्धि-युक्त पद (२) समासान्त पदावली और (३) ह्रस्ववर्ण का दीर्घवत् उच्चारण।

समुत्फुल्ल, दुश्चिन्ता, जनकांगजा,[१] अत्युज्ज्वला, हृदयापहारी, सोत्क्रोश[२] शैलांघ्रि, निद्राभिभूत, तमसावृता, निष्प्रतिभ, ध्यानावस्थित,[३] विश्वेश्वर आदि पद सन्धियुक्त हैं, विधि-विडम्बना-विवश; तुषार-प्रपात, रौप्य-धौत; एणदृशी, भारत-विजय-वैजयन्ती,[४] शुभ्रा-ज्योति-किरीट-मंडित-शिखा, वारिधि-वीचि-विचुम्बित[५] आदि सामासिक पद हैं तथा मिलिताक्षर पद के पहले ह्रस्व वर्ण का दीर्घवत उच्चारण पाया जाता है।[६]

१—जब रथ से थीं उतर रहीं जनकांगजा— वैदेही वनवास

२—सोत्क्रोश पार्श्व-परिवर्तन से सखी के
है तारतम्य मिटता सुख-स्वप्न का जो।
—सिद्धार्थ

३—ध्यानावस्थित विश्वेश्वर का
तेजोमय मंजुल मुख।
—गोपालशरण सिंह—जगदालोक

४—भारत-विजय-वैजयन्ती फहराने जग में।
और स्वयं दिग्विजयी-गौरव पाने जग में॥
अंगराज ७।१

५—पद-तल-वारिधि-वीचि-विचुम्बित, शीश हिम-मुकुट-मंडित।
जगदालोक, पृ० ६।

६—निदाघ ज्वाला से विचलित हुआ चातक अभी
भुलाने जाता था निज विमल वंश व्रत सभी
दिया पुत्र द्वारा नव बल मुझे आज तुमने।
सुसाध्वी हैं मेरे विदित कुल देव ग्रहपति।
—मैथिलीशरण गुप्त

इस छंद के 'घ' 'श' 'त्र' 'व' और 'ति' को गुरुवत् उच्चारण करना पड़ता है।

सन्धि समास युक्त संस्कृत शब्द-प्रधान शैली का प्रयोग अधिकतर वर्ण-वृत्तों में ही पाया जाता है, क्योंकि वर्णवृत्तों के लिए समासान्त शैली ही अधिक उपयुक्त होती है। हरिऔध के प्रियप्रवास, वैदेही वनवास, अनूप शर्मा के सिद्धार्थ और वर्द्धमान, जयशंकर 'प्रसाद' की कामायनी, निराला के तुलसीदास और राम की शक्ति-पूजा, पन्त की परिवर्तन और हिमाद्रि, आनन्दकुमार का अंगराज एवं गोपालशरण सिंह का जगदालोक आदि काव्यों में संस्कृत-गर्भित तत्सम शैली का प्रयोग प्रचुरता से मिलता है। वर्तमान प्रगतिवाद-प्रयोगवादी कविता में इसका बिलकुल अभाव हो गया है।

साधारण बोलचाल की भाषा

संस्कृत शब्द-बहुला-भाषा-शैली से भिन्न साधारण बोलचाल की शैली है। यह परम्परा दो रूपों में विकसित हुई है—एक उर्दू मिश्रित भाषा का रूप और दूसरा ब्रजभाषा के शब्दों का स्वच्छन्द प्रयोग।

उर्दू मिश्रित-भाषा को प्रयुक्त करने की प्रवृत्ति प्रगतिवादी और प्रयोग-वादी कवियों में सबसे अधिक है। छायावादी-रहस्यवादी काव्य-क्षेत्र में उर्दू के शब्द पूर्णरूप से बहिष्कृत हैं। नयी कविता में सभी कवियों ने उर्दू शैली को बेहद अपनाया है, जिसके फलस्वरूप भाषा का स्तर गिर गया है। उसमें कृत्रि-मता आ गई है।

इस प्रवृत्ति के फलस्वरूप फसल, रोज, आस्मां, परवाना, शमा, इसरार, मेहमान,[1] मेजमान, साकी, सुराही, प्याला, महफिल, खूनी,[2] फौलादी पंजा, सनम, खयाल, आस्तीन, हकीकत, जलवा,[3] मशाल, निशान,

---

१—ये मेहमान ये मेजमान
साकी सुराही का समान
ये जलसा महफिल सभी तान
ये करते हैं किस पर गुमान।
—सोहनलाल द्विवेदी

२—खूनी होते हैं जगत के सब्जरंग
यह दुहाई दे रही है मेंहदी।
—रामकुमार वर्मा

३—दें न हलवे छीन तो कलवे न लें
नाथ कब तक देखते जलवे रहें
कब तलक बलवे रहेंगे देश में
कब तलक हम चाहते तलवे रहें। —हरिऔध

जिन्दगी,[१] मासूम, परवाह, इन्तजारी, दर्द, वेकरारी, वेदिल, नशीला चाँद, मालिश, पेशानी, चरागाह, चाँदनी, गुनाह, मजबूर, वेदाग, महज, तूफान, महताब, खुशबू, गुल, तस्वीर, तराना, अरमान, फफोले, छाले, इन्सान, वेहाल, नाखुश, चिराग आदि शब्दों का स्वच्छन्दता से प्रयोग हुआ है।

हरिऔध के चौपदों में, दीन जी के पंचरत्न में, सनेही जी के काव्य में, बच्चन, अंचल, सुमन, भारतभूषण, गिरिजाकुमार, भारती, शमशेर आदि कवियों की रचनाओं में इस परम्परा का स्वच्छन्दता से विकास हुआ है। वर्तमानकाल की प्रयोगवादी कविताओं में उर्दू के शब्दों का छूट से प्रयोग हुआ है।

साधारण बोलचाल की भाषा में ब्रजभाषा के शब्दों का भी स्वच्छन्दता से प्रयोग हुआ है। शत-प्रतिशत कवियों ने इस ओर अपनी रुचि प्रदर्शित की है।

हुलास[२], पुरवैया, हौले-हौले, चन्दा, सांझ-सकारे, रेवड़, एड़ लगाना, झूमका, चौवार, हिन्नी पैंना, डकराना, पैंजनियाँ, कीच-काँद, घिनौना, नन्हीं-नन्हें, भरन, ऊफना, अचक-पचक, धरती[३], आँखें चुंधियाना, पंछी, पट वीजना, पोखर, ओखा, खोटा, बहू-बेटियाँ, मट्ठा, मटकी, कलेऊ, हारी-बीमारी, अल्हड़, रूठना, पैने, घनघोर, फुहार, लहुरे-जेठे, चिघाड़ना, चित्त-पट्ट, गली-गली, सनी हुई, बसेरा, आगी, खुल्लमखुल्ला, वैरागी, धसकाना, मसकना, धुआँधार, आँख मीचना, सरकना, ढेला, दीठि[४], झकझोर, लीपना, झख मारना, रार, टोना,

---

१—इन फीरोजी होठों पर बरबाद मेरी जिन्दगी।

—भारती

२—सुछवि के छाया वन की साँस
भर गई इनमें हाव, हुलास।

—पन्त

३—दूध-धुला आकाश दीखता लिपी फेन से धरती,
सुघर चाँदनी लिपे-पुते में पाँव न धरती, डरती
अचक-पचक यों धर धीरे पग सुधि भी लगी उतरने।

—नरेन्द्र

४—दीठि बँधी अँधेरा उजाला हुआ
सेंधों का ढेला शकरपाला हुआ।

—निराला

डिठौना, पसारना, सलोना, दरस-परस, बाती, रौंदना, लुढ़क-पुढ़क, ओढ़नी[1], भिनसार, चौंतरा, अंगिया, चुनरिया, तती[2], दईमारे[3], घाघर, सेंत-मेंत आदि आदि शब्दों के प्रयोग खड़ी बोली की रचनाओं के बीच में अनूठा सौन्दर्य दिखा रहे हैं।

आलोच्यकाल के अन्तर्गत यद्यपि खड़ी बोली ने काव्य-भाषा का स्थान प्राप्त कर लिया था तथापि व्रजभाषा की कोमलकान्त पदावली का मोह कवियों से नहीं छूटा था। साकेत, वैदेही-वनवास, नूरजहाँ, विक्रमादित्य, कामायनी जैसे महाकाव्यों में भी व्रजभाषा के शब्द खड़ी बोली काव्य के बीच नग की भाँति जड़े मिलते हैं। वर्तमान काल में तो क्षेत्रीय बोलियों के शब्दों का प्रयोग करने की प्रवृत्ति बहुत अधिक बढ़ गई है। अतः सभी कवि व्रजभाषा के शब्दों से अपनी कविता की शोभा बढ़ाते हैं।

कविता को जन-साधारण की पहुँच के अन्दर लाने के लिए हर एक कवि प्रयत्नशील रहता है। इसके लिए सर्वसाधारण में प्रचलित शब्दावली को प्रयुक्त करने की आवश्यकता पड़ती है। ऐसी भाषा में व्रजभाषा, अंगरेजी एवं उर्दू सभी प्रकार के रोचक शब्दों को स्वतंत्रतापूर्वक ग्रहण किया जाता है।

इस प्रकार की भाषा में लेना-देना, बोझीला, तीर-कमान, सौदा, मनचाही, मीनमेख, आटादाल, टहनी, ठिठोली, उलझन, पुतले, अँधेरी[4], ढहना,

---

१—इस अँधेरे की पुरानी ओढ़नी को बेधकर
आ रही ऊपर नये युग की किरन।
—हरिनारायण व्यास

२—दीखें जिसमें राई-रत्ती
खिल जाती है पत्ती पत्ती
ठंडी न पड़ बनी रह तती।
—मैथिलीशरण : साकेत

३—सिहरते से, पंगु, टुंडे
नग्न, बुच्चे, दईमारे पेड़।
—अज्ञेय

४—युगों की सभी रूढ़ियों को कुचलती
जहर की लहर सी लहरती मचलती
अँधेरी निशा में मशालों सी जलती
चली आ रही है बढ़ी लाल सेना।
—सुमन

छुट्टी, नोंकझोंक[1], रोक-टोक, सर्राटे, सन्नाटा, अकड़[2], चिलचिलाती धूप, लाल चिनगारी, चहल-पहल, पिया की बाँह[3], चौराहा[4] आदि आदि प्रचलित भाषा के शब्द हैं।

साधारण बोलचाल की भाषा में काव्य रचना करने की प्रवृत्ति अधिकतर राष्ट्रीय कवि, प्रगतिवादी एवं प्रयोगवादी कवियों की रही है। इनमें एक भारतीय आत्मा, नवीन, सुभद्राकुमारी, अंचल, बच्चन, नरेन्द्र, गुरुभक्त सिंह दिनकर, नैपाली, गोपालशरण सिंह, शमशेर, भारती, भवानीप्रसाद, रमानाथ अवस्थी आदि मुख्य हैं।

अंग्रेजी शब्द विन्यास

इसके दो रूप मिलते हैं। एक अंग्रेजी पद, पदांश एवं वाक्यों का छायानुवाद और दूसरा अंग्रेजी शब्दों का शुद्ध रूप में प्रयोग। पन्त में यह प्रवृत्ति बहुत अधिक है—

'बाँसों की झुरमुट
सन्ध्या की झुटपुट
हैं चहक रहीं चिड़ियाँ
टी वी टुट टुट।[5]

—पन्त

१—तब सरस्वती सा फेंक साँस। श्रद्धा ने देखा आसपास।
उलझन की मीठी रोकटोक। यह सब उसकी है नोंक-झोंक॥

—प्रसाद

२—हूँ मोट खींचता, लगा पेट पर जूआ
खाली करता हूँ, ब्रिटिश अकड़ का कूआ।

—एक भारतीय आत्मा

३—छाया करती रहे सदा तुझको सुहाग की छाँह,
सुख दुख में ग्रीवा के नीचे रहे पिया की बाँह।

—दिनकर

४—इस जीवन के चौराहे पर दो हृदय मिले भोले भाले,

—गोपाल सिंह नैपाली

5—"Of everything that stirs she dreameth wrong And pipes her, 'tweet-tut' fearsthe whole day longs."

अब न कह जग रिक्त है यह
पंक ही से सिक्त है यह
देख तो रज में अचंचल
स्वर्ग का युवराज,
तेरे अश्रु हो अभिषिक्त है यह[१]

—महादेवी

हे विधि फिर अनुवादित कर दो[२]

—पन्त

इन कविताओं में अंग्रेजी का छायानुवाद झलक मारता है। इसी प्रकार स्वर्गीय प्रकाश,[३] अजान नयन,[४] सुवर्ण का काल,[५] स्वप्निल मुसकान,[६] सुनहले स्पर्श,[७] रुपहले,[८] नया पन्ना उलटे इतिहास,[९] रेखांकित,[१०] यंत्रकाल,[११] दबी वासना,[१२] और भग्न हृदय[१३] आदि-आदि पदों के प्रयोग अंग्रेजी वाक्यांशों के अनुवाद मात्र हैं।

अंग्रेजी के शुद्ध शब्द भी बहुत सी कविताओं में ज्यों-के-त्यों लिए गए हैं। ऐसे शब्दों में सिविल लाइंस, शांक, सेक्स, साइस, मिनट, केपीटलिस्ट,[१४]

1—"Toll me not in mournful numbers
Life is but an empty dream."

२—अनुवादित कर दो (ट्रान्सलेट)

३—डिवाइन लाइट

४—इनोसेन्ट आई

५—गोल्डेन एज

६—ड्रीमी स्माइल

७—गोल्डेन टच

८—सिलवरी

९—टु टर्न ए न्यू लीफ इन हिस्ट्री

१०—अन्डर लाइन्ड

११—मैशीन एज

१२—सप्रेस डिजायर

१३—ब्रोकेन हार्ट

१४—डाल पर इतरा रहा कैपीटलिस्ट—निराला

क्रीम, सेंट, सिल्क, प्लेटफार्म, रेडियम,[1] गैस, होम, स्वीट पी, बाथरूम आदि आदि अनेक शब्द हैं।

कविताओं के शीर्षक भी अंग्रेजी के शब्दों में दिए गए हैं। गिरिजाकुमार की ऐसोसिएशंस, अज्ञेय की पार्क की बेंच और एक आटोग्राफ, उदयशंकर भट्ट की रिफ्यूजी और धर्मवीर भारती की एक फैंटेसी इसी प्रकार की रचनाएँ हैं।

नए शब्दों की रचना—शब्द-शिल्प

नए शब्द-शिल्प की भी एक परम्परा है। संज्ञा शब्दों से नये प्रकार के विशेषणों की रचना की गई है। इसमें से अधिक प्रचलित विशेषणों को छायावादी काव्य में से चुन कर दिया जाता है।

संज्ञा	विशेषण
उर्मि	उर्मिल
ऐंच	ऐंचीला[2]
जटा	जटिल
तन्द्रा	तन्द्रिल
तुन्द	तुन्दिल
धूम	धूमिल
पंक	पंकिल
पांसु	पांसुल
पृथु	पृथुल
फेन	फेनिल
बोझ	बोझिल
रोम	रोमिल
वर्त	वर्तुल
वात	वातुल
स्वर्ण	स्वर्णिल, स्वर्णिम
स्वप्न	स्वप्निल

१—उन्हीं रेडियम के अंकों की लघु छाया पर
दो छाहों का वह चुपचाप मिलन था।

—गिरिजा कुमार

२—'सँच ऐंचीला-भ्रू-सुरचाप"

—पन्त

घृणित, चर्चित, चित्रित, तरलित, तापित, तारकित, थकित, द्रवित, दीपित, धूसरित, निद्रित, पल्लवित, पीड़ित, पुष्पित, पुलकित, प्रमुदित, फलित, मर्दित, मीलित, ऊर्जित, मंजरित, रचित, रंजित, लुंठित, विस्मित, विकसित, श्वसित, शोषित, शापित, संचित, सुरभित आदि आदि। अन्य प्रकार के विशेषणों का विधान भी पाया जाता है—अलसित, अवसित, अर्पित, अंकित, अंकुरित, आलोकित, आलोड़ित, आन्दोलित, उच्छ्वसित, उल्लसित, कुसुमित, कुत्सित, कंपित, खचित, गुंजित, ग्रसित, गर्जित आदि।

तीसरे प्रकार का शब्द-शिल्प भी मिलता है—

अग्निमय, कल्पनामय, चिन्मय, जलमय, दयामय, नीलिमामय, भावनामय, मधुमय, मेघमय, रहस्यमय, रंगमय और वेदनामय[1] आदि।

छायावादी काव्य के बहु प्रचलित शब्द नीचे दिये जाते हैं—

अवगुंठन, अभिशाप, अपलक, अमृत, अंचल, अभिसार, अन्वेषण, अंजलि, अन्तर्पट, अश्रु, आलिंगन, आह्लाद, आरती, इन्दु, उच्छ्वास, उन्मेष, उषा, ऊर्मि, उल्लास, एकाकी, कलिका, किसलय, कर्णफूल, कुन्द, कूल, कौतुक, गुंजन, चितवन, छुईमुई, जर्जर, ज्योत्स्ना, झीना, झंकार, झंझा, तार, तराना, नीरव, नीड़, निर्झर, पल्लव, पवमान, पराग, पदचाप, पतझड़, पाटल, पिक, प्रणय, प्रभात, प्रतिध्वनि, मलय, मधु, मधुप, मधुमास, मधुरिमा, मदिर, महावर, मंझदार, मुकुल, मृदुल, मृणाल, मलय, रश्मि, रजत, रजकण, रूपहले, रुनझुन, लावण्य, लास, लोल, वातायन, विलास, विहार, वीणा, वेणु, शाश्वत, शूल, शृंगार, शेफालिका, शतदल, सजल, स्पन्दन, सिहर, सीकार, स्फीत, संसृति, स्फुलिंग, स्मृति, हास, हिमकण, हृतंत्री, हृद्वीणा, क्षितिज आदि आदि।

छायावादी कवियों का शिल्प-विधान अत्यन्त मोहक है। इससे काव्य में स्वारस्य की अभिवृद्धि हुई है तथा खड़ी बोली में काव्योपयुक्त लालित्य का संचार हुआ है। पन्त जी का शब्द-शिल्प सबसे अधिक सुन्दर एवं चित्ताकर्षक है। इसमें अन्य कवियों का भी अतुल योगदान है।

लाक्षणिक पद-प्रयोग

भाषा की लाक्षणिक शक्ति का विकास आलोच्यकालीन कविता की अन्यतम विशेषता है। नीचे लाक्षणिक प्रयोगों के कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

अलसित पलक, अपलक नयन, अधीर नूपुर, आकुल तान, आशा-पथ,

---

[1] — इनमें संस्कृत का 'मयट्' प्रत्यय है।

आँसू की हिलोर, आँसू रुकी मचलती आँखें, उच्छृंखल यौवन, उमड़ती जवानी, उदास आकाश, उमड़ती बालू-सी-मृग-तृष्णा में एक 'ओसिस' सी अर्थात् स्त्री, काला बुखार, कजारी रातें, गुलाबी सुधि, गूँजता या सुनसान, गर्वोन्नत यौवन, छवि के सपनों की रम्य शयन-शिला (स्त्री), जीवन-वसन्त की पिक (स्त्री), जग-तरंगिनी (स्त्री), जीर्ण जगत, जग का निश्वास, जोड़कर कण कण कृपण आकाश ने तारे सजाए (राम कुमार वर्मा). झुकेगा कल गुंजित मधुमास, (पन्त) डूबता दिन, भोगती सी शाम, तरल हंसी, तृषित, गोद, तरल तिमिर, दिया की जोत, निद्रित जीवन, निश्चल सागर की आत्मा सी शान्त (स्त्री), नीरव गान, निठुर दीपक, नीरव व्यथा, निशा बह गई, डूबे तारे, नीद भरी मंदी बयार, पृथ्वी की रंगस्थली पुलक-पंखिनी, 'पर मेरे जलते गीतों में होती ठंडक की लहर' (अंचल), हलकों में निर्झरिणी मचली (महादेवी), प्रगल्भधारा, फूटा प्रभात-फूटा विहान (भारत भूषण), व्याकुल पनघट, 'मधुराका मुसुक्याती थी' (प्रसाद), मधु-यामिनी मुखरित मुख, 'मुसकाता संकेत भरा नभ' (महादेवी), रूप-सिन्धु की निवासिनी चिर-उर्वशी (अंचल), रूप की मोहक खान, रागमयी सन्ध्या, लहराता सुरभित केश-पाश (महादेवी), वेदना की विद्युत्, शशि की सलौनी देह, शारदाय ऊषा सी निष्कलंक (अंचल), शिथिल सेज, शीतल चुम्बन, शरबती चितवन, सुधि का दंशन, सुरभित लहरों की छाया, सरस प्रवाह, है टूट पड़ा भू पर अम्बर, क्षुब्ध प्रेम का पारावार आदि आदि।

लक्षणा के ये नए प्रयोग किसी नियम के आश्रित नहीं हैं। इनमें लक्षणा के व्यापार की बहुत दूर तक खींचतान की गई है। कहीं-कहीं एक ही पद में दो-दो लक्षणाओं को गूँथ दिया गया है। इसके लाक्षणिक प्रयोगों में दुरूहता आ गई है तथा अर्थ का निकालना क्लिष्ट हो गया है। उदाहरणार्थ —

(१) गगन के भी उर में हैं घाव
देखती ताराएँ भी राह
बंधा विद्युत् छवि में जलवाह
चन्द्र की चितवन में भी चाह।

—पन्त

कवि प्राकृतिक वस्तुओं में भी अभिलाषा की पीड़ा दिखाना चाहता है। गगन का उर 'कहने से ही लक्षणा का कार्य पूरा हो जाता है, किन्तु उसमें 'घाव' दिखाना लक्षणा में लक्षणा है। 'हृदय' चेतन प्राणी के होता है, गगन का नहीं। इसी प्रकार 'घाव' शरीर में होता है, 'उर' में नहीं। किन्तु लक्षणा से यह अर्थ प्राप्त होता है कि गगन का उर भी आशा से पीड़ित है।

अन्तिम पंक्ति में 'चन्द्र की चितवन' एक लक्षणा है तथा 'चितवन में चाह' का होना, लक्षणा में दूसरी लक्षणा का व्यापार है। लक्षणा का यह व्यापार किसी नियम के आश्रित न होने से दुरूह हो गया है।

(२) 'करुण भौहों में था आकाश'

—पन्त

'करुण भौंह' से आशय चिन्ता युक्त होने से है, उनमें आकाश का सा विस्तार था। लक्षणा पर लक्षणा है।

(३) ओ अकूल की उज्ज्वल हास,
अरी अतल की पुलकित श्वास
महानन्द की मधुर उमंग
चिर शाश्वत की अस्थिर लास।

—वीचि विलास—पन्त

इस बन्ध की प्रत्येक पंक्ति के पदों में दो-दो लक्षणाओं का व्यापार गुँथा हुआ है।

(४) किसकी विकच-वीचि-चितवन पर
अब होता निर्भय अभिसार।

—निराला

इसमें विकच (विकसित) वीचि (तरंग) पहली लक्षणा, वीचि की चितवन, दूसरी लक्षणा, चितवन पर अभिसार, तीसरी लक्षणा तथा अभिसार का निर्भय होना चौथी लक्षणा। एक ही पद में चार लक्षणाओं का जमघट है। कवि की उक्ति यमुना के प्रति है।

(५) मर्म पीड़ा के हास।'

इसमें 'मर्म पीड़ा' तक तो ठीक है, किन्तु पीड़ा में 'हास' को स्थान कहाँ। यह बेतुकी लक्षणा है।

(६) पवन-धेनु, रवि के पांशुल श्रम अर्थात् बादल।'

इसमें बादल को पवन की धेनु अर्थात् गाय कहा है, क्योंकि वायु धेनुओं की तरह बादलों को छितरा देता है। किन्तु यह सादृश्य बेतुका है। रवि के पांशुल अर्थात् धूलि भरे श्रम। इसमें साध्यवसान का कोई आधार ही नहीं है। क्लिष्ट कल्पना मात्र है।

(७) हे अभाव की चपल बालिके,
री ललाट की खल लेखा।
हरीभरी सी दौड़ धूप, ओ
जल-माया की चल-रेखा।

—प्रसाद

ये सब चिन्ता के लिए विशेषणी भूत लाक्षणिक उपमान हैं। चिन्ता को अभाव की कन्या बतलाया है। दूसरे पद में माथे की दुःखद लेखा कहा है। तीसरे पद में चिन्ता को दौड़-धूप तथा चौथे पद में उसे माया की चंचल रेखा बताया है। ये सब गौणी साध्यवसाना लक्षणा के उदाहरण हैं। किन्तु यहां मुख्यार्थ का लक्ष्यार्थ के साथ किसी प्रकार का संबंध न होने से अर्थ की खींचतान करनी पड़ती है।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि आधुनिक कवियों के लाक्षणिक प्रयोग अधिकतर दोषपूर्ण हैं, क्योंकि इनमें प्रायः लक्षणा का व्यापार घटित नहीं होता। अतएव ये प्रयोग कहीं-कहीं हास्यास्पद से हो गए हैं।

'सिटी के गूढ़ हुलास,' 'नयन के बाल,' 'क्वारो साँसें' आदि ऐसे ही प्रयोग हैं।

ध्वनि के प्रयोग

शब्द-शक्ति की दृष्टि से आधुनिक युग की काव्य-भाषा का आश्चर्यजनक विकास हुआ है। लाक्षणिक प्रयोगों का तो प्राचुर्य है ही, व्यंग्यार्थ का भी अभाव नहीं है। प्रयोजनवती लक्षणा में व्यंग्य अवश्य होता है, वह कहीं पर गूढ़ होता है, और कहीं पर अगूढ़। वस्तुतः ध्वनि का व्यापार लक्षणा और अभिधा दोनों के आश्रित होता है, । जहाँ लक्षणा के ऊपर आश्रित होता है, वहाँ लक्षणामूला ध्वनि और जहाँ अभिधा के आश्रित होता है, वहाँ अभिधामूला ध्वनि कहलाती है। नीचे उदाहरणों द्वारा ध्वनि के प्रयोगों को स्पष्ट किया जाता है—

(१) "कमल पर जो चारु दो खंजन, प्रथम
पंख फड़काना नहीं थे जानते,
चपल चोखो चोटकर अब पंख की
वे विकल करने लगे हैं भ्रमर को।"

—ग्रन्थि : पन्त

कमल के ऊपर स्थित खंजनों का जोड़ा पहले पंख फड़काना भी नहीं जानता था, किन्तु अब पंख की मारों से भ्रमर को व्यथित करने लगा है। इस वाच्यार्थ में कोई चमत्कार नहीं है। वस्तुतः इसमें नायिका के दोनों नेत्र खंजन हैं, मुख कमल है, तीक्ष्ण कटाक्षों से निहारना पंख फड़काना है तथा भ्रमर प्रेमीजन हैं। भाव यह है कि नायिका अपने दोनों सुन्दर नेत्रों की चपलता से युवकों को अधीन करने लगी है। दूसरा अर्थ अधिक चमत्कारपूर्ण है। इसमें रूपकातिशयोक्ति व्यंग्य है। अतएव अलंकार ध्वनि है।

(२) "इन्दु पर, उस इन्दु मुख पर, साथ ही
थे पड़े मेरे नयन, जो उदय से,
लाज से रक्तिम हुए थे, पूर्व को
पूर्व था, पर वह द्वितीय अपूर्व था।"

—ग्रन्थि—पन्त

प्रेमी की दृष्टि पूर्व दिशा में उदित हुए चन्द्रमा पर तथा चन्द्र-मुखी (प्रेमिका) पर एक साथ ही पड़ी। दोनों लाल रंग के थे। चन्द्रमा उदयकालीन होने से रक्त वर्ण था तथा प्रेमिका के मुख पर लज्जा की लाली दौड़ रही थी। चन्द्रमा पूर्व की ओर था, किन्तु प्रेमिका के मुख की शोभा अपूर्व थी। इसमें मुख चन्द्रमा से कहीं अधिक सुन्दर था, यह व्यंग्यार्थ अधिक चमत्कारपूर्ण है। व्यतिरेक के द्वारा यह ध्वनित होता है, अतएव यहाँ अलंकार ध्वनि है।

(३) "शीतल ज्वाला जलती है, ईंधन होता दृग जल का,
यह व्यर्थ साँस चल चल कर, करता है काम अनिल का।"

—आँसू : प्रसाद

ज्वाला शीतल नहीं हुआ करती, यदि होती है तो वह जल नहीं सकती। इससे अभिधा का व्यापार बन्द हुआ। लक्षणा से यह अर्थ प्रकाशित होता है कि हृदय मधुर वेदना से व्याकुल है। नेत्रों का जल ईंधन नहीं हो सकता। भाव यह कि नेत्रों में आँसू भरे हुए हैं। साँसे अग्नि का कार्य नहीं कर सकतीं। लक्ष्यार्थ यह कि साँसों में उष्णता है। इस प्रकार यहाँ प्रेमी की विरह-वेदना व्यंग्य है। इसमें गूढ़ व्यंग्य प्रयोजनवती लक्षणा है।

(४) "उषा का था उर में आवास
मुकुल का मुख में मृदुल विकास,
चाँदनी का स्वभाव में भास
विचारों में बच्चों की साँस।

—आँसू : पन्त

इसमें प्रेमिका के सौन्दर्य की ओर संकेत है। प्रत्येक पंक्ति में लक्ष्यार्थ प्रधान है, क्योंकि वाच्यार्थ सिद्ध नहीं होता। 'उषा' से कोमलता, 'मुकुल' से प्रफुल्लता, 'चाँदनी' से मधुरता, उज्ज्वलता एवं 'बच्चों की साँस' से भोलेपन का अभिप्राय है। इसमें प्रयोजनवती गूढ़ व्यंग्या लक्षणा स्पष्ट है। प्रेमिका की शोभा ध्वनित है।

(५) "हंस छोड़ आए कहां, मुक्ताओं का देश !
यहां वन्दिनी के लिए, लाये क्या सन्देश ?"
—मैथिलीशरण गुप्त : साकेत

इसमें 'मुक्ताओं' का देश और 'वन्दिनी' दोनों पद लाक्षणिक हैं। 'मुक्ताओं' के देश से प्रयोजन मानसरोवर से है, जहां हंस मोती चुगा करते हैं। 'वन्दिनी' से प्रयोजन है, विरहिणी उर्मिला का। श्लेष के द्वारा 'मुक्ताओं' का अर्थ 'स्वाधीना' भी होता है। विरहिणी को आशा है कि कदाचित् मुक्ताओं के देश से आने वाला हंस वन्दिनी को भी मुक्ति का सन्देश सुना सके। वही सन्देश सुनने को विरहिणी की इच्छा है। यहां वस्तु ध्वनि है।

(६) 'हे आर्य, रहा क्या भरत-अभीप्सित अब भी ?
मिल गया अकंटक राज्य उसे जब, तब भी !"
—मैथिलीशरण गुप्त : साकेत

इसमें भरत की आत्म-ग्लानि ध्वनित है। 'अकंटक राज्य' में व्यंजना है। राम की अनुपस्थिति में अयोध्या का राज्य 'दुःखपूर्ण' है। यहां 'अकंटक' शब्द अपना अर्थ ही छोड़ बैठा है, अतएव इसमें अत्यन्त तिरस्कृत लक्षणामूला ध्वनि है।

(७) "ग्राम नहीं वे ग्राम आज
औ नगर न नगर जनाकर,
मानव कर से निखिल प्रकृति जग
संस्कृत, सार्थक, सुन्दर।
—ग्राम्या : पन्त

यहां 'ग्राम' और 'नगर' का दो-दो बार प्रयोग हुआ है। एक समान शब्दों को रखने से पुनरुक्ति दोष होता है, अतएव यहाँ दूसरे ग्राम और नगर का अर्थ, संस्कृत, सार्थक एवं सुन्दर से है। आजकल के ग्राम ग्राम नहीं और नगर नगर नहीं, क्योंकि इनमें संप्रदाय एवं जातिवाद का आधिक्य है। इस में अर्थान्तर संक्रमित लक्षणामूला ध्वनि है।

(८) पावस ही में धनुष अब, नदी तीर ही तीर।
रोदन में ही लाल दृग, नौ रस ही में वीर ॥
—वीर सतसई : वियोगी हरि

यहां क्षत्रिय वीरों की कायरता एवं दुर्बलता पर व्यंग्य है। आजकल पहले जैसे धनुर्धर वीर कहां हैं ? अब तो पावस का इन्द्रधनुष ही धनुष है, नदी का तीर

ही वीर है, रोने में ही आँखें लाल हो जाती हैं तथा नौ रसों में ही वीर का नाम आता है। वस्तुतः अब वीरों का अन्त हो गया, यह व्यंग्यार्थ व्यंजित होता है।

(९) अबे, सुन बे, गुलाब,
भूल मत गर पाई खुशबू, रंगो आब,
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट,
डाल पर इतरा रहा कैपीटलिस्ट।

—निराला

यहाँ 'अबे' 'सुन बे,' 'खून चूसा' तथा 'इतरा रहा' व्यंजक पद हैं। 'गुलाब' पूंजीपति वर्ग का स्थानापन्न है। 'खाद का खून चूसना' में प्रयोजनवती लक्षणा है, लक्ष्यार्थ है, गरीबों का शोषण करना। इसमें व्यंग्य स्फुट है, अतएव यह अगूढ़ व्यंग्य लक्षणा का उदाहरण है। इस छन्द के प्रत्येक शब्द में व्यंग्य है।

(१०) "लाखों क्रौंच कराह रहे हैं, जाग आदि कवि की कल्याणी,
फूट फूट तू कवि कंठों से, बन व्यापक निज युग की वाणी।"

—दिनकर

यहाँ 'लाखों क्रौंच' का लक्ष्यार्थ है, त्रस्त एवं उत्पीड़ित जनता, 'कल्याणी' के लक्ष्य हैं, कविता, कवि कंठों से फूट पड़ने में 'क्रान्ति' का स्वर ध्वनित है। अभिप्राय यह कि शोषित-पीड़ित मानवता के उद्धार के हेतु व्यापक क्रान्ति आवश्यक है। इसमें वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ अधिक चमत्कारपूर्ण है। यहाँ भाव ध्वनि है।

(११) "मेरा पथ तेरे ध्वस्त गौरव का पथ है
और तेरे भूत काले पापों में प्रवहमान
लाल आग
मेरे भावी गौरव का रथ है।"[1]

—अज्ञेय

इसमें पूंजीपति वर्ग के विरुद्ध श्रमिक की क्रान्ति का स्वर है। 'लाल आग' क्रान्ति की द्योतक है। 'काले पापं. में लाल आग के प्रवाह' की लक्षणा निश्चय ही क्लिष्ट है, क्योंकि आग में प्रवाहित होने की योग्यता नहीं। यहाँ पूंजीपति के गौरव को नष्ट कर श्रमिक के विजय रथ को आगे बढ़ाने की ओर संकेत है। किन्तु इनमें लक्षणा का व्यापार सुन्दरता से घटित नहीं होता। भाषा में शैथिल्य तथा वाक्य-रचना में योग्यता का अभाव है।

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि आलोच्यकाल की कविता की भाषा में लाक्षणिक एवं ध्वनि के प्रयोगों का विधान प्रचुरता से हुआ है। इससे भाषा की शक्ति का यथेष्ट विकास हुआ है। मध्यकालीन कविता की भाषा में अलंकारों का सौन्दर्य अवश्य था। किन्तु शब्द-शक्ति का अभाव था। भाषा की शक्ति का जितना विकास आलोच्यकाल में हुआ है, उतना पहले कभी नहीं हुआ। ध्वनि के सौन्दर्य को समझने वाले कवियों ने यद्यपि व्यंग्य के नाम पर अशुद्ध प्रयोग भी कर डाले हैं, तो भी ध्वनि के सुन्दर प्रयोगों का पर्याप्त विकास हुआ है। निष्कर्ष यह कि शब्द शक्ति एवं भाषा के सामर्थ्य के विचार से आलोच्यकाल की काव्य-भाषा कहीं अधिक सम्पन्न है, इसमें सन्देह नहीं। शत-प्रतिशत कवियों ने भाषा की शक्ति के विकास में योग दिया है।

लोकोक्ति तथा प्रोक्ति चमत्कार

लोकोक्ति एवं मुहावरों का प्रयोग करने की ओर भी बहुत से कवियों की प्रवृत्ति है। यहाँ कुछ प्रोक्ति (मुहावरों) के प्रयोग उदाहरण के लिए प्रस्तुत किए जाते हैं।

अट्टहास करना, अस्त-व्यस्त होना, आँख चढ़ाना, आँखें धँसना, आँख-कान फूटे होना, आह उठना, आँख-मिचौनी खेलना, आरती उतारना, आशा के फूल खिलाना, उलटी माला फेरना, औंधे मुंह रपटना, चक्र घूमना, छाती खोलना, ज्वाला धधकना, दो बूंद ढलकाना, दीर्घ श्वास छोड़ना, द्रौपदी का चीर होना, धरा धसकना, धूल बटोरना, धूल छानना, नाच नाचना, नया रंग लाना, पलक-पांवड़े बिछाना, पानी भरना, पेट पीठ से लगना, प्राणों के लाले पड़ना, पानी देना, भौंह चढ़ाना, भौंचक रहना, भव-सिन्धु के पार होना, मस्तक ऊँचा करना, मेदिनी फट जाना, मतवाला होना, मुंह जोहना,[१] मुंह पर कालिख,[२] रोम-रोम जलना, लक्ष्य भ्रष्ट होना, विपत्तियों से लड़ना,[३] विजय-पताका झुकना, विजय-सूर्य ढलना, विप्लव का बाजा बजना, सुधा वृष्टि होना,

---

१—"वर्दी फटी, हृदय घायल, कालिख मुख पर, क्या वेश बना ?
आँखें सकुचीं, कायरता के पंकिल से सब देश सना ॥
खिंचता ही आता है जब से खाली यह तूणीर हुआ।" —नवीन

२—"मुँह जोहता था इतिहास जिस वीर का" —वियोगी हरि।

३—"भय के दीप्तानल में धँस कर उसे बुझा दे पैरों से,
छाती खोल खुले में अड़कर, विपदाओं के साथ लड़े।"
—सियारामशरण गुप्त

सिर मारना, सुध-बुध भूलना, सिर-माथे, सौ चक्कर काटना, स्मृति टिमटिमाना, स्वप्न बिखरना, हाथ मलना, हृदय उमड़ना, हृदय के घाव भरना, हृदय टूक-टूक होना, हूक उठना, हार का साँप बन जाना[1] आदि-आदि।

प्रोक्ति (मुहावरे) और लोकोक्तियों का चमत्कार काव्योत्कर्ष में कितनी सहायता करता है, इसके विषय में दो मत नहीं हो सकते। हरिऔध जी ने अपने चौपदों की रचना में यह चमत्कार प्रदर्शित किया है। उनके चौपदे, प्रोक्तियों[2] के रत्नाकार हैं। इसके अतिरिक्त मैथिलीशरण, सियारामशरण, गुरुभक्त सिंह, नवीन, प्रसाद, गोपालशरण सिंह आदि की रचनाओं में प्रोक्तियों का चमत्कार प्रचुरता से मिलता है।

द्विरुक्त पद (वीप्सा)

प्रोक्ति की भाँति द्विरुक्त पदों से भी भाषा के सौन्दर्य की अभिवृद्धि होती है—

कड़-कड़, खड़-खड़, रोम-रोम, शत-शत, राशि-राशि, बुद्बुद्, छप-छप, थर-थर, पीउ-पीउ, कुहू-कुहू, कण कण, लघु-लघु, नव-नव, घुल-घुल, युग-युग, काल-काल, जन-जन, हर-हर, मह-मह, लह-लह, श्वास-श्वास, प्राण-प्राण, सर-सर, थर-थर, पग-पग, क्षण-क्षण, गद्-गद्, पल-पल, कल-कल, झर-झर, मर-मर, झल-झल, छल-छल, अणु-अणु, खर-खर, टप-टप, सिहर-सिहर, मधुर-मधुर, पुलक-पुलक, थहर-थहर, गरज-गरज, छहर-छहर, उन्मन-उन्मन आदि द्विरुक्त पद हैं।

द्विरुक्त पद वीप्सा अलंकार के अन्तर्गत आते हैं। छायावादी काव्य में इनका सबसे अधिक प्रयोग हुआ है। भाषा-सौन्दर्य के साथ भाव की तीव्रता में भी इनसे सहायता मिलती है। पन्त, प्रसाद, निराला, महादेवी आदि छायावादी कवियों की रचनाओं में द्विरुक्त पदों का प्राचुर्य है। अन्य कवियों में इनका प्रयोग विरल है।

१—"अन्धकार वह वस्तु, हार भी जहाँ साँप बन जाता।"
—मैथिलीशरण गुप्त

२—"घोंटते जो लोग हैं उसका गला
क्या नहीं उन पर छहू हम गार लें।
है हमारी जाति का दम घुट रहा,
हम भला दम किस तरह से मार लें।"
—अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' : चोखे चौपदे

ध्वन्यात्मक शब्द

ये ध्वन्यर्थ व्यंजक शब्द हैं, जो भावों की व्यंजना में बहुत सहायता करते हैं। छायावादी कविता में ऐसे शब्दों के प्रयोग प्रचुरता से मिलते हैं।

झूम-झूम, झर-झर, रोर, छलछल-कलकल, मरमर-सरसर, गुन-गुन, सन सन, झकझोर, हिल्लोल, कंप-कंप, घर-घर, बुद्-बुद्, सिसकना, हहर हहर, थहराना, सिहरना, चरमर, धड़कन, सांय सांय, हाहाकार, सीत्कार, चीत्कार, क्रन्दन, स्पन्दन आदि।

पन्त, निराला, माखनलाल, महादेवी, दिनकर, बच्चन, अंचल आदि अनेक कवियों की रचनाओं में ये प्रयोग अधिक मिलते हैं। पन्त जी ने पल्लव की कविताओं में इस ओर बहुत रुचि दिखाई है।

विवेचन

भाषागत परम्पराओं के इस अध्ययन से विदित होता है कि किस प्रकार द्विवेदी युग की गद्यवत् इतिवृत्तात्मकता से निकल कर आलोच्यकालीन कविता की भाषा ने अपनी शक्ति को विकसित किया है। छायावादी-रहस्यवादी काव्य में संस्कृत तत्सम प्रधान भाषा-शैली का पूर्ण विकास हुआ है। भाषा की लाक्षणिकता, ध्वन्यात्मकता तथा सांकेतिकता की दृष्टि से छायावादी काव्य पूर्ण समुन्नत है। प्रसाद का लाक्षणिक विधान, पन्त का शब्द-शिल्प, निराला का नादात्म सौन्दर्य एवं महादेवी की व्यंजनाओं ने भाषा की शक्ति के विकास में पूर्ण योग दिया है। राष्ट्रीय काव्यधारा में, प्रगतिवादी एवं प्रयोगवादी कविता में साधारण बोलचाल की भाषा पाई जाती है। वर्तमान काल के कवि क्षेत्रीय बोलियों के शब्दों एवं मुहावरों का समावेश करके भाषा को कहीं अधिक लोक-जीवन के निकट लाने का प्रयत्न कर रहे हैं।

निष्कर्ष यह है कि आलोच्यकाल में भाषा की स्वस्थ परम्पराओं का विकास हुआ है। किन्तु तत्सम शब्द प्रधान शैली का शनैः शनैः प्रचार कम होता जा रहा है और सर्व साधारण में प्रचलित सरल भाषा विकासोन्मुख है। इसके लिए कविजन क्षेत्रीय शब्द, मुहावरे, लोकोक्ति एवं ध्वनियों के समावेश द्वारा कविता को जनजीवन के अधिकाधिक निकट लाने के लिए प्रयत्नशील हैं। ब्रज भाषा के शब्द, उर्दू के पद, अंग्रेजी मिश्रित पदावली के प्रयोगों की वृद्धि इसी प्रयत्न के चिह्न हैं।

—

छन्द-प्रयोग

आलोच्यकाल में जहाँ एक ओर पुराने छन्दों में काव्य रचना हुई है, वहाँ दूसरी ओर नये छन्दों के प्रयोग भी बहुत हुए हैं। वस्तुतः आलोच्यकाल छन्दों के नए-नए प्रयोगों का काल है। भारतेन्दु युग संक्रान्ति का युग था। इस युग में रीतिकाल की सामन्तवादी प्रवृत्ति की प्रतिक्रिया आरम्भ हुई। स्वयं भारतेन्दु जी ने शास्त्रीय छन्दों में परिवर्तन करके नये-नये छन्दों की रचना की। दोहे में थोड़ा-सा परिवर्तन करके पहले और तीसरे चरण में १२ मात्राएँ रख दी गई हैं। राधिका छन्द में अन्तरा देकर ६ पदों का नया छन्द प्रचलित किया है। इस प्रकार बंगला के पयार छन्द (८+६ वर्ण) का उन्होंने सर्वप्रथम प्रयोग किया। भारतेन्दु काल में उर्दू के छन्द भी हिन्दी में व्यवहृत हुए।[1]

द्विवेदी-युग पुनरुत्थान काल है। इस युग में संस्कृत के वर्ण-वृत्तों का पुनरुत्थान हुआ। आचार्य द्विवेदी से लेकर मैथिलीशरण, कामताप्रसाद, रामचरित उपाध्याय, लोचनप्रसाद पाण्डेय, गिरधर शर्मा आदि सभी कवियों ने इस पथ का अनुसरण किया। संस्कृत के गण-वृत्तों में भी अन्त्यानुप्रास का निर्वाह किया गया, क्योंकि यह हिन्दी की अपनी प्राचीन निधि थी, जिसका मोह इन कवियों को नहीं छूटा था। द्विवेदी जी महाराष्ट्री काव्य की प्रगति से बहुत प्रभावित थे तथा उसमें वर्ण-वृत्तों का अधिक प्रवाह देखकर उन्होंने हिन्दी के कवियों को भी वर्ण-वृत्तों की रचना की ओर प्रेरित किया था। मराठी भाषा में वर्ण-वृत्तों का उत्कर्ष देखकर द्विवेदी जी में हिन्दी के प्रति स्पर्धा का भाव जाग्रत हुआ था—

'महाराष्ट्र भाषा देव नागरी से अच्छी दशा में है। इस भाषा के प्रसिद्ध कवियों के निरीक्षण से यह विदित होता है कि उसमें गण-वृत्त बड़े विस्तार से प्रयुक्त हैं। इस समय में इस भाषा के कवियों में विरले ही ऐसे हैं जो मात्रा छन्दों का प्रयोग करते हैं।[2]

इस प्रकार द्विवेदी जी के प्रोत्साहन से हिन्दी में वर्ण-वृत्तों का प्रयोग

१—देखिए, नागरीप्रचारिणी पत्रिका (भारतेन्दु अंक), श्री चन्द्राकर शुक्ल, भारतेन्दु का छन्द योजना।

२—ऋतु तरंगिणी की भूमिका।

अत्यन्त क्षिप्र गति के साथ हुआ, जिसका पूर्ण उत्कर्ष हरिऔध जी के प्रियप्रवास में दृष्टिगोचर हुआ।

द्विवेदी युग में संस्कृत के वर्ण-वृत्तों का जो प्रचार हुआ, उसकी प्रतिक्रिया आलोच्यकाल में आरंभ हुई। वर्ण-वृत्तों में 'गण' की कठोरता के बन्धन ने कवि-चेतना में विरोध की प्रवृत्ति उत्पन्न कर दी। 'हिन्दी का संगीत, केवल मात्रिक छन्दों ही में अपने स्वाभाविक विकास तथा स्वास्थ्य की संपूर्णता प्राप्त कर सकता है। उन्हीं के द्वारा उसमें सौन्दर्य की रक्षा की जा सकती है। वर्ण-वृत्तों की नहरों में उसकी धारा अपना चंचल नृत्य, अपनी नैसर्गिक मुखरता, कलकल-छलछल तथा अपने क्रीड़ा, कौतुक, कटाक्ष एक साथ ही खो बैठती है।[1]

इससे सिद्ध है कि भारतेन्दु युग से ही छन्दों की दिशा में नये प्रयोग होने लगे थे तथा कवि-चेतना भावाभिव्यक्ति के लिए नये-नये पथों का अन्वेषण करने में संलग्न थी।

छन्द तथा परिवर्तन की प्रक्रिया

आलोच्यकाल में छन्द योजना के प्रयोगों का विवेचन करने से पहले परिस्थिति विशेष छन्दों की परिवर्तन की प्रक्रिया पर कुछ विचार कर लेना आवश्यक है। छन्द क्या है? लय का मर्यादित रूप। छन्द में आवृत्ति और भावान्वित की प्रधानता होती है। परन्तु उसका प्राण-तत्त्व लय है। लय के विकास में सहजात प्रवृत्ति के साथ युग और सामाजिक अभिरुचि का भी योग रहता है। देश और काल के परिवर्तन छन्द के लय में भी परिवर्तन होता रहता है। छन्द की भिन्नता पर विचार प्रकट करते हुए पन्त जी लिखते हैं "भौगोलिक स्थिति, शीत-ताप, जल-वायु, सभ्यता आदि के भेद के कारण संसार की भिन्न-भिन्न भाषाओं के उच्चारण" संगीत में भी विभिन्नता आ जाती है। छन्द का भाषा के उच्चारण, उसके संगीत के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है।[2]

इससे स्पष्ट है कि भौगोलिक एवं सांस्कृतिक कारणों से छन्दों की लय में परिवर्तन हो जाता है। जातीय संस्कार एवं सामाजिक संबंधों का प्रभाव व्यक्ति की चेतना पर अवश्य पड़ता है। इसी कारण भिन्न-भिन्न समाजों की रुचि एवं प्रवृत्ति में भी भिन्नता आ जाती है। इसी से भाषा, उच्चारण-संगीत

१—देखिए, सुमित्रानन्दन पंत, पल्लव-भूमिका, पृ० २२, २३।

२—वही, पाँचवाँ संस्करण, पृ० २१।

लयान्विति, स्वराघात में भी भेद हो जाता है। अतः प्रत्येक समाज की भाषा और उसकी लय अन्य समाज से नहीं मिलती है।

सामन्तीयुग के जीवन में नियम और अनुशासन कठोर होते हैं। उसके छन्द और लय में भी इसका प्रभाव लक्षित होता है। पूँजीवादी युग में सामन्ती युग का ढाँचा बदल जाता है। अतएव ऐसे युग में छन्दों की कुछ प्राचीन परंपरायें चलती रहती हैं और कुछ नई परिस्थितियों से नई चेतना लेकर प्रादुर्भूत होती है। इस प्रकार ह्रास-विकास, क्रिया-प्रतिक्रिया के कारण भाषा, संगीत एवं छन्दों में परिवर्तन चलता रहता है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में युग प्रवृत्ति तथा परिस्थितियों के कारण जब-जब परिवर्तन आया है, छन्द, लय और भाषा में भी भिन्नता आ गई है।

रीतिकाल की सामन्ती संस्कृति ने कवित्त, सवैया, दोहा, सोरठा के रूप में अपने को विकसित किया था। भारतेन्दु युग में इसका ह्रास होने लगा तथा विभिन्न प्रकार के हिन्दी, संस्कृत, बंगला, उर्दू के छन्द एवं लोक गीतों की ध्वनियों में युग की हृततंत्री की झंकार गूँज उठी।

इससे सिद्ध है कि समाज, संस्कृति एवं युग-प्रवृत्ति का प्रभाव व्यक्ति के मानस को आलोड़ित करता है, उसकी सहजात प्रवृत्तियों, भावों एवं आवेगों को उद्वेलित करता है, जिसके कारण भाषा, छन्द एवं लय में विभिन्नता उत्पन्न होती है।

छायावाद युग का आरम्भ प्रथम महायुद्ध की समाप्ति से होता है। यह वह समय था जब राष्ट्रीय आन्दोलन अपनी जड़ें पकड़ रहा था। अंग्रेजी साम्राज्यवाद से मुक्त होने के लिए राष्ट्रीय चेतना अपने पंख फड़फड़ा रही थी। समाज में सरकार के प्रति अनिश्चय और अविश्वास की लहर उठ रही थी। वैयक्तिक चेतना राजनीतिक बन्धनों से मुक्ति पाने के लिए प्रयत्नशील थी। ऐसे युग में कवि और कलाकार अपने मनोजगत् में विलक्षण स्वातंत्र्य-सुख का अनुभव करने लगे। उधर अंग्रेजी साहित्य का प्रभाव भी बढ़ने लगा। अंग्रेजी कवि शेली, कीट्स, वर्ड्सवर्थ, ब्राउनिंग, स्विनबर्न, वाल्टह्विट मेन जिस स्वच्छन्दतावादी कवि काव्य प्रवृति को लेकर चले थे, छायावादी भी उसी पथ का अनुसरण करने लगे। फलतः पुराने काव्यादर्श, काव्यानुशासन, छन्दोविधान, सभी में परिवर्तन के चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे। परिवर्तन की यह प्रक्रिया केवल हिन्दी में ही नहीं, भारत की सभी साहित्यिक भाषाओं में प्रकट हुई। अमित्राक्षर छन्द (ब्लैंकवर्स) का प्रयोग सबसे पहले बंगला में आरंभ हुआ, फिर हिन्दी में आया।

आलोच्यकालीन कविता में तुक, अन्त्यगति, अन्तरनुप्रास, लय तथा

स्वराघात सम्बन्धी छन्दों के अनेक प्रयोग हुए हैं। इनके अतिरिक्त उर्दू, बंगला तथा अंगरेजी छन्दों के लय तथा प्रवाह के आधार पर अनेक प्रकार के छन्दों के प्रयोग हुए हैं। नीचे इनका अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है—

(१) तुक

छन्दों में नये प्रयोगों की दिशा में अन्त्यानुप्रास का त्याग सबसे पहला कार्य है। कविता कौमुदी में पं० रामनरेश त्रिपाठी ने लिखा है कि हिन्दी में भिन्न तुकान्त कविता का श्रीगणेश पहले-पहल बाबू जयशंकर प्रसाद जी ने किया है। उनका यह छन्द २१ मात्राओं का है। प्रसाद जी की 'महाराणा का महत्व' नामक कविता इसी अतुकान्त छन्द में लिखी गई है। मैथिलीशरण जी ने एक दूसरे प्रकार के भिन्न तुकान्त का प्रयोग किया है। यह वर्णिक छन्द है जिसके प्रत्येक चरण में १५ अक्षर होते हैं। उनके वीरांगना काव्य के अनुवाद में यही छन्द प्रयुक्त हुआ है। अतुकान्त कविता का तीसरा प्रयोग अयोध्यासिंह उपाध्याय ने अपने प्रिय प्रवास में किया है। इसकी रचना संस्कृत के गण-वृत्तों के आधार पर है। आगे चल कर भिन्न तुकान्त कविता का प्रयोग करने में सुमित्रानन्दन पंत, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', सियारामशरण गुप्त, अनूप शर्मा, मोहनलाल महतो 'वियोगी' आदि कवियों ने यथेष्ट रुचि प्रदर्शित की। सुमित्रा-नन्दन पन्त का 'ग्रन्थि' निराला जी की 'परिमल' की तीसरे खंड की कवितायें इसके सफल उदाहरण हैं। गुप्त जी का 'सिद्धराज', मोहनलाल महतो का 'आर्यावर्त, हरिऔध जी के 'चुभते चौपदे', 'चोखे चौपदे' और 'बोलचाल' तथा अनूप शर्मा का 'सिद्धार्थ' अतुकान्त छन्दों में लिखे गये हैं। मात्रिक, वर्णिक तथा गण वृत्तों में यह छन्द पूर्ण रूप से सफल हुआ है। इसकी सफलता का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि आधुनिक काल में इसकी नवीन परम्परा स्थापित हो चुकी है तथा इसमें प्रबन्ध एवं मुक्तक सभी प्रकार के काव्यों की रचना हुई है।

(२) अंतर्यति

इसके अन्तर्गत चरण के मध्य में कहीं पर भी यति का सन्निवेश किया जाता है। इसका कोई नियम नहीं है। गति और प्रवाह ही इसके नियामक हैं। विराम अथवा आड़ी लकीर के द्वारा इसका रूप स्थिर किया जाता है। एक उदाहरण से इसको स्पष्ट किया जाता है—

'बोला हँस बाल—'माँ, तुम्हें जो मनःपूत हो,
बाधा नहीं देगा कभी मेरा तर्क उसमें,

जो तुम्हारी इच्छा।' तब राजमाता बोली यों—
'किन्तु अब रात हुई, मेरे ही अतिथि हो,
मैं भी जा रही हूँ सोमनाथ, साथ चलना।'

—सिद्धराज

आधुनिक प्रयोगवादी कवियों की रचनाओं में अन्तर्यति का प्रयोग अधिकता से पाया जाता है। अज्ञेय जी की 'वार का गज़र,' 'वर्ग-भावना' और 'चेहरा उदास' कविताओं में इसके प्रयोग मिलते हैं।

(३) अंतरनुप्रास

इसमें चरण के बीच-बीच में अनुप्रासों का सन्निवेश किया जाता है। इसके कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

(क) तुम तुंग हिमालय श्रृंग और मैं चंचल गति सुर सरिता।

—निराला

(ख) ठहर, ठहर, आततायी। जरा सुन ले
मेरे क्रुद्ध वीर्य की पुकार आज सुन जा
रागातीत, दर्पस्फीत, अतल, अतुलनीय,
मेरी अवहेलना की टक्कर सहारा ले—
क्षण भर स्थिर खड़ा रह ले—
मेरे दृढ़ पौरुष की एक चोट सह ले।
नूतन प्रचण्डतर स्वर से
आततायी आज तुझको पुकार रहा मैं—
रणोयत दुर्निवार ललकार रहा मैं—
कौन हूँ मैं!
तेरा दीन दुःखी पद-दलित पराजित
आज जो क्रुद्ध सर्प-से अतीत को जगा
'मैं' से 'हम' हो गया।

—अज्ञेय

(ग) गा रे गा हरवाहे दिलचाहे वही तान
खेतों में पका धान
मंजरियों में फैला आमों का गंध-ध्यान
आज बने हैं कल के ज्यों निशान,
फूलों में फलने के हैं प्रमाण।
खेतीहर लड़की की भोली-सी आँखों में, निबुओं की फाँकों में,

मुस्काता अज्ञान, हँसता है सब जहान,
खेतों में पका धान ।

—प्रभाकर माचवे

ऊपर की कविताओं के रेखांकित पदों में अन्तरनुप्रास की प्रवृत्ति लक्षित होती है। पन्त की छाया शीर्षक कविता में—"कौन कौन तुम परिहृत वसना, म्लानमना, भूपतिता सी" इसका प्रयोग प्रचुरता से हुआ है।

(४) मुक्त छन्द

इसका प्रयोग दो रूपों में हुआ है—(१) छन्द तथा लय युक्त (२) केवल लय युक्त।

मर्म-पीड़ा के हास, १२ मात्रा
रोग का है उपचार, १२ मात्रा
पाप का भी परिहार, १२ मात्रा
है अदेह सन्देह, नहीं है इसका कुछ संस्कार। २७ मात्रा,

—पन्त

इसके प्रथम तीन पाद तोमर छन्द के हैं और अन्तिम पाद सरसी छन्द का है। दो छन्दों के मेल से यह निर्मित है। पन्त के पल्लव की उच्छ्वास, आँसू, परिवर्तन, कविताओं में विशेषतः विभिन्न छन्दों के योग से बने हुए संयुक्त छन्द हैं। 'परिवर्तन' में २४ मात्रा के रोला के साथ १२, १३, १६ मात्राओं वाले छन्दों के मेल से नये छन्दों को संघटित किया गया है—

अहे निष्ठुर परिवर्तन, = १३ मात्राएँ
तुम्हारा ही ताण्डव नर्तन, = १५ मात्राएँ
विश्व का करुण विवर्तन, = १३ मात्राएँ
तुम्हारा ही नयनोन्मीलन, = १५ मात्राएँ
निखिल उत्थान, पतन, = ११ मात्राएँ

—पन्त

इसके पादों में तीन प्रकार के छन्दों का योग है। सिद्ध है कि उपर्युक्त छन्दों का प्रत्येक चरण किसी-न-किसी नियत छन्द के आधार पर बना है तथा उसमें लय भी अन्तर्निहित है। छन्द और लय का घनिष्ठ संबंध है। इन छन्दों में नियमित पादों को घटा-बढ़ा कर तथा विषम मात्राओं के पादों को जोड़कर बहुत कुछ स्वच्छन्दता से काम लिया गया है, परन्तु छन्द का अस्तित्व प्रत्येक पाद में मिलता है। इसी कारण पन्त जी ने इसे स्वच्छन्द छन्द कहा है।

मुक्त छन्द का दूसरा प्रकार वह है, जिसमें किसी प्रकार का छन्द नहीं

है। इसका आधार केवल लयान्विति है। इस प्रकार के छन्द को प्रचलित करने का श्रेय निराला जी को है—

> 'वह तोड़ती पत्थर,
> देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर—
> कोई न छायादार
> पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार'
>
> —निराला

इस कविता में निराला जी ने केवल लय पर ध्यान रखा है। इसकी पहली पंक्ति में जो लय उठती है, वह 'पत्थर' शब्द के लम्बे उच्चारण में कुछ देर तक गूंजती है। इस प्रकार प्रत्येक पाद की मात्रा की कमी को उसके स्वरों के विलम्बित उच्चारणों से पूरा किया जाता है। इसमें छन्द का स्थान संगीत ने ले लिया है। इस प्रकार की छन्द-मुक्त रचना पर बंगला का प्रभाव है, जिसमें शब्दों को खींच-तान कर मात्राओं की कमी को लय से पूरा करने का प्रयत्न है।

'परिमल' के तृतीय खंड की कविताएँ इसी शैली में रचित हैं। अनामिका की प्रेयसी, रेखा, दिल्ली, क्षमा-प्रार्थना, गाता हूँ गीत मैं तुम्हें ही सुनाने को तथा 'नये पत्ते' की कविताओं में मुक्त छन्द का प्रयोग है। प्रसाद जी ने 'लहर' की अन्तिम, 'शेरसिंह का शस्त्र समर्पण, 'पेशोला' की प्रतिध्वनि और प्रलय छाया में यही छन्द रखा है। निराला जी ने इस छन्द को प्रचलित करने में सबसे अधिक साहस प्रदर्शित किया। प्रारंभ में इस छन्द को 'रबर छन्द', केंचुआ छन्द, कंगारू छन्द कहकर उपहास किया गया। आचार्य शुक्ल स्वयं इस प्रकार की मुक्त रचना के घोर विरोधी थे। इसे इन्होंने अमेरिका के कवि वाल्ट ह्विटमैन की नकल बतलाया है जो बंगला के माध्यम से हिन्दी में आई है। ऐसी रचनाओं में छन्दोव्यवस्था का ही नहीं बुद्धि तत्व का भी प्रायः अभाव है[१]।

कहना न होगा कि प्रारंभ में इस छन्द की अत्यधिक छीछालेदर हुई। परन्तु निराला जी ने इसका निर्द्वन्द्वता से सामना किया। वे परिमल की भूमिका में लिखते हैं—'मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यों की मुक्ति कार्यों से छुटकारा पाना और कविता की मुक्ति छन्दों के शासन से अलग हो जाना है। 'इस प्रकार मुक्त छन्द के द्वारा उन्होंने कविता

१— रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, ८वाँ संस्करण, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, पृ० ६४१।

के स्वातंत्र्य का उद्घोष सुनाया और इस प्रकार के काव्य की उपादेयता के विषय में कहते हैं—

"मुक्त काव्य कभी साहित्य के लिये अनर्थकारी नहीं होता, किन्तु उससे साहित्य में एक प्रकार की स्वाधीन चेतना फैलती है, जो साहित्य के कल्याण की ही मूल होती है[१]।"

निराला जी ने मुक्त छन्द की प्रवृत्ति को सिद्ध करने के लिए गायत्री आदि वैदिक मंत्रों के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। वस्तुतः वे इस विचार के थे कि छन्द के पूर्वाग्रह को लेकर चलने से भाव का नाश हो जाता है। गण, मात्राओं और अन्त्यानुप्रास का बन्धन कवि के स्वतंत्र भाव प्रवाह में बाधक होता है। छन्द कविता का अनिवार्य धर्म नहीं है। बिना छन्द के भी उत्तम काव्य की सृष्टि हो सकती है। छन्द तो काव्य का साधन मात्र है। मूल वस्तु है, भाव। छन्द तभी तक आवश्यक है, जब तक उससे भावोत्कर्ष में सहायता मिलती हो। यदि वह भाव के स्वच्छन्द प्रवाह में बाधा डालता है तो उसका परित्याग भी हो सकता है। निराला जी छन्द को कविता-कामिनी के पैरों की बेड़ियाँ समझते थे। कविता को छन्द के कठोर बन्धन से मुक्त करने के लिये उन्होंने भरसक प्रयत्न किया। उन्हें इस क्षेत्र में पर्याप्त सफलता मिली। उसी के परिणामस्वरूप आज कवियों का एक विशाल वर्ग मुक्त छन्द के माध्यम से काव्य रचना करने में प्रवृत्त है। वर्तमान युग की छायावादी, प्रगतिवादी, राष्ट्रीयतावादी तथा प्रयोगवादी—सभी श्रेणी के कवियों ने इसे अपनी कविता के लिए चुना है। यह प्रयोग इतना सफल हुआ है कि इसकी नवीन परंपरा चल पड़ी है।

मुक्त छन्द में निराला जी किसी प्रकार का नियम स्वीकार नहीं करते। मुक्ति का अर्थ है, बन्धनों से छुटकारा पाना। अतएव मुक्त काव्य सभी प्रकार के गण, मात्रा, तुक संबंधी नियमों से मुक्त होता है। इसमें केवल प्रवाह का ध्यान रखा जाता है। गति ही इसका प्राण है। यह दो रूपों में प्रचलित है—मात्रिक और वर्णिक।

खंडहर खड़े हो तुम आज भी!	=	१६ मात्रा १२ अक्षर
अद्भुत अज्ञात उस पुरातन के मलिन साज।	=	२३ मात्रा १८ अक्षर
विस्मृति की नींद से जगाते हो क्यों हमें	=	२३ मात्रा १४ अक्षर
करुणाकर, करुणामय गीत सदा गाते हुए!	=	२५ मात्रा १८ अक्षर

१—देखिए, परिमल की भूमिका, पृ० ६।

इसकी पंक्तियों की लय मात्राओं के आश्रित है। पहले पाद में १६, दूसरे और तीसरे में २३-२३ तथा चौथे पाद में २५ मात्राएँ हैं।

विजन-वन-वल्लरी पर
सोती थी सुहाग भरी
स्नेह-स्वप्न-मग्न अमल-कोमल तनु तरुणी
जुही की कली।

इसकी दूसरी पंक्ति में ८ अक्षर हैं और पूरे छन्द में कवित्त के समान गति है। अतः यह वर्णिक मुक्त छन्द है।

मुक्त छन्द को प्रवर्तित करने के लिए निराला जी को पुरानी परंपरा से खुलकर विद्रोह करना पड़ा था। इसी से वे क्रान्तिकारी कवि प्रसिद्ध हुए। मुक्त छन्द को अग्रसर करने में निराला, पन्त, प्रसाद, उदयशंकर, भगवतीशरण, तथा अज्ञेय स्कूल के सभी कवियों का योग है।

(२) उर्दू छन्दों के प्रयोग

उर्दू भाषा के छन्दों में वर्ण और मात्राओं का विचार नहीं है। गुरु वर्ण के स्थान पर दो लघु वर्णों का प्रयोग किया जा सकता है। उर्दू पद्य के हर एक मिसरे में वजन पर ध्यान रखा जाता है। इसी के अभ्यास करते रहने से कविता में अक्षर और मात्रा आप-से-आप ठीक आ जाते हैं। हिन्दी की दृष्टि से उर्दू छन्दों में गण और अक्षरों का क्रम नहीं होता। सभी छन्द मात्रिक होते हैं।

उर्दू बह्रों के वजन सुनिश्चित हैं, जिनके आधार पर काव्य रचना की जाती है। उर्दू की प्रचलित लय बह्रें इस प्रकार की हैं।

(१) फायलातुन, फायलातुन, फायलातुन ... पीयूष वर्ष
(२) फायलातुन, फायलातून, फायलातुन फायलात् ... शुद्ध गीता
(३) फऊलुन, फऊलुन, फऊलुन फऊल ... भुजंगी
(४) मफऊल, फायलुतुन, मफऊल, फायलातुन ... दिगपाल
(५) फऊलुन, फऊलुन, फऊतुन, फऊलुन ... भुजंगप्रयात

शेर, गजल, रुबाई, कसीदा, मरसिया, मुसल्लस, मुखम्मस आदि उर्दू के काव्य रूप हैं।

आधुनिक हिन्दी कविता में उर्दू के छन्दों का प्रयोग भारतेन्दु और प्रतापनारायण मिश्र ने सबसे पहले आरंभ किया था। इसके पश्चात् हरिऔध, दीन, सनेही, मन्नन द्विवेदी गजपुरी ने विशेष रूप में इस ओर अपनी रुचि

प्रदर्शित की। हरिऔध जी ने अपने चौपदों में उर्दू बह्रों का प्रयोग बड़ी सफलता से किया है।

प्यार हूवे लोग कहते है उमंग,
जो कहो अपना कलेजा काढ़ दूँ।'
पर अगर वे निज कलेजा काढ़ दें,
तो कहेगा वह कढ़ा मतलब से हूँ।

—मतलब की दुनियाँ

इसकी रचना फायलातुन, फायलातुन, फायलुन बहर में हुई है, जिसकी लय हिन्दी के पीयूष वर्ष के समान है।

लाला भगवानदीन ने अपने वीर पंचरत्न में उर्दू छन्दों का ही प्रयोग किया है—जिसका वजन है, 'मफ़ऊल, मफ़ाईल, मफ़ाईल, फ़ऊलुन।

परताप यह सुन मान की अभिमान भरी बात,
वीरों की तरह मान को दी बात की इक लात
जिस बात से बस मान भी ज़िन खाके हुए मात,
दिखलाते बनी और अधिक कुछ न करामात
गंभीर सी आवाज में राना ने कहा यों,
जो कर के दिखाना हो कहते हो भला क्यों!

—दीन

यह हिन्दी का 'विहारी' छन्द है और छः पद होने के कारण यह षटपदी है। गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही,' नाथूराम शंकर, 'हरिऔध', मैथिलीशरण, रामनरेश त्रिपाठी, प्रसाद, निराला, अज्ञेय, शमशेर, भारती ने उर्दू के शेर, गजल तथा रुबाई की तर्ज पर काव्य रचना की है।

रुबाई

इसके चार पद होते हैं। यह अरबी, फारसी का छन्द है। इसमें नीति और उपदेश की कविता बहुत हुई है। उमर खैयाम की रुबाइयों ने सबसे अधिक प्रसिद्धि पाई है। रुबाई के प्रथम, द्वितीय और चतुर्थ पदों में तुक रखा जाता है, तीसरा पद तुकहीन होता है। (क+क+ख+क) सबसे पहले बाबू मैथिलीशरण ने उमरखैयाम की रुबाइयों का हिन्दी अनुवाद किया। आज कल के प्रयोगवादी कवियों ने इन्हें बहुत अपनाया है।

हम अपने ख्याल को सनम समझे थे
अपने को ख्याल से भी कम समझे थे

'होना था'—समझना न था कुछ भी 'शमशेर',
होना भी कहां था वो जो हम समझे थे।'

—शमशेर

मुसल्लस

इस छन्द में तीन पद होते हैं, जिसे हिन्दी में तिकड़ी कह सकते हैं। पाँच पद के छन्द को मुखम्मस, छपद वाले छन्द को मुसद्दस, सात पद वालों को मुसब्बा, आठ पद वालों को मुसम्मन, नौ पद वालों को मुतस्सा और दस पद वालों को मुअश्शर कहते हैं। उर्दू में मौलाना हाली के मुसद्दस (षटपदी) बहुत प्रसिद्ध हैं। इससे प्रभावित होकर हरिऔध, सनेही, माखनलाल चतुर्वेदी, भगवान-दीन ने हिन्दी के मात्रिक छन्दों के आधार पर षटपदियां लिखी। पं० बदरी-प्रसाद भट्ट ने उर्दू शैली में मुसद्दस की रचनायें प्रस्तुत कीं।[1] पर ये प्रयत्न आधुनिक काल से पूर्व के हैं। आगे चल कर यह प्रयत्न लुप्त हो गया।

(३) बँगला छन्दों का प्रयोग

बंगला भाषा के अध्ययन से उसके कुछ प्रचलित छन्द हिन्दी में भी आ गये। प्रसाद, पन्त, निराला और मैथिलीशरण गुप्त ने विशेष रूप से बंगला छन्दों का प्रभाव ग्रहण किया है। बंगला का 'पयार' छन्द सबसे अधिक प्रसिद्ध है। सर्वप्रथम भारतेन्दु जी ने इसका प्रयोग ब्रज भाषा की कविता में किया था। प्रसाद जी भी इस छन्द की ओर आकृष्ट हुए और उन्होंने चित्राधार के अन्तर्गत 'सान्ध्यतारा' कविता का पयार छन्द में सृजन किया था।

माईकेल मधुसूदनदत्त का प्रसिद्ध काव्य-ग्रंथ 'मेघनाद वध' पयार छन्द में ही लिखा गया है। बंगला की रीति से यह १४ अक्षर का वर्ण वृत्त है। जिसका अन्त्यवर्ण गुरु है। यह भिन्न तुकान्त शैली में प्रचलित है। मेघनाद वध में एक उदाहरण दिया जाता है—

शुनेछि कैलाशपुर कैलास निवासी,
व्योम केश स्वर्णासने वसिस्गौरी सने।
आगम पुराण वेद पंच तत्त्व कथा,
पंच मुखे पंच मुख कहे न उमारे।

बँगला का यह सुप्रचलित छन्द अमित्राक्षर के नाम से प्रसिद्ध है। हिन्दी में 'वीरांगना' और मेघनाद वध का अनुवाद मैथिलीशरण गुप्त ने १४ अक्षर के स्थान पर १५ अक्षर कर के इसी छन्द में किया है। बंगला में विभक्त्यन्त

१—डा० सुधीन्द्र—हिन्दी कविता में युगान्तर, पृ० ६३—६४।

पद पाये जाते हैं, किन्तु हिन्दी में विभक्तियाँ पृथक् अस्तित्व रखती हैं। बँगला भाषा में विभक्ति पद में ही संयुक्त रहती है (यथा पंच मुखे, स्वर्णासने-पंच मुख में स्वर्णासन पर)। हिन्दी में विभक्ति को अलग रखने की कठिनाई के कारण ही गुप्त जी ने कदाचित् एक वर्ण और अधिक रक्खा है। गुप्त जी ने पयार छन्द को भिन्न तुकान्त के रूप में ही ग्रहण किया है। प्रसाद जी ने तुक के साथ। गुप्त जी को इस छन्द की रचना में इतना कौशल प्राप्त हुआ है कि उन्होंने 'सिद्धराज' की रचना में इसी छन्द को प्रयुक्त किया। 'आर्यावर्त' की रचना में मोहनलाल महतो 'वियोगी' ने इसी अमित्राक्षर छन्द का प्रयोग करके इसका ऊर्जस्वित रूप प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त 'परिमल' की रचना में यत्रतत्र स्वच्छन्द छन्द के रूप में इसकी झलक दिखाई पड़ती है।

बँगला और हिन्दी में उच्चारण-साम्य न होने के कारण इस प्रकार के प्रयत्न अत्यन्त विरल हैं। अतः हिन्दी में प्रयुक्त बँगला छन्दों की कोई स्थिर परंपरा नहीं है।

(४) अंग्रेजी छन्दों के प्रयोग

अंग्रेजी छन्द शास्त्र की कुछ अपनी विशेषताएँ हैं। अनेक प्रत्येक पाद में कुछ फुट होते हैं जिनमें दो लयान्वितियाँ (सिलेबिल) होती हैं। यह दोनों या तो दीर्घ (– –) या एक लघु और एक गुरु (– –) या दोनों लघु (– –) अथवा इन्हीं के उल्टे सीधे मेल से विभिन्न प्रकार की लयान्वितियाँ होती हैं तथा उन्हीं के आधार पर छन्द का माप होता है। छन्द की गति के लिये लयान्वितियों पर बल दिया जाता है, जिसे ऐक्सेंट कहते हैं।

वीरत्वपूर्ण कविता के लिए 'आयाम्बिक ट्रेटामीटर' का प्रयोग किया जाता है तथा बैलड अथवा प्रबन्ध काव्य में छोटे-छोटे छन्द होते हैं, जिनमें प्रायः दो आयम्बिक ट्रेटामीटर और बीच-बीच में दो आयम्बिक ट्राटामोटरों की योजना रहती है। चौदह पंक्तियों के छन्द का नाम सौनेट है, जिसकी सब पंक्तियाँ निर्धारित लम्बाई की होती हैं तथा लय का साम्य रहता है। अंग्रेजी में अन्त्यानुप्रास-हीन कविता (ब्लैंक वर्स) का अधिक प्रयोग होता है। फ्री वर्स लायदे का नवीनतम आविष्कार हुआ है जिसका इन दिनों बहुत अधिक प्रचार है।

अंग्रेजी का छन्द उच्चारण के घात (ऐक्सेंट) पर आधारित है। उसकी प्रकृति अन्त्यानुप्रासहीन है। बंगला के माध्यम से अंग्रेजी छन्द का प्रभाव हिन्दी कविता पर त्रिविध रूप में आया है—(१) अतुकान्त (ब्लैंक वर्स), (२) मुक्त छन्द (फ्री वर्स) और (३) चतुर्दश पदी (सानेट)। ब्लैंक वर्स और फ्रीवर्स का विचार ऊपर हो चुका है। वर्तमान हिन्दी कविता में मुक्त छन्द का एक फैशन चल गया

है जिसकी सज्जा अंग्रेजी की लयान्विति के आधार पर रखी गई है। इस प्रकार के मुक्त छन्द, जिनमें न मात्रा का और न वर्ण का विचार है जो केवल लय के आधार पर ही अवलम्बित है, अंग्रेजी छन्दों के अनुकरण से बने हैं। उदाहरण के लिये एक छन्द पर्याप्त होगा—

> हम नदी के द्वीप हैं।
> हम नहीं कहते कि हमको छोड़ कर स्रोतस्विनी बह जाय।
> वह हमें आकार देती है।
> हमारे कोण, गलियां, अन्तरीप, उभार, सैकत, कूल।
> सब गोलाइयां उसकी गढ़ी हैं।
> मां है वह। है, इसी से हम बने हैं।
>
> —नदी के द्वीप, अज्ञेय

कहना न होगा कि मुक्त छन्द का यह रूप वर्तमान कवियों की रचनाओं में ही प्राप्त होता है। निराला ने जिस मुक्त छन्द का प्रयोग किया था, उसमें वर्ण, मात्रा और लयान्विति पर बराबर विचार रखा गया था। वर्तमान कवियों ने लय को भी उड़ा दिया है, तथा वे अंग्रेजी फ्री वर्स के अनुसार केवल स्वराघात या बल पर ही ध्यान रखते हैं।

इस प्रकार फ्रीवर्स (मुक्त छन्द) की तीन अवस्थाएं आलोच्यकाल में दिखाई पड़ती हैं। पहली अवस्था में तुक का बन्ध उड़ा दिया गया है, जिसमें प्रसाद, पन्त, तथा मैथिलीशरण का सबसे अधिक भाग है। दूसरी अवस्था में अनमिल संयुक्त छन्दों का प्रचार आरम्भ हुआ, किन्तु मात्रा और वर्णों का नियम बना रहा। इसमें भी प्रसाद, पन्त और निराला का सबसे बड़ा हाथ है। तीसरी अवस्था में तुक, मात्रा एवं वर्ण का भी अन्त हो गया। वर्तमान प्रयोगवादी कवियों में मुक्त छन्द का अन्तिम रूप ही अधिक प्रचलित है। हिन्दी में फ्रीवर्स का प्रचार अंग्रेजी कविता का ही परिणाम है[1]। वर्तमान कवियों ने इलियट पाउंड आदि कवियों से प्रभाव ग्रहण किया है।

प्रचलित मुक्त छन्द का विवेचन कर लेना समीचीन होगा।

मुक्त छन्द का विकास

मुक्त छन्द की प्रवृत्ति फ्रांस से आरम्भ होती है। आर्नोल्ड ह्विटमैन तथा

१—देखिए, रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ५९७। (सं० २०१४)

हैनले आदि अन्य कवियों ने भिन्न रूपों में इसकी भूमिका तैयार की। शनैः शनैः विश्व के विभिन्न साहित्यों में इसकी प्रगति दिखाई पड़ने लगी।

मुक्त छन्द में लय (उतार-चढ़ाव) का आधार होता है। इसमें कविता का मुक्त प्रवाह चलता है, जिसके चरण मुक्त होते हैं। इसकी रचना में कोई नियमित छन्द विधान नहीं होता। प्रत्युत् इसके पढ़ने में एक प्रकार का लय-रूप पाया जाता है। इसके संगीत में कोई नियमों का बन्धन नहीं है। इसी से वह मुक्त है। मुक्त छन्द का आधार न पाद है, न वर्ण, न मात्रा और न चरण। इसकी पंक्तियों में मुक्त लय (संगीत) का संतुलित प्रवाह होता है। लय के भीतर कवि की इच्छानुसार पंक्तियाँ गतिशील रहती हैं। कविता का प्रवाह तीव्र, मन्द या अवरुद्ध-सा प्रतीत हो सकता है किन्तु ये सब एक केन्द्रीय गति का अनुसरण करते हैं। इसके अन्दर लयात्मक गति होती है जो इसका मूल तत्व है। छन्द में नियमित चरण होते हैं, जिससे उसमें लयात्मक तत्व की एकरूपता आ जाती है। मुक्त छन्द में लयान्वित मुक्त, स्वच्छन्द और यथेच्छ होती है। मुक्त छन्द में लय की स्वतन्त्रता विशेष है। इसी कारण मुक्त छन्द में लय की एकरूपता नहीं होती है।

मुक्त छन्द के कवि भौतिक जगत के दृश्यों को एक भिन्न दृष्टि से देखते हैं तथा जो कुछ देखते हैं, उनको प्रभावों (इम्प्रेशन्स) को अंकित करने के लिये उन्होंने एक विशिष्ट माध्यम ढूंढ़ लिया है। उनमें इसका आग्रह है। वे उसकी स्वीकृति चाहते हैं। नयी कविता में यही है। (जगत में यथार्थ की सत्ता है) मनुष्य को वस्तुओं पर अपने भावों का आरोप करने की आवश्यकता नहीं है। उनका ध्येय है, वाह्य वस्तुओं के यथार्थ चित्रण का। अतः उनके कथन में स्पष्टता और तथ्यवादिता होनी चाहिए। यथार्थ शब्द से वस्तु का तुरन्त बोध हो जाता है और वह कवि के ऊपर पड़ने वाले प्रभाव को प्रगट कर देता है। लय प्रधान अतुकान्त कविता इस ध्येय को शीघ्र पूरा करती है क्योंकि इसके छन्द में परम्परागत भावात्मकता नहीं होती। इसके माध्यम से कवि के भाव स्पष्टता से पाठक तक पहुँच जाते हैं। इसका प्रवर्तक अमेरिका का कवि ह्विटमैन को माना जाता है जो प्रजातन्त्र के भाव से प्रेरित होकर मुक्त छन्द के माध्यम से अपने ओजस्वी विचारों को अभिव्यक्ति देने लगे थे। अंग्रेजी के प्रतीकवादी कवि और अति यथार्थवादी कवियों ने भी अपनी अस्वस्थ मानसिकता के संकुल उद्‌गारों को इसी छन्द के द्वारा प्रकट किया है। बँगला भाषा में रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने और हिन्दी में निराला ने मुक्त छन्द की परम्परा को आगे बढ़ाया। निराला जी ने स्वर-संकेतों से तथा लय के आरोह-अवरोहों से मुक्त छन्द में

अपने भावों के वेग को प्रदर्शित किया है। वस्तुतः मुक्त छन्द का आधार भावों का वेग ही है।

आज हिन्दी में मुक्त छन्द सब विरोधों को पार कर स्वस्थ परम्परा के रूप में विकसित हो चुका है। मुक्त छन्द में भावों का वेग, अनुमति की गहराई के साथ भाषा के संगीत में लय मय गति है प्रवाहित होता है। भावों के वेग, संतुलित लय एवं स्वरों के संगीत में बँधकर मुक्त छन्द का प्रवाह गद्य के कूलों को स्पर्श करता हुआ कलात्मक अभिव्यक्ति के साथ आगे को बढ़ता है। इससे गद्य को भी कलात्मक अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है तथा उसमें काव्योपयुक्त भावों को अभिव्यक्त करने की क्षमता बढ़ गई है। लय का संगीत इसमें अन्तः सलिला सरस्वती की धारा की तरह प्रच्छन्न रूप से बहता रहता है। मुक्त छन्द अपने सहज रूप में आत्मानुभूति, यथार्थ जीवनबोध तथा भावों मुक्त प्रवाह का परिचायक है। इसके प्रचार ने नये कवियों के लिए नए-नए छन्दों के प्रयोग का द्वार उन्मुक्त कर दिया है। यद्यपि अभी तक इसमें किसी काव्य ग्रंथ का सृजन नहीं हुआ, किन्तु इसकी संभावनाएं बहुत हैं और निकट भविष्य में उनके फलवती होने की पूर्ण आशा है।

किन्तु कुछ कवि भ्रम से इस छन्द को भावाभिव्यक्ति का सुगम कार्य समझने की भूल करते हैं। ऐसे ही कवियों ने भ्रान्त बातों को फैलाकर इस छन्द की गतिशील धारा को कलुपित किया है। मुक्त छन्द के नाम पर कुछ नए कवि कोरा गद्य लिख देते हैं, कुछ असंबद्ध भाव-चित्रों को विरामादि संकेतों से युक्त छोटे-बड़े वाक्यों में गूंथ कर विचित्र सृष्टि खड़ी कर देते हैं और कुछ अश्लील एवं कलुषित भाषा के प्रयोगों द्वारा अनर्गल प्रलाप करते हैं। इसी कारण प्रचलित मुक्त छन्द बदनाम हुआ है, तथा उस पर अराजकता,कृत्रिम और दुरूहता का दोप मढ़ा गया है।

हिन्दी में चतुर्दशपदी अंग्रेजी के सानेट का अनुकरण है। इसकी संपूर्ण रचना में एक ही छन्द का होना अनिवार्य है तथा इसे अष्टपदी और षट्पदी के दो भागों में विभाजित करने का प्रयत्न भी कई कवियों में पाया जाता है। हिन्दी में इसके लिए कोई भी छन्द सुनिश्चित नहीं है। अतः भिन्न-भिन्न कवियों ने इसकी भिन्न-भिन्न रूपों में रचना की है। हिन्दी में हरिऔध जी ने दो-एक चतुर्दशपदियाँ लिखी हैं, जिनमें प्रथम बारह पंक्तियाँ रोला की हैं और अन्तिम दो पंक्तियाँ उल्लाला की। तुकान्त भी हिन्दी का ही है। प्रसाद जी ने भी आरम्भ में 'वसन्त राका', 'स्वभाव', 'दर्शन' आदि कविताएँ चतुर्दशपदी में लिखीं। मैथिलीशरण गुप्त और सुमित्रानन्दन पन्त ने भी इस ओर कुछ रुचि

प्रदर्शित की किन्तु छन्द विन्यास की दृष्टि में कोई आकर्षण न देखकर लिखना छोड़ दिया[1]। उधर प्रभाकर माचवे ने कुछ सानेट लिखे हैं। परन्तु इस दिशा में प्रयत्न अत्यन्त विरल हैं।

(५) लोक धुनियों के प्रयोग

लोक धुनियों के अंतर्गत ख्याल, लावनी, दादरा, झूलना, कजली, रसिया, चौबोला, गजल, कव्वाली आदि आते हैं। भारतेन्दु युग के कवियों ने ग्राम्य गीतों के प्रयोग किए थे। स्वयं भारतेन्दु जी ने ख्याल, लावनी, कजली आदि धुनियों के आधार पर बहुत से गीतों की रचना की थी।[2] आगे चल कर श्रीधर पाठक, सत्यनारायण कविरत्न, बदरीनाथ, मन्नन द्विवेदी, देवीप्रसाद पूर्ण, सनेही, नाथूराम शंकर ने इस शैली में गीत लिखे, जिनमें गजल रसिया और कजली के लय की प्रधानता रहती थी। 'शंकर' ने विभिन्न छन्दों के मिश्रित रूप से अनेक प्रकार के नये गीतों की सृष्टि की, जिनमें भुजंगात्मक राजगीत, रुचिरात्मक राजगीत आदि अनेक प्रकार के गीतों की रचना की, जिनका संग्रह अनुराग-रत्न में मिलता है। रसिया की तर्ज पर उनका 'सांची मान सहेली परसों प्रीतम लैवे आवेगो' ब्रज भाषा का गीत बहुत प्रसिद्ध है। शंकर बड़े प्रतिभाशाली कवि थे। छन्द और गीतों के आकर्षण लयों के आधार पर नए-नए छन्द और गीतों की सृष्टि करना उनके बाएँ हाथ का खेल था। वर्ण और मात्राओं के नियमों का बराबर ध्यान रखते हुए मिश्रित छन्दों के जो उन्होंने प्रयोग किए, उनका साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने गीतों में भी वर्ण और मात्राओं के कठोर नियमों का एक साथ निर्वाह किया है।

जिस अविनाशी से डरते हैं	=	१६ मात्राएँ तथा	११ अक्षर
भूल देव जड़ चेतन सारे	=	,,	,,
जिसके डर से अम्बर बोले	=	,,	,,
उग्र मन्द गति मारुत डोले	=	,,	,,
पावक जले प्रवाहित पान	=	,,	,,
युगल वेग वसुधा ने धारे	=	,,	,,

इस गीत के प्रत्येक चरण में मात्रा और वर्णों का क्रम एक सा है। इस प्रकार के गीतों की रचना 'शंकर' की प्रतिभा के लिए संभव थी। अन्य कवियों

१—देखिए, डा० सुधीन्द्र, हिन्दी कविता में युगान्तर, पृ० ४३२।

२—देखिए, भारतेंदु ग्रंथावली, भाग २, पृ० ३८७—८८।

के लिए यह नितान्त कठिन है। इसलिये इसका कोई अनुकरण न कर सका।

लोक गीत की शैली में प्रसाद के 'झरना' में दो एक गीत मिलते हैं—

डाल पर बोलता है पपीहा,
हो भला प्राण धन तुम कहाँ ? हा !
आ मिलो हो जहाँ,
पी कहाँ ! पी ! कहाँ ?

इस पर उर्दू कव्वाली के तर्ज की छाप है। 'उपेक्षा करना' भी इसी प्रकार की रचना है।

आश्चर्य है कि जन गीतों की यह परंपरा जिसका भारतेन्दु युग में और द्विवेदी युग में इतना विकास हुआ था, आलोच्यकाल के आते-आते लुप्त होने लगी। छायावादी और प्रगतिवादी में लोकधुनियों के आधार पर रचित गीतों का एकान्त अभाव हो गया है। कदाचित् राष्ट्रीय आन्दोलन, सत्याग्रह और प्रतिक्रिया स्वरूप सरकारी दमन-चक्र लोक गीतों के स्वर को कुचलने में कारण रहा हो। इसमें सन्देह नहीं लोकधुनियों पर रचित गीतों में एक विचित्र मस्ती और फक्कड़-पन होता है। साथ ही उसकी भाषा साधारण बोलचाल की भाषा से मिलती-जुलती होती है। छायावादी-राष्ट्रीयतावादी युग में इन दोनों ही बातों का अभाव था।

वर्तमान काल के प्रगतिवादी-प्रयोगवादी कवियों ने जन-गीतों की ओर कुछ अभिरुचि दिखाना आरम्भ किया है।

द्वितीय महायुद्ध काल (१६४२-४७) नये काव्य-प्रयोगों का युग है। इसी समय 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' का नारा बुलन्द हुआ। राष्ट्र के महान नेता बन्दीगृह में डाल दिए गए। राष्ट्रीय आन्दोलन को कुचल दिया गया। इस समय हिन्दी के कवियों ने अपना स्वर बदला तथा जन-गीतों के माध्यम से वे नूतन भावों को अभिव्यक्ति देने लगे। निराला की एक कजली में जनता की बेवसी और निरोहता का कितना मार्मिक चित्रण है—

काले काले बादल छाये ना आये वीर जवाहर लाल।
पुरवाई की है फुफकारें, घन-घन को विष की बौछारें
हम हैं जैसे गुफा में समाये—ना आये वीर जवाहर लाल
महँगाई की बाढ़ बढ़ आई, गाँठ की छूटी गाढ़ी कमाई
भूखे नंगे खड़े शरमाये, ना आये वीर जवाहर लाल।
कैसे हम बच पाये निहत्थे, बहते गये हमारे जत्थे

राह देखते हैं भरमाये, ना आये वीर जवाहर लाल ।
कैसे कैसे नाग मँडराए न आए वीर जवाहर लाल ।
बिजली फनके मन को कौंधी, कर दो सीधी खोपड़ी औंधी ।
सर पर सर सर करते धाए, न आए वीर जवाहर लाल ।

जन गीतों की लय पर रचित कविताओं में प्रकृति के रमणीय चित्रों के अंकन के साथ मानव-हृदय की अनुभूतियों का भी मनोहर योग हुआ है । 'सुमन' के निम्नांकित गीत में कितनी मधुर व्यंजना है—

आज रात भर बरसे बादल ।
साँझ हुई नभ के कोने में कारे मेघा छाये,
ये विरहिन के ताप काम के शाप गरज इतराये ।
दीप छिपाये चली समेटे निशा दिशा का आंचल
अमराई अकुलाई सिहरी नीम हँस पड़े चलदल,
मुखरित मूक अटारी शापित यक्ष हो उठे चंचल
गमके मंद मृदंग बज उठी रिमझिम रिमझिम पायल ।
खिड़की से झीनी-झीनी बौछार बिखरती आई ।
अनायास ही किसी निठुर की याद दृगों में छाई ।
पानी बरसा कहीं किसी की बहा आंख का काजल ।

वर्तमान नयी पीढ़ी के कुछ कवि लोक धुनियों में काव्य रचना की ओर प्रवृत्त हुए हैं, जिनमें भवानी प्रसाद मिश्र, शंभूनाथ सिंह, वीरेन्द्र मिश्र, शमशेर, सुमन, गिरिजाकुमार, चिरंजीत, देवराज 'दिनेश' प्रधान हैं ।

आलोच्यकाल में छन्दों के सबसे अधिक प्रयोग हुए हैं । अमित्राक्षर छन्द, स्वच्छन्द छन्द, उर्दू छन्द, मुक्त छन्द एवं लोक-गीतों की ध्वनियों के छन्द आदि जितने भी प्रयोग हुए हैं, वे सब अधिकतर सफल हैं । अन्त्यानुप्रास-हीन छन्द का प्रयोग तो इतना सफल हुआ है कि उसमें उत्तमोत्तम मुक्त एवं प्रबन्ध काव्यों की सृष्टि हुई है । मेघनाद वध (हिन्दी अनुवाद), सिद्धराज, (मैथिलीशरण), ग्रंथि (सुमित्रानन्दन पंत), महाराणा का महत्व (जयशंकर प्रसाद) तथा आर्यावर्त (मोहनलाल महतो 'वियोगी') इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं । अन्त्यानु-प्रासहीन प्रबन्ध काव्य के क्षेत्र में ये अनुपम उपलब्धियां हैं । इसके अतिरिक्त सिद्धार्थ और वर्द्धमान (श्री अनूप शर्मा) भी अतुकान्त कविता की महत्वपूर्ण उपलब्धियां हैं । अतुकान्त मुक्तक रचनाओं में हरिऔध जी के 'चोखे चौपदे,' 'चलते चौपदे' और 'बोलचाल' प्रसाद जी की 'लहर' के पेशोला की प्रतिध्वनि, शेर सिंह का आत्म समर्पण, निराला का परिमल आदि महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं ।

मुक्त छन्द में काव्य सृष्टि हुई है और नई पीढ़ी के तरुण कवि बहुत कुछ लिख रहे हैं किन्तु इस में उपलब्धियां न्यून हैं। मुक्त छन्द के नाम पर कुछ कवियों ने गद्यमयी रचनाएँ लिख कर कविता को विकृत कर डाला है। इस दिशा में अभी तक किसी प्रौढ़ रचना के दर्शन नहीं हुए हैं। मुक्त छन्दों में 'विराम संकेतों से, अंकों और सीधी-तिरछी लकीरों से, छोटे-बड़े टाइप से, सीधे या उलटे अक्षरों से, लोगों और स्थानों के नामों से, अधूरे वाक्यों के प्रयोगों से भी अभी साधारणीकरण की समस्या हल नहीं हुई है। इन बहुविध प्रयोगों के होते हुए भी आज का पाठक उलझी हुई संवेदना की सृष्टि को समझने में अपने को असमर्थ पाता है। फिर भी इन प्रयोगों से कवि-चेतना की जागरूकता लक्षित होती है। लोकध्वनियों में रचना करने में भी कुछ अच्छी प्रतिभाएँ दिखाई पड़ रही हैं। नई पीढ़ी के तरुण कवि जन-भाषा के शब्दों से जन गीतों की लय में नई-नई रचनाओं की सृष्टि कर रहे हैं। इस दिशा में शंभुनाथ सिंह, वीरेन्द्र मिश्र, ठाकुरप्रसाद, भवानीप्रसाद मिश्र, रामविलास, गिरजाकुमार और भारती के नाम 'प्रमुख हैं। इन कवियों की रचनाओं में जन-युग का स्पन्दन है। इनका काव्य नई अनुभूति, नये जीवन-बोध एवं नव युग की आकांक्षाओं से अनुप्रेरित है। इनके प्रयोगों में एक सत्यान्वेशी का विश्वास है तथा ये उसी के सहारे नया पथ प्रशस्त करने में लगे हुए हैं।

निष्कर्ष यह है कि छायावादी काव्य भूमि में जो प्रयोग हुए हैं, वे अपेक्षाकृत .अधिक सफल हुई है। नई कविता के प्रयोग प्रयोग के लिए ही हैं। छायावादी काव्य के सामने नयी कविता की उपलब्धियाँ नगण्य हैं। फिर भी नई कविता की संभावनाएँ अधिक हैं तथा निकट भविष्य में नयी पीढ़ी के तरुण रचनाकारों से बहुत कुछ आशा है।

उपसंहार

उपसंहार

प्रबन्ध के प्रथम भाग में काव्य-संबंधी परंपराओं के क्रमिक विकास एवं आधुनिक हिन्दी काव्य में उनकी स्थिति पर विचार किया गया है तथा द्वितीय भाग में वस्तु, भाव एवं शैली-शिल्प की दृष्टि से काव्य के नवीन प्रयोगों की समीक्षा की गई है। प्रस्तुत अध्याय में प्रबन्ध में दिए हुए परंपरा और प्रयोगों के निष्कर्षों का उल्लेख तथा विवेचन किया जाता है।

काव्य की विषय-वस्तु के अध्ययन करने के उपरान्त यह परिणाम निकलता है कि कथानक एवं वस्तु-वर्णन की परम्परा वर्तमान काल में जीवित है तथा उसका यथेष्ट विकास भी हुआ है। प्राचीन प्रबन्ध काव्यों में कथा-वस्तु का वर्णन रस की दृष्टि में किया जाता था तथा कला का आलम्बन कोई विशिष्ट व्यक्ति चुना जाता था, जिसके गुण, कर्म एवं चरित्र से साधारण जन परिचित होते थे। इस प्रकार के विशिष्ट एवं वीर पुरुष ही कथा के नायक हो सकते थे, क्योंकि इससे रस-निष्पत्ति में पूर्ण सहायता मिलती थी। आलोच्यकाल के प्रबंध काव्यों में भी यह प्रवृत्ति पाई जाती है तथा विशिष्ट पुरुषों को कथा का नायक बनाने की दिशा में और अधिक विकास हुआ है। अन्तर केवल यह है कि प्राचीन काव्यों के नायक अधिकतर देवी-देवता एवं अवतार होते थे, किन्तु आधुनिक युग में उनका स्थान लोक-वन्य महान् पुरुष एवं इतिहास-प्रसिद्ध वीरों ने ले लिया है। नये युग ने देवताओं के स्थान पर मानवों को कथा-नायक के रूप में प्रतिष्ठित किया है (देखिए अध्याय ५)। यह आधुनिक युग के मानवतावादी दृष्टिकोण के प्रभाव के कारण हैं।

किन्तु यह प्रवृत्ति पचास प्रतिशत प्रबन्ध काव्यों में ही दृष्टिगत होती है। शेष काव्यों में नूतन काव्योन्मेष के दर्शन मिलते हैं। इनमें वस्तु-वर्णन रस-सापेक्ष न होकर चरित्र-चित्रण की प्रधानता है। कथा के नायकों का चयन सामान्य वर्ग में से किया गया है। फलतः कथा के नायकों में सामान्य नेता, स्त्री एवं अधम पात्रों को भी स्थान मिल गया है (देखिए अध्याय ६)। यह प्रवृत्ति अँगरेजी साहित्य तथा नये युग के प्रभाव से उत्पन्न हुई है, जिसके फल-स्वरूप विशिष्ट जनों के स्थान पर सामान्य जनों को भी काव्य में प्रधान पुरुष का स्थान मिला है।

आधुनिक कविता में पौराणिक कथानक एवं वस्तु-वर्णन की प्रवृत्ति का

ह्रास हो गया है। यद्यपि आलोच्यकाल में पौराणिक कथानकों के आधार पर रचित काव्य-ग्रन्थ भी विद्यमान हैं, तो भी इनकी संख्या गिनी-चुनी है तथा धीरे-धीरे वह भी लुप्त होती जा रही है। धार्मिक विषय, प्राकृतिक विषय तथा ऐतिहासिक विषयों का वर्णन प्रायः सभी प्रबन्ध काव्यों में मिलता है। इस दिशा में भी युगोचित नया विकास हुआ है। धार्मिक विषयों के अंतर्गत राष्ट्रप्रेम, दलितोद्धार एवं जनतांत्रिक विषयों का भी समावेश हो गया है। नीति एवं धर्म की मानव प्रेम की दृष्टि से नयी व्याख्या प्रस्तुत की गई है। आधुनिक युग में धर्म सांप्रदायिक रूढ़ियों से मुक्त होकर स्वतन्त्र रूप में विकसित हुआ है। अब धर्म वैयक्तिक साधना की वस्तु न होकर समष्टिगत हो गया है। उसका स्वरूप बहुत कुछ रूढ़ियों के जाल से छूट गया है। बाह्याडम्बरों की अपेक्षा उसमें सत्य, अहिंसा, प्रेम, सहानुभूति, त्याग, सेवा के आदर्शों का अधिक महत्व हो गया है। व्यवहार-पक्ष में वह मानवतावाद के ऊपर प्रतिष्ठित है, जिसमें जाति, वर्ण, संप्रदाय एवं राष्ट्र की संकुचित भावनाओं का परित्याग हो गया है (देखिए, तीसरा अध्याय)।

आधुनिक कविता में 'नारी' को प्रमुख स्थान मिला है। यों तो हर एक युग के कवियों ने ही नारी को महत्वपूर्ण स्थान दिया है, किन्तु आधुनिक काल में नारी ही काव्य का मूल विषय है। युग-युग में नारी के प्रति कवियों का दृष्टिकोण बदलता रहा है। उसको आदर्श और यथार्थ दोनों रूपों में चित्रित किया गया है। वर्तमान युग में नारी के प्रति मनोवैज्ञानिक दृष्टि का भी विकास हुआ है। इस युग की वैयक्तिकता प्रधान कविताओं में कवियों की व्यक्तिगत कुंठाओं की ही प्रतिच्छाया अधिक है। छायावादी तथा प्रगतिवादी कवियों ने नारी का जैसा चित्रण किया है उसमें दमित वासनाओं के उद्‌गारों का ही प्राचुर्य है। इस युग के कवि भी नारी को कोई स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं दे सके हैं। हाँ, आजकल के कवियों ने युग-युग से परतंत्र नारी के स्वातंत्र्य का उद्‌घोष अवश्य सुनाया है। पुरानी मर्यादाओं एवं परंपराओं से मुक्ति पाने से ही नारी का स्वतंत्र विकास संभव है, ऐसे नए कवियों का अटल विश्वास है। इसीलिए उनकी कविता में नारी की स्वतंत्रता का स्वर मुखर है। अत्याधुनिक युग के काव्य में जाग्रत नारी का चित्रण प्रधान है तथा यौन-प्रवृत्तियों का प्रकृत रूप में निस्संकोच वर्णन किया जाता है। प्रयोगवादी काव्य में नारी को यथार्थता की भाव-भूमि पर चित्रित किया गया है।

आधुनिक युग में काव्य के प्रतिमान एकदम बदल गए हैं। प्राचीन कवि रस की दृष्टि से काव्य का सृजन करते थे। इसलिए विशिष्ट आलम्बनों को चुनकर

उनके प्रति विविध भावों की व्यंजना दिखाई जाती थी, जिससे श्रोता या पाठक के हृदय में पूर्ण रसानुभूति हो सकती थी। आजकल के कवि अंगरेजी काव्यादर्श से प्रभावित होकर अपने काव्यों में चरित्र चित्रण एवं जीवन संघर्ष को प्रधानता देते हैं। अतएव इनमें रसोन्मेष के स्थल बहुत कम आ पाते हैं। इन काव्यों को पढ़ कर सहृदय को रसानुभूति का आनन्द नहीं मिलता वह केवल चरित्र से प्रभावित होकर रह जाता है।

आधुनिक काव्य में रति के क्षेत्र का पर्याप्त विकास हुआ है। पहले रति नायक-नायिका तक ही सीमित थी। आलोच्यकाल में देश-विषयक, प्रकृति विषयक एवं अव्यक्त प्रियतम विषयक रति का भी प्रकाशन हुआ है। अभिप्राय यह कि आधुनिक युग में देशानुराग, प्रकृति-प्रेम एवं अव्यक्त प्रियतम के प्रति रति-भाव भी प्रकट हुआ है, जो रस की अवस्था तक न पहुँचने से केवल भाव-कोटि तक रह जाता है। वीर रस के आलम्बनों में राष्ट्र वीर, सत्याग्रह वीर, त्याग वीर, निम्न वर्ग, स्त्री एवं पूंजीपतियों को भी स्थान मिला है। करुण रस के आलम्बनों में दलित, विधवा, अनाथ, भिक्षुक, किसान एवं मजदूरों का भी समावेश हुआ है (देखिए, अध्याय ८)।

भाव-क्षेत्र का भी विस्तार हुआ है। राष्ट्र-प्रेम, प्रकृति-प्रेम एवं दलित-प्रेम के साथ-साथ कुछ नये संचारी भावों की भी वृद्धि हुई है। संचारियों की स्थिति रस के आभोग में ही संभव है, क्योंकि उनका स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता। आधुनिक कविता में लोकानुभूति का भाव प्रधान है, जो देश-भक्ति एवं दलितोद्धार के रूप में प्रकट हुआ है। विषाद या सहानुभूति इसका स्थायी भाव माना जा सकता है। विक्षोभ, प्रतिशोध, देश-भक्ति, विजय, प्रतियोगिता, समता, विचार, वितर्क आदि इसके संचारी हैं।

प्रगतिवादी-प्रयोगवादी कविता में भाव-पक्ष का ह्रास हो गया है, क्योंकि ये कवि रस-सिद्धान्त से विरोध रखते हैं। इनका काव्य बुद्धि-पक्ष प्रधान है, जो तर्क, विचार, संशय, श्रद्धा, अविश्वास एवं असंतोष के रूप में प्रकट हुआ है। ये कवि अपनी रचनाओं में यथार्थ चित्रण, बौद्धिकता, तार्किकता, ऐन्द्रियिक संवेदन और यौन-भावनाओं को अधिक महत्व प्रदान करते हैं। इनके ऊपर आधुनिक युग की मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति का प्रभाव अधिक है। इससे काव्य के मूल तत्व रस-बोध को क्षति पहुँची है, जिससे काव्य का स्वारस्य नष्ट हो गया है। मूलतः काव्य रागात्मक है, यह परंपरा से सिद्ध है। नये कवियों ने काव्य के मूल तत्व का ही खंडन किया है, किन्तु उसके स्थान पर अभी तक कुछ नवीन तत्व नहीं दिया है। केवल विद्रोह की प्रवृत्ति अपने-आप में कोई सिद्धांत नहीं। नया काव्य-

सिद्धान्त रचनात्मक सृजन से उद्भूत होना चाहिए, वाद-विवाद एवं अनर्गल प्रचार से नहीं। बाल्मीकि, कालिदास, सूर एवं तुलसी के काव्यों में प्राण-तत्व रस है। उस परम्परा से विच्छिन्न होकर काव्य लघु हो सकता है, महान् नहीं।

प्रयोगवादी कविता उलझी हुई संवेदनाओं का प्रकाशन है। भावों की विशुद्ध अभिव्यक्ति उसमें बहुत कम है। उसमें वैयक्तिक अनुभूति को समष्टि तक पहुँचाने के लिए नये-नये माध्यमों को ढूँढ़ा गया है, जिससे काव्य में क्लिष्टत्व दोष आ गया है। यह सत्य है कि वर्तमान युग की जटिलताओं ने जीवन में नाना प्रकार की गुत्थियाँ डाल दी हैं, जिससे संवेदनाओं में भी उलझन आ गई है। कवि भी बेचारा परिस्थितियों का दास है। किन्तु यह भी ध्यान रखने योग्य है कि कवि अपने समय में अपने समाज का सबसे अधिक सचेत व्यक्ति होता है। अतः अनुभूति की क्षमता तथा अभिव्यक्ति की शक्ति—दोनों ही गुण उसमें औरों की अपेक्षा अधिक विकसित होते हैं। वह अपने युग की मानवीय अनुभूतियों को आत्मसात् करके इस प्रकार अभिव्यक्त करता है कि वह पाठकों के लिए सहज-संवेद्य हो जाती हैं। अतएव कवि की सफलता इसी में है कि वह उलझी हुई संवेदनाओं को सर्वग्राह्य बना दे। जिस कवि की अनुभूति वैयक्तिक घेरे में ही सीमित रहेगी, वह सामाजिक दायित्व को नहीं निभा सकता तथा उसकी कविता सर्वजन स्वीकृति भी नहीं हो सकती।

काव्य जीवन की अनुकृति है या उसकी व्याख्या ? यह भी वाद का विषय हो गया है। प्रगतिवादी-प्रयोगवादी कवि जीवन में वस्तु-सत्य को प्रधानता देते हैं। इसी से उनके काव्य में भी यथातथ्य चित्रण अधिक है। इसका परिणाम यह हुआ है कि उनकी वर्णन-पद्धति में जीवन के कुत्सित एवं भद्दे रूपों का समावेश हो गया है। वस्तु का यथातथ्य चित्रण काव्य नहीं है। वह तो इतिहास का मार्ग है। काव्य में वस्तु को चमत्कार पूर्ण बनाकर प्रस्तुत किया जाता है, जिससे वह चित्त में आह्लाद उत्पन्न करने में सक्षम होती है। काव्य नग्न सत्य का आदर नहीं करता, उसकी दृष्टि सौन्दर्योन्मुखी होती है। साथ ही वह आत्मानुभूति को लोक-सापेक्ष दृष्टि से अवलोकन करने का प्रयत्न करता है। कम-से-कम भारतीय परंपरा में काव्य की सार्थकता लोकहित का विधान करने में ही है[१]।

१—कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई। (रामायण बालकांड १३।८)

काव्य रूप

आधुनिक कविता में काव्य के रूप-प्रकारों के क्षेत्र में जितने प्रयोग हुए हैं, उतने पहले कभी नहीं हुए। इन नये प्रयोगों पर बहुत कुछ अंगरेजी-साहित्य के काव्य रूपों का प्रभाव है। आधुनिक काल में महाकाव्य की परिभाषा ही बदल गई है। नये महाकाव्यों में रस का स्थान चरित्र-चित्रण एवं जीवन-संघर्ष ने ले लिया है तथा उसके कथानक में जातीय-राष्ट्रीय गौरव को प्रधान स्थान दिया जाता है। नायक का आदर्श भी बदल गया है। पहले क्षत्रिय कुलोत्पन्न वीर पुरुष ही कथा के नायक हो सकते थे। नायक के चुनाव में आभिजात्य का पूरा विचार रखा जाता था, किन्तु आधुनिक महाकाव्यों में सामान्य वर्ग के स्त्री-पुरुष भी नायक हो सकते हैं (देखिए, काव्य के रूप, अध्याय ६)। दैत्य जैसे अधम पात्रों को भी उत्कर्ष मिला है तथा उनके चरित्रों को भी महाकाव्य का विषय बनाया गया है।

सबसे अधिक प्रयोग प्रगीत काव्य के क्षेत्र में हुए हैं। व्यंग्य गीति, शोक गीति, पत्र गीत, संबोध गीति (ओड), राष्ट्रीय गीति, विचारात्मक गीति, लोक गीत, सिनेमा गीत एवं नाट्य गीत इत्यादि विविध रूपों में प्रगीत काव्य का सृजन हुआ है। इससे प्रकट है कि आलोच्यकालीन कवियों की प्रवृत्ति गीति-काव्य की रचना की ओर अधिक रही है।

आधुनिक प्रगीत काव्य का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि छायावादी-रहस्यवादी कवियों की दृष्टि कल्पना की ओर रही है तथा प्रगति-वादियों की यथार्थ की ओर। छायावादी गीतों की मुख्य विशेषताएँ हैं, वैयक्तिकता की भावना, कल्पनाशीलता, आध्यात्मिक विवृति, वेदना का स्वर एवं अवसाद-विषाद का प्रकाशन। इस काव्य में प्रेम, सौन्दर्य, प्रकृति एवं अध्यात्म को लेकर गीतों की रचना की गई है। अनुभूति एवं अभिव्यक्ति की दृष्टि से ये गीत एकदम नये प्रयोग हैं, क्योंकि इनके पीछे एक नूतन काव्य-प्रेरणा है। इनमें अनुभूति की अपेक्षा कल्पना-प्रवणता है। सन्त कवियों की सी सहजा-नुभूति एवं उदात्तता इन गीतों में ढूँढने पर भी नहीं मिलती है। कारण यह है कि छायावादी कवियों की अनुभूति में उतनी प्रगाढ़ता नहीं है। इनमें कल्पना का वेग है, अनुभूति की तीव्रता नहीं।

प्रगतिवादी गीतों में अनुभूति का स्तर और अधिक नीचे को गिरा है। ये स्थूल, ऐन्द्रियिक वासनाओं से प्रेरित गीत हैं। सन्त कवियों में आत्मानुभूति थी, छायावादी कवियों की अनुभूति मानसिक है तथा प्रगतिवादी रचनाकारों की अनुभूति है विशुद्ध ऐन्द्रियिक।

काव्य का प्राण-प्रद धर्म है, विशुद्ध स्वानुभूति। यह अनुभूति भीतर से

प्रादुर्भूत होती है। निश्छलता इसका मूल तत्व है। यही गीत का सर्वस्व है। शैली और शिल्प तो गौण स्थान रखते हैं। इस दृष्टि से आलोच्यकालीन प्रगीत काव्य की पर्यालोचना की जाय तो वह अपेक्षाकृत उतरा हुआ मिलेगा। इसमें शैली-शिल्प का विधान तो सर्वथा नूतन, आकर्षक एवं वैचित्र्यपूर्ण है, किन्तु काव्यानुभूति असत्य, अस्वस्थ एवं विकृत है। उच्च कविता केवल अनुभूति ही नहीं है, उसे उदात्त एवं स्वतः प्रेरित भी होना चाहिए। मीरा, सूर एवं कबीर के गीत इसमें प्रमाण हैं।

वर्तमान हिन्दी-कविता में गीति-काव्य का भविष्य निराशामय है। प्रगतिवादी कवियों ने फिर भी जन जोवन के गीत गाए हैं, किन्तु प्रयोगवादी रचनाकारों ने तो गीति-काव्य का गला ही घोंट दिया है। ये कवि गीतों के स्थान पर मुक्त छन्द में नीरस पद्य-खंडों की रचना करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि गीतों का प्रवाह मरुस्थल में जा पहुँचा है। गीतों के क्षेत्र में अब परंपरा ही नहीं, प्रयोग भी लुप्त हैं। कुछ कवि लोक ध्वनियों के आधार पर नए गीत लिख रहे हैं।

आधुनिक कविता में वस्तु की अपेक्षा शिल्प के प्रयोग अधिक हैं। काव्य-शिल्प में छन्दों के प्रयोग आश्चर्यजनक हैं। इस काल में संयुक्त छंद, विषमपादी छन्द, मिश्र छन्द, स्वच्छन्द छन्द, मुक्त छन्द, संस्कृत-छन्द, उर्दू के शेर, गजल, रुबाई, बंगला का पयार छन्द तथा अंगरेजी के सानेट के आधार पर रचित छन्दों के प्रयोगों से हिन्दी काव्य को पुष्कल वृद्धि हुई है (देखिए अध्याय १०)। इनके अतिरिक्त सिनेमा गीत और लोकधुनियों के आधार पर रचित गीतों की भी पर्याप्त रचना हुई है तथा हो रही है। छन्दों के प्रयोगों में बहुत सी खटकने वाली बातें भी आ गई हैं। पाद-योजना, लय, तुक, मात्रा एवं वर्ण संबंधी दोषों की बाढ़ सी आ गई है। कवित्त को तोड़कर जो मात्रिक एवं वर्णिक छन्द बनाए गए हैं, उनमें पाद-व्यवस्था दोष-युक्त है। इसी प्रकार मुक्त छन्द दो प्रकार का है, मात्रिक और वर्णिक। लय उसका अन्तः संगीत है, जिसके बिना उसका कोई मूल्य नहीं। किन्तु आधुनिक कविता में मनमाने मुक्त छन्द प्रचलित हो गए हैं, जिससे काव्य-सौष्ठव को क्षति पहुँची है। छन्दों के नये प्रयोग कुशल कवियों द्वारा ही सफल होते हैं, क्योंकि उनमें कोई-न-कोई नियम अवश्य रहता है। अव्यवस्थित एवं अनियमित छन्द काव्य के दूषणों की ही वृद्धि करते हैं। अतः छन्दों के प्रयोग में कवियों को विशेष रूप से सचेष्ट रहना आवश्यक है। छन्द में मात्रा या वर्णों का क्रम लय की दृष्टि से निर्धारित किया जाता है, जिससे

उसका गेय तत्व सुरक्षित रहता है। इसके बिना कविता और गद्य में कोई अन्तर नहीं रह जाता।

नयी कविता में लोक-गीतों की अनेक धुन प्रचलित हैं, जिनमें सोरठ, ठुमरी, ठाठ, ठप्पा, कव्वाली, ख्याल, झूलना, दादरा, कजली, आल्हा, लावनी, रसिया आदि प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त और भी अनेक रंगत के लोक-गीतों की प्रादेशिक धुनों पर आजकल के हिन्दी कवि लिख रहे हैं। जन-गीतों की तर्जों के आधार पर वर्तमान काल में जो कविताएँ लिखी गई हैं, निस्सन्देह प्रयोगात्मक हैं। किन्तु इनका स्वतंत्र अध्ययन व्यवस्थित रूप से तब तक नहीं हो सकता, जब तक इस प्रकार के काव्य का प्रचुर परिमाण में सृजन नहीं हो जाता। अभी थोड़े ही कवियों ने इस ओर प्रयास किया है। जब तक इस क्षेत्र में प्रचुर काव्य राशि उपलब्ध हो नहीं जाती, तब तक इन प्रयोगों का सुनिश्चित रूप से अध्ययन असंभव ही है।

अलंकार-विधान

नयी कविता का अप्रस्तुत-विधान अत्यंत प्रभावशाली है। इस क्षेत्र में हिन्दी के कवि अंगरेजी साहित्य से अत्यधिक प्रभावित हुए हैं। नये कवियों ने काव्य को चमत्कारपूर्ण बनाने के लिए अभिव्यंजना की नई-नई पद्धतियों को ढूंढ़ निकाला है। इनमें मानवीकरण, विशेषण-विपर्यय, मूर्त विषय के लिए अमूर्त उपमान, अमूर्त विषय के लिए मूर्त उपमान, अंगी के लिए अंग का प्रयोग, विशेष के लिए सामान्य तथा सामान्य के लिए विशेष का प्रयोग, जाति वाचक के लिए भाव वाचक एवं भाव वाचक के लिए जाति वाचक का प्रयोग, गुणी के स्थान पर गुण और गुण के स्थान पर गुणी का प्रयोग, प्रभाव साम्य के आधार पर अप्रस्तुतों का प्रयोग, प्रस्तुत-अप्रस्तुत का तादात्म्य, प्रतीकात्मक उपमान, लाक्षणिक उपमान, अन्यापदेश (एलेगरी) तथा लक्षणामूल रूपकों के प्रयोग विशेष आकर्षक हैं (देखिए, अध्याय १० अलंकारों के प्रयोग)।

छायावादी कवियों के अलंकार-विधान पर अंगरेजी के वर्ड्सवर्थ, शैली, कीट्स, बायरन आदि कवियों का प्रभाव विशेष है तथा प्रयोगवादी कवियों पर ईलियट, एजरा पाउंड, लारेंस, ह्विटमैन आदि का। इसके साथ-ही बहुत कुछ अंश में इन कवियों की समर्थ प्रतिभा ने भी अप्रस्तुत-विधान के नये-नये स्तरों का अन्वेषण किया है। छायावादी-रहस्यवादी कवियों की अभिव्यंजना पद्धति में सौन्दर्य के नाना पक्षों का सफल उद्घाटन हुआ है। उपमान एवं प्रतीकों की खोज के लिए कवियों की प्रतिभा ने अधिकतर प्राकृतिक क्षेत्रों का अनुसंधान किया है तथा सूक्ष्म, सुन्दर एवं रमणीय उपमानों की योजना सफलतापूर्वक

की गई है। इसके अतिरिक्त लाक्षणिक एवं व्यंजक अप्रस्तुतों की सृष्टि करने में इन कवियों ने अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है (देखिए, अध्याय १० अलंकारों का विवेचन)।

अलंकारों से काव्य में सौन्दर्य की वृद्धि होती है। जब ये अश्लील, असुन्दर एवं अवांछित रूपों की सृष्टि खड़ी करने लगते हैं, तब इनका प्रयोजन ही नष्ट हो जाता है। प्रगतिवादी-प्रयोगवादी रचनाओं में अधिकतर भद्दे एवं कुरुचिपूर्ण उपमानों का ढेर-सा लगा दिया गया है। काव्य के शोभाधायक धर्मों का ऐसा दुरुपयोग शिष्ट रुचि का अनुमोदन कभी नहीं प्राप्त कर सकता है।

प्रतीक-योजना

आलोच्यकालीन कविता में पुराने प्रतीकों का भी व्यवहार हुआ है और नये प्रतीकों की भी सृष्टि हुई है। किन्तु अधिकांश कवियों की दृष्टि पुराने प्रतीकों की ओर से हट कर नये प्रतीक-विधान की ओर मुड़ रही है।

छायावादी-रहस्यवादी काव्य की प्रतीक-पद्धति के दो रूप हैं। एक प्रकार के प्रतीक वे हैं जो अन्योक्ति-पद्धति पर आश्रित हैं तथा दूसरे प्रकार के प्रतीक लाक्षणिक हैं। ये प्रतीक अधिकतर प्राकृतिक जगत् से चुने गए हैं। प्रभावाभिव्यंजक होने से ये भावों को उद्दीप्त करने में पूर्ण रूप से समर्थ हैं। प्रगतिवादी-प्रयोगवादी काव्य के प्रतीक अधिकतर व्यावहारिक जीवन से चुने गए हैं। ये प्रतीक दैनिक जीवन के व्यवहार से संबंधित होने के कारण वस्तु को प्रभावोत्पादक बनाने में पूर्ण सहायता करते हैं। यद्यपि इनमें सौन्दर्य का अभाव है, तो भी ये प्रभाववर्धक अधिक हैं। प्रतीकात्मक एवं बिम्बाधायक शैली नयी कविता की निजी विशेषता है। इन प्रतीकों के साथ कभी जन-हृदय का परिचय नहीं हुआ है। इसी से इनको समझने में कभी-कभी बहुत बड़ी भ्रान्ति उत्पन्न हो जाती है। जिन कवियों ने जीवन के अश्लील और घृणित पक्षों से प्रतीकों को चुना है, उनकी रचनाएं घटिया और हास्यास्पद बन गई हैं (देखिए, नये प्रतीक, अध्याय १०)।

आधुनिक कविता की भाषा नागरी हिन्दी है। कुछ काव्य ब्रज और अवधी भाषा में भी लिखे गए हैं। पहले कवियों ने सहज-सरल भाषा में हृदय के उद्गारों को प्रकट किया है, किन्तु आलोच्यकाल में लाक्षणिक पदावली, प्रतीक-पद्धति एवं अभिव्यंजना के विभिन्न मार्गों का उद्घाटन हुआ है। इससे नयी कविता की भाषा कहीं अधिक सशक्त, सुन्दर एवं प्रभावोत्पादक है। छायावादी-रहस्यवादी कविता कवियों ने लाक्षणिक, व्यंजक, प्रतीकात्मक, चित्रोपम एवं सांकेतिक प्रयोगों के द्वारा काव्य-भाषा की श्रीवृद्धि की है। प्रगतिवादी-

प्रयोगवादी एवं राष्ट्रीय कविता में भाषा का स्वाभाविक रूप ही ग्रहण किया गया है। किन्तु उसमें हास्य एवं व्यंग्य की प्रधानता है। प्रयोगवादी रचनाओं में उर्दू शब्द, क्षेत्रीय प्रयोग एवं जन भाषा की पदावली को निस्संकोच अपनाया गया है। लोकोक्ति एवं मुहावरों का भी प्राचुर्य है तथा उर्दू और अंगरेजी भाषा के मुहावरों को छूट के साथ ग्रहण किया गया है । नयी कविता की भाषा में अनेक प्रकार के शब्दों का प्रयोग मिलता है।

(१) तत्सम शब्द (२) तद्भव शब्द (३) क्षेत्रीय प्रयोग (४) उर्दू के प्रयोग (५) अंगरेजी शब्द तथा छायानुवाद। (६) ध्वन्यर्थ व्यंजक शब्द (७) द्विरुक्त पद आदि (देखिए, 'भाषा' शीर्षक अध्याय १०)।

संस्कृत पदावली, उर्दू शब्द एवं अंगरेजी प्रयोगों के पूर्वग्रह से भाषा की स्वाभाविकता नष्ट हुई है तथा उसमें कृत्रिमता की बाढ़ सी आ गई है। संस्कृत की समास युक्त पदावली ने कहीं-कहीं पर भाषा को दूषित कर दिया है। इसी प्रकार लक्षणाओं की रचना भी किसी नियम पर आधारित नहीं है। इसी से आधुनिक कविता के लाक्षणिक प्रयोग अधिकतर दूषित हैं। लक्षणा के व्यापार को दूर तक खींचने की प्रवृत्ति ने भाषा को दुरूह बना दिया है। इसी प्रकार उर्दू प्रयोगों की बाढ़ ने भाषा के सहज रूप को विकृत बना डाला है।

वस्तुतः भाषा की शक्ति अपने ही भीतर से प्रकट होती है। विदेशी शब्द, पद, मुहावरों एवं लोकोक्तियों के अनावश्यक प्रयोगों से उसके गौरव को हानि ही पहुँचती है। इसी प्रकार लक्षणा और व्यंजना के प्रयोगों में किसी नियम का आधार न होने से उनमें उच्छृंखलता आ जाती है। इसके लिए आधुनिक कवियों को भाषा की परंपरा, शब्द-शक्ति, नाद-सौन्दर्य, स्वर-मैत्री, लय-साम्य, एवं ध्वनि-तत्व से परिचित होने की आवश्यकता है। व्याकरण के नियमों की ओर ध्यान रखने से ही भाषा परिष्कृत हो सकती है।

प्रयोग का उद्देश्य

काव्य की प्राचीन रूढ़ियों को तोड़ने-फोड़ने तथा अप्रचलित, अपरिचित प्रतीकों एवं अप्रस्तुतों की योजना प्रयोग नहीं है। टकसाल में ढले हुए नए सिक्कों के तुल्य नए-नए शब्दों को गढ़ना भी प्रयोग नहीं है। काव्य में प्रयोग का अर्थ केवल इतना ही है कि अभिव्यक्ति एवं रचना-प्रक्रिया के क्षेत्र में नए-नए मार्गों का निर्माण हो, नई-नई रीतियों का उद्घाटन हो तथा वस्तु का नए रूप, रंग एवं भंगिमाओं के साथ चित्रण हो। रीतिकालीन कवियों का प्रेम-वर्णन पढ़ते-पढ़ते जी ऊबने लगता है, किन्तु छायावादी कवियों ने उसी प्रेम का अभिव्यक्ति

के नए माध्यम से ऐसा अनुपम चित्रण किया है कि उसमें अभिनय दीप्ति आ गई है।

प्रयोग में नया आविष्कार करने का प्रश्न नहीं उठता। परिचित वस्तुओं में सन्निहित संभावनाओं का उद्घाटन करना ही प्रयोग का उद्देश्य है। काव्य में यही सत्य दृष्टिगोचर होता है। काव्य-वस्तु का आधार चिर-परिचित होता है, जिससे मानव-समाज प्रेरणा ग्रहण करता है तथा जिसका मानव-हृदय से शाश्वत संबंध होता है। रूस, मास्को, लाल सेना एवं लाल निशान के गीत भारतीय हृदय को स्पन्दित नहीं कर सकते, क्योंकि इनके साथ उसका रागात्मक संबंध नहीं है। प्रयोग की विशेषता यह है कि कवि प्राचीन वस्तु में कल्पना का ऐसा रंग देता है कि वह सर्वथा मौलिक एवं नवीन दिखाई पड़ती है, जिससे उसकी ओर सबका हृदय आकर्षित होता है। प्रयोग का अर्थ यही है कि कवि शाश्वत सत्य को नवीन परिस्थितियों के सन्दर्भ में रखकर नये रूप में उपस्थित करे। इसके अतिरिक्त प्रयोग का और क्या अर्थ है?

प्रयोगवादियों में सामान्य को छोड़कर विशेष को प्रदर्शित करने की प्रवृत्ति अधिक दिखाई पड़ती है। इसके पीछे अपने व्यक्तित्व को प्रकाशित करने का अभिलाष ही प्रधान कारण है। आधुनिक काल में निराला जी और अज्ञेय जी में यह प्रवृत्ति विशेष रूप में दृष्टिगत होती है। ये जो कुछ कहना चाहते हैं, उसमें वैचित्र्य एवं विशेष का प्रदर्शन अधिक होता है। विविध प्रकार के मुक्त छन्दों की सृष्टि, कथन-शैली नये-नये प्रकार, शब्दों के विचित्र प्रयोग, इनके काव्यों में बहुत हैं। अज्ञेय जी ने फ्रायड के मनोविश्लेषण के आधार पर जो नूतन काव्य-सृष्टि खड़ी की है, उसमें कितना स्थायित्व है, यह तो कोई भविष्य का आलोचक बताएगा, परन्तु परंपरा के प्रति विद्रोह का तीव्र स्वर उसमें स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

कविता सामान्य जीवन और जगत् से कभी बाहर नहीं जा सकती। कवि जो कुछ कहता है, उसे यदि सामान्य लोग नहीं समझते, तो वह व्यक्तिगत वस्तु रह जाती है। व्यक्तिवाद में वैचित्र्य की प्रवृत्ति आप से आप आ जाती है, जिससे सामान्य हृदय के साथ उसका साधारणीकरण नहीं हो पाता। यही कविता का पतन है। जब कविता समाज की वस्तु न होकर व्यक्तिगत वैचित्र्य के प्रदर्शन के लिए लिखी जाती है, तब उसका सामान्य जीवन से संबंध टूट जाता है। वैचित्र्यवाद से प्रेरित होकर कवि जो कुछ कहता है, उसमें प्रेषणीयता नहीं रहती है तथा ऐसी कविता जीवन से विच्छिन्न हो जाती है।

साहित्य के क्षेत्र में प्रयोग सदैव से होते आए हैं। हर एक रचनाकार वस्तु, रूप, लय, तुक, गीत, प्रतीक एवं उपमानों की दिशा में कुछ प्रयोग करता

है। इसी से वह कविता में कलात्मक सौन्दर्य ला सकता है तथा रचनात्मक सृजन को कुछ गति दे सकता है। जो रचनात्मक कार्य में प्रवृत्त होता है, वह कुछ-न-कुछ प्रयोग अवश्य करता है। प्रयोग तो रचना के पीछे-पीछे चलते हैं। जिसने कला या साहित्य के क्षेत्र में कोई प्रयोग नहीं किए, उसकी रचना भी कोई मूल्य नहीं रखती। हर एक सशक्त रचना नए-नए प्रयोग का सन्धान करती है। प्रयोगों से ही इस बात का प्रमाण मिलता है कि कवि की प्रतिभा भावानुभूति को सहज ग्राह्य बनाने के लिए जागरूक है, तथा वह विकासोन्मुख है। पूर्ण सत्य आज भी अनुपलब्ध है और रहेगा। उसी को शोध के लिए कवि-प्रतिभा अनेकानेक प्रयोग-पद्धतियों का सृजन करती है। प्रयोग इस बात के साक्षी हैं कि कवि सत्यान्वेषण में निरन्तर संलग्न है। वस्तुतः प्रयोग अन्वेषण-कर्ता कवि या रचनाकार का साधन है किन्तु यह तभी तक है जब तक उसकी दृष्टि काव्य-सत्य पर केंद्रित है। प्रयोग के लिए प्रयोग करना कवि-शक्ति का दुरुपयोग है। यह स्मरण रखने योग्य है कि काव्य की लता हर एक प्रकार की भूमि पर नहीं उगती है। यह हेतुवाद और बौद्धिक विवेचन का फल नहीं है। इसके लिए सच्ची काव्यानुभूति अपेक्षित है, तर्क-पद्धति नहीं। निष्कर्ष यह कि राजनीतिक वादों एवं संप्रदायों की धरती में कविता के फूल नहीं खिलते।

परिशिष्ट

प्रतीक कोश

परिशिष्ट

नीचे आलोच्यकाल की छायावादी कविता के अन्तर्गत नूतन प्रतीक-परंपरा का अध्ययन किया जाता है। इनको दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—(क) लाक्षणिक प्रतीक, (ख) अन्योक्ति प्रधान प्रतीक। लाक्षणिक प्रतीकों में वाचक पदों के स्थान पर लक्षक पदों का प्रयोग किया जाता है तथा अन्योक्ति प्रधान प्रतीकों में प्रस्तुत के स्थान पर अप्रस्तुत चित्रों का विधान रहता है। नीचे लाक्षणिक प्रतीक विधान के उदाहरण दिये जाते हैं :—

(१) गीला गान=गीला का अर्थ है, आर्द्र (भींगा हुआ), किन्तु गान गीला नहीं होता है, गीला वस्त्र होता है। अतएव मुख्यार्थ का बाध है। गीला का लक्ष्यार्थ है, वेदना से पूर्ण। उत्पाद्य-उत्पादक संबंध। प्रयोजन है, दुःख से पूर्ण कविता।

(२) नयनों के बाल=नेत्रों के बाल (शिशु) नहीं हो सकते, अतः मुख्यार्थ का बाध हुआ। लक्ष्यार्थ है, आँखों से उत्पन्न। यह जन्य जनक संबंध है। प्रयोजन है आँसू।

(३) उषा का था उर में आवास,
मुकुल का मुख में मृदुल विकास,
चाँदनी का स्वभाव में भास
विचारों में बच्चों के साँस।

उषा=प्रफुल्लता, मुकुल=मुसकान, चाँदनी=कोमलता, स्वच्छता, बच्चों के साँस=सरलता, भोलापन।

(४) त्रिभुवन के मनोविकार=काम

(५) असीम सौंदर्य-सिन्धु की विपुल वीचियों के शृंगार=काम, अनंग (यहाँ पूर्ण पद-योजना में लाक्षणिक विधान है)।

(६) हास-अश्रु का अभिनय=संयोग-वियोग की क्रीड़ा।

(७) त्रिनयन की नयन-वह्नि के तप्त-स्वर्ण=अनंग।

(८) अवाक् निर्जन की भारति=छाया।

(९) कौन तुम अतुल अरूप अनाम =शिशु।

(१०) तुम्हीं हो स्पृहा, अश्रु औ हास,
सृष्टि के उर की साँस=ये सब नारी रूप के लाक्षणिक प्रतीक हैं।

(११) ऐ नश्वरता के लघु बुद् बुद,
काल-चक्र के विद्युत कन,
ऐ स्वप्नों के नीरव चुम्बन,
तुहिन दिवस, आकाश सुमन।

—नक्षत्र

(१२) पवन धेनु, रवि के पांशुल श्रम,
सलिल अनल के विरल वितान,
व्योम-पलक, जल-खग, बहते थल,
अम्बुधि की कल्पना महान्।

—बादल

(१३) अहे वासुकि सहस्र फन = शेष के सहस्र फन प्रसिद्ध हैं, परिवर्तन भी सर्वतोमुख होता है। सादृश्य संबंध है। भाव हैं—परिवर्तन।

(१४) सुषमा के शिशु = शोभा के कुमार, जन्य जनक सम्बन्ध अर्थात मनुष्य।

(१५) जीवन-मधु = जीवन का आनन्द, मधु आनन्द का उपलक्षण है।

(१६) जीवन की डाल = हृदय।

(१७) फूलों का हास = फूलों के खिलने और हास में सादृश्य संबंध है अर्थात् प्रफुल्लता।

(१८) अनन्त का मुक्त मीन = विशेष्य-विशेषण संबंध अर्थात् तारा।

(१९) धूलि की ढेरी में अनजान।
छिपे हैं मेरे मधुमय गान॥

धूलि की ढेरी = असुन्दर वस्तुएं। मधुमय गान = सुन्दर भाव।

(२०) मर्म पीड़ा के हास = हास = विकास, समृद्धि।
विरोधी-वैचित्र्य के लिए व्यंग्य व्यंजक भाव। आधार—आधेय संबंध अर्थात् है मेरे पीडित मन।

(२१) हे अभाव की चपल बालिके, री ललाट की खल लेखा।

अभाव = शून्यता। अभाव से उत्पन्न बालिका अर्थात् चिन्ता (जन्य-जनक संबंध) ललाट = प्रारब्ध, खल लेखा = टेढ़ी रेखा अर्थात् चिन्ता।

(२२) मधु मय अभिशाप = मधुर शाप (विरोधाभास) व्यंग्य व्यंजक संबंध। चिन्ता में भी मधुर इच्छा विद्यमान रहती है।

(२३) अरी उपेक्षा भरी अमरते = उपेक्षा भरी = कर्तव्य ज्ञान शून्य, अमरता = देव (विरोध वैचित्र्य लक्षित है) अर्थात् कर्तव्य के विषय में उपेक्षा रखनेवाले देव।

(२४) तम के सुन्दरतम रहस्य। रहस्य=रूप, तम के सुन्दर तम रूप अर्थात् तम को प्रकाशित करने वाले तारे। प्रकाश्य—प्रकाशक संबंध।

(२५) व्यथित विश्व के सात्विक शीतल विन्दु=सात्विक शीतल विन्दु=सुख एवं शान्ति के पुंज (उपकार्य-उपकारक संबंध) अर्थात् दुःखी प्राणियों को सुख-शान्ति प्रदान करने वाले तारे।

(२६) जीवन की गोधूली=गोधूली=समाप्ति, अवसान (सादृश्य संबंध) अर्थात् जीवन की अंतिम बेला।

(२७) बाड़व-ज्वाला सोती थी, उस प्रणय-सिन्धु के तल में।

बाड़व-ज्वाला=पूर्वकालीन स्मृतियाँ। समुद्र के गर्भ में जिस तरह बाड़व रहती है, उसी प्रकार हृदय के भीतर प्रेम की स्मृतियाँ।

(२८) शीतल ज्वाला जलती है

ज्वाला=वेदना, वेदना के उत्ताप को आँसू शीतल कर देते हैं। विरोध का वैचित्र्य प्रदर्शित किया गया है।

(२९) काँटों ने भी पहना मोती

काँटों=(कटीले पौधों) कठोर हृदय के मनुष्य, मोती=हिम-विन्दु (अश्रु) अर्थात् पाषाण-हृदय वाले लोगों के नेत्र भी सजल हो गए।

(३०) हीरे सा हृदय हमारा कुचला शिरीष कोमल ने।

हीरा=कठोरता, कोमल शिरीष=मृदुल प्रेम अर्थात् मेरे कठोर हृदय को मृदुल प्रेम ने व्याकुल कर दिया (विरोध—वैचित्र्य का भाव)।

(३१) नीरव गान=नीरव=मूक, शान्त, गान=कविता। कविता नीरव नहीं हो सकती अर्थात् अतीत की स्मृति (विरोध-वैचित्र्य)।

इससे सिद्ध है कि छायावादी काव्य में लाक्षणिक प्रतीकों का बाहुल्य है।

प्रगतिवादी काव्य में प्रतीक विधान

(३२) शोषण के फौलादी हाथ।

शोषण=शोषक, अत्याचारी, फौलादी हाथ=निष्ठुर व्यापार (व्यंग्य-व्यंजक भाव) अर्थात् शोषकों के अत्याचार।

(३३) उग रहीं तलवार की फसलें।

तलवार की फसलें=हिंसापूर्ण क्रान्ति। तलवार हिंसा का प्रतीक है। फसल क्रान्ति का। अर्थात् हिंसामय क्रान्ति जन्म ले रही है। तलवार और फसल दोनों ने अपना-अपना अर्थ छोड़ दिया है, अतः लक्षण-लक्षणा है।

(३४) केसर की मासूम क्यारियों से आती आवाज ।
काश्मीर पर कश्मीरी जनता का होगा राज ॥
—नागार्जुन

केसर की मासूम क्यारियाँ=कश्मीर-देश। केसर विशिष्ट देश से विशेष्य-विशेषण भाव लक्षित होता है। अर्थात् सौन्दर्य से पूर्ण कश्मीर देश।

(३५) गिर नहीं सकती कभी विश्वास की दीवार।

दीवार=अविचल निष्ठा। लक्षण लक्षणा है। सादृश्य संबंध। तात्पर्य यह कि अटल विश्वास कभी निष्फल नहीं जाता।

(३६) पृथ्वी के गाल।

गाल=सतह, तल (सादृश्य संबंध) लक्षण लक्षणा। पृथ्वी के धरातल से तात्पर्य है।

(३७) तन्द्रिल से स्वप्निल से बादल।

बादल=श्रमजीवी (बादलों के जल-दान और श्रमिकों के श्रम-दान में साम्य है, दोनों के उपकारक स्वरूप का सादृश्य है। तन्द्रिल-स्वप्निल से आलस्य और थकावट व्यंजित है। प्रतीक में भाव की पूर्ण-व्यंजना है।

(३८) गोरे रंग के अभिगान।

अभिगान=आभिजात्य वर्ग, सवर्ण या कुलीन। गोरे रंग से उज्ज्वलता अथवा उच्चता का भाव लक्षित है (व्यंग्य-व्यंजक भाव)।

(३९) पायलों की रुनकती झंकार।

पायल=कामिनी, वेश्या, रुनकती झंकार=मृदु गीत। स्त्रियों के गीतों के मधुर स्वर से तात्पर्य है।

(४०) यौवन का सौदागर।

यौवन=युवावस्था का सौन्दर्य सौदागर=उपभोक्ता अर्थात् युवतियों के सौन्दर्य को क्रय करने वाले धनिक श्रेणी के लोग।

(४१) नशीला चांद।

चांद=जीवन, नशीला=उन्माद पूर्ण, आवेग-युक्त। उल्लास एवं प्रेम से पूर्ण जीवन। सादृश्य संबंध से सारोपा गौणी लक्षण-लक्षणा है।

(४२) कंटकों के डंक।

कंटक=बाधाएँ, डंक=मूल (व्यंग्य-व्यंजक भाव) अर्थात् बाधाओं की मूल।

(४३) पथ-प्रदर्शिका मशाल।

मशाल=नई चेतना, पथ-प्रदर्शिका=भावी जीवन की निर्मात्री। नव

जीवन का संचार करने वाली चेतना-शक्ति से प्रयोजन है

(४४) मानवता का शव।

शव=निरीह, असमर्थ अर्थात् अशक्त एवं निरीह जनता।

(४५) गुलाम देश में मगर
किसी जवान लाश पर
निरीह शोक का कफन तानना गुनाह है।

—भारती

जवान लाश=असमर्थ जवान आदमी (विरोध वैचित्र्य)। निरीह शोक का कफन=निष्क्रिय सहानुभूति का प्रदर्शन। शुद्धा उपादान लक्षणा। निष्फल सहानुभूति के प्रदर्शन से प्रयोजन है।

(४६) तम के जो बन्दी थे
सूरज ने मुक्त किए
किरनों से रंग पोंछा
धरती को रंग दिये।

—नरेश कुमार

तम=प्राचीन परंपरा, सूरज=नई चेतना, रंग=ऐश्वर्य। सूर्य जैसे अन्धकार को हरा देता है, वैसे ही नई चेतना ने दकियानूसी प्राचीन परंपरा को तोड़ दिया। किरन=विकास। नई चेतना के विकास-प्रकाश से प्राचीन मलिन रंग (संस्कार) साफ हो गए। धरती पर नया ऐश्वर्य छा गया। शुद्धा साध्यवसाना लक्षण लक्षणा।

(४७) आज उठ अंगार से श्रृंगार कर मेरी जवानी

—उदयशंकर

अंगार=विपत्ति, श्रृंगार—सुख, प्रसन्नता, जवानी=युवक-शक्ति। यहाँ साध्यवसाना शुद्धा लक्षण लक्षणा है। विरोध-वैचित्र्य का भाव व्यंजित है। भाव यह कि हे युवक, विपत्तियों को सहर्ष वरण करो।

(४८) अमृत रखा सागर के तल में, लहर लहर से लड़ना होगा।
बिन पतवार बिना नैया के, खारे जल में बढ़ना होगा॥

—उदयशंकर

अमृत=आनन्द, सागर=संसार, लहर-लहर=विघ्न-बाधा, पतवार= सहायक, खारा जल=विषम परिस्थिति। साध्यवसाना शुद्धा लक्षण लक्षणा।

(४९) तू शैलराट हुंकार भरे, फट जाय कुहा, भागे प्रमाद।

—दिनकर

कुहा=भ्रान्ति, प्रमाद= जड़ता, आलस्य; साध्यवसाना शुद्धा लक्षण लक्षणा।

(५०) धूल के कन
हिमालय बन जा कि तुझको
कुचलने वाले झुका दें शीश। —रांगेय राघव

धूल के कन=पद्दलित लोग, हिमालय=शक्तिशाली। सादृश्य संबंध है। गौणी लक्षणा है। विषय और विषयी दोनों का उल्लेख होने से सारोपा है। लक्ष्यार्थ के साथ मुख्यार्थ ने स्वकीय अर्थ को पूर्णरूप से त्याग दिया है, अतएव लक्षण लक्षणा है।

(५१) खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतरा रहा कैपिटलिस्ट ॥
—कुक्कुरमुत्ता (निराला)

गुलाब=पूंजीपति वर्ग, कुक्कुरमुत्ता=सर्वहारा वर्ग। खाद=शोषित वर्ग, डाल=उच्चता, कुलीनता।

(५२) फूल लाया हूँ कमल के। क्या करूँ इनका?
—भवानीप्रसाद

'कमल के फूल'=प्रेम

(५३) फिर वह एक हिलोर उठी
—शमशेर

हिलोर=क्रान्ति

(५४) किन्तु उधर, पथ-प्रदर्शिका मशाल, कमकर की मुट्ठी में।
—शमशेर

मशाल=क्रान्ति।

(५५) फिर मिट्टी में जीवन की आशा जागी है
गिरती है दकियानूसी मिट्टी के ढेले
पिछली फसलों की गिरी पड़ रही हैं मेड़ें ॥
—रघुवीर सहाय

मिट्टी=साधारण जनता, मिट्टी के ढेले=सामन्तवाद, पिछली फसल=प्राचीन परम्पराएं, मेड़ें=विधि-विधान।

(५६) हम नदी के द्वीप हैं।
—अज्ञेय

नदी=समाज, द्वीप=व्यक्ति।

(५७) लाल झंडा, लाल सेना, लाल तारा = क्रान्ति ।

(५८) खंडहरों के मूक औ निस्पन्द से, उमड़े अकेले गीत ।

—मुक्तिबोध

खण्डहर = विकेन्द्रित व्यक्तित्व ।

(५९) ये आज ठोस दीवार बनी
है रोक रही जीवन की गति, मन की उन्नति ।

—भारत भूषण

ठोस दीवार = प्राचीन रूढ़ियां ।

(६०) नोन तेल लकड़ी की फिक्र में लगे घुन-से,
मकड़ी के जाले से, कोल्हू के बैल-से ।

—माचवे

कोल्हू के बैल = निम्न मध्यवर्ग ।

(६१) जोतता है। बोता जो किसान इस धरती को
मिट्टी का पुतला है ।

—रामविलास

मिट्टी का पुतला = किसान ।

प्रस्तुत के स्थान पर अप्रस्तुत के रूप में भी प्रतीकों का विधान मिलता है । छायावादी-रहस्यवादी काव्य से इसके उदाहरण दिये जाते हैं—

प्रतीक	अर्थ
अरुण ज्वाल	नव चेतना
अन्तर सौरभ	प्रेम, स्नेह
अमृत घन	आनन्द
अश्रु-हास	दु:ख-सुख
आग	अतृप्ति
उषा	सुख
कनक छाया	भोर
कलिका	प्रिया
काँटे	दु:ख
किसलय	नेत्र
कुन्द	श्वेत रंग
कुलिश	कठोर, निर्दय

गुलाब	लालिमा
चांदनी	कोमलता
चिर निद्रा	मृत्यु
छाया	विषाद
ज्वार	लोक-चेतना
ज्वाला	चेतना
जीर्ण केंचुल	पुराने विश्वास
जीवन	गति, विकास
झंझा	क्षोभ
झरना	प्रेम-प्रवाह
झंकार	भाव तरंग
तंत्री	हृदय
तरी, तरणि	जीवन
तूफान	उद्वेग
दीपक	नेत्र, तारा, प्राण
निर्झर	परिवर्तन
निर्मोक	जीर्णता
नीलम की घाटी	नेत्र
नीलम की प्याली	आँखें
प्रभात	आनन्द
पराग	स्मित
फूल	सुख
बुदबुद	नश्वरता
बिन्दु-सिन्धु	व्यक्ति-समाज
मधु	सुख-माधुर्य
मधुकाल	शैशव, सुदिन
मधुप	प्रेमी
मद	यौवन
मदिरा	लाली
मधु बाल	भौंरा
मधु ऋतु	यौवन
मधु मास	सुख के दिन

मुकुल	प्रियतमा
मुरली	मधुर स्वर
मृत्यु	अगति
मोती	आंसू-ओस
रजत	श्वेत-रंग
रजत-शिखर	आत्मोन्नति
रक्त	बलिदान
रजतातप	आत्म निर्माण
रथ के चक्र	उत्थान-पतन
राखी	स्नेह का प्रतीक
बसन्त	उल्लास
विहग	मन
वीणा	हृदय
वंशी	माधुर्य का प्रतीक
शूल-फूल	दुःख-सुख
श्मशान	शून्य, नीरवता
सविता	प्रकाश
सहस्रफन (वासुकि)	परिवर्तन
सुमन	हृदय
सुरा	लाली
सोने की रेखा	आशा
सोने का संसार	प्रिय का लोक
स्वर्ण किरण	नव चेतना
स्वर्ण धूलि	स्वर्गीय प्रकाश
स्वर्ण निर्झर	सौन्दर्य चेतना
स्वर्णोदय	जीवन-सौंदर्य
सिन्दूर	सौभाग्य-चिह्न
सितार	हृदय
हिमगिरि	विश्व कल्पना

प्रगतिवादी काव्य के प्रतीक

प्रतीक	अर्थ
अग्नि शिखा	क्रान्ति

अर्य दस्यु	उच्च वर्ग
अँधियारा	परतंत्रता
आज	विप्लव
अंकुर	जीवनी शक्ति
उजड़ी बगिया	निराशायुक्त जीवन
उजला-काला	पुण्य-पाप
ऊँचा मस्तक	गौरव
ऊँची चितवन	अनन्त दृष्टि
कन-हिमालय	व्यक्ति-समाज
काँटे	विघ्न
कारवाँ	विकास यात्रा
काले बादल	श्रमिक वर्ग, जाति द्वेष
काली दीवार	सामन्तवाद
क्रान्ति	परिवर्तन
कुत्ते	खुशामदी, तुच्छ
कछुआ	भारतीय संस्कृति
कंकड़-पत्थर	दलित-शोषित
कीड़ा-कूड़ा	अपदार्थ-तुच्छ
कृमि	निम्न वर्ग
खुली हवा-खिली धूप	स्वतंत्रता
खाल	जामा
गन्दी झील	पुराना जीवन
गागर	देह
गिद्ध	शोषक
गूँगी ईंट	मूक जनता, निम्न वर्ग
गरल तूफान	साम्राज्यवाद के पोषक
घूँसा	निर्दयता
घिसी व्यवस्था	पूँजीवादी प्रथा
चेतना	क्रान्ति
चंगेज	अत्याचार
चोर बजार	भ्रष्टाचार

चट्टान	बाधा
चिनगारी	क्रान्ति
छिपकली	नई फैशन की लड़कियां
जोंक	शोषक
ज्वाला	प्रलय, क्रान्ति
जंजीर	परतंत्रता
ज्वार	जोश, उत्साह
ज्वालामुखी	विघ्न बाधा
ठंढा लोहा	निराशा का भाव
डागर	पूंजीपति
ताडव	महानाश
ताजा पानी	नया जीवन
धरती का पुत्र	किसान
दरार	वर्ग भेद
दीप	ज्ञान
धरती के धब्बे	पाप, दुराचार
धूप छांह	द्वन्दयुक्त जीवन
नागपाश	पूंजीवादी व्यवस्था
नई फसल	नया समाज
नादिरशाह	अत्याचार
नया सवेरा	नया जीवन
पिल्ला	दलित बच्चे
पतझर	निर्धनता
पहिया	गति
पिरामिड	शोषण के चिह्न
परवाना	त्याग
पुरातन शव	पुरानी समाज-व्यवस्था
पीले बासी फूल	दुख की सत्ता
बसन्त	ऐश्वर्य, समृद्धि
बगले	भक्षक
बत्ती	सांस
बासी फूल	प्राचीन आदर्श

भुस का पुतला	वर्तमान स्थिति
भंवरों की पांत	केशपाश
भूसा	अकिंचन
मशाल	प्रकाश
महाजन	शोषक
मिट्टी के ढेले	दकियानूसी लोग
मैं-हम	व्यक्ति-समाज
मिट्टी का कण	व्यक्ति
मोती	सार, तत्व
मिट्टी का दिया	देह
रक्त	बलिदान
रणभेरी	क्रान्ति
रुद्र	प्रलय
लाल सितारा	रूसी झंडा
लाल रंग	क्रान्ति
लौह मुष्टि	कठोरता
लहर	व्यक्ति
विपथगा	क्रान्ति
विषघट	सामन्ती शासन
वज्र की दीवार	पूंजीवादी व्यवस्था
वज्र	जन शक्ति
विष के दीप	साम्राज्य के पोषक
शृंखला	बन्धन
सवेरा	नव युग
सम्राट	नृशंसता
सांप	धन का रक्षक
सिंह	बल
सपना	आकांक्षा
संकरी गली	तंग जीवन
सूरज	सत्य, तेज
सांसों की कारा	देह

होली	सर्वनाश
हड्डियां	सर्वहारा
हिमवान	योद्धा
हथकड़ियां	बन्धन
हिमाचल	साम्राज्यवाद
हथौड़े	चोट
हड्डी	घन

सहायक ग्रंथ सूची

सहायक ग्रंथ सूची

हिन्दी

१—अंगराज ... आनन्दकुमार
२—अपराजिता ... रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'
३—अनामिका ... सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'
४—अनन्त के पथ पर ... हरिकृष्ण प्रेमी
५—अभिमन्यु वध ... रामचन्द्र शुक्ल 'सरस'
६—अमृत और विष ... उदयशंकर भट्ट
७—अरस्तू का काव्य शास्त्र ... संपादक डा० नगेन्द्र
८—आचार्य क्षेमेन्द्र ... अनुवादक डा० मनोहरलाल गौड़
९—आधुनिक गीति-काव्य ... सच्चिदानन्द तिवारी
१०—आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना डा० पुत्तूलाल शुक्ल
११—आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास डा० श्रीकृष्णलाल
१२—आर्यावर्त ... मोहनलाल महतो 'वियोगी'
१३—आत्मोत्सर्ग ... सियारामशरण गुप्त
१४—आँसू ... जयशंकर प्रसाद
१५—इत्यलम् ... अज्ञेय
१६—उत्तरा ... सुमित्रानन्दन पन्त
१७—उद्धव शतक ... जगन्नाथदास 'रत्नाकर'
१८—उपवन ... कुंजविहारी पांडेय
१९—उन्मुक्त ... सियारामशरण गुप्त
२०—एकला चलो रे ... उदयशंकर भट्ट
२१—कलापी ... आर० सी० प्रसाद सिंह
२२—कविप्रिया ... केशवदास
२३—कवि भारती ... संपादक पंत, बालकृष्ण राव, नगेन्द्र
२४—कामायनी ... जयशंकर प्रसाद
२५—कबीर ... डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी
२६—कानन कुसुम ... जयशंकर प्रसाद
२७—काव्य के रूप ... गुलाब राय

२८—काव्य-धारा ... संपादक शिवदान सिंह चौहान
२९—कुरुक्षेत्र ... रामधारी सिंह दिनकर
३०—कुक्कुरमुत्ता ... निराला
३१—कुणाल ... सोहनलाल द्विवेदी
३२—कृष्णायन ... द्वारिका प्रसाद मिश्र
३३—कैकेयी ... प्रभातकुमार मिश्र
३४—खड़ी बोली का आन्दोलन डा० शितिकंठ मिश्र
३५—गंगावतरण ... जगन्नाथदास 'रत्नाकर'
३६—गांधी गौरव ... गोकुलचंद्र शर्मा
३७—गुंजन ... सुमित्रानंदन पंत
३८—गीतिका ... निराला
३९—ग्राम्या ... पन्त
४०—ग्रन्थि ... पन्त
४१—चिन्ता ... अज्ञेय
४२—चिन्तामणि (द्वितीय भाग) ... रामचन्द्र शुक्ल
४३—चुभते चौपदे ... हरिऔध
४४—छन्द प्रभाकर ... जगन्नाथप्रसाद भानु
४५—छायावाद युग ... डा० शम्भूनाथ सिंह
४६—छेड़छाड़ ... श्रीनारायण चतुर्वेदी
४७—जगदालोक ... गोपालशरण सिंह
४८—जन नायक ... रघुवीर शरण मित्र
४९—जयद्रथ वध ... मैथिलीशरण गुप्त
५०—जीवन के गान ... शिवमंगल सिंह 'सुमन'
५१—जौहर ... श्यामनारायण पांडेय
५२—जौहर ... सुधीन्द्र
५३—ज्योतिषमती ... गोपालशरण सिंह
५४—झरना ... जयशंकर प्रसाद
५५—ठंढा लोहा ... धर्मवीर भारती
५६—तक्षशिला ... उदयशंकर भट्ट
५७—तपस्वी तिलक ... गोकुलचन्द्र शर्मा
५८—तसव्वुफ अथवा सूफी मत ... चन्द्रबली पांडेय
५९—तार सप्तक ... संपादक अज्ञेय

६०—तुमुल ... श्यामनारायण पांडेय
६१—तुलसीदास ... निराला
६२—द्वापर ... मैथिलीशरण गुप्त
६३—दीप शिखा ... महादेवी
६४—दूर्वा दल ... सियारामशरण गुप्त
६५—दूसरा सप्तक ... संपादक अज्ञेय
६६—दैत्य वंश ... हरदयालु सिंह
६७—धूप के धान गिरिजाकुमार माथुर
६८—धूप और धुआँ ... दिनकर
६९—नल नरेश ... पुरोहित प्रतापनारायण
७०—नकुल ... सियारामशरण गुप्त
७१—नई कविता के प्रतिमान ... लक्ष्मीकांत वर्मा
७२—नये पत्ते ... निराला
७३—नहुष ... मैथिलीशरण गुप्त
७४—नीरजा ... महादेवी
७५—नींद के बादल ... केदारनाथ अग्रवाल
७६—नूरजहाँ ... गुरुभक्त सिंह
७७—पथिक ... रामनरेश त्रिपाठी
७८—पल्लव ... पन्त
७९—पल्लविनी ... पन्त
८०—परिमल ... निराला
८१—पाथेय ... सियारामशरण गुप्त
८२—पिघलते पत्थर ... रांगेय राघव
८३—प्रियप्रवास ... अयोध्या सिंह उपाध्याय
८४—प्रणवीर प्रताप ... गोकुलचन्द्र शर्मा
८५—प्रभात फेरी ... नरेंद्र
८६—प्रलय सृजन ... शिवमंगल सिंह 'सुमन'
८७—प्रवासी के गीत ... नरेन्द्र शर्मा
८८—बापू ... सियारामशरण गुप्त
८९—बुद्ध चरित ... रामचन्द्र शुक्ल
९०—बेढब की बहक ... बेढब बनारसी
९१—बोलचाल ... हरिऔध

९२—बीसवीं शताब्दी के महाकाव्य ... डा० प्रतिपाल सिंह
९३—भारतीय साहित्य शास्त्र ... श्री बलदेव उपाध्याय
९४—भारतेन्दु ग्रंथावली (२ रा खंड) ... संपादक व्रजरत्न दास
९५—भारत का प्राचीन इतिहास ... डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकार
९६—भैरवी ... सोहनलाल द्विवेदी
९७—माधवी ... गोपालशरण सिंह
९८—मानवी ... गोपालशरण सिंह
९९—मिलन ... रामनरेश त्रिपाठी
१००—मधुपुरी ... गयाप्रसाद द्विवेदी
१०१—मुकुल ... सुभद्रा कुमारी
१०२—महादेवी का विवेचनात्मक गद्य ... संपादक गंगाप्रसाद पांडेय
१०३—मधुशाला ... हरिवंश राय 'बच्चन'
१०४—मधुकलश ... हरिवंश राय 'बच्चन'
१०५—मेधावी ... रांगेय राघव
१०६—मौर्य विजय ... सियारामशरण गुप्त
१०७—यशोधरा ... मैथिलीशरण गुप्त
१०८—यथार्थ और कल्पना ... उदयशंकर भट्ट
१०९ यामा ... महादेवी वर्मा
११०—युग वाणी ... पन्त
१११—युग पथ ... पन्त
११२—युगान्त ... पन्त
११३—रजत शिखर ... पन्त
११४—रश्मि रथी ... दिनकर
११५—रस मीमांसा ... रामचन्द्र शुक्ल
११६—राम कथा ... डॉ० कामुल बुल्के
११७—रावण महाकाव्य ... हरदयालु सिंह
११८—रेणुका ... दिनकर
११९—रूप और अरूप ... जानकी वल्लभ शास्त्री
१२०—लहर ... जयशंकर प्रसाद
१२१—वनवास ... राजाराम शास्त्री
१२२—वासवदत्ता ... सोहनलाल द्विवेदी
१२३—विक्रमादित्य ... गुरुभक्त सिंह

१२४—विषपान ... सोहनलाल द्विवेदी
१२५—वीर काव्य संग्रह ... संपा० भगीरथप्रसाद दीक्षित
१२६—वीर सतसई ... वियोगी हरि
१२७—व्रज माधुरी सार ... संपा० वियोगी हरि
१२८—शंकर सरोज ... नाथूराम शंकर
१२९—शक्ति ... मैथिलीशरण गुप्त
१३०—शर्वाणी ... अनूप शर्मा
१३१—संचिता ... गोपालशरण सिंह
१३२—समीक्षा शास्त्र ... सीताराम चतुर्वेदी
१३३—साकेत ... मैथिलीशरण गुप्त
१३४—साकेत संत ... बलदेवप्रसाद मिश्र
१३५—साहित्य समालोचना ... डा० रामकुमार वर्मा
१३६—सिद्धार्थ ... अनूप शर्मा
१३७—सिद्धराज ... मैथिलीशरण गुप्त
१३८—सिद्धान्त और अध्ययन ... गुलाब राय
१३९—सियाराम शरण गुप्त ... संपा० डा० नगेन्द्र
१४०—स्वर्ण धूलि ... पन्त
१४१—स्वर्ण किरण ... पन्त
१४२—स्वप्न ... रामनरेश त्रिपाठी
१४३—हरिऔध सतसई ... हरिऔध
१४४—हल्दी घाटी ... श्यामनारायण पांडेय
१४५—हिम कण ... भगवतीचरण वर्मा
१४६—हरी घास पर क्षण भर ... अज्ञेय
१४७—हिल्लोल ... शिवमंगल सिंह 'सुमन'
१४८—हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास डॉ० भगीरथ मिश्र
१४९—हिन्दी साहित्य में हास्य रस डॉ० बरसानेलाल चतुर्वेदी
१५०—हिन्दी अलंकार साहित्य डॉ० ओमप्रकाश
१५१—हिन्दी साहित्य की भूमिका डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी
१५२—हिन्दी काव्य की अन्तश्चेतना राजाराम रस्तोगी
१५३—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास डा० रामकुमार वर्मा
१५४—हिन्दी काव्य में युगान्तर ... डा० सुधीन्द्र
१५५—हिन्दी छन्द प्रकाश ... रघुनन्दन शास्त्री

संस्कृत

१—अग्नि पुराण ...
२—अलंकार शेखर ... केशव मिश्र
३—अथर्व वेद
४—ऋग्वेद ...
५—ऐतरेय ...
६—कठोपनिषद् ..
७—कथा सरित्सागर
८—कवि कंठाभरण ...
९—काव्यादर्श ... दण्डी
१०—काव्यालंकार सूत्र ... वामन
११—काव्य प्रकाश ... मम्मट
१२—काव्य मीमांसा ... राजशेखर
१३—काव्य कल्प लता वृत्ति ... अरि सिंह
१४—कवि कल्प लता ... देवेश्वर
१५—काम शास्त्र ... वात्स्यायन
१६—काव्यानुशासन ... वाग् भट्ट
१७—किरातार्जुनीय ... भारवि
१८—कुमार संभव ... कालिदास
१९—गीत गोविन्द ... जयदेव
२०—छन्द : शास्त्र ... पिंगल
२१—छान्दोग्य ...
२२—दश रूपक ... धनञ्जय
२३—ध्वन्यालोक ... आनन्द वर्द्धन
२४—नाट्य शास्त्र ... भरत
२५—नैषध ... श्रीहर्ष
२६—बुद्ध चरित ... अश्वघोष
२७—बृहदारण्यक ...
२८—महाभारत ... व्यास
२९—मांडूक्य ...
३०—मुंडक ...
३१—मेघदूत ... कालिदास

३२—रघुवंश ... कालिदास
३३—रामायण ... वाल्मीकि
३४—रस गंगाधर ... जगन्नाथ
३५—वक्रोक्ति काव्य जीवतम् ... कुन्तक
३६—शतपथ ... ...
३७—शिशुपाल वध ... माघ
३८—श्वेताश्वतर ...
३९—श्रीमद्भागवत्
४०—सरस्वती कंठाभरण ... भोज
४१—साहित्य दर्पण ... विश्वनाथ
४२—सुभाषित रत्न भांडागार ... काशी नाथ (संपादक)
४३—सुवृत्त तिलक ... क्षेमेन्द्र

List of the English Book

1. After strange Gods ... T. S. Elliot
2. A history of Sanskrit Lite- ... Keith.
   rature
3. A History of Sanskrit Lite- ... S.N. Das Gupta.
   rature
4. A Psychological a Study in ... Dr. Rakesh.
   Rasa
5. An Introduction to the study ... W.H. Hudson.
   of Literature
6. An Introduction to Sahitya ... P. V. Kane.
   Darpana
7. An Introduction to the Poetry ... K. K. Sharma.
   of Romantic Revival
8. Convention and Revolt in ... John Livingston
   Poetry
9. Encyclopaedia of the Social ...
   Sciences
10. Illusion and Reality ... Codwell.
11. Life in the Gupta Ages ... Raj Narain
    Sehitor.
12. Historical Introduction to ... Gardner
    Modern Psychology Murphy.
13. English Literature and Ideas ... D.H.V. Rooth.
    in the twentieth Century
14. Nationality ... Sydeny Hebert.

15. New b:arings in English Poetry ... F.R. Leavis.
16. Psychological Types ... C.G. Jung.
17. Symbolism : A Psychological Study ... Dr. Padma Agrawal.
18. Selected Prose ... T.S. Elliot.
19. The Encyclopaedia Britanica ...
20. The Psychology of Society ... Morris Ginsderg.
21. The Classical Tradition in Poetry ... Gilbert Murray.
22. The Oxford Dictionary ...
23. The West Land ... T.S. Eillot.
24. The Making of Literature ... R.A. Scott James.
25. The Romantic Imagination ... C.M. Bowra.
26. Theory of Poetry ... Abercrombie.
27. Studies in the History of Sanskrit Poetics ... S.K. De.
28. Principles of Literary Criticism ... I.A. Richard.
29. Literature and Psychology ... F.L. Lucas.
30. Vedic Metre ... Ghate.
31. Vedic Grammar ... Macdonald.

पत्रिकाएँ

१—अवन्तिका ...
२—आलोचना
३—कल्पना
४—काव्यधारा
५—नागरीप्रचारिणी पत्रिका
६—नई कविता